राष्ट्रीय विकास परिषद्

राष्ट्रीय विकास परिषद् पहली पांच साला योजना पर विचार करने के बाद, योजना में बताए हुए उद्देश्यों और प्रोग्रामों को तथा आगे-पीछे किए जाने वाले कामों के निश्चय को मंजूर करती है। परिषद् इस फैसले को भी स्वीकार करती है कि राज्यों की सरकारें भारत सरकार के तथा आपस में एक-दूसरे के सहयोग से और जनता की मदद से योजना के लक्ष्यों को पूरा करने की भरपूर कोशिश करेंगी। साथ ही, यह परिषद् देशवासियों से अपील करती है कि वे इस राष्ट्रीय योजना को पूरा करने में जी-जान से जुट जाएं।

जवाहरलाल नेहरू

९ नवम्बर, १९५२

अध्यक्ष

विषय-सूची

भाग १

योजना

पृष्ठ

१. उद्देश्य ३
२. प्राथमिकतायें और आयोजन के तरीके १७
३. साधनों का मूल्यांकन २६
४. पंचवर्षीय योजना का खाका ३६

भाग २

शासन और जनता का सहयोग

५. भूमिका ६१
६. सार्वजनिक शासन में सुधार ६४
७. जिला विकास प्रोग्रामों का प्रशासन ७७
८. राष्ट्रीय विकास में जनता का सहयोग ८६

भाग ३

विकास का प्रोग्राम

९. कृषि अर्थ-व्यवस्था की स्थिति ९७
१०. सहकारिता-आन्दोलन का विकास १०२
११. योजना के लिये खाद्य-नीति १०७
१२. भूमि सम्बन्धी नीति ११२
१३. खेतिहर मजदूर १२२
१४. कृषि के लिए कार्यक्रम १२६
१५. सामूहिक विकास और देहात विस्तार-योजनायें ... १३२
१६. कृषि के लिए धन १३७
१७. कृषि-हाट-व्यवस्था १४२
१८. कृषि-विकास की कुछ समस्याएँ १४८
१९. पशु-पालन १५९

२०. दुग्धशालाएँ तथा बागबानी १६४
२१. जंगलात १६८
२२. भूमि-रक्षा १७७
२३. मछली उद्योग १८३
२४. गांव के धन्धे १८६
२५. छोटे धन्धे और दस्तकारियां १६६
२६. सिंचाई और बिजली २०२
२७. खनिज साधनों का विकास २२४
२८. वैज्ञानिक और औद्योगिक गवेषणा २३८
२९. औद्योगिक विकास और नीति २४२
३०. विदेशी व्यापार और व्यापारिक नीति २७२
३१. परिवहन और संचार २७६
३२. स्वास्थ्य २८५
३३. शिक्षा ३०१
३४. श्रम ३१२
३५. गृह-निर्माण ३२१
३६. समाज-कल्याण ३२६
३७. पिछड़ी हुई जातियों की भलाई ३३५
३८. विस्थापितों का पुनर्वास ३४०
३९. रोजगार और नौकरी की स्थिति ३४८

चित्र-संकेत और नक़्शे

		पृष्ठ
राष्ट्रीय आमदनी और समग्र उपभोग	(ग्राफ़)	११
केन्द्र और राज्य सरकारों की योजनायें	(चित्र-संकेत)	४०-४१
पंचवर्षीय योजना के लक्ष्य—खेती, सिंचाई और बिजली	(चित्र-संकेत)	१२८-१२९
पंचवर्षीय योजना के लक्ष्य—उद्योग	(चित्र-संकेत)	२४८-२४९
पंचवर्षीय योजना के लक्ष्य—परिवहन, शिक्षा, स्वास्थ्य आदि	(चित्र-संकेत)	२९६-२९७
केन्द्र और राज्य सरकारों का विकास ख़र्च	(चित्र-संकेत)	३६७
सामूहिक विकास योजनाएँ, विकास मंडल और जांच-पड़ताल केन्द्र	(नक़्शा)	३६८
सिंचाई और बिजली की बड़ी योजनाएँ	(नक़्शा)	३६९

भाग १

योजना

अध्याय १

उद्देश्य

भारत में आयोजन का केन्द्रीय उद्देश्य जनता के जीवन के स्तर को ऊँचा उठाना और उनके लिये एक अधिक समृद्धिशाली और विविधतापूर्ण जीवन के लिये अवसर प्रदान करना है। इसीलिये आयोजन का लक्ष्य एक ओर तो यह होना चाहिये कि समाज में प्राप्त जन और सम्पत्ति साधनों का और अधिक प्रभावशाली ढंग से उपयोग किया जाय जिससे उन साधनों के द्वारा सामग्री और सेवा की अधिक से अधिक प्राप्ति हो, और दूसरी ओर आमदनी, धन और अवसर में असमानतायें कम हों। अगर किसी प्रोग्राम का उद्देश्य केवल उत्पादन बढाना होगा तो उसका परिणाम यह हो सकता है कि कुछ थोड़े से लोगों के हाथों में ज्यादा धन पड जाय और जनता अपनी गरीबी की वर्तमान दशा में ही बनी रहे और इस प्रकार उस प्रोग्राम को अधिक बड़े सामाजिक उद्देश्यों की पूर्ति में असफलता मिले। दूसरी ओर, अगर वर्तमान धन की दुबारा बांट ही की जाती है तो उससे समाज के कुछ वर्गों के हितों की हानि होगी और शेष वर्गों की दशा में कोई विशेष सुधार न होगा। इसीलिये हमारा प्रोग्राम दुहरा होना चाहिये जिससे कि उत्पादन तत्काल बढे और असमानतायें कम हों। प्रोग्राम के ये दोनों पक्ष एक-दूसरे पर असर डालते हैं। यह निश्चय करना कि किस हद तक किसी एक दिशा में आगे बढ़ना, दूसरी दिशा में आगे बढ़ने के लिए रास्ता साफ कर सकता है, एक बड़े ही नाज़ुक निर्णय का मामला है। जब कि हमें आरम्भिक अवस्थाओं में अधिक उत्पादन सम्बन्धी कोशिशों पर जोर देना होगा, क्योंकि इसके बिना किसी प्रकार की उन्नति सम्भव ही नहीं है, हमारा आयोजन आरम्भिक अवस्थाओं में भी मौजूदा सामाजिक और आर्थिक ढाँचे के अन्दर आर्थिक क्रियाशीलता को बढ़ावा देने तक ही सीमित न रहना चाहिये। हमें तो उस ढांचे को फिर से ऐसा बनाना है जिससे कि समाज के सभी लोगों के लिये क्रमश: रोजी-रोज़गार, शिक्षा, बीमारी तथा अन्य असमर्थताओं के विरुद्ध सुरक्षा और समुचित आमदनी का पूरा-पूरा प्रबन्ध किया जा सके।

बढ़ा हुआ उत्पादन

२. आयोजन के उक्त दोनों पक्षों के विषय में आम शब्दों में कुछ कहा जा सकता है। हम बढ़े हुये उत्पादन की बात को पहले लें। भारत अभी भी बहुत गरीब देश है क्योंकि यहाँ प्रति व्यक्ति आमदनी बहुत ही कम है। इसमें सन्देह नहीं कि पिछले २० या ३० वर्षों में काफी औद्योगिक विकास हुआ है। बड़े-बड़े कस्बे और शहर बस गये हैं। यातायात और संचार साधन बड़े पैमाने पर विकसित हो गये हैं। गांव अब अन्य स्थानों से पृथक् नहीं रहे और औसत नागरिक एक ऐसे वातावरण में रहता है जो उस वातावरण से भिन्न है जिसमें कि वह ५० या ६० साल पहले रहता और काम करता था। लेकिन औद्योगिक और आधुनिक तरीकों के इस्तेमाल का असर हमारी अर्थ-व्यवस्था के सीमित अंगों पर ही पड़ा है। हमारे देश की आबादी के लगभग ७० प्रतिशत भाग को अब भी खेती पर निर्भर रहना पड़ता है और खेती की पैदावार बहुत ही कम है। खेतों का आकार क्रमशः घटता गया है; पुराने कुटीर और छोटे पैमाने के उद्योग-धंधे टूटते गये हैं और देहात की आबादी, जो कुल आबादी का ८३ प्रतिशत है, लगातार बनी रहने वाली बेरोज़गारी और आमदनी की कमी से पीड़ित रहती है। चाहे देहाती क्षेत्र हों चाहे शहरी, वैकल्पिक धन्धों का विकास इतना अधिक नहीं हो सका है कि उनमें बढ़ती हुई आबादी को खपाया जा सके। सम्पूर्ण समाज की प्रति व्यक्ति आमदनी का स्तर औद्योगिक दृष्टि से आगे बढ़े हुये देशों के $\frac{1}{12}$ या $\frac{1}{15}$ भाग तक नीचा है।

•

३. एक गरीब देश के उत्पादन को बढ़ाना बड़ा कठिन काम है और सब से कठिन बात है वृद्धि के आन्दोलन के लिये आरम्भिक अवस्था में उमंग पैदा करना। इसके कारणों को बहुत सरल शब्दों में समझाया जा सकता है। उत्पादन का स्तर और समाज की सम्पत्ति सम्बन्धी दशा का सुधार मुख्यतः उस के पास मौजूद पूँजी के स्टाक पर निर्भर करता है अर्थात् प्रति-व्यक्ति भूमि पर और कारखानों, इंजनों, मशीनों, सिंचाई की सुविधाओं बिजली पैदा करने वाले केन्द्रों और सचार-साधनों आदि पर। पूँजी के स्टाक में वृद्धि और इस जानकारी के द्वारा कि किस प्रकार सब से अधिक लाभदायक ढंग से उस पूँजी का प्रयोग किया जा सकता है, किसी भी समाज की सामग्री और सेवाओं में वृद्धि की जा सकती है और इस प्रकार

समाज की साम्पत्तिक अवस्था को अच्छा बनाया जा सकता है। इसी बात को संक्षेप मे इस प्रकार कहा जा सकता है कि "आर्थिक उन्नति की कुंजी पूँजी-निर्माण है"। लेकिन किसी भी गरीब समाज के लिये अपने पूंजीगत साधन में काफी बढ़ती करके उत्पादन को बढाना सरल काम नहीं है। उसकी स्थिति कहीं अधिक बड़े पैमाने पर और कहीं अधिक बडी जटिलताओं के साथ एक ऐसे गरीब किसान की है जो एक कुवाँ बनाकर अपने खेत की पैदावार को बढाना चाहता है। वह किसान तभी कुंवा खोद सकता है जब काफी मेहनत करे और अपनी अन्य आवश्यकताओं को कम कर दे। शारीरिक परिश्रम तो उसे स्वयं अपने और अपने परिवार के द्वारा प्राप्त हो सकता है, लेकिन कुवें में लगने वाली सामग्री उसे औरों से खरीदनी होगी। इस खरीद के लिये पैसे बचाने के लिये उसे अपने उपभोग की वस्तुओ को कम करना होगा और यदि उसके जीवन का स्तर पहले से ही बहुत नीचा है तो यह काम बड़ा कठिन होगा और शायद असम्भव ही हो। इस प्रकार यदि उसे कुवाँ खोदना ही है तो उसे बहुत कठोर परिश्रम करना होगा और गरीबी की मार भी सहनी होगी। इस प्रकार हम देखते हैं कि एक गरीब देश मे पूंजी-निर्माण एक बड़ी कठिन समस्या है। भारत में पानी, बिजली और अन्य बहुत सी ऐसी सामग्रियों के साधन हैं जिनको प्रयोग मे लाना अभी बाकी है। बहुत सी ऐसी जमीन है जिसको खेती के योग्य बनाया जा सकता है और बहुत से ऐसे उद्योग-धंधे हैं जिनका विकास किया जा सकता है। लेकिन ऐसा करने के लिये यह ज़रूरी होगा कि पूँजीगत निर्माण के साधनों को उक्त दिशाओं में मोड़ दिया जाय, क्योंकि वैसा न करने से उनका प्रयोग समाज की मौजूदा जरूरतों की पूर्ति में होने लगेगा। कुछ हद तक यह सम्भव है कि इस समय जिस जन शक्ति का उपयोग नहीं हो रहा है, या कम हो रहा है, उसका उपयोग हम करें। लेकिन बहुत से काम ऐसे हैं जिनको यह फ़ालतू जन-शक्ति, आवश्यक टैक्नीकल दक्षता के अभाव में, नहीं कर सकती। यह भी सम्भव नहीं है कि हम इस जन-शक्ति को जरूरत की जगहों में तुरन्त प्राप्त कर सकें। इसलिये अगर देश को उत्पादन की लगातार वृद्धि करते रहने के लिये आवश्यक पूंजीगत साधनों का निर्माण करना है, तो इसके लिये चालू जरूरतों पर अंकुश लगाना आवश्यक हो जायगा। इस प्रकार विकास की आरम्भिक अवस्थाओं में एक ओर तो हमें कठोर परिश्रम करना पड़ेगा और दूसरी ओर अपनी जरूरतों को कम करना पड़ेगा। किसी भी आयोजन के लिये यह बहुत

ज़रूरी है कि त्याग और परिश्रम किया जाय। प्रथम कुछ वर्षों में तो यह ज़रूरत सब से ज्यादा होगी, लेकिन जब यह काम शुरू हो जायगा तो इसमें क्रमशः आसानी होती जायगी। यदि एक बार हम कम उत्पादन, कम बचत और कम पूँजी-निर्माण के कुचक्र को तोड़ सकें तो हमारी अर्थ-व्यवस्था निरन्तर उन्नति की ओर बढ़ती जायगी। जैसे-जैसे उत्पादन और उसके फलस्वरूप प्रति-व्यक्ति आमदनी बढ़ती जायगी, कम से कम कष्ट के साथ बड़ी रकमें बचती जायेंगी और पूँजी-साधनों के स्टाक में ज्यादा से ज्यादा बढ़ती होती जायगी जिससे उत्पादन और प्रति व्यक्ति आमदनी क्रमशः बढ़ती जायगी।

४. स्वभावतः हमारे सामने दो सवाल उठते हैं। पहला सवाल यह है कि किसी भी निश्चित अवधि में हम प्रति-व्यक्ति आमदनी में कितनी वृद्धि की युक्तिसंगत रूप से आशा करें और दूसरा सवाल यह है कि वृद्धि के लिये पूँजी-निर्माण की रफ़्तार कितनी हो। इन सवालों का कोई निश्चित उत्तर नहीं है, लेकिन मोटे तौर पर और कतिपय सम्भावनाओं तथा विकास की आरम्भिक अवस्थाओं में प्राप्त अन्य देशों के अनुभव के आधार पर हम कुछ न कुछ निर्णय कर सकते हैं।

५. लेकिन पहले हमें यह बात साफ कर देनी चाहिये कि हमारे सामने चुनाव करने की एक निश्चित समस्या है, अर्थात् एक ओर निकट भविष्य में जीवन के स्तर मे थोड़ी-बहुत वृद्धि और पूँजीगत साधनों में अपेक्षाकृत कम बढ़ती, तथा उसके परिणाम-स्वरूप उन्नति की ओर किसी प्रकार की निरन्तर और निश्चित प्रगति का न होना है, और दूसरी ओर, तेज़ी के साथ पूँजी-निर्माण करने के लिये वर्तमान पीढ़ी को कष्टों और कठिनताओं का सामना करना है जिससे कि आने वाली पीढ़ी के जीवन के स्तर को काफी ऊँचा उठाया जा सके। यह स्पष्ट है कि हमको उक्त दोनों समस्याओं के बीच किसी प्रकार का सन्तुलन स्थापित करना होगा। लेकिन हमें यह मान कर चलना होगा कि हमारा झुकाव दूसरी बात की ओर ज्यादा होगा।

६. दो अन्य बातों की चर्चा भी कर देनी आवश्यक है। पहली बात का सम्बन्ध आबादी की बढ़ती से है। हम इस समय यह मान सकते हैं कि आबादी की वृद्धि प्रति वर्ष १·२५ प्रतिशत होगी, जैसा कि पिछले १० वर्षों की अवधि में प्रकट हुआ है। यदि यह मानना सही है तो केवल आबादी की बढ़ती की समस्या का सामना करने के लिये ही कुल राष्ट्रीय आमदनी में

काफी वृद्धि करनी होगी।

७. दूसरी बात यह है कि पूँजी को लगाने वाली इकाई और उसके प्रयत्नों से होने वाले अतिरिक्त उत्पादन के बीच क्या सम्बन्ध होगा। स्पष्टतया यह सम्बन्ध अलग-अलग मामलों में अलग-अलग होगा। पूँजीगत सामग्री अर्थात् मशीनों आदि पर पूँजी लगाने की प्रभावकता केवल उस सामग्री के आकार पर ही निर्भर नहीं करती, बल्कि लगातार बदलने वाली अन्य बहुत सी परिस्थितियों पर भी निर्भर करती है। एक विशेष परिस्थिति में किसी रकम को किसी काम में लगाने से एक दूसरी प्रकार की परिस्थिति की तुलना में कई गुना अधिक लाभ हो सकता है। दूसरी परिस्थितियों में दुर्भाग्यवश या गलत ढंग से लेखा-जोखा करने से लाभ शायद बहुत कम हो। पूंजी लगाने से लाभदायक परिणाम कितने समय में प्राप्त होंगे, इसको देखना होगा। एक कुवें को खोदने और उससे लाभ उठाने का काम कुछ महीनों में ही हो सकता है जब कि सिंचाई के लिये एक बाँध बनाने और उससे प्राप्त पानी का प्रयोग करने में कई साल लग सकते हैं।

८. किसी भी कम विकसित देश में पूँजीगत बचत के बहुत छोटे अंश के द्वारा ही पैदावार में तेजी के साथ और महत्वपूर्ण वृद्धि हो सकती है। उदाहरणार्थ, सन् १८९० और सन् १९२० के बीच जापान में केवल अच्छे बीजों खादों, कृमिनाशकों और खेती के सुधरे हुये तरीकों के द्वारा, जिनमें से किसी के लिये भी अधिक पूँजी लगाने की ज़रूरत न थी, खेती की उपज में ७७ प्रतिशत वृद्धि हो गई। यद्यपि भारत के मामले में मौसम और अन्य कुछ ऐसी बातें हैं जिनके कारण आरम्भ में शायद अधिक पूँजी लगानी पड़े, फिर भी हमारे यहाँ खेती की वर्तमान कम उपज को देखते हुये अपेक्षाकृत अच्छे नतीजे निकल सकते हैं। वर्तमान योजना में, जिसमें खेती पर विशेष ज़ोर दिया गया है, इस प्रकार पूंजी लगाने की विशेष व्यवस्था की गई है। साथ-साथ और अधिक पूंजी जुटाने की समस्या को कुछ हद तक इस प्रकार सुलझाया जा सकता है कि जन-शक्ति, भूमि और वर्तमान साज-सज्जा का और अधिक भरपूर उपयोग किया जाय। बेकार जन शक्ति का उपयोग नहरें खोदने, तालाबों की मरम्मत करने, सड़कें और छोटे बाँध बनाने, सफाई की हालत में सुधार करने और प्रारम्भिक शिक्षा देने में हो सकता है। इस प्रकार के स्थानीय कामों के लिये स्थानीय साधनों को जुटाने की बड़ी जरूरत है और इसके लिये भी योजना में कुछ व्यवस्था की गई है। दूसरी ओर बड़ी बहुमुखी योजनाओं के लिये पूँजी की बड़ी रकमों की व्यवस्था

है। कई सालों तक इनके द्वारा उत्पादन बढाने के लिये पूर्णतया काम नही लिया जा सकता, यद्यपि एक अवधि के बाद इनके द्वारा प्रत्यक्षतः तथा अप्रत्यक्षतः उत्पादन में बहुत वृद्धि होगी।

६. उपर्युक्त सभी बातो पर विचार करने के बाद आगे जो आँकडे प्रस्तुत किये जायेंगे उनमें यह माना गया है कि सन् १९५१ से आरम्भ होने वाले १० वर्षों में पूंजी और उत्पादन का अनुपात ३ : १ होगा और यह अनुपात क्रमश: बढ़ता हुआ लगभग ४ : १ हो जायगा और इसी गति से सन् १९७० तथा उससे आगे यह वृद्धि होती जायगी। यह भी माना गया है कि औसतन पूँजी लगाने की तारीख से लगभग दो साल बाद अतिरिक्त उत्पादन का लक्ष्य प्राप्त होने लगेगा।

१०. यहाँ तक बुनियादी सम्भावनाओ की बात कही गई। अब हम अन्य देशों के अनुभवों की ओर देखें। अमेरिका मे लगभग ३० साल में अर्थात् सन् १८७० से सन् १९०० तक पूँजी-निर्माण १२ से लेकर १५ प्रतिशत तक रहा और उससे उपभोक्ताओं को प्राप्त होने वाली सामग्री तीन गुना बढ गई। इसी प्रकार जापान मे ३० वर्षों की अवधि में, अर्थात् सन् १९०० से सन् १९३० तक नये पूँजी–निर्माण में प्रायः १४ प्रतिशत की औसत वृद्धि से राष्ट्रीय आमदनी तीन गुना बढ गई। रूस मे पहली पंच-वर्षीय योजना के काल में नकद पूँजी का लक्ष्य राष्ट्रीय आमदनी के एक-चौथाई और एक–तिहाई के बीच मे रखा गया जो कि दूसरी पंचवर्षीय योजना के काल में कुछ कम कर दिया गया। मोटे तौर पर अनुमान के अनुसार सन् १९२३ से सन् १९५८ तक के समय में लगाई गई पूंजी राष्ट्रीय आमदनी का २० प्रतिशत थी। पूँजी-निर्माण की इस तेज़ रफ़्तार के कारण लगभग १० वर्ष के समय में राष्ट्रीय आमदनी प्रायः दुगुनी से अधिक हो गई।

११. अन्य देशों मे उपर्युक्त सफलताओं को देखते हुए इस देश को कम से कम यह लक्ष्य बनाना चाहिये कि लगभग एक पीढ़ी की अवधि मे प्रति व्यक्ति राष्ट्रीय आमदनी दुगुनी हो जाय। एक ऐसे देश के लिये, जहाँ पहले से ही घनी आबादी है, और जिसे आगामी कुछ वर्षों में लगातार बढ़ने वाली आबादी के लिये व्यवस्था करनी है, यह एक महत्वा-कांक्षापूर्ण लक्ष्य है जिसके लिये बहुत अच्छे संगठन और ऐसे राष्ट्र-व्यापी प्रयत्न की आवश्यकता है जो सामान्यतः युद्ध जैसी संकटकालीन परिस्थि-

तियों में ही किया जाता है। बचत और पूँजी-निर्माण की रफ्तार को हमें उनके वर्तमान स्तर से बहुत अधिक ऊंचा उठाना होगा। यह अनुमान लगाया गया है कि सन् १६५० और सन् १६५१ में बचत, राष्ट्रीय आमदनी का केवल ५ प्रतिशत भाग रही। जब हम इसकी तुलना अमेरिका, जापान, और रूस से करते हैं तो राष्ट्रीय आमदनी मे वृद्धि की प्राप्ति के लिये इसे बहुत कम मानना पड़ेगा। इसके अतिरिक्त एक ऐसी आबादी के लिये, जो १ २५ प्रतिशत प्रति वर्ष के हिसाब से बढ़ रही है, बचत की यह दर प्रति व्यक्ति आमदनी को स्थिर रखने के लिये ही यथेष्ट है। नि.सन्देह यह एक मोटा अनुमान है और इसको शब्दशः सही नहीं मानना चाहिये। फिर भी इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि जहाँ तक प्रति-व्यक्ति राष्ट्रीय आमदनी का सवाल है, भारतीय अर्थ-व्यवस्था अपेक्षाकृत बडी स्थिर है और यह संकेत मिल जाता है कि प्रति व्यक्ति आमदनी के दुगुना करने के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिये कितने बडे प्रयत्न की जरूरत होगी।

१२. योजना में यह अनुमान लगाया गया है कि राष्ट्रीय आमदनी, जो कि सन् १६५०-५१ में ६,००० करोड रुपये कूती गई थी, सन् १६५५-५६ तक १०,००० करोड रुपये हो जायगी और उक्त पांच वर्षों में जो अतिरिक्त आमदनी बढ़ेगी उसमें से प्रति वर्ष २० प्रतिशत को लगाई गई पूँजी में और पूंजी-निर्माण में जुड़ना चाहिये। इसका अर्थ यह है कि पांच वर्षों के अन्त में लगाई गई पूंजी की दर बढ कर राष्ट्रीय आमदनी का ६'७५ प्रतिशत हो जायगी। अन्य देशों के अनुभव के प्रकाश में यह बात शायद अधिक आशाजनक प्रतीत न हो और नि सन्देह यदि हम केवल यही बात सोचें कि क्या होना चाहिये, तो हमें इससे अधिक वृद्धि की बात सोचनी होगी। लेकिन हमको तो यह भी ध्यान में रखना होगा कि वास्तव में व्यावहारिक बात क्या है। और यह बात व्यावहारिक नहीं मालूम होती कि लोगों को बहुत अधिक कष्ट दिये बिना और सम्पूर्ण अर्थ-व्यवस्था पर खतरे की हद तक जोर डाले बिना प्रथम पांच वर्षों मे पूँजी लगाने की रफ्तार को और तेज़ी से बढाया जा सकेगा। प्रस्तावित अल्प वृद्धि के लिये भी विशेष प्रयत्न करना होगा, और जैसा कि बाद मे दिखाया जायगा, यद्यपि इस वृद्धि को प्राप्त करने के लिये मुख्य सहारा घरेलू बचत का लिया जायगा, फिर भी कुछ हद तक विदेशी पूँजी की ओर भी देखना पड़ेगा। परन्तु बाद में जैसे-जैसे पूँजी विनियोग

का प्रभाव राष्ट्रीय आमदनी की वृद्धि के रूप में प्रकट होने लगेगा, यह अधिकाधिक आसान होता जायगा कि बचत और पूँजी लगाने की रफ्तार को बढ़ाया जाय जिसके फलस्वरूप और तेज़ी के साथ राष्ट्रीय आमदनी में बढ़ती होगी। इस प्रकार यदि सन् १९५६–५७ के बाद हर साल होने वाली अतिरिक्त आमदनी के ५० प्रतिशत को बचा कर फिर से लगाया जा सकता है तो सन् १९६७–६८ तक सालाना बचत कुल राष्ट्रीय आमदनी के २० प्रतिशत से कम न होगी और इस दर को और अधिक बढ़ाने की कोई जरूरत न रह जायगी।

१३. साथ में दिये गये ग्राफ से यह प्रगट हो जाता है कि राष्ट्रीय आमदनी की उन्नति किस प्रकार होगी और यह भी मालूम हो जाता है कि इससे पहले वाले पैराग्राफ में सुझाई गई खर्च की दर के आधार पर कितनी अधिक आमदनी को पूँजी के रूप में लगाने के लिये निर्धारित किया जा सकेगा। यह स्पष्ट है कि वर्तमान पंचवर्षीय योजना के काल में कुल राष्ट्रीय आमदनी और कुल खर्च (रेखा 'क' और रेखा 'ख') में जो वृद्धि होगी वह वर्तमान प्रति व्यक्ति आमदनी और खर्च को स्थिर रखने के लिये आवश्यक स्तरों से कुछ ही अधिक होगी। दूसरे शब्दों में इस काल में जीवन के स्तर में बहुत कम वृद्धि होने की सम्भावना है। आगामी १० वर्षों में राष्ट्रीय आमदनी लगभग ५० प्रतिशत और अधिक तेज़ी से बढ़ेगी लेकिन यह वृद्धि ज्यादा होते हुये भी वैसी प्रतीत न होगी और बढ़ी हुई आमदनी के ५० प्रतिशत को बचा रखने के कारण खर्च में बहुत धीमेपन के साथ वृद्धि होगी। लगभग सन् १९६५ से राष्ट्रीय आमदनी और अधिक तेज़ी के साथ बढ़ेगी जिससे सन् १९७८ तक प्रति व्यक्ति आमदनी दुगुनी हो जायगी। इसी प्रकार खर्च की दर भी लगभग सन् १९७० से तेज़ी के साथ बढनी आरम्भ होगी।

१४. पहली दृष्टि में यह परिस्थिति बहुत अधिक अच्छी नहीं दिखाई देती। इससे उन लोगों को निराशा होगी जो यह गलत धारणा बना बैठे हैं कि आयोजन के आरम्भिक काल मे ही तेज़ और स्पष्ट दिखाई देने वाली उन्नति हो सकेगी। पहले पांच वर्ष अनिवार्यतः तैयारी और लगातार आगे बढ़ने के लिये सहायता देने वाले साधनों को कष्ट के साथ एकत्रित करने वाले वर्ष होंगे। दूसरी ओर आज जो लोग नौजवान हैं, वे यह आशा कर सकते हैं कि जब वे प्रौढ़ बनेंगे तो जीवन के स्तर में आम तौर पर उन्नति होगी और यह उन्नति ऐसी होगी जिसे साफ तौर पर देखा जा सकेगा और जिसके

११

राष्ट्रीय आमदनी और समग्र उपभोग

सम्भावनायें
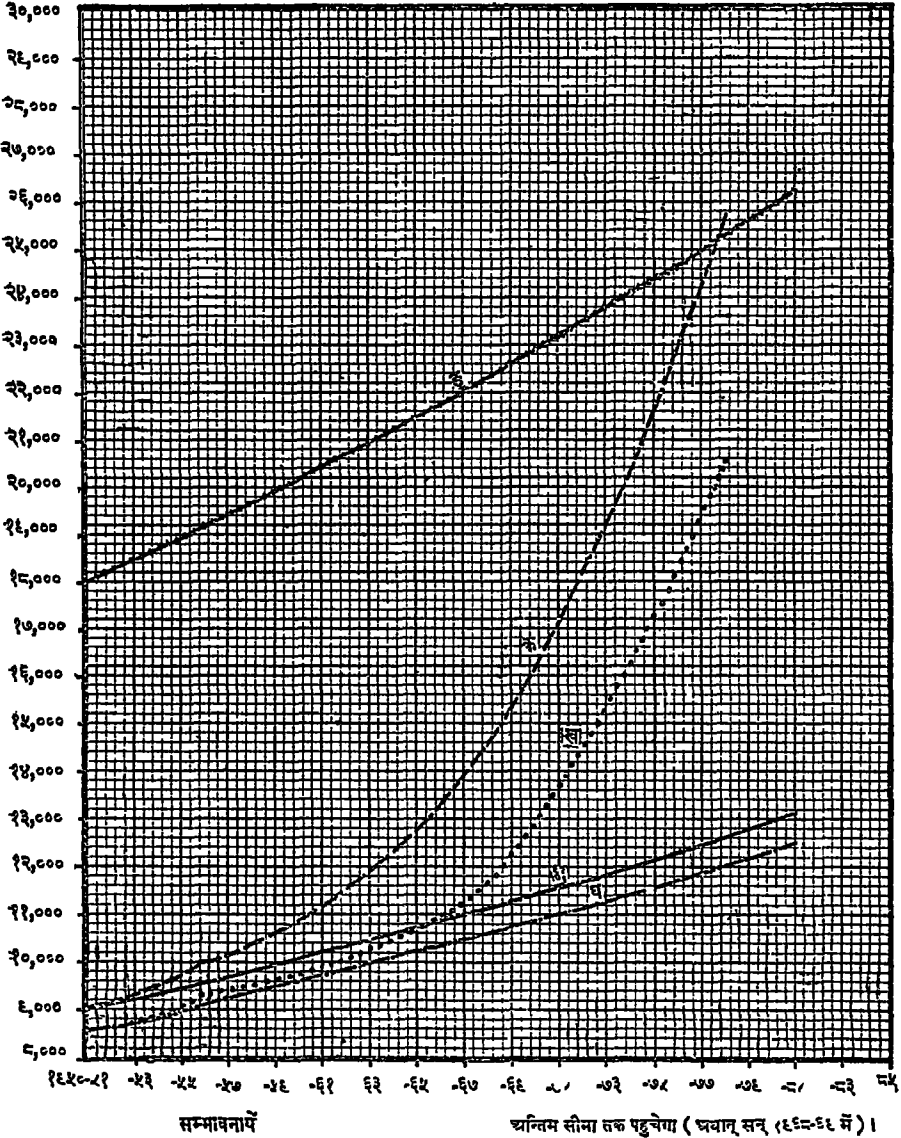
१ सन् १९५०-५१ में राष्ट्रीय आमदनी ९,००० करोड़ रुपये।

२. सन् १९५०-५१ म उपभोग का समग्र व्यय ८,५५० करोड़ रुपये।

३. सन् १९५५ ५६ तक राष्ट्रीय आमदनी और समग्र उपभोग व्यय में वृद्धि क्रमश: १,००० करोड़ और ७७५ करोड़ रुपये।

४ सन् १९५५-५६ के बाद प्रत्येक वर्ष अतिरिक्त आमदनी का वह अनुपात जिसे पूंजी के रूप में पुन: लगाया जायगा, ५० प्रतिशत, जब समग्र आमदनी के भाग के रूप में बचतों का अनुपात २० प्रतिशत पहुँच जाएगा, तब पूंजी विनियोग अन्तिम सीमा तक पहुचेगा (अर्थात् सन् १९६८-६९ में)।

संकेत

१ उपर्युक्त सम्भावनाओं के आधार पर राष्ट्रीय आमदनी क

२. उपर्युक्त सम्भावनाओं के आधार पर समग्र उपभोग व्यय ख

३ प्रति व्यक्ति राष्ट्रीय आमदनी को सन् १९५० ५१ के स्तर पर स्थिर रखने के लिए आवश्यक राष्ट्रीय आमदनी——ग

४ सन् १९५० ५१ के स्तर पर प्रति व्यक्ति उपभोग को स्थिर रखने के लिए आवश्यक समग्र उपभोग व्यय, घ

५ सन् १९५०-५१ की प्रति व्यक्ति आमदनी को दुगुनी करने के लिए आवश्यक राष्ट्रीय आमदनी ङ

विषय में कोई बहस-मुबाहसा न हो सकेगा। एक राष्ट्र के जीवन में इससे अधिक और आशा ही क्या की जा सकती है?

१५. इसके अतिरिक्त यदि आबादी की वृद्धि की दर में परिवर्तन हो जाता है, तो उन्नति उससे कहीं अधिक हो सकती है जितनी ऊपर बताई गई है। इस दर को तत्काल नहीं बदला जा सकता, लेकिन भारत में आबादी का दबाव इतना अधिक है कि वृद्धि की दर मे कमी की समस्याको एक बडी समस्या मानना चाहिये। जैसा कि पहले भी कहा जा चुका है, हमने यह माना है कि आबादी १ २५ प्रतिशत प्रति वर्ष की दर से बढती रहेगी। यदि निकट भविष्य मे इस दर मे एक प्रति-शत भी कमी हुई तो जीवन के स्तर को ऊँचा उठाने में इससे बडी ठोस सहायता मिलेगी। इस प्रकार की कमी को असम्भव नहीं माना जा सकता। कुछ हद तक शिक्षा के प्रसार द्वारा, विशेषत' महिलाओं मे शिक्षा-प्रसार द्वारा, आबादी की वृद्धि की दर को कम किया जा सकता है। लेकिन परिवार-आयोजन की आवश्यकता और तरीकों को समझाने के लिये कुछ निश्चित उपाय भी आवश्यक हैं। इस सम्बन्ध में अन्यत्र सुझाव दिये गये हैं।[1]

असमानताओं मे कमी

१६. अब हम अतिरिक्त उत्पादन की बात को छोड़ कर आर्थिक असमानताओं या कमी-बेशी को कम करने के लक्ष्य के विषय में विचार करेंगे। यह बता दिया जाय कि यह लक्ष्य राजनीति के उन निर्देशक सिद्धान्तों में निहित है जो संविधान की ३६ से लेकर ५१ तक धाराओं में बताये गये हैं, और विशेषतया इस निश्चित निर्देश में कि आर्थिक व्यवस्था का परिणाम धन का केन्द्रीकरण न होना चाहिये और उससे उत्पादन के साधनों को कुछ थोड़े से हाथों मे इस प्रकार न पहुँचना चाहिये जिससे सार्वजनिक हित की हानि हो। इस मामले में बहुत दूर तक और बहुत तेज़ी से आगे बढने मे खतरे हैं, लेकिन चुपचाप बैठ जाने में और वर्गगत विशेषाधिकारों के अस्तित्व के प्रति उदासीन होने या उन पर ज़ोर देने में भी खतरे हैं। हमें एक ऐसा बीच का रास्ता निकालना होगा जो समाज को तेजी के साथ झकझोरे या सामाजिक उथल-पुथल पैदा किये बिना सरकार को सामाजिक ढांचे में तेज़ी के साथ परिवर्तन करने मे समर्थ बनाये। प्रायः यह विचार प्रकट किया जाता है कि किसी प्रकार के महान् सामाजिक और आर्थिक परिवर्तन तब तक नहीं किये

---

१. देखिये अध्याय ३२

जा सकते जब तक कि वर्ग-द्वेष और हिंसा और उन सामाजिक वर्गों के विरुद्ध बदले की भावना से काम न लिया जाय, जो जनता की धारणाओं के अनुसार पुरानी व्यवस्था की असमानताओं के लिये जिम्मेदार हैं। लेकिन इस प्रकार के तरीके इस देश की परम्परा और आदर्शों से बहुत दूर हैं। वे लोकतंत्रात्मक आयोजन के बुनियादी सिद्धान्तों के भी प्रतिकूल हैं। उक्त सिद्धान्तो के अनुसार समाज का विकास एक सम्पूर्ण इकाई के रूप में ही हो सकता है और उसे बदलती हुई हालतों के अनुकूल अपने आप को बनाना होगा। किसी भी समय किन्हीं विशेष वर्गों की जो स्थिति है उसमें परिवर्तन शान्तिपूर्वक और लोकतन्त्रात्मक तरीकों से हो सकता है और इस परिवर्तन की आवश्यकता को तथा लोकतंत्रात्मक प्रणाली को समझते तथा उसका आदर करते हुये ये वर्ग स्वयं ही उन परिवर्तनों को अपने अन्दर ला सकते हैं।

१७. जमींदारी का खात्मा हो जाने के साथ-साथ इस प्रकार का एक महत्व-पूर्ण सामाजिक परिवर्तन शान्तिपूर्वक हो गया है। १२ वें अध्याय में भूमि के स्वामित्व के सम्बन्ध में और भी परिवर्तन करने के सुझाव दिये गये हैं। इन परिवर्तनों के द्वारा ज़मीन सम्बन्धी सभी बड़ी असमानताओं को दूर किया जा सकेगा।

१८. राज्य-कर सम्बन्धी उपायों द्वारा धन सम्बन्धी असमानताओं को भी कम किया जा सकता है। मृत्यु-कर, जो कि अब उन्नतिशील देशों की कर-व्यवस्था का महत्वपूर्ण अंग है, इस प्रकार की समानता लाने का महत्वपूर्ण साधन है। कुछ वर्षों की अवधि में ऐसे करों द्वारा असमान-तायें इतनी अधिक कम की जा सकती हैं कि अन्य उपायों में से केवल सामाजिक उखाड-पछाड़ के द्वारा ही उनको सीधे-सीधे प्राप्त किया जा सकता है। अधिकाधिक समानता लाने के लिये इस प्रकार के प्रत्यक्ष कर भी लाभदायक हैं जिनका प्रभाव मुख्यतया अथवा अधिकाधिक अमीरों पर पडे। लेकिन यह भी ध्यान में रखना होगा कि आमदनी में अधिकाधिक समानता और निजी तौर पर होने वाली बचतों तथा पूँजी-निर्माण और उत्पादक कार्यों के प्रति आम उत्साहहीनता की भावना जैसी असुविधाओं के बीच ठीक-ठीक सन्तुलन रखा जाय। जैसे-जैसे बचतों के वैकल्पिक स्रोत और पूँजी-निर्माण के साधन विकसित होते जायेंगे वैसे-वैसे अमीरो पर टैक्स बढाये जा सकते हैं।

१९. जब हम बहुत आगे की बात सोचते हैं तो हमें इस नतीजे पर

पहुँचना पड़ता है कि सम्पूर्ण अर्थ-व्यवस्था के लिये उत्पादक शक्तियों को जुटाने और वर्ग सम्बन्धों को ठीक करने के लिये राज्य को आर्थिक और सामाजिक जिम्मेवारियां तेज़ी से बढ़ानी होंगी। इसका अर्थ उत्पादन और वितरण के साधनों का पूर्ण राष्ट्रीयकरण अथवा खेती, उद्योग और व्यापार की गैर सरकारी एजेन्सियों का खात्मा नहीं है, परन्तु इसका यह अर्थ अवश्य है कि गैर सरकारी क्षेत्र क्रमशः व्यापक होता जायगा और आयोजित अर्थ व्यवस्था की ज़रूरतों को पूरा करने के लिये उस पर राज्य का नियन्त्रण और दिशा-निर्देश अधिकाधिक बढ़ता जायगा।

२०. इस सम्बन्ध में यह बात बता देना ज़रूरी है कि उत्पादक पूंजी के स्वामित्व में सरकार का हिस्सा अभी भी काफी अधिक है। यह बात आम तौर पर लोग अनुभव नहीं करते। खेती, छोटे पैमाने के उद्योग, सडक यातायात और रिहायशी मकानों के क्षेत्रों को छोड़ कर केन्द्रीय और राज्य-सरकारों के हिस्से की पूंजी सन् १९५०-५१ के अन्त में १,२०० करोड़ रुपये से अधिक थी। उसका विवरण इस प्रकार है :—

	(करोड़ रुपये)
रेलें	८३७
सिंचाई के काम (बहुमुखी नदी घाटी योजनाओं के सहित)	२३०
संचार और ब्राडकास्टिंग	५१
बिजली सम्बन्धी कार्य	४६
उद्योग	४४
नागरिक वायु-यात्रा	१०
बन्दरगाह	८
केन्द्रीय ट्रैक्टर संगठन	५
कुल जोड	१,२३६

इस मे सार्वजनिक संस्थाओं, म्यूनिसिपैलिटियों तथा अन्य अर्द्धसार्वजनिक एजेंसियो की सम्पत्ति के हिस्से के १०० करोड रुपये भी जोड देने चाहियें। इस की तुलना में निजी क्षेत्रों की उत्पादक पूंजी पूर्वोक्त क्षेत्र को छोड कर संभवत: १,५०० करोड रुपये से अधिक न थी। उसका विवरण इस प्रकार है :—

	(करोड़ रुपये)
कारखाने	१,११०
बगान उद्योग	१००
बिजली संबंधी कार्य	७०
खानें	३०
जहाज़रानी और वायु-यात्रा	३२
मोटर यातायात	१३०
कुल जोड़	१,४७२

उपर्युक्त अनुमान अनिवार्यतः मोटे तौर पर लगाये गये हैं और उनका सम्बन्ध आरंभिक मूल्यों से है न कि वर्तमान परिवर्तित मूल्यों से । परन्तु उनसे प्रकट हो जाता है कि संगठित उद्योगों के लिये आवश्यक सेवाओं की व्यवस्था करने में और कुछ हद तक औद्योगिक विकास की दिशा में सरकार महत्वपूर्ण भाग ले चुकी है ।

२१. जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है, सरकार को अनिवार्यतः और अधिक तेज़ी से इस दिशा में बढ़ना चाहिये । सन् १९४८ के औद्योगिक नीति-सम्बन्धी वक्तव्य में यह बात पहले ही बताई जा चुकी है कि कोयला, लोहा और इस्पात, जहाज़ निर्माण और हवाई जहाज़ निर्माण जैसे कुछ उद्योगों में सरकार आगे के विकास की जिम्मेवारी लेगी और यह जिम्मेवारी उसी सीमा तक कम रहेगी जिस सीमा तक निजी या गैर-सरकारी क्षेत्रों का सहयोग आवश्यक समझा जायगा । इनमें से कुछ उद्योगों, यथा लोहा और इस्पात और जहाज़ निर्माण की दिशा में योजना काल में सरकार महत्वपूर्ण नये प्रयत्नों का आरंभ करेगी । शेष औद्योगिक क्षेत्र के बारे में, जिसे निजी प्रयत्नों के लिये छोड़ दिया गया है, सरकार के पास नियमन और नियन्त्रण के काफी अधिकार हैं और हाल के अनुभव से यह प्रकट हो गया है कि निजी प्रयत्नों के किसी बड़े विकास का होना वर्तमान परिस्थितियों में सरकारी सहायता के बिना असंभव है । सच बात तो यह है कि निजी प्रयत्नों का विचार तेज़ी के साथ परिवर्तित हो रहा है । और अब इस विचार को समयानुकूल नहीं माना जाता कि निजी क्षेत्र अनियमित फायदे के आधार पर कार्य कर सकते हैं । सरकार के दिशा-निर्देश और नियन्त्रण की व्यापकता का क्रम लगातार जारी रहेगा और तेज़ी पकड़ता जायगा ।

२२. यह स्पष्ट है कि सार्वजनिक क्षेत्र के विस्तार और निजी क्षेत्र के अधिकाधिक नियमन के साथ-साथ धन और आमदनी की बड़ी असमानताओं को कोई स्थान न मिलेगा और आर्थिक प्रगति और सामाजिक स्थिरता को खतरा पहुँचाये बिना उनको कम करना अधिकाधिक सरल होता जायगा।

अध्याय २

प्राथमिकतायें और आयोजन के तरीके

प्राथमिकतायें

देश की जरूरतों को देखते हुए उसके विकास के लिये प्राप्त साधन बहुत थोड़े हैं। जैसा कि इससे पहले के अध्याय में बताया गया है, सन् १९५०-५१ में वार्षिक बचतें राष्ट्रीय आमदनी का केवल ५ प्रतिशत अर्थात् लगभग ४५० करोड़ रुपये थीं। प्रयत्न करने पर यह रकम सन् १९५५-५६ तक ६७५ करोड़ रुपये तक हो सकती है। इसलिये इन सीमित साधनो की बांट के लिये बड़ी सावधानी बरतनी होगी। आगे आने वाले वर्षों की ओर दूर तक देखते हुये यह साफ हो जाता है कि हमारी अर्थ-व्यवस्था का एक भी क्षेत्र ऐसा न होगा जिसमें लगने वाली पूँजी को बहुत अधिक बढाने के लिये औचित्य न हो। लेकिन जब हम एक सीमित समय की बात लेते हैं तो यह समस्या एक विभिन्न रूप ग्रहण कर लेती है। हमे पहली चीज़ें पहले लेनी होंगी और एक दिये हुये सीमित समय में प्राथमिकताओ का निश्चय करना होगा, यद्यपि, जैसे वर्ष के बाद वर्ष बीतते जायेंगे, इन प्राथमिकताओं में फेर-बदल होता जायगा। जैसे जैसे आरम्भ में शुरू किए गये विकास-क्षेत्रों का काम आगे बढ़ता है, वैसे वैसे हमें अन्य क्षेत्रों पर जोर देना होगा और अन्य क्षेत्रों के विकास के लिये पृष्ठभूमि तैयार करनी होगी।

२. तात्कालिक पांच वर्षों में सब से ऊंची प्राथमिकता हमें खेती-बाड़ी को, जिसके अन्तर्गत सिचाई और बिजली आ जाते हैं, देनी होगी। हम जिन योजनाओं को हाथ में ले चुके हैं उनकी पूर्ति पर जोर देना कुछ हद तक इसी बात की ओर संकेत करता है। लेकिन इसके अलावा भी यह ज़ाहिर है कि अनाज और उद्योगों के लिये जरूरी कच्चे माल का उत्पादन काफी बढाये बिना अन्य क्षेत्रों में विकास की रफ्तार को तेज़ रखना असम्भव होगा और अधिक विकास के लिये खाद्य और कच्चे माल का होना बहुत जरूरी है, इसीलिये इन वस्तुओं के विषय मे आत्म-निर्भरता और बहुतायत की दशाओ का निर्माण होना बुनियादी बात है।

३. खेती में सुधार बहुत हद तक सरकार द्वारा लगाई गई पूंजी पर निर्भर करेगा और क्योंकि खेती-बाडी के काम को सब से ऊंची प्राथमिकता दी गई है, इसलिये सरकार द्वारा उद्योगों में लगाई गई पूंजी अपेक्षाकृत सीमित रहेगी। वर्तमान अवस्था मे इस क्षेत्र में उन्नति बहुत हद तक निजी प्रयत्न और पूंजी पर निर्भर करेगी। सरकार आरम्भिक अवस्था में बुनियादी सेवाओं और यातायात की व्यवस्था पर भी यथाशक्ति अपना ध्यान केन्द्रित करेगी। लेकिन कुछ केन्द्रीय उद्योगों, जैसे लोहा और इस्पात, भारी रासायनिक और भारी बिजली-उद्योगों के प्रति उसकी विशेष जिम्मेवारी होगी, क्योंकि आज की दुनिया में ये उद्योग औद्योगिक उन्नति के आधार हैं। इस प्रकार के उद्योगों के विकास के लिये आरम्भ में जितनी पूंजी लगती है, वह बहुत बडी होगी और निर्माण का समय काफी लम्बा होगा। इसीलिये इस दिशा में आरम्भ से ही काम शुरू करना होगा।

४. जिस हद तक आरम्भिक रूप में पैदावार बढाने पर जोर दिया जायगा उसी हद तक अनिवार्यत. सामाजिक सेवाओं का विकास सीमित हो जायगा। लेकिन फिर भी यह साफ है कि कोई भी योजना तब तक सफल नही हो सकती जब तक मानव-सम्पत्ति के सुधार के लिये पूंजी न लगाई जाय। उत्पादन बढ़ाने की दृष्टि से भी शिक्षा, टैक्नीकल शिक्षा और स्वास्थ्य जैसी सामाजिक सेवाओं का विस्तार विशेष रूप से लाभदायक सिद्ध हो सकता है। इस क्षेत्र में प्रत्यक्ष सामाजिक प्रयत्नों के लिये बहुत अधिक गुंजाइश है। इसीलिये इस क्षेत्र के लिये जो विशेष आर्थिक व्यवस्था रखी गई है, उसके बाद भी अन्य साधनों के द्वारा बहुत अधिक काम किया जा सकता है। उदाहरणार्थ, देहाती क्षेत्रों में साक्षरता का प्रसार इच्छापूर्वक सामाजिक सेवा करने वालों के द्वारा बढ़ाया जा सकता है। सार्वजनिक स्वास्थ्य का सुधार प्रायः सफाई और स्वास्थ्य सम्बन्धी प्रारम्भिक ज्ञान देकर किया जा सकता है। जहाँ तक टैक्नीकल शिक्षा का सवाल है, यह अत्यन्त आवश्यक है कि समुचित आर्थिक सहायता की व्यवस्था की जाय, क्योंकि यह न केवल विकास की प्रणाली के लिये आवश्यक है बल्कि वर्तमान समय में प्रचलित विशुद्ध साहित्यिक शिक्षा के प्रति झुकाव को सही रास्ते पर लाने के लिये भी जरूरी है। इस प्रकार के झुकाव के कारण ही मध्यवर्गीय लोगों मे बेरोज़गारी बढ रही है।

५. क्योंकि हमारे यहाँ जन शक्ति का बहुत बड़ा भाग अभी उपयोग मे

नहीं आ रहा है, इसीलिये स्थानीय विकास के लिये स्थानीय श्रम-शक्ति का उपयोग करने के प्रोग्राम को उच्च प्राथमिकता देनी होगी। जीवन-यापन की दशाओ मे सुधार करने के लिये उनका योगदान पहली दृष्टि में भले ही बहुत छोटा मालूम हो, लेकिन कुल मिला कर और सामूहिक मनोवैज्ञानिक प्रभाव के रूप में, आरम्भिक अवस्था को देखते हुये, वह अनुपात में बहुत अधिक होगा। इस सिद्धान्त पर आधारित सामूहिक विकास के प्रोग्राम और भरपूर चहुमुखी विकास, जो कि चुने हुये क्षेत्रों में होगा, विशेष महत्त्व के सिद्ध होंगे।

६. ऊपर बताई गई प्राथमिकताओं की आम रूपरेखा के अन्तर्गत अधिक विस्तृत नक्शे हैं, जो देश के एक भाग से दूसरे भाग में बदलते जायेंगे। उदाहरण के लिये खेती–बाड़ी के क्षेत्र में कुछ जगहों में सिंचाई विशेष महत्वपूर्ण हो सकती है और कुछ दूसरी जगहों में रासायनिक खादों को विशेष महत्त्व मिल सकता है। कुछ क्षेत्रों में खेती के विकास के लिये सड़कों में सुधार एक आवश्यक शर्त हो सकती है। उद्योगो के क्षेत्र में राष्ट्रीय हित की दृष्टि से कुछ उद्योगों का विकास अन्य उद्योगों से अधिक जरूरी हो सकता है, भले ही उन उद्योगों का विकास निजी तौर पर उद्योगों का संचालन करने वालों को हमेशा अधिक आकर्षक और लाभदायक न प्रतीत हो। इन सब प्राथमिकताओं को दृष्टि में रखना इसलिये जरूरी है, जिससे कि जो कुछ भी अनावश्यक है, या आरम्भिक अवस्था में राष्ट्रीय अर्थ-व्यवस्था के लिये जो कुछ भी अपेक्षाकृत कम सहायक है, उसमें साधनों का अपव्यय न हो जाय।

तरीके

७. इन प्राथमिकताओं को किस प्रकार प्राप्त किया जा सकता है—इसका संक्षिप्त उत्तर है, "समाज की बचतों को समुचित परिमाण में इच्छित दिशाओं की ओर मोड़ दिया जाय।" परन्तु उपर्युक्त कथन को कुछ और अधिक साफ करने की जरूरत है और इस सवाल के अन्तर्गत कुछ तरीकों पर विचार करना पड़ेगा, क्योंकि वे आर्थिक आयोजन के अनिवार्य अंग है।

८. बचतों के तीन मुख्य जरिये हैं: लोगों की निजी बचतें, कार्पोरेशनों द्वारा बचतें और सार्वजनिक बचतें या सार्वजनिक क्षेत्रों का अतिरिक्त धन। जहाँ तक तीसरी प्रकार की बचत का सवाल है, राज्य यह निर्णय कर सकता है कि किन बातों के लिये इस प्रकार की बचत को लगाया जा सकता है। लेकिन जहाँ तक निजी तौर पर और कार्पोरेशन की बचतों को लगाने का सवाल है,

उसमें राज्य का कोई निर्णायक हाथ न होगा। राज्य केवल सुविधायें देकर और कतिपय दिशाओं में उन बचतों को लगाने के लिये उत्साह पैदा करके तथा कतिपय अन्य दिशाओं में उनको लगाने के प्रति अनुत्साहित करके या रोक लगा कर अपना प्रभाव डाल सकता है। निजी तौर पर की गई बचतों को लगाने के मामले में उत्साह देने या उत्साह न देने और प्रभाव डालने का कार्य राज्य-कर और सम्पत्ति तथा व्यापारिक नीति सम्बन्धी उपायों द्वारा किया जा सकता है। लेकिन क्योंकि निजी क्षेत्रों में बचतों का बँटवारा मूल्य सम्बन्धों द्वारा प्रभावित होता है—अर्थात् बचतें प्रचलित दामों को देखते हुये उन दिशाओं की ओर जाती हैं, जिनमे सबसे अधिक मुनाफे की आशा हो। इसलिये प्राथमिकताओं और योजना में निर्धारित लक्ष्यों के अनुकूल दिशाओ की ओर यह बचतें लग सकें, इसके लिये सुविधाजनक मूल्य के ढाँचे आर्थिक नीति के लक्ष्यों को देखते हुये बनाये रखने होंगे। इसके लिये कुछ हद तक दामों का कंट्रोल जरूरी होगा और इस प्रकार के मूल्य-नियन्त्रण को प्रभावशाली बनाने के लिये उत्पादन, वितरण और कुछ बुनियादी वस्तुओं का बंटवारा जरूरी हो जायगा।

९. व्यक्तियों और कार्पोरेशनों की बचतों को राष्ट्रीय विकास के लिये लगाने का कार्य कितना महत्वपूर्ण है, यह बात प्राय. ठीक-ठीक नही समझी जाती और यह सोच लिया जाता है कि इस प्रकार की बचतें उनके मालिकों की मर्जी पर जिस दिशा में भी वे चाहे, सुरक्षापूर्वक लगाई जा सकती हैं। लेकिन ये बचतें समस्त घरेलू बचतों का एक महत्वपूर्ण अंग है और इस रिपोर्ट मे अन्यत्र ऐसी विकास-योजनाओ को प्रधानता देने के कारण, जिनके लिये वित्त की व्यवस्था पूर्णतया सार्वजनिक खंडों के द्वारा होगी, इस तथ्य की ओर सम्भवत ध्यान न दिया जायगा। वस्तुतः अनुमानित २,७०० करोड रुपये से लेकर २,८०० करोड़ रुपये तक की योजना-काल की पाँच साल की घरेलू बचतों में से केवल १,२५० करोड रुपये ही सार्वजनिक बचत के रूप में रहेगे जिन्हे टैक्स लगा कर, कर्ज़ों द्वारा और राष्ट्रीय व्यापारिक प्रयत्नों के अर्जित अतिरिक्त मुनाफे द्वारा प्राप्त किया जायगा। शेष निजी क्षेत्रों की बचतें होंगी। यह आशा की जाती है कि सार्वजनिक बचतों के पूरक के रूप में वहिर्देशीय साधनों की सहायता प्राप्त होगी तथा कुछ अन्य सहायतायें भी, जिनके बारे में अगले अध्याय में विचार किया जायगा, प्राप्त होंगी, जिससे कि कुल मिला कर लगभग २,०६९ करोड़ रुपये प्राप्त होंगे। सार्वजनिक बचतों को बढ़ाना जरूरी होगा और यह

काम और अधिक टैक्स लगा कर करना जरूरी हो सकता है, यद्यपि, जैसा कि पहले ही बताया जा चुका है, बचतों में यह वृद्धि, जीवन-यापन की दशा में वृद्धि को स्थगित करने का कारण बनेगी। लेकिन यदि सार्वजनिक बचतों को थोडा बहुत बढा भी लिया गया तो भी निजी क्षेत्रों के १,४०० करोड़ रुपये से लेकर १,९०० करोड़ रुपये तक की बचतों का मामला ऐसा नहीं है जिसके प्रति लापरवाही बरती जाय। कुछ हद तक वांछनीय उद्देश्य की प्राप्ति प्रत्यक्ष तरीकों के द्वारा हो सकती है, अर्थात् नये पूंजी-निर्गमन का नियन्त्रण और नये औद्योगिक यंत्रों के लिये लाइसेंस देना। लेकिन कुछ और भी तरीके हैं, जिनको काम में लाना होगा या जिनकी परीक्षा करनी होगी और उन तरीकों पर हमें संक्षेप में विचार करना होगा।

उधार पर नियन्त्रण

१०. पूँजी-विनियोग और व्यापारिक कार्यों को नियमित करने के लिये उधार पर प्रभावशाली नियन्त्रण एक महत्वपूर्ण साधन है और यह आशा की जा सकती है कि स्वीकृत ढंगों से आर्थिक विकास को बढाने के लिये रिजर्व बैंक आफ इण्डिया, जो कि एक राष्ट्रीय संस्था है, और जिसे अन्य बैंकों की उधार नीति का नियमन करने का व्यापक अधिकार प्राप्त है, समुचित भाग लेगा। यह अनुमान लगाया गया है कि उक्त बैंक का कार्य उधार की प्राप्ति का नियमन ही न होगा, यद्यपि योजना के अन्तर्गत सार्वजनिक व्यय के जो बड़े प्रोग्राम बनाये गये है, उनके कारण उत्पन्न स्फीतिकारी दबावों को रोकने मे यह बात भी महत्वपूर्ण और सहायक होगी। यह सम्भव है कि बैंकिंग व्यवस्था से कहा जायगा कि उच्च प्राथमिकता वाले कुछ कार्यों के लिये वे विशेष रूप से उधार की सुविधायें देवें और आबादी के कुछ ऐसे वर्गों को भी इस प्रकार की सुविधायें देवें, जिनको इनकी सब से अधिक आवश्यकता है*। तदनुसार उधार की सुविधा का विस्तार कुछ अन्य दिशाओं मे रोका जा सकता है। दूसरे शब्दों मे, बैंकिंग व्यवस्था को पूंजी से अधिक से अधिक लाभ के विचार की बजाय प्राथमिकताओं को देखते हुये अधिकाधिक कार्य करना होगा।

सरकार द्वारा व्यापार

११. वाणिज्य और व्यापार मुनाफे के, और इसीलिये बचतों के भी,

---

*इस सम्बन्ध में देहाती क्षेत्रों को उधार देने की रिजर्व बैंक की कोशिशों की चर्चा की जा सकती है।

महत्त्वपूर्ण साधन हैं और इन क्षेत्रों में निजी तौर पर पूंजी लगाने वालों को भी पूंजी का आकर्षण अधिक रहता है क्योंकि इनसे प्राप्त मुनाफे ऊंचे रहते हैं, भले ही वे कुछ परिकल्पी हों। कुछ देशों, जैसे कि ब्रिटेन, के विकास में व्यापार से प्राप्त लाभ औद्योगिक विस्तार के लिये प्राप्त धन-राशि के मुख्य साधन रहे हैं। विश्व व्यापार की वर्तमान दशा में पूंजी जोड़ने के ये साधन उसी हद तक इस देश को प्राप्त नहीं हैं, और वस्तुतः व्यापार के लिये पूंजी लगाना आज की दशा में काफी हद तक साधनों का अपव्यय है और इसीलिये इसे बचाना होगा। इस देश में इस समय पूंजी को व्यापार की दिशा में मोडने की प्रवृत्ति पाई जाती है और उत्पादन के प्रति उपेक्षा का दृष्टिकोण। दूसरी ओर, कुछ चुनी हुई वस्तुओं के बारे में थोक व्यापार का कार्य यदि सरकार करती है, तो चुने हुये स्थलों में अर्थ-व्यवस्था पर नियन्त्रण प्राप्त करने का वह एक शक्तिशाली तरीका हो सकता है। इस देश में आबादी के बहुत बड़े भाग के जीवन-यापन के स्तर में उतार-चढाव अपेक्षाकृत बहुत कम वस्तुओं जैसे कि अनाज, कपड़ा, शक्कर, मिट्टी का तेल और नमक पर निर्भर करता है। यदि इन वस्तुओं का व्यापार सरकार द्वारा होता है तो बुनियादी दामों पर अंकुश रखना सम्भव होगा और इस प्रकार सब साधनों का वांछित बँटवारा आसान हो जायगा और जीवन-यापन के स्तर पर निर्णायक प्रभाव पडेगा। यह विकास की रफ्तार को और अधिक तेज़ कर देगा, जो कि दूसरी परिस्थितियों में सुरक्षापूर्वक करना सम्भव न होता, क्योंकि इससे खतरे की जगहों में बडे विकास-प्रोग्रामों से उत्पन्न स्फीतिकारी प्रभाव को नियन्त्रित रखा जा सकेगा। लेकिन वितरण-व्यापार के क्षेत्र में सरकारी प्रवेश के द्वारा संगठन सम्बन्धी कठिन समस्यायें उत्पन्न होने की संभावना है और वितरण सम्बन्धी वर्तमान व्यवस्था के तरीकों के बारे में हमारा ज्ञान इस समय यथेष्ट नहीं है। सरकार द्वारा व्यापार आरम्भ करने का निश्चय करने के पहले कई तथ्यों की जानकारी जरूरी है। लेकिन इसके द्वारा सरकार के हाथों में पहुँचने वाली बचतों को बढाने का एक सम्भावित रास्ता निकल आता है और बुनियादी मूल्य के ढांचे पर प्रभावशाली नियन्त्रण रखा जा सकता है।

१२. इस सम्बन्ध में यह बता दिया जाय कि यदि आयोजन के अन्तर्गत अत्यधिक केन्द्रीयकरण और नौकरशाही के नियन्त्रण को बचाना है और साथ ही साथ निजी तौर पर उत्पादन या व्यापार करने वालों को अपने लिये मुनाफा प्राप्त करने की प्रवृत्ति का दमन करना है, तो सरकारी प्रयत्नों को उत्साहित करने को ऊंची प्राथमिकता देनी होगी। इसीलिये

खेती-बाड़ी की पैदावार की बिक्री और देहाती क्षेत्रों में उद्योगों को बढ़ाने के मामले में सहकारिता के ढंग को विशेष महत्त्व देना होगा।

मूल्य-नियन्त्रण

१३. अन्त में हमें मूल्य-नियन्त्रण पर विचार करना है। यह एक ऐसा मामला है जो बहुत महत्वपूर्ण है। इसका महत्व केवल इसीलिये नहीं है कि निजी तौर पर धन लगाने वालों के लिये मूल्य-सम्बन्धों का बहुत महत्त्व होता है, बल्कि इसलिये भी कि विकास के बड़े प्रोग्राम का प्रभाव दामों पर तेज़ी के साथ पड़ता है। आरम्भिक अवस्था में विकास के कार्य-क्रमों को शुरू करने से उत्पादन की बजाय रुपये-पैसे की आमदनी अनिवार्यतः अधिक तेज़ी से बढ़ती है। सिंचाई की किसी बड़ी योजना में काम करने वाले मज़दूरों को बहुत बड़ी रकमें मज़दूरी के रूप में शुरू में ही दी जाती हैं और भूमि और फसलों के सुधार के लिये नहरों का पानी बाद में पहुँचता है। एक गरीब देश में, जहाँ आबादी का बहुत बड़ा हिस्सा खाने और कपड़े का मुहताज है, बढ़ी हुई आमदनी के कारण खाने और कपड़े और अन्य बुनियादी उपभोग वस्तुओं की मांग बढ जाती हैं और इससे दाम ऊंचे चढ जाते हैं। मूल्य की यह वृद्धि यदि रोकी न गई, तो इससे उन लोगों को कष्ट होने के साथ, जो सीमित आमदनी पर निर्भर करते हैं, बहुत बड़े साधनों का खिंचाव भी अनावश्यक उपभोग्य वस्तुओं के उत्पादन की ओर हो जाता है, जबकि समाज के हित की दृष्टि में उन वस्तुओं की खपत यथा सम्भव नियंत्रित होनी चाहिये और बचतों को पूंजीगत साधनों का निर्माण करने में लगना चाहिये। एक अन्य बात पर भी विचार करना आवश्यक है। किसी विकास-प्रोग्राम के द्वारा सम्भव है कि कुछ आधारभूत वस्तुओं की मांग बढ जाय, जैसे कि लोहा और इस्पात, जिनका प्रयोग कई उद्योगों में होता है। इसलिये अगर उनका मूल्य एक सीमा के अन्दर न रखा गया तो यह भय है कि समस्त औद्योगिक उत्पादनों का मूल्य बढ जाय। लेकिन मूल्य नियन्त्रण अपने आप में ही प्रभावशाली नहीं होते और उनके साथ ही साथ उत्पादन तथा वितरण पर भी नियन्त्रण रखना जरूरी होता है।

१४. इस प्रकार जिस तरह के आयोजित विकास के प्रोग्राम की कल्पना की जा रही है, उसके लिये यह जरूरी है कि समुचित रीति से आयोजित और ढंग से प्रशासित कन्ट्रोलों की व्यवस्था हो। कुछ परि-स्थितियों में, जिनके अगले कुछ वर्षों में मौजूद रहने की आशा की जाती है,

अधिक जोर निर्धारित मूल्यों पर दिया जा सकता है। कुछ अन्य दशाओं में, जिनके मौजूद रहने की आशा निकट भविष्य में नही की जाती, यह आवश्यक हो सकता है कि न्यूनतम मूल्य को बनाये रखा जाय, जिससे कि आर्थिक कार्यों की कुछ दिशाओ में समुचित लाभ प्राप्त होता रहे। लेकिन कन्ट्रोलो को एकदम हटा देना लाभदायक आयोजन के अनुकूल नहीं है। यद्यपि कन्ट्रोल कभी-कभी कष्टदायक होते हैं, फिर भी यह मूल्य देश को आर्थिक उन्नति के लिये चुकाना ही होगा।

१५ कन्ट्रोलो के विरुद्ध असन्तोष प्रायः इसलिये पैदा होता है क्योंकि उनमे से कुछ का प्रबन्ध ठीक नहीं होता। वैयक्तिक रूप से नागरिकों के लिये आम तौर पर कन्ट्रोल असुविधाजनक होते है और जब तक उन पर एक व्यापक दृष्टिकोण से विचार न किया जाय तब तक उनकी आवश्यकता को ठीक-ठीक नही समझा जा सकता और वे कार्य रूप में प्रायः अयुक्तियुक्त प्रतीत होते है। एक ऐसी आर्थिक व्यवस्था के अन्तर्गत, जिसका संगठन अधिकांशतः छोटी इकाइयों में हुआ है, कन्ट्रोल का प्रबन्ध करने मे बडी-बडी कठिनाइयां आती है। अन्य देशों मे अपनाये गये तरीके भारत मे पूरी तरह लागू नहीं किये जा सकते। इन्हीं दशाओ के कारण कुछ बुनियादी वस्तुओं के मामले मे सरकार द्वारा व्यापार की आवश्यकता अनुभव की जाती है, क्योंकि उससे खतरे के स्थानों मे प्रभावशाली नियन्त्रण प्राप्त हो सकता है।

आवश्यक राजनीतिक दशायें

१६. हमने उन कुछ आर्थिक उपायो और नीतियो की रूपरेखा बताई है, जो सफल आयोजन के लिये जरूरी हैं या उपयोगी हैं। संक्षेप में कुछ आवश्यक राजनीतिक और शासन सम्बन्धी परिस्थितियों की चर्चा भी की जा सकती है, जो इस प्रकार हैं :

(क) नीति सम्बन्धी उद्देश्यों के बारे में समाज मे अधिकाधिक मतैक्य होना।

(ख) राज्य के हाथों मे नागरिकों के सक्रिय सहयोग के आधार पर प्रभावशाली शक्ति होना, और इन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिये उस शक्ति का ईमानदारी और दृढता के साथ उपयोग, और

(ग) आवश्यक योग्यता और कुशलता वाले व्यक्तियो से युक्त एक प्रभावशाली शासन-यंत्र का होना।

एक राष्ट्रीय योजना को समाज के उद्देश्यों की बुनियादी एकता की अभिव्यक्ति होना चाहिये। यही एकता अन्ततोगत्वा योजना को सर्व-स्वीकृत बनाएगी, उसे क्रियात्मक शक्ति प्रदान करेगी और समाज के सदस्यों मे उसकी पूर्ति के लिये आवश्यक त्याग और प्रयत्न जगायेगी। उद्देश्य की इस एकता के साथ-साथ राज्य के पास ऐसी प्रभावशाली शक्ति होनी चाहिये, जिसका उपयोग स्वीकृत उद्देश्यों की प्राप्ति को सुनिश्चित बनाने के लिये आवश्यक दृढता और अटूटता के साथ किया जा सके। इस शक्ति के रचनात्मक उपयोग के लिये शासन में ईमानदारी, योग्यता और जनता की इच्छाओं के प्रति सजगता की भावना होनी चाहिये। आर्थिक और सामाजिक उन्नति की इन बुनियादी आवश्यकताओं का जन्म और स्थायित्व ऐसे मामले हैं, जिनकी ओर लगातार और सावधानी के साथ ध्यान देना होगा और यदि यह विषय इस रिपोर्ट में कई जगहो पर आये, तो उसका कारण यही होगा कि देश मे ऐसे वातावरण को उत्पन्न करना अत्यन्त आवश्यक है, जो प्रगति के लिये अनुकूल हो और इस बात को जितनी बार ज़ोर के साथ दोहराया जाय उतना ही कम है। राष्ट्र के नये उत्तरदायित्व के लिये शासन में उचित परिवर्तन के सम्बन्ध मे आगे के अध्यायों मे विस्तार के साथ बताया गया है।

—:❀:—

अध्याय ३

साधनों का मूल्यांकन

पहली पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत केन्द्रीय और राज्य सरकारों द्वारा विकास के लिये सन् १९५१-५६ की अवधि में २,०६९ करोड रुपये के खर्च की व्यवस्था है। लेकिन योजना के अन्तर्गत सम्पूर्ण अर्थ-व्यवस्था के विकास के प्रोग्राम को भी दृष्टि में रखा गया है और सार्वजनिक क्षेत्र को प्राप्त साधनों का मूल्यांकन करते हुये निजी क्षेत्र की आवश्यकताओं को भी ध्यान में रखा गया है। दूसरे शब्दों में प्राप्त साधनों को सामूहिक रूप में देखा गया है, जिसमें से सरकारी और निजी-दोनों ही क्षेत्र लाभ उठायेंगे और यदि सरकारी क्षेत्र में विकास के लिये टैक्सों तथा सरकारी ऋणों के रूप में बहुत अधिक राशियां खिच आती हैं, तो निजी क्षेत्र के पास बच रहे साधन अयथेष्ट हो सकते हैं। अतः समस्या केवल यही नहीं है कि सरकारी क्षेत्र के लिये साधन खोजे जायें, बल्कि यह कि साधनों के सम्मिलित रूप को क्रमशः बढाया जाय और यह देखा जाय कि स्वीकृत प्राथमिकताओं के अनुसार दोनों ही क्षेत्र अपने लिये राशियां प्राप्त करते हैं।

२. देश को प्राप्त सम्पूर्ण साधनों का मूल्यांकन करने के लिये अभी जो आंकडे प्राप्त हैं, वे अयथेष्ट हैं। लेकिन मोटे अनुमान के आधार पर सन् १९५०-५१ में भारत की राष्ट्रीय आमदनी लगभग ९,००० करोड़ रुपये रही है और उसमें से नक़द लागत के लिये जो कुछ बच रहता है, वह ४५० करोड रुपयों से अधिक न होगा। पांच साल की अवधि में यह आशा की जाती है कि राष्ट्रीय आमदनी १,००० करोड़ रुपये प्रति वर्ष बढती जायगी, जिससे कि सन १९५५-५६ तक वह १०,००० करोड़ रुपये हो जायगी। इरादा यह है कि प्रति वर्ष जितनी आमदनी बढ़े उसका २० प्रतिशत उपभोग मद से उत्पादन की ओर मोड दिया जाय, जिससे कि घरेलू बचतों को बढ़ाया जा सके और पांच वर्ष की अवधि में कुल घरेलू बचत लगभग २,७०० करोड रुपये से लेकर २,८०० करोड़ रुपये तक हो जाय। इसमें और भी बढती इन साधनों द्वारा होगी: (क) पौंड पावने की प्राप्ति, और (ख) अन्य बहिर्देशीय साधन। उक्त दोनों प्रकारों से अनुमानतः ८०० करोड़ रुपये प्राप्त होंगे। इस प्रकार कुल प्राप्त साधन,

जिनको कि विकास के लिये लगाया जा सकेगा, लगभग ३,५०० करोड़ रुपयों से लेकर ३,६०० करोड़ रुपये तक होंगे। सरकारी क्षेत्र में विकास के लिये व्यय होने वाले २,०६६ करोड़ रुपयों में से लगभग ४०० करोड़ रुपये आवर्त्तक या बार-बार खर्च होने वाले रुपये होंगे, जो सामाजिक सेवाओं, कृषि-विस्तार सेवाओं आदि के लिये खर्च होंगे और केन्द्र तथा राज्य सरकारों के सामान्य राजस्व से प्राप्त होंगे। लेकिन इसके बाद भी सार्वजनिक विकास प्रोग्राम के लिये सरकारी क्षेत्र से लगभग सम्पूर्ण प्राप्त साधनों के ५० प्रतिशत भाग को लगाना पड़ेगा। यह अनुपात ऊँचा है, अन्य देशों मे ५० प्रतिशत को सामान्यतः बहुत ऊँचा माना जायगा, लेकिन भारत के लिए आज की हालतों में यह जरूरी है क्योंकि सिंचाई, बिजली और यातायात जैसे क्षेत्रों में धन लगाने की अत्यन्त आवश्यकता है और आम तौर पर इन क्षेत्रों में निजी एजेंसियां आकर्षित नहीं होतीं, परन्तु देश की अर्थ व्यवस्था के विस्तार के लिये इनकी बहुत अधिक जरूरत है।

३. इसके अतिरिक्त समस्त साधनों को सम्पूर्णतः निश्चित पूँजी-फण्ड नहीं मान लेना चाहिये। कुछ सीमाओं के अन्दर सरकार की ऐसी स्थिति होती है कि वह उपभोग के स्तरों को नियमित कर सके और पूँजी लगाने के लिये ऐसे साधनों को प्राप्त कर सके जो अन्यथा प्राप्त नहीं हो सकते। एक अल्प-विकसित देश में, जहाँ कार्पोरेशनों के द्वारा बड़ी बचतें नहीं होतीं, टैक्सों और सार्वजनिक प्रयत्नो के अर्जन द्वारा सार्वजनिक बचतों को बढ़ाना, बचतों के स्तर को काफ़ी अधिक बढाने का एक बड़ा जरिया होता है। भविष्य की ओर देखते हुये यह साफ़ है कि इसी प्रकार सार्वजनिक बचतों को बढाना होगा, जिससे कि विकास की आवश्यकताओं को पूरा किया जा सके। वर्तमान योजना के संक्षिप्त काल में भी अतिरिक्त साधनों को प्राप्त करने के लिये कतिपय उपाय आयोजित प्रोग्राम का एक अभिन्न अंग हैं।

४. इस सम्बन्ध में यह बता दिया जाय कि भारत की सन् १९५०–५१ की टैक्सों द्वारा कुल आमदनी (केन्द्र और राज्य दोनों ही की टैक्सों की आमदनी) लगभग ६२५ करोड़ रुपये से कुछ अधिक थी। राष्ट्रीय आमदनी के भाग के रूप मे यह ७ प्रतिशत थी और यह अनुपात संसार मे सबसे कम है। ब्रिटेन मे वह अनुपात ३५ प्रतिशत है, जापान में २३ प्रतिशत, आस्ट्रेलिया में २२ प्रतिशत और लंका में २० प्रतिशत है। लेकिन इस देश में प्रति व्यक्ति आमदनी का स्तर इतना कम है कि इस

तुलना को बहुत अधिक महत्त्व नहीं देना चाहिये। फिर भी इस का अपना एक संकेत है, क्योकि यदि राष्ट्रीय आमदनी का जो हिस्सा आज टैक्सों के द्वारा प्राप्त किया जाता है, वह उतना ही कम रहे जितना कि इस समय है तो सार्वजनिक बचतों को किसी लाभदायक सीमा तक बढ़ाने की आशा निकट भविष्य मे समाप्त हो जायगी और इस प्रकार सम्पूर्ण अर्थ-व्यवस्था के अन्तर्गत पूंजी लगाने के स्तर को ऊँचा उठाना सम्भव न होगा।

५. भारत में टैक्सों के वर्तमान ढांचे की एक उल्लेखनीय विशेषता यह है कि उनक द्वारा आबादी का अपेक्षाकृत बहुत कम भाग प्रभावित होता है। टैक्स द्वारा होने वाली कुल आमदनी का लगभग २८ प्रतिशत प्रत्यक्ष करों द्वारा प्राप्त होता है जिसका प्रभाव श्रमिकों की आबादी के एक प्रतिशत के लगभग आधे भाग पर ही प्रत्यक्ष रूप से पडता है। लगभग १७ प्रतिशत आमदनी आयात करों द्वारा होती है, जो अधिकांशतः ऐसी सामग्रियों के उपभोक्ताओ से प्राप्त होती है जैसे मोटर गाड़ियां, अच्छी किस्म की तम्बाकू, रेशम और रेशम से बनी वस्तुयें और शराब आदि, और इसका प्रभाव अपेक्षाकृत जनता के बहुत छोटे भाग पर पडता है। दूसरी ओर लगान से, जिसका भार युद्ध के पहले के आर्थिक ह्रास वाले वर्षों में किसानों पर ही भारी रूप मे पडा था, टैक्सो की कुल आमदनी का लगभग ८ प्रतिशत वसूल होता है जब कि सन् १९३९ में लगभग २५ प्रतिशत वसूल होता था। यद्यपि यह व्यावहारिक नहीं समझा जाता कि लगान से वसूली का प्रतिशत काफ़ी बढ सकेगा, फिर भी इस दिशा मे कुछ सुधार करके उसे बढ़ाने की सम्भावना है।

६. टैक्सो की यह सीमित दर राष्ट्रीय आमदनी में सरकार को टैक्स से प्राप्त आमदनी के छोटे अनुपात के लिये जिम्मेवार है। इसी के कारण टैक्सों की वर्तमान दर अधिक प्रतीत होती है। इससे दोनों ही तरह सार्वजनिक बचतों की सीमा में बाधा पहुँचती है। ये ऐसे मामले हैं जिनकी तरफ से आंख नहीं मूंदी जा सकती, विशेष रूप से जब यह बात स्पष्ट है कि नकद बचत राष्ट्रीय आमदनी का लगभग ५ प्रतिशत ही है और इसके कारण विकास की रफ्तार बहुत ही सीमित रहेगी। परन्तु आयोजन की आरम्भिक अवस्थाओं मे प्रोग्राम के आकार और वित्त के साधनों का निश्चय इस बात को देखते हुये करना होगा कि शासन और राज्य-कर सम्बन्धी वर्तमान यंत्र के द्वारा तथा वर्तमान राजनीतिक और आर्थिक ढांचे की सीमाओं के अन्दर क्या

करना व्यावहारिक होगा । इसलिये जब कि भारत में टैक्स-नीति का उद्देश्य यह होना चाहिये कि टैक्स की आमदनी के स्तर को इस प्रकार से बढाया जाय जिससे कि विकास की आवश्यकताओ की पूर्ति हो सके, हमे उन सामाजिक और आर्थिक ढांचों के अनुकूल भी इस नीति को बनाये रखना होगा जिनके अन्तर्गत विकास का आरम्भ हुआ है ।

७. २,०६६ करोड रुपये को सार्वजनिक क्षेत्र मे खर्च करने के लिये वित्त का जो कार्यक्रम बनाया गया है वह मोटे तौर पर इस प्रकार है :

	(करोड़ रुपये)
(१) गैर-विकास वाले कार्यों में व्यय के अतिरिक्त केन्द्र और राज्य-सरकारों (रेलो सहित) के चालू राजस्व से बचतें	७३८
(२) केन्द्र और राज्य सरकारो द्वारा घरेलू कर्जों, छोटी बचतों आदिसे प्राप्य राशियां	५२०
(३) पौंड पावने की मुक्ति के आधार पर हीनार्थ प्रबन्धन या घाटे का बजट	२९०
(४) अभी तक प्राप्त बाहरी सहायता	१५६
(५) और अधिक बाहरी सहायता या विकल्प के रूप में भीतरी टैक्सों और कर्जों तथा और अधिक घाटे के बजट के उपाय	३६५
कुल जोड़	२,०६९

८. ऊपर बताये गये पहले और दूसरे अनुमानों का क्या अर्थ है, इसे हम पिछले वर्ष के वास्तविक आंकड़ों के प्रकाश में देखें । जहां तक पहले अनुमान का प्रश्न है, सन् १९५०-५१ में चालू राजस्व की बचतें तुलनात्मक आधार पर लगभग १४५ करोड़ रुपये थीं । इस प्रकार पांच वर्ष की अवधि के लिये बचतों का अनुमान उस वर्ष के स्तर की औसत पर लगाया गया । उस स्तर में बढती की बात नहीं सोची गई है । इसके दो कारण हैं । पहला कारण यह है कि निर्यात शुल्को और इन्कमटैक्स न देने वालों से प्राप्त टैक्स की सहसा प्राप्ति के कारण सन् १९५०-५१ में केन्द्रीय सरकार को राजस्व मे बहुत अधिक अतिरिक्त प्राप्ति हो गई । दूसरा कारण यह है कि सन् १९५०-५१ की तुलना में प्रति रक्षा का खर्च, हमारी सेनाओं की अल्प विकसित अवस्था को देखते हुये, विशेष रूप से नौ-सेना और वायु-सेना की अवस्था को देखते हुये, बहुत अधिक बढ गया है । इस प्रकार उपरोक्त बढे हुये खर्च और सन् १९५०-५१ में प्राप्त बढी हुई आमदनी को देखते हुये उस वर्ष

सार्वजनिक बचतों का जो स्तर था उसे कायम रखने के लिये अन्य स्रोतों से अतिरिक्त आमदनी की आवश्यकता होगी। पिछले वर्ष तैयार किये गये वित्तीय प्रोग्राम के अनुसार राज्य सरकारें पांच वर्ष की अवधि में कुल मिला कर लगभग २१३ करोड रुपये की अतिरिक्त आमदनी करेंगी, जो अब बढकर २३२ करोड रुपये हो गई है क्योंकि कुछ राज्यों ने अपनी योजनाओं में बढ़ती करके १६ करोड रुपये का और अधिक व्यय करने का निश्चय किया है। इस राशि के तीन-चौथाई भाग के बारे में क्या उपाय किये जायेंगे इसका निश्चय सम्बन्धित राज्य सरकारों से सलाह करके कर लिया गया था और नीचे दी गई तालिका द्वारा यह स्पष्ट हो जायगा कि ये उपाय क्या हैं :—

	(करोड रुपये)
भूमि कर से आमदनी (लगान और कृषि आय कर के सहित)	३४·०
सिंचाई से आमदनी (सिंचाई दरों और सुधार शुल्कों के सहित)	२६·५
राज्य सरकारों के व्यापारिक कार्यों से आमदनी (अर्थात् जंगलात्, बिजली और खानें)	४·८
पूंजी के परिवर्तनों से आमदनी (अर्थात् सम्पत्ति करों से)	२१·३
आम व्यापारिक कार्यों पर टैक्सों से आमदनी (अर्थात् बिक्री कर)	२५·५
अन्य विविध स्रोतों से आमदनी (विलास वस्तुओं पर टैक्सों के सहित)	३७·५
गैर विकास वाले खर्चों में बचत से आमदनी	१२·४
	१६५·०*

* शेष ६७ करोड रुपये प्राप्त करने की आवश्यकता इसलिये उठ खड़ी हुई है क्योंकि कुछ राज्य सरकारों ने बाद में आयोजन कमीशन से सलाह करके यह प्रस्ताव रखा है कि उनके यहाँ की योजनाओं का आकार बढा दिया जाय। खर्च के लक्ष्य को बढाने का यह प्रस्ताव फिलहाल स्वीकार कर लिया गया है और वह भी इस शर्त पर कि सम्बन्धित सरकारें स्वयं ही ऐसे साधनों को जुटायेंगी जिससे उक्त उद्देश्य की पूर्ति हो सके।

६.जहाँ तक दूसरी बात का सम्बन्ध है, कर्जों, छोटी बचतों, डिपाज़िटों और फंडों तथा अन्य विविध साधनों से जो कुछ प्राप्ति होगी वह सन् १९५०-५१ के स्तर से अधिक अच्छी होगी क्योंकि उस वर्ष प्राप्ति केवल ७७ करोड रुपये थी। योजना काल में यह आशा की जाती है कि उपर्युक्त जरियों से लगभग ५२० करोड रुपये मिलेंगे जिसके माने यह हैं कि प्रति वर्ष औसत बढ़ती लगभग ४३ करोड रुपये होगी! केन्द्र और राज्य सरकारों द्वारा कर्ज लेने का प्रोग्राम सन्१९५०-५१ के कर्ज़ के प्रोग्राम से बहुत बडा रहेगा और उससे पाँच वर्ष की अवधि में प्राय: ३८५ करोड़ रुपये प्राप्त होंगे। सन् १९५०-५१ में कर्ज़ों, छोटी बचतों अन्य साधनों से लगभग ३६ करोड रुपये ही प्राप्त हुये थे। उस वर्ष कुछ ऐसे असाधारण कारण आ गये थे, जैसे कि कोरियाई युद्ध, जिससे कि समाज के कुछ वर्गों ने रुपये छिपाने की बजाय सामग्री छिपाना आरम्भ कर दिया। इसलिये बाज़ार की खपत की क्षमता को, जहाँ तक कि सरकारी कर्ज़ों का प्रश्न है, सन् १९५०-५१ के आधार पर ठीक-ठीक नहीं बताया जा सकता। योजना-काल में गवर्नमेंट सिक्योरिटियों में औद्योगिक कर्मचारियों के प्राविडेण्ट फण्डों से से प्राप्त पूंजी के लगभग ३६ करोड रुपये होने की आशा है। यह भी प्रतीत होता है कि इस समय कम से कम अल्प कालीन और मध्यम कालीन ऋणों के लिये बाज़ार का रुख पिछले कुछ वर्षों से अच्छा है। छोटी बचतों के सम्बन्ध में भी योजना काल में रुख अच्छा होने की आशा है। सन् १९५०-५१ में इस प्रकार से ३३'५ करोड़ रुपये प्राप्त हुये थे जबकि सन् १९५२-५३ की बजट में दी गई संख्या सम्बन्धी बढ़ कर अभी ही ४४.५ करोड रुपये हो गई है। अन्य कर्ज़ों को मिला कर वित्तीय प्रोग्राम के भाग के रूप में प्रति वर्ष ५४ करोड़ रुपये औसतन प्राप्त होने में सफलता आसान मालूम होती है। नि:सन्देह हमारा उद्देश्य यह होना चाहिये कि हम इस लक्ष्य से भी आगे बढ़ जायें। हाल में यह मान लिया गया है कि ४४'५ करोड़ रुपये के वर्तमान स्तर से अधिक जो कुछ भी राज्यों द्वारा छोटी बचतों के रूप में जमा होगा, उसे राज्य स्वयं ही अपने पास रखेंगे और ये राशियाँ केन्द्र से प्राप्त कर्ज़ समझी जायेंगी। इस व्यवस्था के द्वारा यह आशा की जाती है कि छोटी बचतों का आन्दोलन प्रभावशाली रूप से आगे बढेगा क्योंकि राज्य सरकारों को छोटी बचतों की राशियाँ उन स्थानीय विकास कार्यों में लगाने में सहायता मिलेगी जिनके साथ जनता का सीधा सम्बन्ध है और जिनमें जनता की सीधी रुचि है।

प्राविडेण्ट फण्ड एक दूसरा तरीका है जिसके द्वारा बड़े पैमाने पर बचतों को उत्साहित और संगठित किया जा सकता है। हाल में छः बड़े उद्योगों में काम करने वालों तक इस व्यवस्था का विस्तार करके वह दिशा बता दी गई है जिधर और अधिक प्रगति होनी चाहिये।

१०. नीचे दी हुई तालिका में यह बताया गया है कि सन् १९५०-५१ में और योजना काल में केन्द्र, और राज्यों द्वारा किस प्रकार और किन साधनों से बचतें की गई हैं और दोनों की क्या जिम्मेवारियां थीं :

	आधार वर्ष १९५०-५१			योजना-काल १९५१-५६		
	केन्द्र (भाग 'ग' राज्यों के सहित)	भाग 'क' और भाग 'ख' राज्य तथा काश्मीर	जोड़	केन्द्र (भाग 'ग' राज्यों के सहित)	भाग 'क' और भाग 'ख' राज्य तथा काश्मीर	जोड़
सार्वजनिक बचतें—						
(क) चालू राजस्व से	७१	५१	१२२	१६०	४०८	५६८
(ख) रेलों से	२३	—	२३	१७०	—	१७०
निजी बचतें—						
(क) जनता से प्राप्त कर्ज़	–११	८	—३	३६	७९	११५
(ख) छोटी बचतें तथा अन्य ऋण	४२	—	४२	२७०	—	२७०
(ग) डिपोज़िट, फण्ड तथा अन्य विविध स्रोत (नकद)	—	३८	३८	९०	४५	१३५
कुल जोड	१२५	९७	२२२	७२६	५३२	१,२५८

११. योजना काल में केन्द्र से राज्य को कई मदों में धन प्राप्त होगा। निर्धारित सहायक अनुदान की प्राप्ति के अतिरिक्त राज्यों को केन्द्रीय सड़क फण्ड से, विस्थापित व्यक्तियों की राहत के लिये और खुराक की पैदावार को बढ़ाने के लिये सहायता मिलेगी तथा नदी घाटी योजनाओं, सिंचाई की छोटी योजनाओं, सामूहिक विकास योजनाओं, कुटीर और छोटे पैमाने के उद्योगों तथा विकास के अन्य कार्यक्रमों के लिये कर्जों के रूप में भी सहायता मिलेगी। योजनाओं का केन्द्रीय और राज्यीय शीर्षकों

में वर्गीकरण हो जाने से सार्वजनिक क्षेत्र के विकास कार्यक्रमों में राज्यों के योगदान और राज्यों को प्राप्त केन्द्रीय सहायता की सीमायें पूरी तरह से स्पष्ट नहीं हो सकीं। उदाहरण के लिये बहुमुखी नदी घाटी योजनायें, (यथा दामोदर घाटी, भाखरा-नांगल, हीराकुड और हारीके योजनायें) वास्तव में राज्य सरकारों की योजनायें हैं, लेकिन कुछ मामलों में उनका विस्तार दो या तीन राज्यों तक होता है जिनके अन्तिम वित्तीय उत्तर-दायित्व के बारे में अभी ठीक-ठीक निश्चय नहीं हो सका है और क्योंकि कर्जों के रूप में राज्य सरकारों को दी जाने वाली वित्तीय सहायता का भार आरम्भ में केन्द्र पर है, इसलिये इन योजनाओं को 'केन्द्रीय' शीर्षक के अन्तर्गत रखा गया है। इन तथा ऐसे ही अन्य कारणों से कुछ अन्य योजनायें, जिनके विषय में वित्तीय जिम्मेवारी का अभी अन्तिम निर्णय नहीं हो सका है, जैसे कि सामूहिक विकास योजनायें, सिचाई के छोटे कार्य और औद्योगिक आवास को केन्द्रीय सरकार के विकास कार्यक्रमों के भाग के रूप में रखा गया है, यद्यपि ये मुख्यत: राज्य की योजनायें हैं। इस वर्गीकरण के आधार पर राज्यों का भाग कुल २,०६९ करोड़ रुपये में से ८०० करोड़ रुपये रहेगा। इसी प्रकार अनुमानित केन्द्रीय सहायता, जो कि राज्य योजनाओं के लिये मिलेगी, लगभग १९२ करोड़ रुपये की रहेगी। इससे राज्य की योजनाओं को कितनी सहायता मिलेगी, यह बात नीचे विवरण के द्वारा, जिसमें सन् १९५०-५१ की स्थिति की तुलना सम्पूर्ण योजना काल से की गई है, स्पष्ट हो जायगी :

(करोड़ रुपये)

	१९५०—५१	१९५१—५६
भाग 'क' और भाग 'ग' राज्यों के तथा काश्मीर के साधन	९७	५३१
केन्द्रीय सहायता	३१	१९२+४*
विकास खर्चों के लिये प्राप्त कुल साधन	१२८	७२९
राज्य योजनाओं के विकास खर्च	११८	७९६
बढ़ती (+) कमी (—)	+१०	—६७

*इसके अन्तर्गत काश्मीर राज्य योजना के १० करोड़ रुपये और आसाम राज्य योजना में परिगणित जन-जातियों पर विकास के खर्च के भाग के रूप में परिगणित जन-जातियों की सहायतार्थ दी जाने वाली निर्धारित सहायता के ४ करोड़ रुपये सम्मिलित हैं।

१२. सन् १९५१-५२ के लिये राज्य योजनाओं और सन् १९५२-५३ के लिये राज्य बचतों को देखने पर यह मालूम होता है कि पिछले पैराग्राफ में वित्तीय संगठन के जिस नमूने की रूपरेखा बताई गई है, उसके अनुसार कार्य बहुत आगे नहीं बढ़ा है। यद्यपि राज्यों का विकास सम्बन्धी खर्च सन् १९५१-५२ में लगभग १३५ करोड रुपये था जो कि अनुमानित वार्षिक औसत दर से २४ करोड़ रु० कम था, पर साधनों में लगभग ६८ करोड रुपयों की कमी थी। इस कमी की पूर्ति रक्षित कोष का सहारा लेकर की गई। लेकिन राज्य सरकारों के रक्षित कोष सीमित हैं और यह क्रम बहुत लम्बे समय तक नहीं चल सकता। यह सही है कि कई राज्यो को कुछ परिस्थितियो, जैसे कि अकाल और बाढ़ आदि का सामना करना पडा। जिससे कि राज्य की वित्तीय व्यवस्था पर बहुत दबाव पडा और राज्य के बजटों में योजना के आरम्भिक वर्षों में आगे आने वाले वर्षों की तुलना में, बडे घाटे की कल्पना की गई। फिर भी सन् १९५१-५२ में साधनों में जो कमी हुई वह आशा से अधिक थी।

१३. राज्य सरकारों की आमदनी पिछले दो सालों से बढ़ती रही है, लेकिन राज्य योजनाओं के बाहर का खर्च और अधिक तेज़ी से बढ़ता रहा है और आमदनी की बढ़ती उस खर्च के लिये पूरी तरह से लगती रही है। कुछ हद तक यह शासन में खर्च की वृद्धि के कारण भी हुआ है, लेकिन खेती, शिक्षा और स्वास्थ्य जैसी मदों में ही खर्च बढा है यद्यपि उक्त मदों में किसी भी प्रकार की बड़ी बढ़ती सामान्यतः राज्य योजनाओं के अन्तर्गत आनी चाहिये। ऐसा प्रतीत होता है कि यह प्रवृत्ति पाई जाती है कि जिन योजनाओं को राज्यों ने स्वीकृत किया है उनसे बाहर भी अनेक योजनाओं को हाथ में लिया जा रहा है। जिस सीमा तक यह होगा और जिस सीमा तक सभी प्रकार के विकास के अतिरिक्त कार्यों में होने वाले खर्च पर अंकुश नहीं रखा जायगा, उसी सीमा तक राज्य योजनाओं को कार्यान्वित करने में कठिनाई उपस्थित होगी। केन्द्र की अतिरिक्त सहायता देने की क्षमता सीमित है। वह क्षमता इस समय जो कुछ भी है, उसको देखते हुये वर्तमान या भविष्य के साधनों और २,०६९ करोड रुपये की प्रस्तावित पूंजी के बीच लगभग ३६५ करोड रुपयों की खाई है। इसलिये यह जरूरी है कि बात को दोहरा दिया जाय कि आयोजित विकास प्रोग्राम का यह एक आवश्यक अंग है कि राज्य सरकारें अपने आप ही काम शुरू करके अतिरिक्त साधनों को जुटायें।

घाटे का बजट

१४. केन्द्र और राज्य सरकारों के साधनों का जो मूल्यांकन ऊपर किया गया है उससे यह श्न उठता है कि विकास के लिये हीनार्थ प्रबन्धन या घाटे के बजट का कहाँ तक सहारा लिया जा सकता है। हीनार्थ प्रबन्धन का तात्पर्य है बजट में घाटे के द्वारा समस्त राष्ट्रीय व्यय को प्रत्यक्षतः बढा देना, चाहे यह घाटा राजस्व मे हो चाहे पूंजी-खाते में। अतः इस नीति का सार यह है कि सरकार जो कुछ भी राजस्व टैक्सो, राज्य के धन्धों द्वारा अर्जन, जनता से ऋण, डिपाजिटों और फण्डों तथा अन्य विविध स्रोतों से प्राप्त करती है, उससे अधिक खर्च करे। सरकार इस घाटे की पूर्ति या तो एकत्रित पावने को कम करके या बैंकिंग व्यवस्था से (विशेषतः देश के केन्द्रीय बैंक से) कर्ज़ लेकर करे और इस प्रकार मुद्रा का 'निर्माण' करे।

१५. मुद्रा-निर्माण के खतरे सभी लोगों को भली भांति विदित हैं। इस रास्ते पर चलने के अर्थ हैं वर्तमान मुद्रा का अवमूल्यन और तज्जन्य मूल्यों में वृद्धि। और यदि इसे कुछ सीमाओं से अधिक किया जाता है, तो उससे वर्तमान मुद्रा में सार्वजनिक विश्वास पूरी तरह टूट सकता है जिसके बड़े भयंकर परिणाम हो सकते हैं। हीनार्थ प्रबन्धन का सहारा तभी लिया जा सकता है जब यह विश्वास हो कि उपभोग के लिये अत्यावश्यक द्रव्यों की प्राप्ति लगातार होती रहेगी। किसी भी व्यवस्था के अन्तर्गत जब लोगों को खरीद की अतिरिक्त शक्ति दे दी जाती है तो उससे बुनियादी जरूरत की चीजों की मांग बढ़ जाती है और यदि ऐसी चीज़ों की प्राप्ति को तेज़ी से बढाया नहीं जाता तो उनके दाम ऊंचे चढ जाते हैं जिससे जीवन यापन का व्यय ऊंचा चढ जाता है। इस प्रकार यह स्पष्ट हो जायगा कि हीनार्थ प्रबन्धन के लिये गुंजाइश तभी है जब कि कंट्रोलों को कायम रखने की नीति का पालन हो। यदि अनाज तथा अन्य अत्यावश्यक द्रव्यों जैसे कि कपडा और गुड या शक्कर की प्राप्ति और वितरण को इस प्रकार संगठित किया जाय जिससे कि सम्पूर्ण आबादी की न्यूनतम आवश्यकताओं की पूर्ति हो सके तो उसी सीमा तक हीनार्थ प्रबन्धन के खतरे कम हो जायेंगे। तब बढी हुई आमदनी का प्रभाव अन्य वस्तुओं पर पडेगा जो कि विलास वस्तुओ की कोटि की होंगी और आबादी के अधिकांश भाग के लिये जीवन-यापन के व्यय की दृष्टि से जिनका महत्त्व अधिक न होगा। इसलिये जब तक कि कंट्रोलों के बारे में कोई दृढ और स्पष्ट नीति न हो,

तब तक हीनार्थ प्रबन्धन के लिये गुंजाइश न केवल सीमित है, बल्कि यह भी खतरा लगातार बना रह सकता है कि बजट में अपेक्षाकृत बहुत कम घाटे से भी स्फीतिकारी प्रभाव उत्पन्न हो जायें। यह स्पष्ट है कि देश में इस समय उपभोग का जो प्रचलित न्यून स्तर है, और जिसके अर्थ यह हैं कि क्रय-शक्ति के बढ़ जाते ही आवश्यक वस्तुओं की मांग तत्काल बढ़ जायगी और इस न्यून स्तर की पूर्ति के लिये भी आवश्यक वस्तुओं की कमी होने के कारण हीनार्थ प्रबन्धन की गुंजाइश बहुत ही कम है।

१६. वर्तमान अवस्था में कल्पना की गई है कि हीनार्थ प्रबन्धन २९० करोड रुपये तक का ही होगा और यह वह संख्या है जो कि पांच वर्षों में भारत को पौंड पावने की मुक्ति के रूप में प्राप्त होगी। यह पावने देश की अतीत काल की बचतों के रूप में मौजूद हैं। अर्थात् यह वह राशि है जो इस देश को उन वस्तुओं और सेवाओं के बदले में प्राप्त होगी जो युद्ध काल में समर्पित की गई थीं, परन्तु जिनके लिये उस समय भुगतान न हुई थी। इस पावने की मुक्ति के अर्थ हैं देश को बाहर से, बिना देश के साधनों को बाहर भेजे हुये, २९० करोड़ रुपये के मूल्य की वस्तुओं और सेवाओं की प्राप्ति। दूसरे शब्दों में देश अपनी पुरानी बचतों पर निर्भर करेगा और इस प्रकार जितनी वस्तुयें और सेवायें उसको तत्काल प्राप्त हैं, उनमे तात्कालिक बढ़ती करेगा। इन अतिरिक्त वस्तुओं और सेवाओं के द्वारा पूरी तरह नहीं तो कुछ हद तक उन स्फीतिकारी प्रभावों को व्यर्थ किया जा सकेगा, जो कि हमारी अर्थ व्यवस्था में २९० करोड रुपये की निर्मित मुद्रा के द्वारा प्रकट होगी, अतः ऐसा माना जाता है कि इस सीमा तक हीनार्थ प्रबन्धन का सहारा यथेष्ट सुरक्षा के साथ लिया जा सकता है।

वहिर्देशीय साधन

१७. अभी तक योजना काल में बाहर से वे कर्ज और अनुदान, जो कि विकास प्रोग्राम के लिये प्राप्त हुये हैं, १५६ करोड रुपये तक हैं। उनका विवरण इस प्रकार है:—

	(करोड रुपये)
अमेरिका से प्राप्त खाद्य-ऋण	९०
कोलम्बो योजना के अन्तर्गत राष्ट्र परिवार की सहायता	१२
टेकनीकल सहयोग करार, १९५२, के अन्तर्गत सहायता	२५

टेक्नीक्ल सहयोग करार, १९५२ के प्रथम पूरक के अन्तर्गत सहायता	१८
अन्तर्राष्ट्रीय बैंक से कर्ज (१९५०)	९
अन्य सहायता	२
कुल जोड	१५६

१८. विकास की इन आरम्भिक अवस्थाओं मे और अधिक बाहरी सहायता निश्चित रूप से उपयोगी होगी और उससे ३६५ करोड रुपये की उस कमी की पूर्ति मे सहायता मिलेगी जिसके लिये अभी तक कोई निश्चित व्यवस्था नहीं की गई है। निःसन्देह इस प्रकार की सहायता को तभी स्वीकार किया जायगा जब उसके साथ कोई ऐसी व्यक्त या अव्यक्त शर्तें न हों जिनके द्वारा वैदेशिक मामलों में स्वतन्त्रतापूर्वक कार्य करने की इस देश की योग्यता पर किसी भी रूप में प्रभाव पड़ता हो। वैदेशिक सहायता पर बहुत अधिक निर्भर करने के खतरे को भी स्वीकार करना होगा, विशेषतः ऐसी हालतों में जब कि सहायता देने वाले की घरेलू राजनीतिक अवस्था पर वह सहायता आधारित हो और अप्रिय अन्तर्राष्ट्रीय घटनाओं के कारण उस सहायता में बाधा उपस्थित हो जाय। उपर्युक्त सभी बातों को देखते हुये अन्तर्राष्ट्रीय आधार पर संगठित वहिर्देशीय सहायता पर अधिक ज़ोर देना होगा। लेकिन जो विकसित देश हैं उनके साथ उभय पक्षीय आधार पर या व्यक्तियों और कार्पोरेशनों के बीच समझौते के आधार पर सहायता की बात को भी सामने रखना होगा।

१९. बाहरी सहायता के द्वारा दो कार्य साथ-साथ पूरे हो सकेंगे। उस से वैदेशिक विनिमय साधनो की समुचित रूप से प्राप्ति होगी और साथ ही साथ देश के उन साधनों में बढती होगी जिनको कि विकास कार्यों मे लगाया जायगा। आज की अवस्था मे विकास के रास्ते में भुगतान के संतुलन के संबंध में बड़ी कठिनाई होती है। इसमें सन्देह नहीं कि पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत जो कार्यक्रम आते हैं उनके अन्तर्गत लगभग ४०० करोड रुपये के प्रत्यक्ष वैदेशिक विनिमय ख़र्च की ही व्यवस्था है। इसका मुख्य कारण यह है कि खेती-बाडी पर विशेष जोर दिया गया है और ऐसी योजनाओं पर जोर दिया गया है जिनमें भरपूर श्रम की अपेक्षा हो, जिस से कि देश के काम में न आने वाली जन शक्ति का अधिक से अधिक उपयोग किया जाय। यदि सार्वजनिक क्षेत्र के विकास कार्य

क्रम के अन्तर्गत औद्योगीकरण को अधिक प्रमुखता दी जाती तो प्रत्यक्ष वैदेशिक विनिमय खर्च बहुत अधिक होता। लेकिन योजना के अन्तर्गत ४०० करोड़ रुपये का यह प्रत्यक्ष खर्च कुल मिला कर देश के विकास प्रोग्राम के लिये आवश्यक वैदेशिक विनिमय की ज़रूरतों को प्रकट नहीं करता। देश के अन्दर जैसे-जैसे विकास के लिये पूंजी लगती जायगी वैसे-वैसे घरेलू आमदनी बढती जायगी जिससे कि अनाज तथा अन्य बुनियादी जरूरतों की चीजों को मांग बढती जायगी जिनकी पूर्ति सम्भवत: उस सीमा तक बाहर से आने वाली वस्तुओं के द्वारा करनी पडे जिस सीमा तक देश में अतिरिक्त मांग के लिये वस्तुओं की कमी है। इस प्रकार बाहरी सहायता के द्वारा भुगतान के संतुलन की कठिनाइयों को, जो कि अवश्य उठ खडी होगी, बहुत कम किया जा सकता है।

२०. परन्तु यद्यपि बाहर से प्राप्त होने वाले पूरक साधन सहायक बनेंगे फिर भी पांच वर्ष की अवधि के लिये हमने जो अपेक्षाकृत साधारण प्रोग्राम बनाया है, उसके लिये हम इस प्रकार के साधनों की प्राप्ति पर पूरी तरह निर्भर नहीं कर सकते। जब एक बार कार्य की कुछ दिशायें निश्चित कर ली जायेंगी तो हमें पूंजी लगानी ही होगी, क्योंकि वैसा न करने पर गम्भीर हानि और अव्यवस्था उत्पन्न हो सकती है। यदि बाहर से और अधिक सहायता नहीं प्राप्त होती तो हम निःसन्देह कुछ कमी-बेशी कर सकते हैं। लेकिन कुल मिला कर हमने सार्वजनिक क्षेत्र के लिये २,०६६ करोड रुपये की पूंजी लगाने का जो कार्यक्रम बनाया है, उसको तो पूरा करना ही होगा, जिससे कि योजना काल में पूंजी लगाने की रफ्तार ऐसी हो जाय जिससे आगे आने वाले वर्षों में विकास की गति और तेज़ करने के लिये एक आधार प्राप्त हो जाय। निःसन्देह इसका अर्थ यह होगा कि समाज पर टैक्सों तथा अन्य प्रकार से कुछ अधिक बोझा पडेगा और उपभोग को या तो स्थिर रखा जायगा या कम किया जायगा। यदि योजना को बिना विदेशी सहायता के पूरा होना है, तो इसके सिवा और चारा ही क्या है?

—:*:—

अध्याय ४

पंचवर्षीय योजना का खाका

भविष्य में तेज़ी के साथ विकास के लिये जो आयोजन होगा, पंचवर्षीय योजना उसकी ओर एक अनिवार्य पहला कदम है। इसलिये आगामी २० वर्षों में जो कुछ भी सफलतायें हमें प्राप्त करनी हैं, उनकी तुलना में योजना में पूंजी लगाने के जो लक्ष्य स्थिर किये गये हैं और उनसे जो कुछ भी उत्पादन होने की आशा है, वे साधारण ही हैं। लेकिन अतीत काल की तुलना में वे फिर भी ऊँचे हैं।

२. २,०६९ करोड़ रुपयो को सार्वजनिक क्षेत्र मे व्यय करने का, जो प्रस्ताव कमीशन ने किया हैं, उनके विषय में निम्नलिखित मुख्य विचार रखे गये हैं :—

(१) एक ऐसे विकास-क्रम को आरम्भ करने की आवश्यकता, जो कि भविष्य के लिये और अधिक बड़े प्रयत्नो का आधार बने;

(२) विकास के लिये देश मे प्राप्त सम्पूर्ण साधन;

(३) सार्वजनिक और निजी— दोनों ही क्षेत्रों में प्राप्त साधनों और विकास की रफ्तार के बीच निकट सम्बन्ध;

(४) योजना के आरम्भ होने के पहले केन्द्र और राज्य सरकारों द्वारा आरम्भ किये गये विकास-कार्यक्रमों की पूर्ति की आवश्यकता; और

(५) युद्ध और विभाजन के कारण उत्पन्न अर्थ व्यवस्था मे गड़बड़ी को ठीक करने की आवश्यकता।

पूँजी के सम्बन्ध मे प्राथमिकतायें और नमूने

३. नीचे दिए गए विवरण मे संक्षेप में यह बताया गया है कि सार्वजनिक क्षेत्र में विकास प्रोग्रामों के लिये खर्च का वितरण किस प्रकार होगा :

	(करोड़ रुपये)
कृषि और सामूहिक विकास	३६१
सिचाई	१६८

केन्द्र और राज्य

केन्द्रीय सरकार

परिवहन और संचार

सिंचाई और बिजली

खेती-बाड़ी और सामूहिक विकास

उद्योग

सामाजिक सेवाएं

विविध

० ५० १०० १५० २०० २५० ३०० ३५० ४०० ४५

(करोड रुपया)
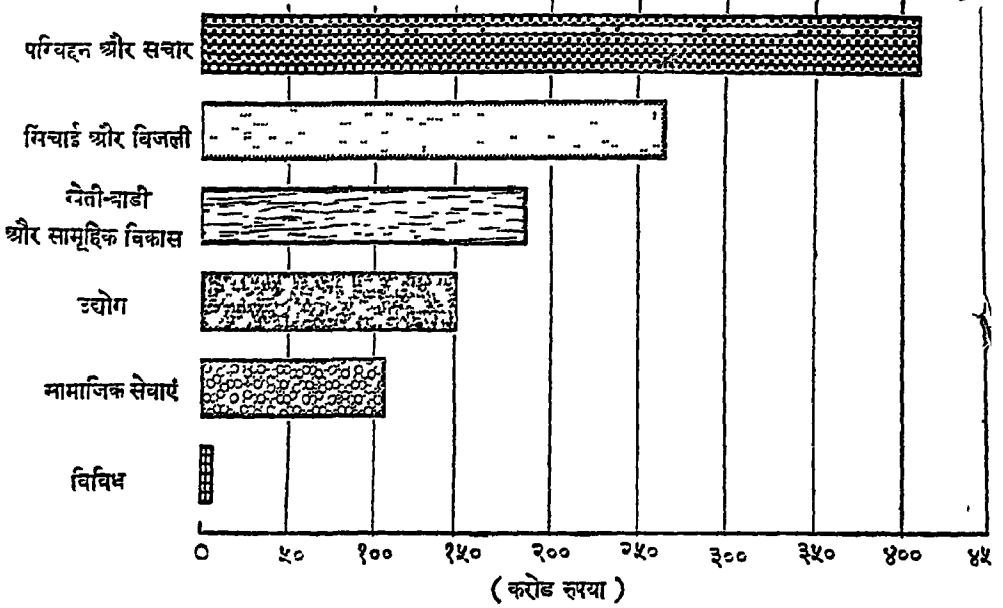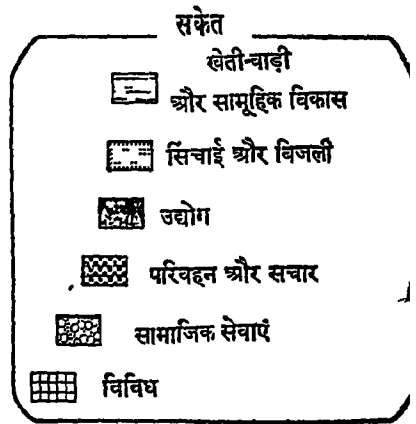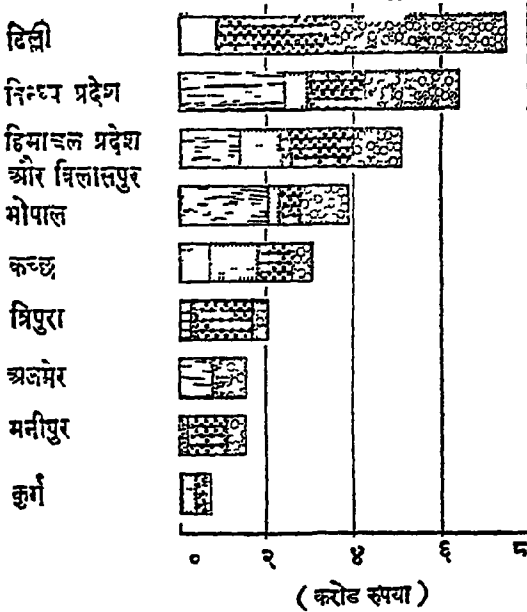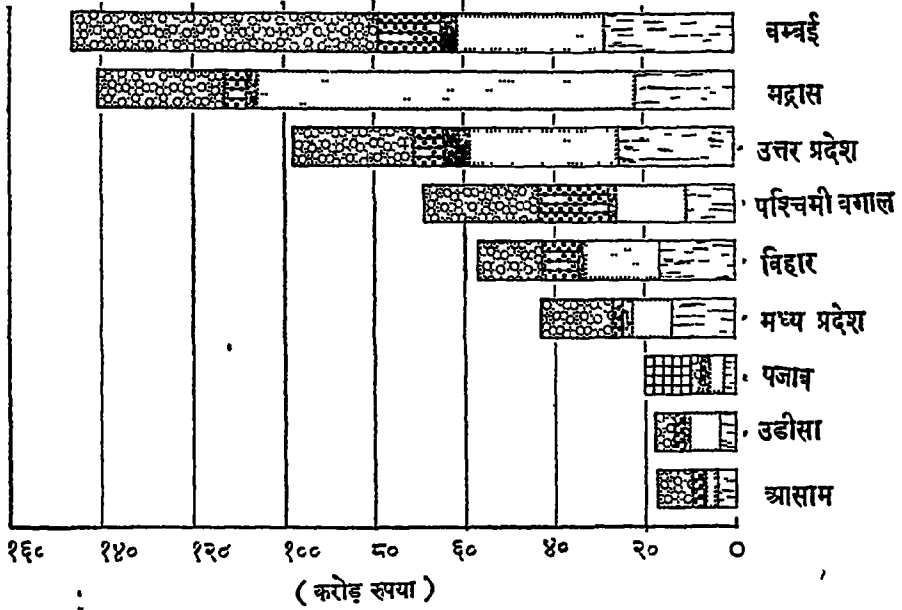
की योजनाएं
'क' भाग के राज्य
बम्बई
मद्रास
उत्तर प्रदेश
पश्चिमी बंगाल
बिहार
मध्य प्रदेश
पंजाब
उड़ीसा
आसाम
१६० १४० १२० १०० ८० ६० ४० २० ०
(करोड़ रुपया)
'ख' भाग के राज्य
हैदराबाद
मैसूर
त्रावन्कोर कोचीन
मध्य भारत
सौराष्ट्र
राजस्थान
पेप्सू
जम्मू और काश्मीर
१६० १४० १२० १०० ८० ६० ४० २० ०
(करोड़ रुपया)
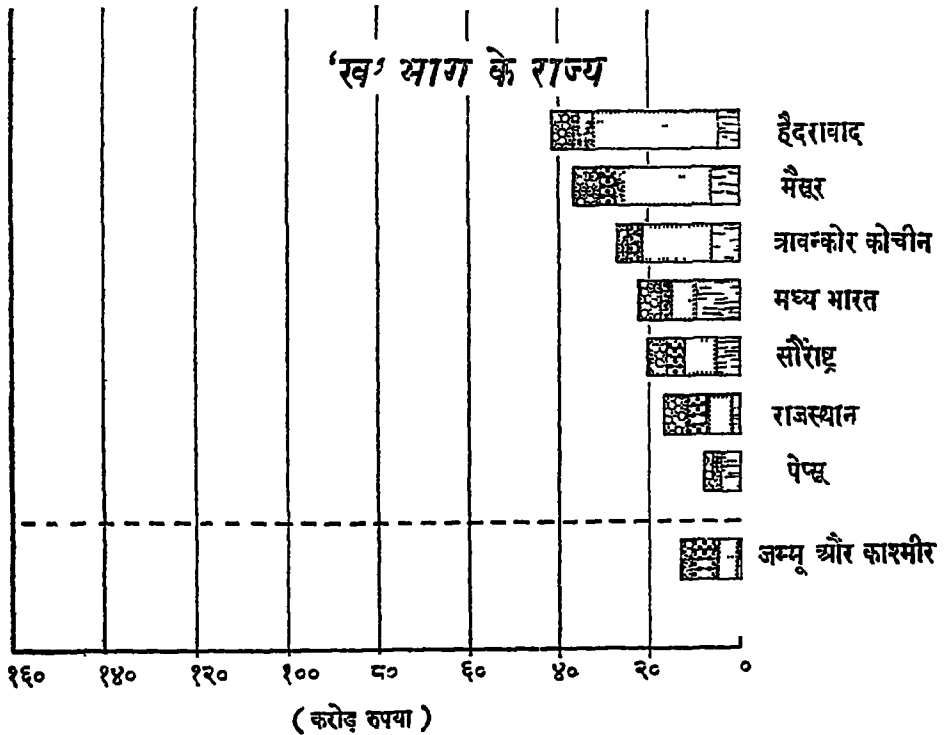
बहुमुखी सिंचाई और बिजली योजनायें	२६६
बिजली	१२७
परिवहन और संचार	४६७
उद्योग	१७३
सामाजिक सेवायें	३४०
फिर से बसाने का काम	८५
विविध	५२
जोड	२,०६९

यह वितरण दूसरे अध्याय में बताई गई प्राथमिकताओं के अनुसार है। खेती-बाडी के विकास को सबसे ऊँची प्राथमिकता दी गई है और इसके लिये सिचाई की छोटी और बड़ी योजनाओं के भरपूर विकास की आवश्यकता है। कई मामलों मे सिचाई की बडी योजनाओं के साथ बिजली का उत्पादन जुडा हुआ है। लेकिन उच्च प्राथमिकता बिजली उत्पादन को दी गई है क्योंकि बिजली की शक्ति के व्यापक वितरण की आवश्यकता न केवल छोटे-मोटे उद्योग-धन्धों के विकास के लिये और व्यापक रूप मे देहात विकास के लिये है, बल्कि उद्योगों के प्रसार के लिये भी है। खेती-बाड़ी और उद्योग के प्रसार की आवश्यकताओं को पूरी करने के लिये सडको और रेलों पर काफी खर्च करने की व्यवस्था की गई है।

४. योजना काल मे औद्योगिक विस्तार प्रधानतः निजी तौर पर और निजी साधनों के द्वारा होगा। लेकिन कई मामलों मे इनके पूरक के रूप में सार्वजनिक क्षेत्र के साधन भी और विदेशी पूँजी भी लगेगी और सार्वजनिक तथा निजी क्षेत्रों के प्रोग्राम कुल मिला कर बहुत काफी हैं।

५. जहाँ तक सामाजिक सेवाओं का सवाल है, उसकी जरूरतें इतनी अधिक हैं कि अभी तक सार्वजनिक अधिकारियों द्वारा जो कुछ भी धन लग रहा है, उससे प्राप्त सफलतायें बहुत सीमित हैं। वर्तमान योजना में विस्थापितों को फिर से बसाने के कार्य में हमारे विकास के साधनों का एक बहुत बडा भाग लग जायगा। इस क्षेत्र में पूँजी को बढाने के लिये यह आवश्यकता होगी कि समाज के सीधे प्रयत्नों द्वारा यह कार्य किया जाय जिससे कि निरक्षरता को मिटाया जा सके और सफाई की हालत मे सुधार हो। योजना में सामूहिक विकास प्रोग्राम की व्यवस्था करके और स्थानीय

निर्माण कार्यों को प्रोत्साहित करके इस प्रकार के सामूहिक प्रयत्नों को भी प्रोत्साहित किया गया है।

६. नीचे दिए गए विवरण में यह बताया गया है कि २,०६६ करोड़ रुपये की पूँजी लगाने का महत्त्व सार्वजनिक और व्यक्तिगत क्षेत्रों मे उत्पादक साधनों को बढाने और देश की उत्पादन-क्षमता में वृद्धि करने में क्या होगा :

	(करोड़ रुपये)
(१) वह पूंजी जो कि केन्द्र और राज्य सरकारों द्वारा अधिकृत उत्पादक पूंजी के स्टाक को बढाएगी	१,१६६
(२) वह पूंजी जो कि निजी क्षेत्र में उत्पादक पूंजी का निर्माण करने में सहायक होगी	
(क) खेती-बाड़ी और देहात विकास पर खर्च (सामूहिक विकास योजनाओ को छोड़ कर)	२४४
(ख परिवहन तथा उद्योग के लिये कर्ज़	४७
(ग) स्थानीय विकास को बढ़ाने की व्यवस्था (सामूहिक विकास और स्थानीय कार्य)	१०५
(३) सामाजिक पूँजी	४२५
(४) ऊपर जिन कार्यों की चर्चा नहीं की गई है, उनमें लगने वाली पूँजी (अभावग्रस्त क्षेत्रों के लिये व्यवस्था के सहित)	४६
जोड़	२,०६६

खर्च का बँटवारा

७. केन्द्र और राज्य सरकारों द्वारा बड़ी योजनाओं पर विकास का क्या खर्च आयेगा, इसे इस पुस्तक के अन्त में परिशिष्ट मे दिया गया है।

नीचे संक्षेप में केन्द्र और राज्य सरकारो के बीच कुल पूँजी के बँटवारे को दिया जा रहा है :

	(करोड़ रुपये)
केन्द्रीय सरकार (रेलों सहित)	१,२४१
राज्य : 'क' भाग	६१०
'ख' भाग	१७३

'ग' भाग	३२
जम्मू और काश्मीर	१३
जोड़	२,०६६

जैसा कि तीसरे अध्याय मे बताया गया है, उपर्युक्त वर्गीकरण में राज्य के हिस्से के बारे में, जो कि विकास के प्रोग्राम में खर्च होगा, घटा कर बताया गया है, क्योंकि विविध उद्देश्ययुक्त नदी घाटी योजनायें तथा कुछ अन्य योजनायें केन्द्रीय सरकार के विकास प्रोग्राम के अंग के रूप में दिखाई गई हैं।

८. जम्मू और काश्मीर को छोड़ कर अन्य राज्यों के विकास-प्रोग्रामों के लिये निर्धारित पूंजी का विवरण इस प्रकार है:—

राज्य योजनाये

'क' भाग	(करोड़ रुपयों में)	'ख' भाग	(करोड़ रुपयों में)	'ग' भाग	(करोड़ रुपयों में)
आसाम	१७·४९	हैदराबाद	४१·५५	अजमेर	१·५७
बिहार	५७·२६	मध्य भारत	२२·४२	भोपाल	३·६०
बम्बई	१४६·४४	मैसूर	३६·६०	बिलासपुर	०·५७
मध्य प्रदेश	४३·०८	पेप्सू	८·१४	कुर्ग	०·७३
मद्रास	१४०·८४	राजस्थान	१६·८२	दिल्ली	७·४८
उडीसा	१७·८४	सौराष्ट्र	२०·४१	हिमाचल प्रदेश	४·५५
पंजाब	२०·२१	त्रावनकोर-		कच्छ	३·०५
उत्तर प्रदेश	६७·८३	कोचीन	२७·३२	मणीपुर	१·५५
पश्चिमी बंगाल	६९·१०			त्रिपुरा	२·०७
				विन्ध्य प्रदेश	६·३९
कुल जोड	६१०·१२		१७३·२६		३१·८६

राज्य योजनाओं को आरम्भ में लगभग एक वर्ष पहले सम्बन्धित राज्य सरकारों से सलाह करके बनाया गया था और उनका आधार भविष्य की वे

सूचनायें थीं, जो उन्होंने योजना-काल के लिये सम्भावित आमदनी और खर्च के बारे में दी थीं । जिन मामलों में राज्य सरकारों ने अपने यहाँ की योजनाओं के आकार को बढ़ाने का प्रस्ताव बाद में किया, उनमे ये प्रस्ताव अस्थायी तौर पर मान लिये गये हैं. परन्तु यह शर्त रखी गई है कि उनके लिये साधनों को सम्बन्धित सरकारें स्वयं जुटावें ।

योजना के अन्तर्गत प्रोग्रामों का खाका

९. योजना के द्वारा क्या परिणाम प्राप्त होंगे, इसका अनुमान लगाते हुये हमें केवल सार्वजनिक क्षेत्र के विकास प्रोग्रामों को ही नहीं देखना होगा। ये प्रोग्राम, जैसा कि पहले बताया जा चुका है, हमारी अर्थ-व्यवस्था की सम्पूर्ण आवश्यकताओं के अनुमान पर आधारित हैं और इनका सम्बन्ध उन प्रयत्नों से भी है जो कि सार्वजनिक क्षेत्र में भी होंगे । खेती बाडी के मामले में पूरक पूंजी, जिसकी कि आवश्यकता होगी, बहुत हद तक स्वयं किसानों के श्रम के सीधे दान द्वारा प्राप्त होगी। औद्योगिक क्षेत्र मे उन ४० बडे और मध्यम उद्योगों की कार्य सम्बन्धी योजनाओं पर भी विचार करना होगा, जो कि देश के कारखाने सम्बन्धी कार्यों का दो-तिहाई भाग हैं। अन्य क्षेत्रों में भी, जैसे कि परिवहन और उद्योगों के छोटे पैमाने के कार्यों में, केवल मोटे तौर पर ही अनुमान लगाये जा सकते हैं। इसी प्रकार शिक्षा के विस्तार और सफाई तथा संचार आदि की व्यवस्था के सम्बन्ध में क्या सामूहिक प्रयत्न होंगे, इसको ठीक-ठीक शब्दों मे पहले से नहीं बताया जा सकता।

नीचे के पैराग्राफों में सार्वजनिक और निजी दोनों ही क्षेत्रो के विकास प्रोग्रामों की विशेष बातें दी जा रही हैं । नीचे दिये गये वक्तव्य मे वे परिणाम दिखाये गये हैं, जो कि कतिपय चुने हुये लक्ष्यों के रूप में प्राप्त होंगे ।

	१९५०-५१	१९५५-५६
१. खेती-बाड़ी		
अनाज *(१० लाख टनों में)	५२·७	६१·६
कपास (लाख गाठों में)	२९·७	४२·२
पटसन (लाख गांठों में)	३३·०	५३·९

*चना और दालों के सहित सन् १९४९-५० का उत्पादन (जिसे कि सन् १९५५-५६ के लिये लक्ष्य निर्धारित करने का आधार बनाया गया है) ५४० लाख टन था।

गन्ना (१० लाख टनों में)	५·६	६·३
तिलहन(१० लाख टनों में)	५·१	५·५

२. सिचाई और बिजली

सिचाई के बडे कार्य (१० लाख एकडों में)	५०·०	८·५
सिचाई के छोटे कार्य (१० लाख एकडों में)		११·२
बिजली की ताकत(१० लाख किलोवाट में)	२·३	३·५

३. उद्योग

लोहा और इस्पात (लाख टनो में)		
फाउन्ड्रियों के लिये प्राप्त कच्चा लोहा	३·५	६·६
तैयार इस्पात	९·८	१३·७
सीमेन्ट (लाख टनों में)	२६·९	४८·०
एल्यूमीनियम (हज़ार टनों में)	३·७	१२·०
रासायनिक खादें (हज़ार टनों मे)		
अमोनियम सल्फेट	४६·३	४५०·०
सुपर फास्फेट	५५·१	१८०·०
रेल के इंजन		१७०
मशीनी औज़ार (हज़ार में)	१·१	४·६
द्रव्य पेट्रोलियम (१० लाख गैलनों में)	संख्या प्राप्त नहीं	४०३·०
बाइटूमेन (हज़ार टनों मे)	,, ,, ,,	३७·५
कपास से बनी चीजें		
सूत	१,१७९	१,६४०
मिल का बना कपडा (१० लाख पौंडो में)		
मिल का बना कपडा (१० लाख गज़ों में)	३,७१८	४,७००
हाथ कर्घे का कपडा (१० लाख गज़ों में)	८१०	१,७००
पटसन की चीजें (हज़ार टनों मे)	८९२	१,२००
खेती के औज़ार		
(क) शक्ति चालित पम्प (हज़ार में)	३४·३	८५·०
(ख) डीजल इंजन (हज़ार में)	५·५	५०·०
बाइसिकलें (हज़ार मे)	१०१·०	५३०·०

पावर अलकोहल (१० लाख गैलनों में)	४·७	१८·०
४. यातायात		
जहाज़ (टन भार)		
तटीय (जी० आर० टी०) (हज़ार में)	२११·०	३१५·०
वैदेशिक („ „ „ „ „)	१७३·५	२८३·०
सड़कें		
सरकारी सड़कें (हज़ार मीलों में)	११·६	१२·५
राज्य सड़के („ „ „)	१७·६	२०·६
५. शिक्षा×		
विद्यार्थियों की संख्या		
प्राइमरी स्कूलों में (लाख में)	१५१·१	१८७·६
जूनियर बेसिक स्कूलों में (लाख में)	२६·०	५२·८
माध्यमिक स्कूलों में (लाख में)	४३·६	५७·८
औद्योगिक स्कूलों में (हज़ार में)	१४·८	२१·८
अन्य टैक्नीकल तथा व्यावसायिक ट्रेनिंग स्कूल (हज़ार में)	२६·७	४३·६
६. स्वास्थ्य		
अस्पताल (पलंगों की संख्या हज़ार में)	१०६·५	११७·२
दवाखानें (संख्या)		
शहरी	१,३५८	१,६१५
देहाती	५,२२६	५,८४०
७. विकास सम्बन्धी संस्थायें		

× इन अनुमानों के अन्तर्गत (औद्योगिक स्कूलों को छोड़ कर) हैदराबाद राजस्थान, अजमेर और विन्ध्य प्रदेश की संख्यायें शामिल नहीं हैं। कुछ मामलों में कुल राज्यों के आंकड़े (यथा प्राइमरी स्कूलों के बारे में उत्तर-प्रदेश और जूनियर बेसिक तथा माध्यमिक स्कूलों के बारे में मध्य प्रदेश के आंकड़े) शामिल नहीं हैं।

पंचायतें (हज़ार में)	५५·१	६६·१
सहकार समितियां ❀		
ऋण सम्बन्धी (हज़ार मे)	८७·८	११२·६
बिक्री तथा बाज़ार सम्बन्धी (हज़ार में)	१४·७	२०·७
विविध उद्देश्य युक्त (हज़ार में)	३१·५	४०·५
लिफ्ट द्वारा सिचाई	१६२	५१४
सहकारी खेती	३५२	६७५
अन्य (हज़ार मे)	२७·३	३५·८
जोड (हजार में)	१६१·६	२११·१

खेती-बाड़ी और सामूहिक विकास

१०. खेती-बाडी और सामूहिक विकास एक व्यापक शब्दावली है, जिसके अन्तर्गत अन्य बातों के अतिरिक्त पशुओं का सुधार, जंगलों और मिट्टी की रक्षा, सहकारिता और गाँव-पंचायतें आ जाती हैं। योजना में इसके लिये कुल ३६१ करोड रुपये की व्यवस्था रखी गई है, जिसमें से १८४ करोड़ रुपया खेती के लिये, लगभग १०० करोड़ रुपये से अधिक सामूहिक विकास और देहात विकास के लिये, २२ करोड रुपया पशु-धन की वृद्धि और डेयरी के लिये और १२ करोड रुपया जंगलों तथा भूमि की रक्षा के लिये हैं।

११. खेती-बाडी की अधिकांश योजनायें राज्य सरकारों के क्षेत्र के अन्तर्गत आती हैं और केन्द्रीय सरकार का कार्य उनके प्रोग्रामों मे समन्वय स्थापित करना और कुछ महत्त्वपूर्ण मामलों में उनकी सहातता करना है। केन्द्रीय सरकार की योजना के अन्तर्गत केन्द्रीय ट्रैक्टर संगठन के वर्तमान प्रोग्राम की पूर्ति, एक राष्ट्रीय विस्तार संगठन की स्थापना, पशु सुधार की योजनायें, भूमि रक्षा, सहकारिता की ट्रेनिंग और सहकारी कृषि के प्रयोगों आदि की व्यवस्था है।

१२. अनाज, कपास, पटसन, गन्ना और तिलहन के उत्पादन को बढ़ाने के विस्तृत प्रोग्राम आरम्भ में सन् १९५०-५१ में राज्य सरकारों से सलाह करके बनाये गये थे। अनाज के बारे में सन् १९५५-५६ का लक्ष्य सन् १९४९-५० के स्तर से १४ प्रतिशत की वृद्धि का संकेत करता है। कपास के

❀ इन अनुमानों के अतर्गत पंजाब, उड़ीसा, हैदराबाद, पेप्सू और भाग 'ग' राज्यों में से अधिकांश के आँकड़े शामिल नहीं हैं।

बारे में यह वृद्धि ४४ प्रतिशत, पटसन के बारे में ६३ प्रतिशत, ·न्ने के बारे में १३ प्रतिशत और तिलहन के बारे में ८ प्रतिशत है। सन् १९५२ में प्रोग्रामों पर पुनर्विचार करने के बाद यह मालूम हुआ कि वृद्धि ७२ लाख टन अनाज की बजाय ६५ लाख टन की होगी। इसलिये सिंचाई की छोटी योजनाओं के लिये ३० करोड़ रुपये की और व्यवस्था करके तत्सम्बन्धी प्रोग्रामों को मज़बूत बनाया गया है।

१३. सामूहिक विकास योजनाओं के द्वारा भी खेती-बाडी की उपज में बढती होगी। ये योजनायें चुने हुये इलाकों में भरपूर विकास के कार्यक्रम के रूप मे आरम्भ की गई है। इस वर्ष ५५ योजनाओं के साथ इनका आरम्भ हुआ। सामूहिक विकास योजनाओं का केन्द्रीय उद्देश्य यह है कि सम्पूर्ण देहाती जीवन के स्तर को मिली-जुली कोशिशों के द्वारा स्थानीय जन-शक्ति को जुटा कर ऊंचा उठाया जाय। अनिवार्यतः खेती-बाड़ी की पैदावार के स्तर को सुधारने पर ज्यादा जोर दिया गया है। यह इस बात से प्रगट है कि योजना के लिये होने वाले खर्च का एक बड़ा भाग सिंचाई, भूमि के विकास और विस्तार सेवाओं के लिये होगा। जैसे-जैसे और आगे अनुभव प्राप्त होता जायगा, वैसे-वैसे यह इरादा है कि सारे देश में इस प्रकार की योजनाओं का जाल बिछाया जाय और इस प्रकार खेती बाड़ी की पैदावार को बढा कर भरपूर विकास किया जाय। पंचवर्षीय योजना में इस प्रकार के विकास के लिये ९० करोड़ रुपये की व्यवस्था है। खेती-बाड़ी के विकास के लिये एक राष्ट्रीय विस्तार सेवा कार्यक्रम भी बनाया गया, जिसके लिये योजना में तीन करोड़ रुपये की व्यवस्था रखी गई है।

१४. योजना काल में विभिन्न विकास योजनाओं से देश के कुछ भागों को प्रत्यक्ष लाभ सम्भवतः न होगा। योजना द्वारा देश के प्रत्येक वर्ग की रुचि को विकास कार्यों में प्रेरित करने के लिये १५ करोड़ रुपये की व्यवस्था स्थानीय विकास कार्यों के लिये रखी गई है और यह आशा की जाती है कि म्यूनिसिपैलिटियां, ज़िला और तालुक बोर्ड इस प्रकार की स्कीमें रखेंगे और उनको आर्थिक सहायता दी जा सकती है। अभावग्रस्त क्षेत्रों में विकास के ढंग के कार्यों के नमूने पर राहत सम्बन्धी कार्यों का संगठन करने के लिये १५ करोड़ रुपयों की विशेष व्यवस्था भी रखी गई है।

सिंचाई और बिजली के प्रोग्राम

१५. सिंचाई और बिजली के प्रोग्राम का आधार मुख्यतः वे योजनायें

हैं, जिनका आरम्भ योजना काल से पहले हो चुका है। इस प्रकार की उन सभी योजनाओं पर, जिनको अब पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत ले लिया गया है, अनुमानतः ७६५ करोड़ रुपये खर्च आयेगा, जिसमें से सन् १९५०–५१ के अन्त तक १५३ करोड़ रुपया खर्च हो चुका है। योजना काल में इन योजनाओं के लिये ५१८ करोड़ रुपये के व्यय की व्यवस्था है और बाद के वर्षों में खर्च के लिये केवल १०० करोड रुपये से भी कम बच रहता है। योजना काल मे इन योजनाओं की प्रगति के द्वारा सिंचाई के अन्तर्गत ८५ लाख एकड अतिरिक्त क्षेत्र और ११ लाख किलोवाट अतिरिक्त बिजली का उत्पादन हो सकेगा। इन योजनाओं के पूर्ण हो जाने और उनके पूरे-पूरे तौर पर विकसित हो जाने पर कुल १६९ लाख एकड इलाके पर सिंचाई हो सकेगी और १४ लाख किलोवाट बिजली प्राप्त होगी।

१६. जिन योजनाओं पर अभी काम चल रहा है, उनके द्वारा योजना काल के प्रथम तीन वर्षों में हमारे वित्तीय और टेकनीकल साधनों पर इतना जोर पड़ेगा कि सन् १९५४–५५ के पहले नई योजनाओं को आरम्भ करना सम्भव न होगा। योजना काल के अन्तिम वर्षों में जिन ५ नई सिंचाई और बिजली योजनाओं को आरम्भ करने का प्रस्ताव है, वे हैं कोसी (पहली अवस्था), कोयना (पहली अवस्था), कृष्णा (जिसके आकार के विषय में अभी निश्चय नहीं किया गया), चम्बल (पहली अवस्था) और रीहन्द। इन योजनाओं पर कुल खर्च २०० करोड रुपये से अधिक आयेगा जिसमें से योजना काल में लगभग ४० करोड रुपये खर्च करना सम्भव होगा और इसके लिये व्यवस्था भी कर दी गई है।

१७. यह प्रोग्राम, जिसके अन्तर्गत वे योजनायें हैं, जो चालू हैं और प्रस्तावित नई योजनायें भी हैं, ऐसे दीर्घकालीन प्रोग्राम के अंग के रूप में देखा जाना चाहिये, जिसके द्वारा आने वाली दो दशाब्दियों के अन्तर्गत लगभग ४०० लाख एकड से लेकर ४५० लाख एकड क्षेत्रफल को सिंचाई का लाभ मिलेगा और ७० लाख किलोवाट बिजली की शक्ति मौजूदा उत्पादन शक्ति में बढेगी।

१८. योजना-काल में बडी योजनाओं द्वारा सिंचाई और बिजली का जो लाभ होगा, उससे कुछ और अधिक वृद्धि सिंचाई की छोटी योजनाओं और निजी तौर पर संचालित बिजली उद्योगों की विस्तार-योजनाओं

द्वारा होगा। योजना के अन्तर्गत ७७ करोड़ रुपये का खर्च सिंचाई की छोटी योजनाओं के लिये है और इनसे लगभग ११२ लाख एकड़ ज़मीन को लाभ पहुँचेगा। जहाँ तक बिजली की ताकत का सम्बन्ध है, निजी तौर पर संचालित बिजली उद्योगों के द्वारा योजना काल में बिजली उत्पादन क्षमता में १६६,००० किलोवाट की वृद्धि होगी।

१६. देश के बहुत से ऐसे भाग हैं जहाँ सिचाई की बडी-बडी योजनाओ के लिये गुंजाइश है और बहुत से ऐसे भाग हैं जहाँ केवल छोटी योजनायें ही आरम्भ करना सम्भव है। प्रत्येक क्षेत्र को उसके उपयुक्त योजनाओ द्वारा सुविधायें पहुँचाई जायेंगी। इस प्रकार छोटी और बडी योजनायें एक दूसरे की पूरक हैं। योजना के अन्तर्गत सिंचाई की ८ ऐसी योजनायें हैं (बहुमुखी योजनाओं के सहित) जिनमें से प्रत्येक पर ५ करोड़ रुपया खर्च आयगा, १५ योजनाओं में से प्रत्येक पर एक करोड़ से ५ करोड़ रुपये तक, २१ योजनाओं में से प्रत्येक पर ५० लाख से एक करोड़ रुपये तक और १७ योजनाओं में से प्रत्येक पर १० लाख से ५० लाख रुपये तक खर्च आयेगा।

२०. अभी तक देहातों में बिजली लगाने का काम इस देश में बहुत कम आगे बढा है और २०० गाँवो पीछे एक गाँव ही ऐसा है जहाँ बिजली पहुँच पाई है। योजना में देहातो में बिजली पहुँचाने के लिये २७ करोड़ रुपये की व्यवस्था है। वह प्रोग्राम मुख्यत: दक्षिण के मद्रास, मैसूर और त्रावन्कोर-कोचीन राज्यों तक सीमित है, लेकिन जैसे-जैसे देश के अन्य इलाकों में अधिकाधिक बिजली प्राप्त होती जायगी, वैसे-वैसे निश्चित रूप से देहातों में बिजली लगाने का काम आगे बढ़ता जायगा। बिजली का उपयोग न केवल पम्प से पानी खींचने जैसे खेती बाडी के कामों में होता है बल्कि खेती की पैदावार को ठीक-ठाक करने तथा गाँवो में कुटीर तथा अन्य छोटे उद्योगों के लिये भी होता है।

औद्योगिक विकास

२१. जैसा कि सार्वजनिक क्षेत्र के विकास-प्रोग्रामों मे दिखाया गया है, उद्योगों पर १७३ करोड़ रुपये खर्च आयेगा। इसके अन्तर्गत बडे उद्योगों पर खर्च होने वाला १४० करोड रुपया, कुटीर और छोटे उद्योगो पर खर्च होने वाला २७ करोड़ रुपया और खनिज पदार्थों के विकास तथा वैज्ञानिक एवं औद्योगिक अनुसन्धान पर खर्च होने वाला लगभग ६

करोड रुपया है, परन्तु सार्वजनिक क्षेत्र की कुछ औद्योगिक स्कीमों को अन्य शीर्षकों के अन्तर्गत दिखाया गया है। उदाहरण के लिये, चित्तरंजन-इंजन-कारखाना और कुल इस्पात का रेल के डिब्बों का कारखाना, रेलों के विकास-प्रोग्राम के अंग हैं। ऐसे उत्पादक उद्योगों के लिये, जो कि सार्वजनिक विकास प्रोग्राम के अन्तर्गत आयेंगे, ९४ करोड रुपये लगाने की व्यवस्था है। इसके अन्तर्गत बुनियादी उद्योगों और यातायात के लिये खर्च होने वाले ५० करोड रुपये शामिल नहीं हैं। सार्वजनिक क्षेत्र में उद्योगों के विस्तार और आधुनिकीकरण तथा स्थानान्तरण के लिये लगभग ३८३ करोड़ रुपये लगाये जायेंगे। इस प्रकार योजना-काल में औद्योगिक विकास के लिये कुल ४७७ करोड़ रुपये लगाने की व्यवस्था है।

२२. सार्वजनिक क्षेत्र के विकास-प्रोग्राम के अन्तर्गत एक नये लोहा और इस्पात उद्योग की व्यवस्था है, जिसके लिये आरम्भिक समय से लेकर ६ वर्षों की अवधि में ८० करोड़ रुपये का अनुमानित खर्च होगा। योजना काल में लगभग ३० करोड़ रुपया खर्च होगा, जिसके लिये अंशतः सरकारी सहायता मिलेगी और अंशतः निजी तौर पर। सार्वजनिक क्षेत्र के अधिकांश औद्योगिक कार्यक्रमों को सन् १९५३–५४ तक पूरा किया जायगा। सिन्द्री के रासायनिक खाद के कारखाने में उत्पादन आरम्भ हो गया है और यह आशा की जाती है कि शीघ्र ही उस में प्रतिदिन १,००० टन अमोनियम सल्फेट तैयार होने लगेगा। सन् १९५५ तक चित्तरंजन के इंजन के कारखाने में १०० इंजन प्रति वर्ष बनने लगेंगे और टाटा इंजीनियरिंग तथा लोकोमोटिव कम्पनी ५० इंजन बनाने लगेगी, जिससे रेलें अपनी वार्षिक आवश्यकता की पूर्ति लगभग पूर्णतः देशी उत्पादन के द्वारा ही कर सकेंगी। योजना के अन्तर्गत सूक्ष्म मशीनी औजारों, टेलीफोन यंत्रों, ड्राई कोर केबलों और अखबारी कागज़ के उत्पादन द्वारा हमारी अर्थ-व्यवस्था मज़बूत बनेगी।

२३ सार्वजनिक क्षेत्र में पूंजी-विनियोग और परिणामस्वरूप विकास की रफ्तार अध्याय २९ में बताई गई निजी उद्योगों की योजनाओं के चालू होने पर निर्भर करेगी। ये योजनायें, जिन को सम्बन्धित उद्योगों के प्रतिनिधियों से सलाह करके तैयार किया गया है, अनेक पूंजीगत और उत्पादक वस्तुओं के उद्योगों की उत्पादन क्षमता को बढ़ा देंगी और जहाँ तक उपभोग्य वस्तुओं के उद्योगों का सम्बन्ध है, वर्तमान क्षमता का पूरा-पूरा उपयोग किया जायगा।

पांच वर्ष के काल में यह आशा की जाती है कि भारी रासायनिकों का उत्पादन १४६,००० टन, रासायनिक खादों का ४२८,६०० टन, कच्चे लोहे का ३१०,००० टन, इस्पात का ३६४,००० टन और सीमेंट का २१ लाख टन और अधिक बढ जायगा। उपभोग द्रव्यों के उद्योगों का उत्पादन भी और अधिक बढ़ जाने की आशा है; कपडे के उत्पादन के बारे में यह आशा की जाती है कि वह १८,७२० लाख गज़ बढ जायगा, शक्कर ३४०,००० टन नमक ४२६,००० टन और वनस्पति तेल १८२,००० टन अधिक बढ जायेंगे । बहुत से हल्के इंजीनियरिंग उद्योगों का उत्पादन भी बढ जाने की आशा है। सरकारी नीति काउद्देश्य यह होगा कि जो लक्ष्य रखे गये हैं, उनको प्राप्त करने के लिये उचित परिस्थितियों का निर्माण करने और उन्हे स्थिर रखने के लिये निजी क्षेत्रों को सहायता दी जाय।

२४. विकास के प्रोग्राम जैसे-जैसे आगे बढ़ेंगे और औद्योगीकरण को अधिकाधिक महत्त्व मिलता जायगा, वैसे-वैसे यह जरूरी होगा कि बुनियादी उद्योगों को और अधिक व्यापक बनाया जाय। कुछ सीमा तक आवश्यकताओं के विषय में पहले से अनुमान लगाना होगा और आरम्भ से ही उनकी पूर्ति के लिये प्रयत्नशील होना होगा। इसीलिये योजना में बुनियादी उद्योगों और सम्बन्धित यातायात व्यवस्था के विकास के लिये ५० करोड़ रुपये की व्यवस्था रखी गई है। इसका एक अंश बिजली के भारी यंत्रों को तैयार करने की योजना में खर्च होगा।

२५. देहात में रोज़ी-रोज़गार की सुविधाओं को बढाने के लिये ही मुख्यतः ग्रामोद्योगों की एक व्यापक योजना को पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत शामिल किया गया है। अन्य बातों के अतिरिक्त इस प्रोग्राम के अन्तर्गत निम्नलिखित उद्योग आते हैं: खादी, तेल, माचिस, चमडा, हाथ से बना कागज़, गुड और खांडसारी, ताड़ का गुड, ऊनी कम्बल और शहद की मक्खी का पालन। खादी के प्रोग्राम के लिये वित्त की व्यवस्था मिल मे बने कपडे पर एक हलका शुल्क लगाकर होगी। गांवों में तैयार होने वाले तेल के उद्योग के लाभ के लिये मिल में बने तेल पर भी कुछ शुल्क लगाये जाने का प्रस्ताव है। यह सुझाव रखा गया है कि केन्द्रीय सरकार द्वारा एक खादी और ग्रामोद्योग विकास बोर्ड की स्थापना हो। इस बोर्ड को बहुत अधिक कार्यकारी अधिकार प्राप्त होंगे। इसे राज्य सरकारों तथा ग्रामोद्योग के क्षेत्र में काम करने वाले अन्य संगठनों के सहयोग से ग्रामोद्योग प्रोग्रामों को

आरम्भ करने का भार दिया जायगा। कपडा उद्योग के प्रोग्राम के एक अंग के रूप में हाथ कर्घे के उद्योग का उत्पादन दुगुना हो जाने की आशा है। अन्तिम रूप में कई कुटीर और छोटे उद्योगों तथा सम्बन्धित बडे उद्योगों के लिये उत्पादन का एक मिला-जुला प्रोग्राम बनाया गया है।

परिवहन और संचार

२६. परिवहन और संचार के प्रोग्राम में आधे से अधिक पूंजी रेलों पर लगेगी। इस पूंजी को पुरानी चीज़ों की बदल के काम में जो कमी रह गई है, और जो एक लम्बे समय से पिछडा हुआ है (विशेषतया युद्धकाल से) और रेलों को उस कम से कम सामान और मशीनरी इत्यादि देने के लिये लगाया जायेगा, जिसकी आवश्यकता अर्थ-व्यवस्था के अन्य क्षेत्रों में विकास के परिणामस्वरूप होगी। सन् १९५१-५२ के आरम्भ में १२ प्रतिशत इंजन, २८ प्रतिशत डिब्बे और १० प्रतिशत से अधिक माल के डिब्बे ऐसे थे जिनको नया करना था। बहुत लम्बे-चौडे रेल-मार्ग भी ऐसे थे, जिनकी मरम्मत और जिनको फिर से बिछाने की ज़रूरत थी। योजना के अतर्गत रेलों पर प्रति वर्ष ५० करोड रुपये के खर्च की व्यवस्था है। यह रकम उस ३० करोड रुपये प्रति वर्ष की अतिरिक्त रकम के अलावा है जो रेलों की सामग्री और यंत्रो आदि की खराबी को दूर करने के लिये लगाई जायगी। इससे कुछ और अधिक आवश्यक विस्तार के कार्य भी हो सकेंगे। लेकिन पांच वर्ष के समय में नई लाइनों के लिये कुल २० करोड रुपये की व्यवस्था है और इसीलिये रेलों के प्रोग्राम को मुख्यतः फिर से सुधारने का प्रोग्राम ही मानना पड़ेगा।

२७. केन्द्र और राज्यों के सडक-विकास के लिये कुल मिला कर लगभग १०० करोड रुपये की व्यवस्था है, जिसमें से एक चौथाई रकम राष्ट्रीय मार्गों के विकास के लिये लगाई जायगी और शेष मुख्यतः राज्य की सडकों के लिये। सडक विकास एक ऐसा क्षेत्र है, जिसके लिये स्थानीय जन शक्ति और स्थानीय सामग्री को जुटाने की बहुत अधिक गुंजाइश है। कुछ राज्यों में गाँव की सडकें गाँव वालों के सक्रिय सहयोग से विकसित की जा रही हैं। गाँव वाले नि.शुल्क श्रम, निःशुल्क भूमिदान या रुपये पैसे देकर इस प्रकार के निर्माण के खर्च का एक अंश दे रहे हैं और जो कुछ खर्च बच रहता है, वह राज्य सरकार या ज़िला बोर्डों द्वारा प्राप्त होता है। योजना के अन्तर्गत स्थानीय और भरपूर विकास के जो कार्यक्रम रखे

गये हैं, उनके साथ-साथ यह अनुमान लगाया गया है कि लगभग १६,००० से लेकर १७,००० मील तक की गाँव की सड़कें योजना काल में गाँव वालों की कोशिशों से बनाई जायेंगी। इस प्रकार के विकास के ढंग को जल्द से जल्द सारे देश में फैलाने की जरूरत है।

२८. जैसा कि रेलों के मामले में है, बन्दरगाहों की ओर भी हमें ध्यान देना है, जिससे कि अन्य क्षेत्रों में अर्थ-व्यवस्था के विकास की तात्कालिक आवश्यकताओं की पूर्ति हो सके। इसकी आवश्यकता इस लिये है कि इस समय ५ बड़े बन्दरगाहों में यह क्षमता नहीं है कि वे समुद्री व्यापार में वृद्धि का सामना कर सकें। इसके अतिरिक्त निम्नलिखित आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये भी बन्दरगाह-विकास की बड़ी ज़रूरत है :—

(क) विभाजन के परिणामस्वरूप जो हानियां हुई हैं, उनकी पूर्ति करना और पहले जो यातायात कराची द्वारा होता था उसके लिये कोई सीधा मार्ग खोजना,

(ख) वर्तमान बन्दरगाहों की सामग्री और यंत्रादि का आधुनिकीकरण तथा नवीनीकरण; और

(ग) तेल को साफ करने वाले ज़िन कारखानों को स्थापित करने की योजनायें बनी हैं, उनके लिये सुविधायें प्रदान करना।

योज़ना में १२ करोड रुपये के खर्च से कांडला में एक नया बन्दरगाह बनाने की व्यवस्था है। ८ करोड रुपये तेल साफ करने वाले कारखानों को बन्दरगाहों की सुविधायें देने के लिये होंगे और १२ करोड़ रुपये बन्दरगाह अधिकारियों को आधुनिकीकरण और फिर से ठीक-ठाक करने के प्रोग्राम के लिये दिये जायेंगे।

२९. योजना के अन्तर्गत जीवन के कुछ अपेक्षाकृत नये क्षेत्रों में विकास की परिकल्पना की गई है, जिनमें से सबसे महत्वपूर्ण क्षेत्र जहाजरानी है। जहाजरानी के विकास के प्रोग्राम का मुख्य उद्देश्य यह है कि भारत का तटीय व्यापार भारतीय जहाजों के लिये ही सुरक्षित हो और ये जहाज़ समुद्र-पार व्यापार में अधिक पूर्ण भाग लेवें। इन उद्देश्यों को सामने रख कर योजना में विशाखापट्नम जहाज निर्माण कारखाने में और अधिक जगहों की व्यवस्था की गई है, जिससे योजना काल में तटीय व्यापार के लिये न केवल लगभग एक लाख जी० आर० टी० की प्राप्ति होगी बल्कि निर्माण के खर्च

में भी कमी होगी। इसके अतिरिक्त योजना में जहाज़ी कम्पनियों को कर्ज़ देने की भी व्यवस्था है, जिससे कि वे समुद्र पार व्यापार के लिये और अधिक टन-भार की प्राप्ति कर सकें।

३० विकास की एक नई दिशा नागरिक उड्डयन या वायु-यात्रा है। यह मालूम हुआ है कि वर्तमान परिस्थितियों में यातायात के भार और कार्य संचालन पर अधिक जोर पड रहा है और इसीलिये वर्तमान हवाई यातायात कम्पनियाँ मुनाफे पर अपना कार्य नहीं कर सकतीं। उनको ऐसा करने के योग्य बनाने के लिये उन्हें एक इकाई में संगठित करना होगा। योजना में वर्तमान हवाई कम्पनियों को मुआवज़ा देने के लिये और नये हवाई जहाजों को खरीदने के लिये ६'५ करोड रुपयों की व्यवस्था है।

सामाजिक सेवा और पुनस्संस्थापन

३१. योजना में समाजिक सेवाओं के लिये कुल ३४० करोड रुपयों की व्यवस्था है, जिसमें से १५६ करोड रुपये शिक्षा पर, १०० करोड डाक्टरी और स्वास्थ्य सेवाओं पर, ४६ करोड मकान बनाने पर, २६ करोड पिछडी हुई जातियों पर और ७ करोड मज़दूरों तथा श्रम कल्याण पर खर्च होंगे। शिक्षा के खर्च के अन्तर्गत ४ करोड रुपये इच्छापूर्वक सामाजिक कल्याण कार्य करने वाले संगठनों को सहायता के लिये दिये जायेंगे, जिससे कि उनका काम बढ़ सके और वे राष्ट्रीय विकास प्रोग्राम के अन्तर्गत शामिल हो जॉय।

३२. केन्द्र में प्राइमरी और माध्यमिक शिक्षा के क्षेत्र में और अधिक विकास के लिये २० करोड रुपये की व्यवस्था है। शिक्षा पर जिस वार्षिक औसत खर्च की व्यवस्था है,वह सन् १९४९-५० के विकास के खर्च से लगभग ४० प्रतिशत अधिक है। इससे राज्यों में शिक्षा की सुविधाओं में कुछ विस्तार होगा और यह आशा की जाती है कि प्राइमरी, जूनियर, बेसिक, माध्यमिक और टेकनीकल तथा धंधों (उद्योगों के अतिरिक्त) वाले स्कूलों में सन् १९५०-५१ की तुलना मे क्रमशः २६, ८१, ३१ और ४१ प्रतिशत छात्रों की वृद्धि हो जायगी।

३३. स्वास्थ्य के क्षेत्र में केन्द्र ने मलेरिया के नियंत्रण का एक प्रोग्राम बनाया है, जो राज्यों के प्रोग्रामों के साथ मिल-जुल कर आगे बढ़ेगा और यह आशा की जाती है कि इससे देहाती क्षेत्रों में कृमिनाशकों को छिड़कने से लगभग २० करोड़ व्यक्तियों की रक्षा होगी। घटे हुये दामों में डी०डी०टी० की यथेष्ट प्राप्ति के लिये योजना में डी० डी० टी० बनाने वाले दो यंत्रों को

लगाने की भी व्यवस्था है । राज्य योजनाओं के अन्तर्गत सार्वजनिक स्वास्थ्य के लिये ३६ करोड़ रुपये खर्च होंगे। यह खर्च मुख्यतः पीने के पानी की प्राप्ति और नालियों पर होगा और यह उस खर्च से दूना होगा जो उपर्युक्त कार्यों के लिये इस समय हो रहा है।

३४. छः उद्योगों में औद्योगिक कर्मचारियों के लिये प्राविडेण्ट फण्ड योजना चालू हो जाने से अब यह सम्भव हो सका है कि ३८·५ करोड रुपये के खर्च से औद्योगिक कर्मचारियों के लिये १५०,००० मकान बनाने का एक एक प्रोग्राम तैयार किया जायगा। इसके अलावा कुछ राज्यों ने कम आमदनी वाले वर्गों के लिये स्वयं ही मकान बनाने की स्कीमें बनाई हैं। मकान बनाने के प्रोग्राम पर कुल खर्च लगभग ४९ करोड़ रुपये होगा।

३५. योजना में पिछड़ी हुई जातियों के सुधार का भी प्रोग्राम है। योजना में दिखाई गई २९ करोड की रकम के अतिरिक्त यह आशा की जाती है कि केन्द्रीय सरकार अनुसूचित जन जातियों वाले क्षेत्रों के विकास के लिये सहायक अनुदानों के रूप में ९ करोड रुपये की व्यवस्था और करेगी।

३६. फिर से बसाने का प्रोग्राम, जिसके लिये योजना में ८५ करोड रुपये रखे गये है, तीन साल का है और सन् १९५३–५४ के अन्त तक चालू रहेगा। पूर्वी सीमा के पार से आने वाले शरणार्थियों की समस्या अभी कुछ अनिश्चित अवस्था में है। कुछ समय तक ऐसे नवागन्तुकों को राहत देने की समस्या सरकार के लिये चिन्ता का विषय बनी रहेगी।

आमदनी और रोज़गार के रूप मे योजना का मूल्यांकन

३७. जब हम राष्ट्रीय आमदनी, उपभोग और रोज़गार के रूप में योजना का मूल्यांकन करते हैं तो हमारे सामने कई कठिनाइयाँ आती हैं। हमारी अर्थ-व्यवस्था के अनेक क्षेत्रों के विषय में प्राप्त सूचनायें अयथेष्ट हैं। राष्ट्रीय आमदनी के सम्बन्ध में आँकडे अभी आरम्भिक अवस्था में हैं। हमारा इस विषय का भी ज्ञान यथेष्ट नहीं है कि अर्थ-व्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों के बीच क्या सम्बन्ध है और वे क्षेत्र कैसे एक दूसरे पर प्रभाव डालते हैं। विकास-काल में ये सभी बातें बडे महत्त्व की सिद्ध होंगी। मोटे तौर पर यह अन्दाज़ा लगाया गया है कि सन् १९५०–५१ में भारत की राष्ट्रीय आमदनी ९,००० करोड़ रुपये थी। योजना काल के अन्त में उत्पादन में जो वृद्धि होगी, उसके फलस्वरूप यह आशा की जाती है कि राष्ट्रीय आय १०,००० करोड रुपये

हो जायगी अर्थात् ११ प्रतिशत की वृद्धि होगी और अगर सामूहिक विकास योजनायें तथा पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत अन्य ऐसी स्कीमें, जिनका उद्देश्य बडे पैमाने पर समाज के प्रयत्नों को उत्साहित करना और स्थानीय कोशिशो को सफल बनाना है, कामयाब हो जायें, तो यह वृद्धि और अधिक हो सकती है। राष्ट्रीय आमदनी में जो वृद्धि होगी उसका २० प्रतिशत वर्ष फिर से विकास प्रोग्राम मे लगा देना होगा, जिससे कि ये प्रोग्राम योजना में प्रतिवर्ष बताई गई रफ़्तार के साथ आगे बढ़ते जायें। परिणामस्वरूप राष्ट्रीय आमदनी की वृद्धि की रफ़्तार की तुलना में उपभोग वस्तुओ पर होने वाला खर्च कुछ कम बढ़ेगा। यद्यपि इस काल में योजना द्वारा हमारी अर्थ व्यवस्था की अनिवार्य आवश्यकताओं की पूर्ति होती रहेगी, फिर भी देश की उत्पादन क्षमता में बहुत काफी बढ़ती हो सकेगी।

३८. जहाँ तक रोज़गार का सवाल है, योजना द्वारा इस दिशा में दो प्रकार से काम होगा। पहली बात तो यह होगी कि पूँजी का स्तर बढाया जायगा, जिससे कि उन लोगों के लिये रोज़गार का प्रबन्ध हो सके, जो उत्पादक कार्यों में लग सकते हैं और दूसरी बात यह कि व्यवस्था के अन्तर्गत केन्द्रीय स्थानों में पूंजी का निर्माण करके अधिकाधिक लोगों के लिये यह सम्भव कर दिया जायगा कि आगे की अवस्था में वे सब उत्पादक व्यवस्था के अन्तर्गत खपाये जा सकें। गैर कृषि क्षेत्रों में रोज़गार की सुविधाओं को प्रदान करने की रफ़्तार पहले धीमी होगी। बड़े पैमाने के उद्योगो के क्षेत्रों में योजना के अन्तर्गत उत्पादक वस्तुओं के उद्योगों पर इस अवस्था में अनिवार्य रूप में विशेष जोर दिया गया है। ये ऐसे उद्योग हैं, जो लगाई गई पूंजी को देखते हुए अपेक्षाकृत रोज़गार का कम अवसर प्रदान करते हैं, लेकिन जैसे-जैसे विकास की गति तीव्र होती जायगी, यह सम्भव हो सकेगा कि उद्योगों में और इस प्रकार के सहायक धंधों में भी, जैसे कि यातायात और सेवा सम्बन्धी उद्योगों मे अधिकाधिक लोगों को लगाया जा सके और इस तरह से कृषि वाले क्षेत्रों में पाई जानी वाली बेरोज़गारी अथवा दबाव को कम किया जा सके।

—:※:—

भाग २

शासन और जनता का सहयोग

अध्याय ५

भूमिका

जनता के सहयोग से पंचवर्षीय योजना में शामिल प्रोग्राम को कार्यान्वित करना सार्वजनिक शासन का कार्य है। यह काम पहले के सभी कामों से अधिक बड़ा और अधिक उलझा हुआ है। शान्ति और व्यवस्था कायम रखने और मालगुज़ारी की वसूली करने की बजाय अब मनुष्य तथा सम्पत्ति के विकास और गरीबी तथा अभाव को दूर करने पर ज़ोर रहेगा।

२. विकास के उद्देश्यों की पूर्ति लोकतंत्रात्मक ढांचे के अन्तर्गत होनी है। एक महत्त्वपूर्ण समस्या यह है कि सरकार का निर्माण करने वाले राजनैतिक नेतृत्व और शासन चलाने वाली सार्वजनिक सेवाओं के बीच क्या सम्बन्ध रहे? उन दोनों को ही महत्त्वपूर्ण कार्य करना है और उनमें से कोई भी तब तक अपने हिस्से का काम ठीक तरह से पूरा नहीं कर सकते, जब तक वे एक दूसरे की क्रियात्मक सहायता न करें और एक दूसरे पर विश्वास न करें।

३. जब कोई राजनैतिक दल सरकार बनाता है, तो वह यह कोशिश करता है कि वह जनता के जितने बड़े भाग को अपने साथ रख सके, रखे। सरकार का नियंत्रण करने वाली राजनैतिक कार्यपालिका का यह प्रधान कार्य होता है कि वह जनता की इच्छाओं का पता लगाये, उसकी आवश्यकताओं को समझे और यह जाने कि उन आवश्यकताओं को कैसे पूरा किया जा सकता है। दूसरे शब्दों में उसका क्षेत्र नीति निर्धारित करना है और इसी लिये उसे मुख्य रूप से कार्य के प्रत्येक क्षेत्र में सिद्धान्तों और नीतियों को बताना है। लेकिन उसे यह भी समझना तथा निश्चित करना है कि जिन सिद्धान्तों और नीतियों का निर्धारण उसने किया है, उनको ईमानदारी के साथ कार्यान्वित किया जा रहा है।

४. नीति के कार्यान्वित होने में यह जरूरी है कि अधिकार बहुसंख्यक में सरकारी कर्मचारियों तक विकेन्द्रित हों, क्योंकि वे ही कुल मिला कर शासन का यंत्र बनते हैं। नीति का निर्धारण करने में ऊँचे दर्जे के सरकारी नौकरों का बड़ा हिस्सा हो सकता है, क्योंकि अपने लम्बे अनुभव

और विभिन्न प्रोग्रामों के तात्पर्य को ठीक-ठीक समझने की अपनी योग्यता के कारण उनकी राय महत्त्वपूर्ण होती है। उनकी राय सरकार को हमेशा प्राप्त रहती है और इसीलिये जैसा कि उनका कर्तव्य भी है, उन्हें अपनी राय बिना भय या पक्षपात के देने के लिये प्रोत्साहन मिलना चाहिये। परन्तु भले ही उनके विचारों का प्रभाव निर्णयों पर पड़े, उनका मुख्य कार्य उन नीतियों को कार्यान्वित करना है, जो सरकार द्वारा स्वीकृत होती हैं। प्रतिनिधित्वपूर्ण लोकराज में राजनैतिक कार्यपालिका और शासन के उच्च वर्ग के लोगों के बीच इस सम्बन्ध को कायम रखने के लिये सहकारी प्रयत्न और अपने अपने क्षेत्र की जिम्मेवारी को ठीक-ठीक समझना बहुत जरूरी है।

५. सार्वजनिक हित के कार्यों का प्रबन्ध करने में नीति की असफलता और शासन की नाकामयाबी दोनों ही समान रूप से दुर्भाग्यपूर्ण सिद्ध हो सकते हैं। कुछ परिस्थितियों में नीति का महत्व अधिक बुनियादी हो सकता है और कुछ अन्य मामलों में शासन का। राष्ट्रीय आयोजन के सम्बन्ध में सही-सही नीति बनाना बड़े ही महत्त्व की बात है। क्योंकि प्रशिक्षित जन शक्ति सीमित है, इसलिये यह जरूरी है कि प्राथमिकताओं का निश्चय करने में विभिन्न उद्देश्यों और उनको सफल बनाने की सरकार की योग्यता का सापेक्षिक महत्त्व भली भाँति सोच समझ लिया जाय। जिन कार्य-क्षेत्रों को चुना जाय उनके विषय में यह याद रखना महत्त्वपूर्ण है कि जिस नीति को निश्चित किया गया है, उस पर जब तक लगातार चला न जायगा तब तक शासन शायद ही कभी सन्तोषजनक हो। यह मालूम कर लेना भी महत्त्व-पूर्ण है कि निजी आर्थिक प्रोग्राम और प्रस्ताव राष्ट्रीय आयोजन की आव-श्यकताओं के साथ सावधानीपूर्वक सम्बन्धित होते हैं और वर्गगत या स्थानीय दावों के ऊपर राष्ट्रीय हित सदैव अधिक महत्त्वपूर्ण स्थान पाता है।

६. हाल के वर्षों में शासन के मानदण्डों में जो गिरावट आई है उससे यह बहुत जरूरी हो गया है कि शासन सम्बन्धी सुधार किये जायें। कुछ हद तक शासन की योग्यता में गिरावट इसलिये आई है कि हर जगह सार्व-जनिक सेवाओं में अनुभवी व्यक्तियों की कमी हो गई है और शासन पर पड़ने वाला कार्य का भार बहुत अधिक बढ़ गया है। परन्तु सरकार की जिम्मे-वारी बढ़ जाने से और जनता द्वारा सरकार से बहुत कुछ आशायें करने से यह जरूरी हो गया है कि शासन की योग्यता में सुधार हो और शासन द्वारा जनता की जो सेवा होती है, उसमें सुधार हो। सरकार के नीचे काम करने

वाले शासन सम्बन्धी प्रत्येक अधिकारी की यह जिम्मेवारी होनी चाहिये कि वह अपने संगठन और कार्यों में जरूरी सुधार करे। विशेष रूप से सार्व-जनिक सेवा के उच्च वर्ग के लोगों की यह विशेष जिम्मेवारी है कि वे शासन और सेवा के ढांचे और परम्परा की स्थापना इस प्रकार से करें जिससे कि वे राष्ट्रीय प्रोग्राम की पूर्ति मे सहायक और भविष्य की उन्नति का मज़बूत आधार बनें। लेकिन मंत्रियों को भी इस दिशा में महत्त्वपूर्ण कार्य करना है और सेवाओं के उच्च वर्ग के लोगों को यह मांग करने का अधि-कार है कि वे शासन के सुधार और पुनर्गठन के कार्य मे उनका विश्वास और सहयोग प्राप्त करें।

७. आगे आने वाले दो अध्यायों में शासन में सुधार करने और उसे मज़बूत बनाने के संबन्ध में मुख्य समस्याओं पर विचार किया गया है। इनको मोटे तौर पर दो समूहों में बांटा जा सकता है। प्रथम वे समस्यायें हैं, जिनका संबन्ध सार्वजनिक शासन के सम्पूर्ण क्षेत्र से है, जैसे कि योग्यता के उच्च स्तर की प्राप्ति, खर्च में कमी और ईमानदारी और सरकार को ऐसे साधन देना जिनके द्वारा वह अपनी बढ़ी हुई जिम्मेवारियों को निभाने के लिये समुचित यंत्र प्राप्त कर सके। दूसरी वे समस्यायें हैं, जिनका सम्बन्ध ज़िले के विकास प्रोग्रामों के शासन से सीधा-सीधा है और इसका प्रभाव जनता पर सीधा-सीधा पड़ता है। इस क्षेत्र में ऐसे सवालों पर विचार करना जरूरी है जैसे कि ग्राम शासन के सुधार सम्बन्धी प्रश्न, गाँव के स्तर पर विकास के लिये ठीक-ठीक संगठन का निर्माण और स्वशासन संस्थाओं को राज्य संस्थाओं से ठीक-ठीक सम्बन्धित करना।

८. शासन के सुधार के लिये सरकार अपनी शक्ति भर चाहे जितना काम करे, लोकतंत्रात्मक दशाओं के अन्तर्गत आयोजन की सफलता उस सहयोग पर ही निर्भर करेगी जो कि प्रोग्रामों को बनाने और लागू करने में जनता से प्राप्त होगा। जैसे जैसे शासन जनता की इच्छाओं और जरूरतों के प्रति सजग बनेगा, वैसे ही वैसे यह आशा की जाती है कि जनता भी शासन को सहायता देने की निश्चित इच्छा से प्रेरित होगी। इस प्रकार के सहयोग का विकास किन दिशाओं में किया जा सकता है, इस पर आगे के एक अध्याय मे विचार किया गया है।

—:*:—

अध्याय ६

सार्वजनिक शासन में सुधार

सार्वजनिक शासन में जिन मुख्य उद्देश्यों की प्राप्ति करनी है वे हैं ईमानदारी, योग्यता, मितव्ययिता या खर्च मे कमी और जनता का सहयोग। ये सभी उद्देश्य आपस में सम्बन्धित और एक-दूसरे पर निर्भर हैं। जब तक ईमानदारी का स्तर बहुत ऊँचा न होगा, तब तक कोई भी संगठन योग्य नहीं बन सकता, और समाज की सेवा सन्तोषजनक रीति से नहीं कर सकता। जो भी संगठन योग्य होगा, और जो सार्वजनिक हित की भावना से प्रेरित होगा, उसके लिये यह स्वाभाविक है कि उसे जनता का सहयोग प्राप्त हो, और जहाँ कहीं भी जनता का सहयोग प्राप्त है, वहीं शासन का कार्य बहुत आसान हो जाता है।

ईमानदारी

२. सार्वजनिक कार्यों और शासन में ईमानदारी बहुत जरूरी है और सार्वजनिक कार्यों के प्रत्येक भाग में इस पर अवश्य ही ज़ोर दिया जाना चाहिये। भ्रष्टाचार का प्रभाव तेज़ी से फैलता है। उससे न सिर्फ दूसरे के साथ अन्याय होता है बल्कि जनता का शासन में विश्वास भी टूटता है। इसलिये शासन के अन्दर और सार्वजनिक जीवन में भी हर प्रकार के भ्रष्टाचार के खिलाफ लगातार युद्ध होना चाहिये।

३. शासन-कार्य में भ्रष्टाचार के अवसर विभिन्न रूप में प्रायः सर्वत्र आ सकते हैं, हाँ कुछ क्षेत्रों में वे अन्य क्षेत्रों से अधिक हो सकते हैं। हाल के वर्षों में समय-समय पर आवश्यक वस्तुओं की जो कमी रही है, उसके कारण भ्रष्टाचार बढा है। इस बुराई को दूर करने के लिये जनता का सहयोग बहुत जरूरी है।

४. लोकतंत्रात्मक सरकार के हितों के लिये भी यह जरूरी है कि सार्वजनिक जीवन के मानदण्ड को ठीक रखने और बुराइयों को दूर करने के कुछ उपाय किये जायें और जरूरत यह है कि जो लोग राजनैतिक पदों पर हैं उनके आचरण पर विचार करने के लिये कोई रास्ता निकाला जाय। जब कभी किसी मामले की जांच के लिये कोई कारण दिखाई

दे, तो ठीक-ठीक बातों का पता लगाने के लिये जांच की जानी चाहिये। अगर इस प्रकार की गई जांच के फलस्वरूप यह सिद्ध होता है कि किसी मामले में आचरण की गम्भीर खराबी पाई गई है, तो अन्य कदम उठाए जायेंगे। सम्भव है कि इस कार्य के लिये कानून की मदद लेने की जरूरत पडे। इस प्रकार के कानून जिम्मेवार अधिकारियों अर्थात् केन्द्रीय सरकार या राज्य सरकार के कहने पर ही बनाने चाहियें।

५. हाल मे उस कानून को और मज़बूत बना दिया गया है, जिसके अन्तर्गत भ्रष्टाचार के मामले में लोगों को दंडित किया जाता है। सन् १९४७ के भ्रष्टाचार निवारक कानून में अन्य बातों के अतिरिक्त यह भी है कि यदि किसी सरकारी कर्मचारी के पास इतना अधिक धन पाया जाय, जिसके बारे में वह कोई सन्तोषजनक स्पष्टीकरण न कर सके, तो उस पर मामला चलाया जाय। लेकिन इस कानून में उन लोगों के लिये कोई व्यवस्था नहीं है, जिनके निकट सम्बन्धी सहसा धनवान बन जायें। इस कमी को दूर करने के बारे मे विचार होना चाहिये। इसी प्रकार इस बात पर भी विचार करना उपयोगी होगा कि क्या सरकारी नौकर अपनी चल सम्पत्ति या अपने सम्बन्धियों की चल सम्पत्ति के बारे मे, जो कि उन्होने पिछले वर्ष जमा की होगी, आंकडे सरकार को दें। अभी तक जो कुछ नियम हैं उनके अनुसार केवल अचल सम्पत्ति के बारे मे ही सूचनायें दी जाती हैं।

६. सरकारी दफ्तरों में भ्रष्टाचार की समस्या को हल करने के लिये कुछ अन्य सुझाव भी दिये गये हैं। उदाहरणार्थ, यह विचार रखा गया है कि किसी भी सरकारी नौकर की प्रतिष्ठा को उसकी ईमानदारी का निर्णायक परिणाम मानना चाहिये। यह सही है कि किसी भी सरकारी नौकर की ईमानदारी पर शायद ही कभी सदेह किया जाता हो, लेकिन कभी-कभी ऐसी भी घटनायें घटती है, जिनसे इसके विपरीत बात भी सिद्ध होती है। वस्तुत: अक्सर गैर-जिम्मेवार आरोप लगाये गये हैं। परन्तु केवल किसी की अच्छी ख्याति पर ही निर्भर करने से यह खतरा पैदा हो जायगा कि सरकारी कर्मचारी बुराई की ओर झुक जायेंगे। दूसरी ओर सामान्य शासन सम्बन्धी व्यवहार के रूप में अगर किसी अफसर की ख्याति ईमानदारी के विषय में अच्छी नहीं है, तो उसे किसी ऐसी जगह पर नहीं रखना चाहिये जहाँ उसके गिरने की संभावना हो।

७. यह भी सुझाव रखा गया है कि जब कभी अखबारों में किसी सरकारी नौकर पर उसका नाम लेकर भ्रष्टाचार का आरोप लगाया जाता है, तो उस कर्मचारी को चाहिये कि वह मामले को अदालत तक ले जाकर अपनी ख्याति को बचाये। उसे मुकद्दमे का खर्च इस शर्त पर दिया जा सकता है कि अगर वह मामला हार जाता है, तो उसे मुकद्दमे पर खर्च होने वाला रुपया सरकार को वापस देना होगा, और अगर वह मुकद्दमा जीत जाता है, तो क्षति-पूर्ति के रूप में मिली हुई रकम द्वारा उसे दिया गया खर्च वसूल किया जायगा। हम समझते हैं कि ऐसे मामलों में पहला कदम यह होना चाहिये कि किसी ऊंचे अफसर द्वारा आरम्भिक और गुप्त जांच की जाय। उसकी रिपोर्ट के बाद यह निश्चय करना चाहिये कि परिस्थितियां ऐसी हैं या नहीं कि सरकार उस अफसर पर मुकद्दमा चलाये, अथवा उसको यह आज्ञा दे कि वह अदालत में जाकर अपनी ख्याति को बचाये। अगर दूसरी बात का निश्चय होता है, तो मुकद्दमे के खर्च के बारे में ऊपर दिये गये सुझाव को माना जा सकता है।

८. हाल के वर्षों में भ्रष्टाचार के सबसे अधिक उल्लेखनीय क्षेत्र वे रहे हैं, जिनमें व्यापारियों ने परमिटों और लाइसेंसों की अर्जियां दी हैं। शासन के अन्दर उक्त क्षेत्रों में निरीक्षण और देख-रेख का प्रबन्ध समुचित नहीं रहा, और निश्चित रूप से गलत तरीकों से फायदे उठाये गये हैं। यद्यपि इस समय उक्त विषय पर बहुत कम बातें सुनी गई हैं, फिर भी देख-रेख तथा जोरदार उपायों की जरूरत बनी हुई है। जो लोग जिम्मेवारी की जगह पर काम कर रहे हैं, उनकी अलिखित आचरण-संहिता में यह बात निहित है कि जनता उनकी पक्षपातहीनता पर पूरा विश्वास रखे। अपने सामाजिक सम्बन्धों और अपने सभी प्रकार के व्यवहारों में उन्हें विशेष रूप से यह सावधानी रखनी चाहिये कि कोई भी आदमी यह न कह सके कि किन्हीं व्यक्तियों की उन तक बहुत अधिक पहुँच है, अथवा वे दूसरों के द्वारा प्रभावित हो सकते हैं। हाल में व्यापारिक फर्मों में ऐसे लोगों को जगहें मिली हैं, जो प्रभावशाली व्यक्तियों के सम्बन्धी या मित्र हैं। इन लोगों को सम्पर्क रखने वाले व्यक्ति कहा जाता है। यह बात बन्द होनी चाहिये।

९. जब कि उपर्युक्त सभी उपायों का अपना उपयोग है, यह जरूरी है कि भ्रष्टाचार को बन्द करने के लिये शासन के प्रबन्ध विभाग में उच्च

स्तर की योग्यता पर ज़ोर दिया जाय। कार्य मे अच्छी गति लाने का काम अनिवार्य रूप से चोटी के आदमी किया करते हैं। विभागों के सर्वोच्च अफसर अपने उदाहरण और अपनी सजगता तथा देख-रेख के द्वारा अपने नीचे काम करने वालों के आचरण पर बहुत प्रभाव डालते हैं। इस सम्बन्ध में निम्नलिखित बातों पर ध्यान देना चाहिये:—

(१) विभागों के अध्यक्षों को चाहिये कि वे बराबर यह देखते रहें कि किसी चालू नीति या पद्धति के द्वारा भ्रष्टाचार फैलने की सम्भावना तो नहीं है। उन्हें यह भी देखना चाहिये कि साफ तौर पर उल्लिखित और समझे जाने वाले नियमों और सिद्धान्तों के द्वारा व्यक्तिगत दावों या अनुरोधों की पूर्ति पूरी तरह होती रहती है।

(२) मामलों के निपटाने में विलम्ब के द्वारा भ्रष्टाचार के बढ़ने में सबसे अधिक मदद मिलती है। शासन को योग्य बना कर इस प्रकार की देरी को बहुत कम किया जा सकता है।

(३) शासन के सभी स्तरों में ऐसी जगहों के लिये अफसरों का चुनाव करते हुये विशेष सावधानी रखनी चाहिये, जहाँ भ्रष्टाचार की अधिक गुंजाइश हो।

(४) प्रायः सरकारी कर्मचारियों में ढिलाई इसलिये भी आ जाती है कि जो अच्छा और ईमानदारी के साथ काम करते हैं उसको यथेष्ट रूप से स्वीकृति नहीं मिलती और पुरस्कृत नहीं किया जाता तथा अयोग्य और बेईमानी करने वाले लोगों को यथेष्ट दण्ड नहीं दिया जाता। इसलिये सार्वजनिक शासन के अन्तर्गत जो लोग भी जिम्मेवार पदों पर काम कर रहे हैं, उनको इस बात की विशेष चिन्ता करनी चाहिये कि वे ईमानदार कर्मचारियों को उत्साहित करने का उपाय खोजें।

योग्यता

१०. शासन सम्बन्धी योग्यता की वर्तमान दशा का वर्णन एक अनुभवी प्रेक्षक ने निम्नलिखित शब्दों में किया है:—

"शासन की जो मशीनरी इस समय मौजूद है, वह तत्वतः मज़बूत है और कुछ सुधारों के बाद कठिन कामों को निपटाने में समर्थ है, लेकिन इस समय उसकी दशा गिरी हुई है। उसको दिया गया काम बढ़ा-चढा है और उसके द्वारा किये गये कार्यों के परिणामों में गिरावट आ गई है। जिन हिस्सों को कई मामलों में उस से अलग कर लिया गया है, उनकी पूर्ति घटिया ढंग के हिस्सों द्वारा की गई है। बहुत अधिक दबाव के कारण इस मशीन के किनारे टूट गये हैं और जो किनारे रह गये हैं उनमें से बहुतों का उपयोग भद्दे ढंग से करने के कारण वे टूट रहे हैं। मशीन की योग्यता को निःसन्देह कुछ ऐसे कारणों से, जो भीतरी हैं, और कुछ ऐसे कारणों से, जो उसके नियन्त्रण से बाहर हैं, क्षति पहुँची है। कुल मिलाकर सुधार के लिये काफी गुंजाइश है।"

११. केन्द्रीय और राज्य-सरकारों में सरकारी कर्मचारियों की बहुत छोटी संख्या को बिना समुचित सहायता के जिम्मेवारी का भारी बोझ उठाना पडता है। उनको बहुत से ऐसे काम दे दिये गये हैं जिन्हे पहले निचले स्तर के लोग करते थे। इसके अतिरिक्त हाल के वर्षों मे नई जिम्मेवारियाँ आ जाने से या नई नीतियाँ बन जाने से सचिवालय के विभागों को नये नये काम का भार उठाना पड रहा है। इसलिये हमारा सुझाव है कि केन्द्रीय सरकार को उन सब नये कार्यों की व्यवस्थित ढंग से जांच करनी चाहिये, जिनको कि सचिवालय के कार्यालयों ने हाल के वर्षों में अपने ऊपर लिया है, और यह सोचना चाहिये कि क्या उनमें से कम से कम कुछ को निचले स्तर के अधिकारियो को नहीं दिया जा सकता ? राज्यों में भी इसी प्रकार की जांच पडताल उपयोगी हो सकती है। जहाँ कहीं पृथक् विभाग या दूसरे कार्यकारी संगठन मौजूद हैं, वहाँ यह ज़रूरी है कि संलग्न तथा अधीन दफ्तरों के प्रधान काफी स्वतंत्रता के साथ उन कामों को करें और साथ ही उन्हें यह विश्वास हो कि उनको मंत्रालय का विश्वास प्राप्त है।

कर्मचारी

१२. भारतीय शासन-सेवा के संगठन के लिये जो कदम पहले से ही उठाये जा चुके हैं, उनके अन्तर्गत केन्द्र और राज्यों में जिम्मेवारी की जगहों पर रखने के लिये प्रशिक्षित प्रशासन कर्मचारियों की व्यवस्था है। जैसे-जैसे सरकार के कार्यों का विस्तार होता जायगा, वैसे-वैसे वर्तमान प्रवन्ध

में बढ़ती करने के लिये तीन दिशाओं की ओर देखना होगा :—

(१) उस कार्य को करने के लिये, जिसका सम्बन्ध मोटे तौर पर आर्थिक नीति और शासन से है;

(२) केन्द्रीय या राज्य-सरकारों के अधिकार में औद्योगिक कार्यों का प्रबन्ध; और

(३) विकास, भूमि-सुधार और खाद्य-प्रशासन से सम्बन्धित कार्य।

१३. पहले काम के लिये कर्मचारियों की प्राप्ति के तीन प्रस्ताव ऐसे हैं जो विचारणीय हैं। सब से पहले तो ऐसे लोगों को शासन-सेवाओं की ओर आकर्षित करना चाहिये, जो शिक्षा-सम्बन्धी विशेष योग्यतायें या आर्थिक क्षेत्र में विशेष अनुभव रखते हों, और प्रतियोगिता-परीक्षाओं द्वारा आरम्भिक भर्ती के लिये जो आयु रखी गई है उस से अधिक आयु के होने पर भी उनका चुनाव कर लिया जाय। इस प्रकार जिन अफसरों का चुनाव हो उनको आवश्यक प्रशासन सम्बन्धी ट्रेनिङ्ग दी जानी चाहिये। दूसरी बात यह है कि शासन-सेवा में काम करने वाले जूनियर अफसरों मे से कुछ को उनके कार्य की आरम्भिक अवस्था में चुन लिया जाय और उन्हे उपयुक्त व्यावसायिक गृहों मे आर्थिक क्षेत्र के विषय में भरपूर ट्रेनिंग दी जाय, और अगर ज़रूरत हो तो उन्हें विदेश भेजा जाय। तीसरी बात यह है कि अभी जो ढंग चालू है अर्थात् ऐसे लोगों को जिम्मेवारी की और ऊंची जगहो के लिये चुनना, जिन्हें विश्वविद्यालयों और बैंकों तथा वित्तीय और औद्योगिक क्षेत्रों में विशेष अनुभव और ज्ञान है उसे और आगे बढ़ाया जाय।

द्वितीय उद्देश्य के लिये कर्मचारियों की प्राप्ति सम्बन्धी प्रस्ताव के अन्तर्गत इस समय एक औद्योगिक प्रबन्ध करने वाले अधिकारी-वर्ग की स्थापना पर विचार हो रहा है। इसी प्रकार आर्थिक और आंकड़ा सम्बन्धी जानकारी के लिये कर्मचारियों की खोज करने का सवाल विचाराधीन है, और यह आशा की जाती है कि निकट भविष्य मे इस सम्बन्ध में प्रस्ताव निश्चित रूप धारण करेंगे।

विकास प्रोग्रामों से सम्बन्धित जिम्मेवारियों को उठाने के लिये आवश्यक संख्या में कर्मचारियों की प्राप्ति तथा भूमि-सुधार और राज्यों मे खाद्य-प्रशासन आदि की समस्या के लिये भी पूरक भर्ती की आवश्यकता हो सकती है, और यह आवश्यकता अलग अलग राज्यों में पाई जाने वाली हालतों पर निर्भर है, लेकिन यह जिम्मेवारी मुख्यतः ऐसे अफसरों पर

होगी, जिनको ज़िलों में माल और विकास के कार्यों का अनुभव प्राप्त हो।

१४. कर्मचारियों की भर्ती के तरीकों का प्रभाव शासन-सम्बन्धी योग्यता पर स्पष्ट रूप से पड़ता है। इस समय स्थायी जगहों के लिये भर्ती साधारणतः पब्लिक सर्विस कमीशनों द्वारा होती है, लेकिन इस प्रकार का तरीका कहाँ तक सफल या असफल हुआ है, इस सम्बन्ध में कोई देशव्यापी वस्तु-स्थितिमूलक जांच नहीं हुई। यह स्पष्ट है कि पब्लिक सर्विस कमीशनों और जिन विभागों के लिये भर्ती की जाती है उनके बीच और अधिक सम्पर्क तथा राय की अदला-बदली की जरूरत है, और अभी जो अस्थायी और किसी विशेष काम के लिये भर्ती चल रही है, उसको कम करने की मिली-जुली कोशिश होनी चाहिये। अगर पब्लिक सर्विस कमीशनों की आलोचनाओं को, जो कि वे इन्टरव्यू में आने वालों की योग्यता के बारे में करते हैं, विश्वविद्यालयों तथा अन्य शिक्षा-सम्बन्धी अधिकारियों के पास भेजा जाय और शिक्षा के क्षेत्र में सुधार के प्रोग्रामों के साथ उन आलोचनाओं या सुझावों को भी रखा जाय तो काफी लाभ होगा।

१५. भर्ती के बाद दूसरा सवाल ट्रेनिंग या प्रशिक्षण का आता है। आम तौर पर शासन के प्रत्येक विभाग में यह आवश्यक है कि नौकरी के आरम्भ में और बाद के वर्षों में उपयुक्त अवधि के बाद कर्मचारियों को ट्रेनिंग दी जाय। भारतीय शासन-सेवा और राज्य शासन-सेवाओं में भर्ती होने वालों को माल तथा विकास सम्बन्धी प्रशासन की भरपूर ट्रेनिंग देना बहुत अधिक महत्वपूर्ण है। ऐसे अफसरों को ट्रेनिंग देने का भार अनुभवी कलेक्टरों को सौंपना चाहिये। हाल के वर्षों में इस विषय पर उतना ध्यान नहीं दिया गया जितना देना चाहिये था। इससे यह बात और भी जरूरी हो जाती है कि भारतीय शासन सेवा में भर्ती होने वाले नये लोगों को दी जाने वाली ट्रेनिंग जितनी अच्छी तरह से संगठित की जा सके, की जाय।

१६. भारतीय शासन सेवा के लिये जो लोग चुने जाते हैं, उन्हें परीक्षण-काल में आरम्भिक ट्रेनिंग दिल्ली स्थित भारतीय शासन ट्रेनिंग स्कूल में दी जाती है। अभी तक इस संस्था के प्रधान के रूप में भारत सरकार के ऐस्टेब्लिशमेंट अफसर अपने कार्यों के अतिरिक्त कार्य करते रहे हैं। आरम्भिक वर्षों में इस प्रकार दोनों ही काम करना सुविधाजनक रहा होगा, लेकिन भविष्य में यह जरूरी है कि इस संस्था का प्रिंसिपल या डाइरेक्टर एक पूरे समय का अफसर हो। यह सम्भव है कि केन्द्रीय सरकार उसे

इस बात की भी जिम्मेवारी सौंपे कि राज्यों में ठीक ढंग से उनकी शासन सेवाओं के लिये ट्रेनिंग प्रोग्राम चल रहा है या नहीं, और सम्भव है कि इस कार्य के लिये उसे समय-समय पर विभिन्न राज्यो का दौरा करना पड़े। इस स्कूल मे राज्यो और केन्द्रीय सरकार के ऊंचे शासन-अधिकारियो को समय-समय पर प्रत्यास्मरण पाठ्यक्रम देने का केन्द्र बनाया जा सकता है, तथा इसे सार्वजनिक शासन सम्बन्धी अध्ययन का आम केन्द्र भी बनाया जा सकता है।

१७. केन्द्रीय सरकार द्वारा सचिवालय पुनस्संगठन योजना के सम्बन्ध में सचिवालय के कर्मचारियो को ट्रेनिंग देने के कुछ प्रबन्ध आरम्भ हो गए हैं। कुछ ऐसी दिशायें हैं जिनकी ओर ट्रेनिंग की सुविधाओ को और बढ़ाना चाहिये। उदाहरणार्थ, ऐसे अफसरो के लिये, जो आर्थिक कार्यों के प्रबन्ध से सम्बन्धित हैं, भली-भांति संचालित व्यावसायिक संगठनों में नियमित ट्रेनिंग देने की योजना बनानी चाहिये। बदले में व्यावसायिक गृहों के कुछ चुने हुये कर्मचारियों को यह अवसर दिया जा सकता है कि वे सरकार के अन्तर्गत कार्य करें, और सरकारी शासन-यंत्र के संचालन का प्रत्यक्ष अनुभव प्राप्त करें। इससे सरकार और उद्योग तथा व्यवसाय के बीच परस्पर आदान-प्रदान की भावना बढ़ेगी, और सरकार को यह जानकारी भी प्राप्त हो सकती है कि सार्वजनिक सेवा के लिये किन लोगों की भर्ती करना हितकर होगा, विशेष रूप से आर्थिक और औद्योगिक प्रोग्रामों के प्रशासन के लिये। इस विचार को उन लोगो के सम्बन्ध में भी लागू किया जा सकता है जो अर्थ-शास्त्र का अध्ययन कर रहें हैं या विश्वविद्यालय में आर्थिक समस्याओ पर अनुसंधान कर रहे है। अन्त में यह भी जरूरी है कि इस बात को समझ लिया जाय कि भविष्य मे उच्च सेवाओ के लिये भर्ती किये जाने वाले लोगों में से बहुत छोटी संख्या को ही उसकी नियुक्ति के पहले विदेशों में ट्रेनिंग प्राप्त करने का अवसर मिलेगा। इसलिये उन सुविधाओं से पूरा-पूरा लाभ उठाना होगा जो टेक्नीकल सहायता योजना के रूप में देश मे प्राप्त हैं और इन योजनाओं के द्वारा चुने हुये अफसरों को विशेष ट्रेनिंग की सुविधायें प्राप्त होंगी।

तरीके

१८. कर्मचारियों का चुनाव और ट्रेनिंग चाहे जितनी सावधानी से हो, जब तक काम करने के तरीके अच्छे नहीं होंगे तब तक योग्यता में कमी रहेगी।

संगठन और तरीकों का सावधानी से अध्ययन और जांच, शासन सम्बन्धी कार्यविधि को बहुत व्यावहारिक रूप से अच्छी बना सकते हैं। हमारा यह सुझाव है कि केन्द्रीय सरकार के अन्तर्गत गृह-मंत्रालय को चाहिये कि वह एक डाइरेक्टर के अधीन एक तरीकों सम्बन्धी डिवीज़न और एक संगठन बनाये। यह डाइरेक्टर विभिन्न मंत्रालयों और विशेषतः वित्त-मंत्रालय की कर्मचारी शाखाओं से सहयोग रखे। राज्यों में भी संगठन और तरीकों के सम्बन्ध में अध्ययन करने के लिये इकाइयों की जरूरत है। तरीकों के सम्बन्ध में जिन बातों पर तुरन्त ध्यान देना है, वे हैं : दफ्तरों के कार्यों को और सरल बनाना, केंद्रीय मंत्रालयों में रखे जाने वाले रिकार्डों के तरीके में सुधार और फाइलों को निपटाने में शीघ्रता और विभिन्न प्रकार के संगठनों मे हिसाब-किताब की जांच के तरीके में सुधार।

१९. तरीकों के सवाल के साथ जिस बात का निकट सम्बन्ध है, वह है सरकारी दफ्तरों मे देख-रेख और निरीक्षण का प्रबन्ध। अगर उच्च अधिकारी अपने समय का कुछ भाग समय-समय पर दफ्तरो का निरीक्षण करने मे लगायें, तो कार्य-कुशलता में बहुत सुधार हो सकता है। यह जरूरी नहीं कि यह निरीक्षण ज़ाब्ते का हो; दर-असल कभी-कभी आकस्मिक देख-रेख का विशेप महत्त्व होता है। अगर उच्च अधिकारी या मंत्रीगण भी कभी कभी फाइलों को इस दृष्टि से देखें कि अन्तिम निर्णय के लिये कितने समय की आवश्यकता है तो विलंब के जो मामले सामने आते रहते हैं उनको बहुत कुछ सुधारा जा सकता है। कई विभागो में अफसरों और निचले स्तर के कर्मचारियों के बीच काफी सम्पर्क नहीं रहता। विभिन्न वर्गों के सरकारी कर्मचारियो के बीच आवश्यक मानवीय सम्बन्ध के अभाव में प्रायः निचले वर्ग के कर्मचारियो की भलाई की तरफ उपेक्षा का भाव रहता है।

वित्तीय नियंत्रण और खर्च में कमी

२०. तीन और ऐसे मामले हैं जिनका सम्बन्ध शासन की योग्यता से है और जिनके बारे में यहां चर्चा करना उपयोगी होगा। ये हैं : (क) वित्तीय नियंत्रण का वर्तमान तरीका, (ख) वर्तमान शासन-व्यवस्था के अंतर्गत अच्छे काम को उत्साहित करने और बुरे काम को अनुत्साहित करने का प्रबन्ध और (ग) नतीजों की खोज-बीन सावधानी से करने की जरूरत।

२१. पंचवर्षीय योजना को भली-भांति कार्यान्वित करने के लिये यह जरूरी है कि इस प्रकार के वित्तीय तरीके हों जिनके द्वारा एक ओर तो

उचित रूप से नियंत्रण रहे और दूसरी ओर शासन-सम्बन्धी अधिकारियों के प्रोग्रामों को कार्यान्वित करने में अनावश्यक बाधा न पड़े। लेकिन इस विषय पर सावधानी से विचार करने की जरूरत है और निश्चित उपाय तभी बताये जा सकते हैं जब कि स्थानीय तरीकों और समस्याओं का विस्तार के साथ अध्ययन कर लिया जाये। यह जरूरी है कि केन्द्रीय और राज्य सरकारों में वित्त विभाग द्वारा आयोजन सम्बन्धी अधिकारियों के सहयोग से वर्तमान प्रबन्धों की जांच की जाय।

२२. प्रत्येक सरकारी विभाग या संगठन मे खर्च मे कमी करने की गुंजाइश हमेशा रहती है। खर्च मे बचत एक लगातार चलने वाला कार्य है, और समय-समय पर किसी भी दफ़्तर मे होनेवाले खर्च के बारे मे व्यवस्थित जांच होती रहनी चाहिये। किसी भी संगठन के अन्तर्गत व्यर्थ के खर्च का मुख्य स्रोत सम्भवतः यह रहता है कि योजनायें सावधानी से नहीं बनाई जातीं, और बनाई गई योजनाओं को कार्यान्वित करते समय छोटी छोटी बातों पर विस्तार से ध्यान नहीं दिया जाता। प्रायः लागू करने से पहले हम अपनी सीमा से अधिक योजनाओं या सिद्धान्तों को स्वीकार कर लेते हैं। इसीलिये वित्तीय नियंत्रण का सम्बन्ध केवल खर्च की बारीकियों से ही न होना चाहिये बल्कि प्राथमिकताओं की योजना से भी होना चाहिये और उन सभी अवस्थाओं का ठीक-ठीक ज्ञान होना चाहिये जिन तक पहुँच कर कोई योजना इस योग्य हो जाती है कि उसे कार्यान्वित किया जाय। विशेष रूप से बड़ी योजनाओं के बारे में प्रायः आरम्भ मे बड़ी भयंकर भूलें की जाती हैं। बाद में जब कि वह योजना कार्यान्वित हो जाती है तब उन भूलों पर नियंत्रण पाने या नियमित करने का समय ही नही रह जाता।

प्रेरणा

२३. पिछले कुछ वर्षों में यह देखा गया है कि ऐसे लोगों की संख्या में वृद्धि हुई है जो अपना काम नियमित ढंग से तो करते हैं लेकिन उनमें सुधार की कोई इच्छा नहीं होती। कुछ हद तक इसका कारण यह हो सकता है कि बहुत से ऐसे लोग, जो अस्थायी तौर पर काम कर रहे हैं यह अनुभव करते हैं कि उनकी रोज़ी की हालत अनिश्चित है। लेकिन यह भी सही है कि कोई सरकारी कर्मचारी अच्छा काम करता है तो उसे उत्साहित करने और बुरा काम करता है तो उसे चेतावनी या दण्ड देने का वर्तमान प्रबंध असंतोषजनक है। कर्मचारियों के काम के बारे मे जो रिपोर्टें लिखी जाती हैं वे पहले

से भी कहीं कम निश्चयात्मक होती हैं और अक्सर न प्रशंसा करने और न बद-नामी करने का सीधा रास्ता पकड़ा जाता है। इसलिये यह जरूरी है कि देख-रेख का काम और अच्छा बने, जिसकी ओर पहले भी ध्यान दिलाया जा चुका है। यह भी मालूम होता है कि कर्तव्य-हीनता के प्रति यथेष्ट ध्यान नहीं दिया जाता और असन्तोषजनक काम को सहन करने की प्रवृत्ति आवश्य-कता से अधिक पाई जाती है। इस के कारण जो लोग उत्सुक और परिश्रमी हैं उनको पुरस्कृत करने और जो लोग आलसी और लापरवाह हैं उन को दण्डित करने के बीच की सीमा-रेखा प्रायः लुप्त हो चली है। जब काम के बारे में ठीक-ठीक देख-रेख का प्रबन्ध हो जायेगा तभी यह सम्भव है कि व्यवस्थित ढंग से इस ओर ध्यान दिया जा सके।

२४. जब कि ज्येष्ठता या सीनियौरिटी का विचार महत्वपूर्ण है, कुछ संवर्गों में पदोन्नति की गुंजाइश साधारण नियमों की बजाय अधिक तेजी और अधिक स्पष्टता के साथ होनी चाहिये। कुछ मामलों में इस सिद्धान्त को पहले से ही लागू किया जा रहा है। इस बात का पता लगाना चाहिये कि इसे और कहां कहां लागू किया जा सकता है, जिससे किसी क्षेत्र में अगर किसी आदमी में आवश्यक योग्यता है, तो उसे यह अनुभव हो कि अगर वह औरों से अधिक अच्छा काम करता है तो उसे ऊंचे-ऊंचे पदों पर रखा जा सकता है।

२५. विकास पर होने वाले खर्च में बढ़ती के साथ-साथ अब यह जरूरी है कि सार्वजनिक खर्चों के परिणामों का पहले से और अधिक व्यवस्थित मूल्यांकन हो। सार्वजनिक कार्यों की सभी शाखाओं में इस प्रकार का मूल्यां-कन सामान्य शासकीय कार्य हो जाना चाहिये। मूल्यांकन के तरीकों का विकास करने के उद्देश्य से अब योजना कमीशन के अन्तर्गत सामूहिक विकास योजनाओं तथा अन्य भरपूर विकास-प्रोग्रामों के लिये एक स्वतंत्र मूल्यांकन संगठन की स्थापना करके इस दिशा में कार्य आरम्भ हो गया है।

राज्यों में शासन की मजबूती

२६. पंचवर्षीय योजना को लागू करने के लिये यह जरूरी है कि राज्यों में भली-भांति संगठित विकास-सेवायें हों। इस मामले में कुछ राज्य, विशेष रूप से वे राज्य, जिनका निर्माण हाल में ही हुआ है या जो आकार और साधनों में छोटे हैं, अच्छी स्थिति में नहीं हैं। कुछ हद तक इस समस्या का समाधान पास-पड़ौस के राज्यों के साथ मिलकर मिले जुले संवर्गों

को बनाना या अन्य राज्यों से अफसरों को उधार लेना या उनकी बदली करना हो सकता है; लेकिन और भी कदम उठाना जरूरी है, उदाहरणार्थ, केन्द्रीय सरकार इच्छुक राज्य सरकारों से सलाह करके इस सम्भावना पर विचार करे कि कृषि, इन्जीनियरिंग, जंगलात और सार्वजनिक स्वास्थ्य जैसे टैकनिकल विकास के क्षेत्रों में एक केन्द्रीय विकास संवर्ग की स्थापना की जाय।

२७. केन्द्रीय सरकार को उसके उच्चतर अधिकारी मुख्यत: राज्यों से प्राप्त होते हैं। इसलिये जिस ढंग से केन्द्र इन अफसरो का चुनाव करता है उसका प्रभाव राज्यों के अफसरों की योग्यता और कार्य-कुशलता पर बहुत अधिक पड़ता है। इस सम्बन्ध मे इस स्वीकृत सिद्धांत को बनाये रखना चाहिये कि केन्द्र की सेवा सामान्यतया एक अवधि की सेवा के रूप में होनी चाहिये। केन्द्र के लिये अफसरो का चुनाव, जहां तक सम्भव हो, उनके राज्य में सेवा-कार्य के रिकार्ड पर आधारित होना चाहिये। टैकनिकल कर्मचारियो के बारे में, जिनमें से अधिकांश को केन्द्रीय सरकार राज्य सरकारों से प्राप्त करती है, एक नियमित चुनाव-बोर्ड स्थापित करना वांछनीय होगा।

सार्वजनिक उद्योगों का प्रबन्ध

२८. हथियारों के कारखानो और रेलो के सिवा राज्य द्वारा अधिकृत या सरकारी प्रबन्ध मे चलने वाले औद्योगिक कारखानो का विकास अपेक्षाकृत नया कार्य है। देश के आर्थिक विकास और विशेष रूप से बुनियादी उद्योगों के क्षेत्र में सरकारी उद्योगों के बढते हुए महत्व के प्रमाण-स्वरूप केन्द्रीय-सरकार द्वारा कुछ महीने पहले उत्पादन-मन्त्रालय की स्थापना की गई है। सरकारी उद्योगों का संगठन सम्मिलित पूंजी कम्पनियो के रूप में किया गया है और प्रत्येक कम्पनी में डाइरेक्टरों का अपना बोर्ड है। बोर्ड के अन्तर्गत सरकार के प्रतिनिधि तथा उद्योग और व्यवसाय के प्रतिनिधि भी हैं। अभी तक विभिन्न उद्योगों के संचालन के बारे मे इतना यथेष्ट अनुभव नहीं प्राप्त हुआ जिससे कि किसी अन्तिम नतीजे पर पहुँचा जा सके, और न संगठन तथा प्रबन्ध के वर्तमान ढांचे के परिणाम प्रकट हुए हैं। जैसे-जैसे अनुभव बढ़ता जायगा और नई समस्याएँ जन्म लेती जाएँगी, वैसे-वैसे यह आशा की जा सकती है कि और अधिक परिवर्तन होते जाएँगे। विभिन्न उद्योगों के लिये अलग-अलग डाइरेक्टरो के बोर्ड जरूरी हैं क्योंकि प्रत्येक उद्योग की अपनी विशेष समस्याएँ है। एक केन्द्रीय बोर्ड की भी आवश्यकता है जो सरकार को आम महत्व के

मामलों में सलाह देगा, जैसे कि औद्योगिक प्रबन्ध के लिये कर्मचारियों का चुनाव, वित्तीय और हिसाब-किताब की समस्याएँ, मूल्य-नीतियां, पूंजी लगाने के प्रोग्राम इत्यादि। इस समय जिस विकास का आयोजन किया जा रहा है, उसके अन्तर्गत सार्वजनिक क्षेत्र उत्तरोत्तर विस्तार पाता जायगा, और इसी लिये कमीशन ने यह सुझाव दिया है कि उपर्युक्त बोर्ड की स्थापना शीघ्र की जाय।

अध्याय ७

जिला विकास प्रोग्रामों का प्रशासन

हाल के परिवर्तनों का प्रभाव

पिछले १०० साल मे शासन के जिस ढांचे का विकास हुआ उसका आधार यह था कि जिले को प्रधान इकाई माना जाय और जिलाधीश को जनता से सम्पर्क रखने वाला सरकार का मुख्य प्रतिनिधि। उसका काम जिले के अन्दर सभी विभागों के कार्यों मे तालमेल रखना होता था; लेकिन उसका मुख्य कर्तव्य शान्ति और व्यवस्था को कायम रखना तथा लगान वसूल करना होता था। परन्तु हाल में जो परिवर्तन हुए हैं उनके कारण उसकी स्थिति में अन्तर आ गया है और यह आवश्यक हो गया है कि जिले के शासन को नया खून प्रदान किया जाय। शान्ति और व्यवस्था को कायम रखना सदैव एक महत्वपूर्ण कर्तव्य होगा, लेकिन अब दिनों दिन यह बात जिला प्रशासन के लिये अधिक महत्व की होती जा रही है कि वह साधनों का विकास करने और जनता के जीवन के स्तर को ऊँचा उठाने में योग दे। इसलिये यह जरूरी है कि जिला प्रशासन अपने आप को इस कार्य के लिये तैयार करे। खास जोर इस बात पर देना होगा कि जनता के सहयोग और क्रियाशील समर्थन के बल पर विकास प्रोग्रामों को कार्यान्वित किया जाय। जिला प्रशासन के पुनर्गठन के अन्तर्गत निम्नलिखित बातों की व्यवस्था होनी चाहिये.—

(१) शासन के आम यन्त्र की मजबूती और सुधार;

(२) गांव के स्तर पर विकास के लिये उपयुक्त संगठन की स्थापना;

(३) जिले के अन्दर विभिन्न विकास-विभागों के कार्यों का समन्वय और एक समान विस्तार-संगठन की व्यवस्था;

(४) विकास-कार्यों के लिये राज्य सरकार के शासन विभाग के साथ स्थानीय स्वशासन संस्थाओं को संलग्न करना; और

(५) जिला विकास प्रोग्रामो की देख-रेख और उनका क्षेत्रीय समन्वय।

ग्राम शासन की मजबूती

२. ग्राम शासन की कुशलता के द्वारा बहुत बडी संख्या में जनता के जीवन पर प्रभाव पड़ता है। सरकार अपने हिस्से के अनिवार्य कार्यों का निर्वाह जिस हद तक योग्यता और न्याय-प्रियता के साथ करती है उसी हद तक वह आर्थिक और सामाजिक विकास के कार्यों को पूर्ण करने में समर्थ बनती है और उसे जनता का ऐच्छिक सहयोग और समर्थन प्राप्त होता है। पिछले कुछ वर्षों में जिले का काम बहुत अधिक बढ़ गया है और पहले से अधिक जटिल भी हो गया है। विकास प्रोग्रामों के कारण जिले के अफसरो का काम और जिम्मेवारी और अधिक बढ जायगी। इसलिये यह जरूरी है कि उसे एक उच्च अधिकारी की सहायता प्रदान की जाय जिससे कि वह विकास की ओर यथेष्ट ध्यान दे सके। जिला प्रशासन की मजबूती के लिये कुछ अन्य सुझाव निम्नलिखित हैं :—

(१) जिन क्षेत्रों का स्थायी या इस्तमरारी बन्दोबस्त हुआ है या जो जागीर वाले क्षेत्र हैं उनमें गांव के स्तर के माल कर्मचारियो के न होने के कारण न तो विकास प्रोग्रामों को ठीक ढंग से लागू किया जा सकता है और न भूमि सुधार के उपायों को। इसलिये ऐसे क्षेत्रों के माल सम्बन्धी प्रबन्ध के लिये लोगों की भर्ती करना और उन्हें ट्रेनिंग देना बड़े महत्व का कार्य है। बहुत से राज्य इस दिशा में कार्य आरंभ भी कर चुके हैं लेकिन इस कार्य पर और अधिक जोर दिया जाना चाहिये और इसमें शीघ्रता होनी चाहिये।

(२) राज्य-सरकारों को चाहिये कि वे विकास प्रोग्रामों के भली-भांति कार्यान्वित होने की दृष्टि से जिलों के वर्तमान आकार पर फिर से विचार करें। अगर जिले के आकार मे किसी प्रकार के परिवर्तन की आवश्यकता न प्रतीत हो तो ऐसे जिले में और अधिक सब-डिवीज़न बनाने की सम्भावना पर विचार करना चाहिये।

(३) सभी जिला अफसरों को कार्य आरंभ करने की आरंभिक अवस्था मे देहात-विकास-कार्य की विशेष ट्रेनिंग प्राप्त होनी चाहिये। दूसरे शब्दों में, जिस प्रकार भारतीय शासन सेवा या राज्य शासन सेवाओ के सदस्यों को पटवारियों का, सर्किल के माल-अफसरों का और तहसीलदारों का काम भी अपनी ट्रेनिग के समय सीखना होता है उसी प्रकार जिला अफसरों को भी ग्राम कार्यकर्त्ताओं तथा बडी विकास इकाइयों का संचालन करने वाले

अफसरों के कार्यों को जानना चाहिये। इस प्रकार की ट्रेनिंग के द्वारा जिले में सरकारी शासन-यंत्र इस योग्य बनेगा कि वह पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत विकास-कार्य को संभाल सके।

(४) जिले में शासन सम्बन्धी सभी छोटे-बड़े कामों का भार अधिकांशतः राज्य शासन सेवाओं के सदस्यों पर पड़ता है, इसलिये उनकी ट्रेनिंग की ओर विशेष ध्यान देना चाहिये।

विकास के लिये ग्राम-संगठन

३. अनेक दशाब्दियों से माल और पुलिस व्यवस्था की प्रारम्भिक इकाई गांव रहा है। लेकिन ब्रिटिश शासन के जमाने में वह सामाजिक और आर्थिक संगठन के रूप में कमजोर हो गया। जैसे-जैसे स्थायी दशाएं विकसित होती गईं ग्रामीण समाज अधिकाधिक शासन पर निर्भर होता गया और अपना प्रबन्ध आप करने के मामले में कमजोर बनता गया। जब कभी विकास विभागों के द्वारा कुछ कार्य आरंभ भी किया गया तो सम्पूर्ण गांव के बजाय व्यक्ति को ही प्रधानता दी गई जिससे कि तीस वर्ष के विकास कार्य का प्रभाव आबादी के बहुत छोटे हिस्से पर पड़ा।

४. इस समय गांव में एक ऐसे संगठन की आवश्यकता है जो सम्पूर्ण ग्राम-समाज का प्रतिनिधित्व करता हो, जो साधनों के विकास के लिये जिम्मेवारी ले सकता हो और नेतृत्व प्रदान कर सकता हो। गांव-पंचायत द्वाराइस कार्य को किया जा सकता है। अधिकांश राज्यों में गांव-पंचायतों को स्थापित करने के बारे में कानून बन गये हैं और ऐसे कानूनों का उद्देश्य संविधान के अन्तर्गत निदेशात्मक सिद्धान्तो को व्यावहारिक रूप देना है। हमारे संविधान में यह कहा गया है कि गांव-पंचायतों का संगठन किया जाय और उन्हें ऐसे अधिकार और सत्ता प्रदान की जाय जिससे कि वह स्वशासित इकाइयों के रूप मे कार्य कर सके। इस सिद्धान्त को व्यावहारिक रूप देने की दिशा मे कुछ राज्यों ने बहुत अधिक प्रगति कर ली है। लेकिन जब हम सम्पूर्ण देश की ओर दृष्टि डालते हैं तो हमें मालूम होता है कि अभी बहुत कुछ काम करना बाकी है। प्रत्येक राज्य को निश्चित अवधि के अन्दर ग्रामों या ग्राम-समूहों के लिये पंचायतों की स्थापना का एक प्रोग्राम बनाना चाहिये और पंचायतों को कार्यों की निम्नलिखित जिम्मेवारी ग्रहण करने के योग्य बनाने के लिये आवश्यकतानुसार पंचायत कानून को मजबूत बना देना चाहियेः—

(१) गांव के लिये उत्पादन प्रोग्राम बनाना,

(२) ऐसे प्रोग्रामों के संचालन के लिये आवश्यक सामग्री और वित्त की जरूरतों के बजट बनाना,

(३) सरकारी सहायता की प्राप्ति का जरिया बनना, सिवाय ऐसी सहायता के जो कि सहकारी समितियों आदि के द्वारा गांव तक पहुंचती है;

(४) पैदावार बढ़ाने के लिए गांव में न्यूनतम कृषि सम्बन्धी स्तर को कायम रखना,

(५) ऊसर जमीन को खेती के योग्य बनाना;

(६) जिन जमीनों को उनके मालिक नहीं जोतते उन पर खेती कराना,

(७) सार्वजनिक निर्माण-कार्यों के लिये ऐच्छिक श्रम का प्रबन्ध करना;

(८) प्रचलित भूमि प्रबन्ध कानूनों के अनुसार गांव की जमीन और अन्य साधनों के सहकारी प्रबन्ध का संगठन करना; और

(९) गांव मे भूमि-सुधार सम्बन्धी उपायों को लागू करने में सहायता देना।

५. जिस ढंग से पचायतों का चुनाव होता है उसके द्वारा गांव के निर्माण के लिये आवश्यक योग्यतावाले व्यक्तियों की प्राप्ति प्रायः यथेष्ट संख्या में नही हो पाती। गांव के पुनर्निर्माण के लिये जिन लोगों की आवश्यकता है उनके अन्तर्गत वे अच्छे किसान हैं जो खेती के तरीकों में सुधार के कार्य मे लगे हुए है, सहकारिता आन्दोलन मे लगे हुए उत्साही कार्यकर्ता हैं, और वे लोग हैं जिनकी रुचि विशेष रूप से रचनात्मक सामाजिक कार्यों में है। गांव विकास प्रोग्रामो के लिये यह व्यवस्था होनी चाहिए कि छोटी सख्या में राज्य सरकार द्वारा या उसकी ओर से कुछ अतिरिक्त सदस्यों की नियुक्ति की जा सके, जिससे कि इस प्रकार विस्तृत की गई पचायतें विकास एजेन्सियो के रूप मे गाव के ऐच्छिक और रचनात्मक नेतृत्व के आधार पर कार्य कर सकें। यह आशा की जाती है कि इस ग्राम-संगठन के द्वारा धीरे-धीरे सम्पूर्ण गांव के लिये उत्पादन की योजनाएं बनाई जायेंगी और ये योजनाएं

अलग-अलग किसानों और स्थानीय सहकारी समितियों द्वारा स्वीकृत प्रोग्राम पर आधारित होंगी। इस प्रकार खेती-बाड़ी और देहात-विकास के क्षेत्र में यह प्रयत्न राष्ट्रव्यापी आयोजन का प्रभावशाली आधार बन जायगा। इन सुझावों को आम शब्दों में रखा गया है क्योंकि इस प्रकार के संगठन के द्वारा ग्राम स्तर पर सर्वोत्तम सेवा हो सकेगी। यह विषय अनिवार्यतः स्थानीय दशाओं पर निर्भर है।

देहात विस्तार और विकास कार्यों का समन्वय

६. अब देहात विस्तार सेवा की आश्यकता का सर्वत्र आदर किया जा रहा है। इस समय सरकार के कई विभाग अपने क्षेत्रीय कर्मचारियों के द्वारा देहाती क्षेत्रों तक पहुँचने का प्रयत्न करते हैं, लेकिन इन कर्मचारियों की संख्या प्रायः बहुत छोटी होती है और उन्हें व्यावहारिक ज्ञान यथेष्ट नहीं होता। गाँव वालों के पास प्रायः सरकार की ओर से अलग-अलग दिशाओं से अलग-अलग लोग पहुँचते हैं और ऐसी सलाह देते हैं जो परस्पर-विरोधी होती हैं या ठीक तरह से समन्वित नहीं होतीं और कभी-कभी नित्य-प्रति की समस्याओं को हल करने के लिये उस सलाह का कोई महत्व नहीं रहता। उत्तर प्रदेश, मद्रास, बम्बई और दूसरी जगहों में सामूहिक योजनाओं पर होने वाले भरपूर कार्य से यह सिद्ध हो गया है कि देहात विकास प्रोग्रामों की सफलता के लिये ग्राम कार्यकर्त्ताओं और सरकार के प्रधान विकास विभागों की ओर से एक समान विस्तार यन्त्र की अनिवार्य आवश्यकता है। 'अधिक अन्न उपजाओ' जांच कमेटी ने यह सुझाव दिया है कि दस वर्ष के समय में सम्पूर्ण देश में एक देहात विकास संगठन की स्थापना होनी चाहिये। कमेटी का प्रस्ताव यह है कि ग्राम-स्तर पर पांच या दस गांव के लिये एक कार्यकर्ता होना चाहिये, जो कि सभी विकास-कार्यों के लिये एक मिला-जुला कर्मचारी होगा और जो गवेषणा के परिणामों को किसानों तक पहुंचायेगा और विशेषज्ञों को किसानों की कठिनाइयों से परिचित करायेगा और किसानों के लिये जरूरी सेवाओं का प्रबन्ध करेगा, जैसे कि जानवरों के लिये प्राथमिक सहायता पहुँचाना और पौधों की बीमारी के बारे में सलाह देना।

७. प्रत्येक राज्य को अपने विस्तार संगठन का नमूना स्वयं ही बनाना होगा और उसे देखना होगा कि उसकी अपनी आवश्यकतायें और दशाएँ क्या हैं।

विस्तृत शासकीय प्रबन्धों के बारे में निम्नलिखित अनिवार्य बातों को दृष्टि में रखना होगाः—

(१) एक बहूद्देश्य ग्राम-कार्यकर्त्ता हो जो कि सभी विकास विभागों की ओर से काम करे और गांव में उन विभागों का प्रतिनिधि हो;

(२) विकास मंडल (लगभग १०० गांव) के स्तर पर एक विकास अफसर हो जो कि विस्तार अफसर के साथ मिलकर एक टोली के सदस्य के रूप मे कार्य करे। विकास अफसर या तो सब-कलेक्टर हो सकता है या जहाँ कहीं सब-डिवीजन में बँटवारे का विकास नहीं हुआ है वहां जिला प्रशासन से निकट से सम्बन्धित कोई अन्य अधिकारी हो सकता है, और

(३) कलेक्टर की स्थिति जिले में विस्तार आन्दोलन के प्रधान की होनी चाहिये और उसके साथ विकास विभागों के जिला अफसरों को एक टोली के सदस्यों के रूप मे कार्य करना चाहिये ।

कलेक्टर पर जो भारी जिम्मेवारियां पड़ेंगी उनके कारण यह बात बड़े महत्व की हो जाती है कि उसे समुचित सहायता दी जाय जिससे कि वह अपने जिले में विकास कार्यों का संचालन करने वाले प्रधान की हैसियत से अपने कर्तव्यों का निर्वाह पूरा-पूरा ध्यान देकर कर सके ।

विकास प्रोग्रामों में स्थानीय संस्थाओं का भाग

८. स्थानीय स्वशासन के क्षेत्र में पिछली दशाब्दी विकास-हीनता का काल रही है । आम तौर पर इन वर्षों में स्थानिक संस्थाओं ने अपने साधनों का विस्तार बड़ी हद तक नहीं किया और सेवाओं के वर्तमान स्तर को कायम रखने में भी उन्हें कठिनाई प्रतीत हुई है । युद्धोत्तर विकास प्रोग्रामों के अन्तर्गत स्थानिक संस्थाओं को कोई स्थान नहीं दिया गया। पंचवर्षीय योजना में स्थानिक संस्थाओं के कुछ अधिक महत्वपूर्ण प्रोग्रामों को विशेष सहायता प्राप्त होने की आशा है, लेकिन मुख्य रूप से ऐसी संस्थाओं के प्रोग्रामों को जिला और राज्य प्रोग्रामों का अंग माना जायगा। वास्तव में स्वशासित संस्थाओं का विकास जिस अवस्था पर पहुँच चुका है, उसे देखते हुए स्थानिक विकास प्रोग्रामों के विषय में सर्वोत्तम बात यही होगी कि राज्य सरकार के अभिकरणों और स्थानिक स्वशासित संस्थाओं के जनता द्वारा चुने हुए प्रतिनिधियों के निकट सहयोग से मिले-जुले तौर पर उन प्रोग्रामों को कार्यान्वित किया जाय। इस सम्बन्ध में नीति की आम दिशा यह होनी चाहिये

कि ऐसी संस्थायें अपने क्षेत्र में शासन सम्बन्धी और सामाजिक सेवाओं का जितना अधिक भार ग्रहण कर सकें उतना ही अधिक भार ग्रहण करने में उन्हें सहायता दी जाय और उत्साहित किया जाय। स्थानिक स्वशासित संस्थाओं को विभिन्न स्तरों पर आपस में तालमेल रखने के लिये कोई उपयुक्त प्रबन्ध रखना भी आवश्यक हो सकता है जैसे, गांव-पंचायतों और जिला अथवा सब-डिवीजन बोर्ड के बीच तालमेल। हमने ऊपर जिस प्रणाली की चर्चा की है उसका विकास जिस समय होगा उसी समय निम्नलिखित प्रकार से राज्य-सरकारों और स्थानिक स्वशासित-संस्थाओं के बीच निकट सहयोग का विकास भी होता रहेगा:—

(१) स्थानिक संस्थाओं के प्रोग्रामों का राज्य के प्रोग्राम के साथ सावधानी से समन्वय होना चाहिये।

(२) जहां तक व्यावहारिक हो, राज्य सरकारों को चाहिये कि वे अपने समाज सेवा प्रोग्रामों का संचालन स्थानिक संस्थाओं के द्वारा करें। इसका तात्पर्य यह है कि अगर चुनाव इस बात का हो कि किसी एक क्षेत्र में राज्य सरकार अपने ही साधनों के द्वारा एक प्राइमरी स्कूल और एक पशु चिकित्सा अस्पताल स्थापित करे और यह कि इस प्रकार के विकास का श्रीगणेश करने के लिये किसी स्थानिक संस्था को सहायता दी जाय, तो सिद्धान्त के रूप में दूसरी बात ही ठीक मानी जायगी।

(३) स्थानिक संस्था द्वारा संचालित सेवाओं और संस्थाओं की देख-रेख होनी चाहिये और उन्हें राज्य सरकार के टेकनिकल तथा शासन सम्बन्धी कर्मचारियों द्वारा दिशा-दर्शन प्राप्त होना चाहिये और यह कार्य इसी प्रकार होना चाहिये जैसे कि राज्य-सरकार स्वयं अपनी ही संस्थाओं और सेवाओं के विषय में करती है।

(४) किसी भी क्षेत्र में विकास प्रोग्रामों के संचालन के लिये यह जरूरी है कि गैर-सरकारी लोगों को भी कार्य-संचालन में साथ लिया जाय। गैर-सरकारी प्रतिनिधियों को आरम्भ में स्थानिक संस्थाओं के लिये चुने गये व्यक्तियों के रूप में लिया जा सकता है।

(५) जहां कहीं सब-डिवीजन बने हुये हैं या भविष्य में बनने हैं वहां

सब-डिवीजनल स्थानिक बोर्डों पर विचार किया जा सकता है।

९. यह बात भी कुछ महत्त्वपूर्ण है कि स्थानिक विकास-प्रोग्रामों को बनाने और संचालित करने में राज्य-विधान-मंडलों और संसद के सदस्यों का निकट सहयोग प्राप्त हो। एक ओर तो ऐसे लोग इस स्थिति में होते हैं कि वे स्थानीय आवश्यकताओं और समस्याओं के अपने ज्ञान द्वारा राज्य और राष्ट्र-नीति के निर्माण और मूल्यांकन में सहायक हो सकते हैं और दूसरी ओर वे स्थानीय प्रोग्रामों के क्षेत्र में भी अपनी व्यापक दृष्टि और उन प्राथमिकताओं के ज्ञान के द्वारा, जिनके अन्तर्गत नीतियों का संचालन होता है, सहायक सिद्ध हो सकते हैं। इस उद्देश्य की सिद्धि के लिये राज्य-विधान-मंडलों और संसद के सदस्यों को, चाहे वे किसी भी दल के सदस्य क्यों न हों, अपने क्षेत्रों की गैर-सरकारी विकास कमेटियों में स्थान दिया जाना चाहिये।

क्षेत्रीय समन्वय और जिला प्रोग्रामों की देखरेख

१०. क्षेत्रीय समन्वय और जिले के काम की देखरेख के लिये एक ऐसे अधिकारी की आवश्यकता है जो कि सचिवालय के विभागों और ज़िला अफसर के बीच की कड़ी बन सके। यह अफसर किसी विशेष क्षेत्र में रहे, जैसे कि पहले कमिश्नर रहा करते थे, अथवा वह राज्य सरकार के सदर मुकाम में रहे,जैसे कि इस समय माल के महकमे के सदस्य रहते हैं। यह ऐसा मामला है जिस पर स्थानीय रूप से ही विचार और निर्णय हो सकता है और किसी निश्चित नमूने पर इसे नहीं बताया जा सकता। लेकिन ऐसे अफसर को शासन-सम्बन्धी विस्तृत कार्यों से मुक्त होना चाहिये और अपने ही क्षेत्र में शासन और विकास सम्बन्धी कार्यों की ओर सारा ध्यान देना चाहिये। ऐसे अफ़सर के होने से विशेष समस्याओं के हल करने में, जिन की ओर बहुत अधिक भारग्रस्त जिलाधीश ध्यान और यथेष्ट समय नहीं दे पाते, बड़ी सुविधा हो जायगी और विशेष परिस्थितियों का सामना आसानी से किया जा सकेगा। इस प्रबन्ध की ज़रूरत इसलिये और भी बढ़ जाती है कि बहुत से कलेक्टर अपेक्षाकृत नये हैं और अगर उनको ऐसे समय पर व्यक्तिगत रूप से दिशा-दर्शन प्राप्त हो जाता है तो आने वाले वर्षों में वे न केवल अच्छी सफलता प्राप्त करेंगे बल्कि अपने अधीन जूनियर अफसरों को अधिक अच्छी ट्रेनिंग भी दे सकेंगे।

समाज सेवा संगठन और जिला प्रशासन

११. अतीत काल में शासन के मामले में समाज सेवा संगठनों को कोई भाग नहीं मिला है। लेकिन अगर गैरसरकारी लोगों या गैरसरकारी संस्थाओं के सहयोग और नागरिक सेवा की भावना का अधिक से अधिक लाभ उठाया जाय तो जिला प्रशासन सम्बन्धी एक भी ऐसा कार्य क्षेत्र नहीं है जिसमें अधिक अच्छे परिणाम प्राप्त न हो सकें। विशेष रूप से गांव-पंचायतों और सहकारी समितियों को उनके विविध कार्यों के संचालन के लिये समाज सेवा संगठनों द्वारा कार्यकर्ता प्राप्त हो सकते हैं। वर्तमान समय में अवसर के अभाव से इस प्रकार के संभावनाओं से पूर्ण आदर्शवादी लोगों की शक्ति का अपव्यय हो रहा है। जब इस प्रकार की समाज-सेवी संस्थाएँ बढ़ जायेंगी जो कि कार्यकर्ताओं को ट्रेनिंग देंगी और प्रोग्रामों के संचालन का भार ग्रहण करेंगी, तो विशेष क्षेत्रों में उनकी सहायता से बड़ा काम हो सकेगा। ऐसी संस्थाओं को ट्रेनिंग के लिये खर्च का प्रबन्ध करने और कार्यकर्त्ताओं को पैसे देने के लिये उपयुक्त आर्थिक सहायता दी जा सकती है। इस प्रकार की समाज-सेवी संस्थाओं के साथ सहयोग के द्वारा गैरसरकारी नेतृत्व के विकास में, विशेष रूप से देहाती क्षेत्रों में, बड़ा काम हो सकता है।

—:o:—

अध्याय ८

राष्ट्रीय विकास में जनता का सहयोग

लोकतन्त्रात्मक आयोजन

जिस लोकतन्त्र का संचालन सामाजिक हित के उद्देश्यो को लेकर होता है उसको अपना आधार जनता की ऐच्छिक स्वीकृति को बनाना होता है, न कि राज्य की दण्ड-शक्ति को। इसके परिणामस्वरूप समाज-सेवा-कार्यों की प्रत्येक अवस्था में सहयोग के सिद्धान्त को लागू करना होता है। यह सिद्धान्त उन सब कार्यों पर भी लागू होता है जिनका उद्देश्य सब की भलाई के लिये होने वाले कामों में लोगों को मिले-जुले रूप में लगाना हो। इस प्रकार वास्तव में राष्ट्रीय विकास और जनता का सहयोग समान अर्थ के सूचक शब्द हो जाते हैं।

२. अभी तक आयोजन का विचार अधिकांशतः ऐसी दशाओं के साथ सम्बन्धित रहा है जिनके अन्तर्गत एक समूह ने अपने हाथों में किसी जाति के जीवन का नियन्त्रण और नियमन ले रखा था और किसी देश के जन-साधनों और सम्पत्ति का दिशा-दर्शन तथा नियन्त्रण ऐसे समूह के हाथ मे रहता था। इस एकात्मक दिशा-दर्शन का स्थान किसी लोक-तन्त्रात्मक व्यवस्था के अन्तर्गत क्या चीज ले सकती है? इस बात पर विचार करते हुए कि लोकतन्त्र में कार्य संचालन का आधार बटी हुई सत्ता और पार्टियां होती हैं जिन के उद्देश्य अनिश्चित होते हैं और जो विभिन्न प्रकार के विरोधी हितों और उद्देश्यों को एक मे मिलाने की कोशिश करते हैं, कोई भी योजना शायद आगे न बढ सके। लेकिन जो लोग लोकतन्त्र में विश्वास रखते हैं उनके अन्दर एक समान सामाजिक दृष्टिकोण का विकास हो रहा है, जिसके अनुसार प्रगति का मूल्यांकन सामाजिक न्याय के शब्दों में हो रहा है और ऐसी सामाजिक व्यवस्था पर बल दिया जा रहा है जिसके अन्तर्गत आर्थिक भेद-भावों को अधिक से अधिक कम किया जायगा, सभी को समान रूप से अवसर प्रदान किया जायगा और जब तक कोई अधिकार या हित महान् सामाजिक उद्देश्य की सेवा नहीं करता तब

तक उसे कायम नहीं रखा जायगा। यही वह चीज है जो एक राष्ट्रीय योजना का आधार बनेगी और इस का सम्बन्ध पार्टियों के प्रोग्रामों से न होगा और इस के द्वारा वस्तुतः देश के अन्दर सामाजिक एकता बहुत अधिक बढ़ जायगी। सम्भव है कि पंचवर्षीय योजना को कुछ लोग स्वीकार न करें, और यह भी संभव है कि किसी वर्ग-विशेष के लिये सफलताओं का जो लक्ष्य रखा गया है उसे देखते हुए उस वर्ग की आशायें बहुत बढी-चढी हुई हों, लेकिन अगर विकास की दिशा जनता के बड़े भाग की आशाओं के अनुकूल है और प्रगति की रफ्तार बहुत कम नहीं है तो जनता का सहयोग प्राप्त करने की शर्तों को पूर्ण समझा जायगा।

जनता से सम्पर्क

३. योजना की पूर्ति के लिये एक अनिवार्य शर्त यह है कि उसे व्यापक रूप से समझा जाय। इस प्रकार प्रत्येक व्यक्ति को, चाहे वह स्त्री हो या पुरुष, यह समझ में आ जायेगा कि उसे सम्पूर्ण राष्ट्र की सेवा में क्या भाग लेना है, और किस प्रकार विभिन्न दिशाओं में होने वाली प्रगति परस्पर सम्बन्धित है और किस प्रकार एक दिशा में होने वाले प्रयत्न के द्वारा अन्य दिशाओं में मजबूती आती है तथा प्रयत्न के लिये उत्साह मिलता है। इसलिये पंचवर्षीय योजना को हर घर तक जनता की भाषा में और प्रतीकों में पहुँचना है। सभी प्राप्त उपायों द्वारा इस कार्य को करना है और रेडियो, चलचित्र, संगीत और नाटक आदि के अतिरिक्त लिखित और बोले गये शब्दों के द्वारा यह कार्य होना है। इस उद्देश्य के लिये यह जरूरी है कि सहकारी कार्य का ऐसा प्रोग्राम संगठित किया जाय जिसके अन्तर्गत अखबार, लेखक और कलाकार, विश्वविद्यालय और शिक्षा संस्थाएँ तथा गांव के स्कूल, और वे सब संस्थाएँ जो व्यावसायिक व अन्य हितों का प्रतिनिधित्व करती हैं, जनता द्वारा चुने गए प्रतिनिधियों और सरकारी कर्मचारियों के साथ मिलकर सम्पूर्ण देश में एक साथ काम करें।

४ जब कि राष्ट्रीय उद्देश्यों और प्रोग्रामों की आम जानकारी जरूरी है, औसतन एक नागरिक उन कार्यों को अधिक अच्छी तरह समझता और उनमे अधिक अच्छा योगदान देता है जिनका निकट सम्बन्ध उसके अपने जीवन और भलाई से होता है। इसलिये यह बात सबसे अधिक

महत्वपूर्ण है कि राष्ट्रीय और राज्य योजनाओं को जिला, कस्बा और गांव के आधार पर बनाई गई स्थानीय इकाइयों में बांटा जाय। यह कार्य आरम्भ हो चुका है और इसे तेजी से पूरा होना चाहिये। ऐसा हो जाने पर योजना देश के प्रत्येक भाग में रचनात्मक कार्य का केन्द्र-बिन्दु बन जायगी और स्वयं जनता के प्रयत्न द्वारा उसकी मजबूती और उसका विकास होगा। इस प्रकार जनता योजना में साझीदार बन जायगी और प्रत्येक अवस्था में उसके निर्माण और संचालन में जनता का निकट सहयोग प्राप्त होता रहेगा।

शासन का कार्य

१. आयोजित राष्ट्रीय विकास के लिये ही यह आवश्यक है कि सरकार जनता के सहयोग और सम्पर्क की जिम्मेवारी अपने ऊपर ले और यह सहयोग विशेष रूप से सरकारी कर्मचारियों और जनता के बीच होना चाहिये। इस लिये यह बात बडे ही महत्व की है कि शासन योग्यता पूर्वक हो। अगर उस स्तर पर, जहां कि नागरिक शासन से सम्बन्ध रखता है, उसे भ्रष्टाचार, विलम्ब और अयोग्यता देखने को मिलती है और वह समाज का शोषण करने वाले समाज-विरोधी तत्वों के विरुद्ध किसी प्रकार के कदम उठाये जाते हुये नहीं पाता और ऐसे तत्व उसे हानि पहुँचा कर स्वयं लाभ उठाते हैं, तो ऐसी दशा में जनता के उत्साह को जागृत करना और उसके क्रियाशील समर्थन को प्राप्त करना कठिन हो जायगा। अतीत काल की कुछ परिस्थितियों के कारण अभी इस बात का अनुभव पूरी तरह नहीं किया जा रहा कि जनता और शासन के उद्देश्यों के बीच एकता होनी चाहिये। इस बात को साफ-साफ अनुभव करना होगा और इस कमी को दूर करना होगा। शासन में योग्यता और ईमानदारी का होना बहुत ही अधिक महत्वपूर्ण, है लेकिन जनता के उत्साह को जागृत करने के लिये यह भी बहुत जरूरी है कि विभिन्न स्तरों पर अधिकारी-वर्ग और आम जनता के बीच सम्बन्ध अच्छे रहें। प्रत्येक सरकारी कर्मचारी के आचरण सम्बन्धी नियमों का यह आवश्यक अंग है कि वह कर्मचारी चाहे जिस वर्ग का हो उसे प्रत्येक नागरिक के साथ शिष्टता और समझ-दारी का व्यवहार करना चाहिये और उसे यह विश्वास दिलाना चाहिये कि जहाँ तक कानून और शासन का सम्बन्ध है, सभी नागरिकों को समान अधिकार प्राप्त हैं। जनता से एक ही उद्देश्य के लिये समान-धर्मी साथी के

रूप में व्यवहार करके, विशेषाधिकारों और विशेष दर्जे की बात को अस्वीकार करके और हर चीज़ को सीखने और सहायता प्राप्त करने तथा सहायता देने की इच्छा को प्रकट करके वे सब लोग जो कि शासन के कार्य में लगे हुये हैं ऐसी परिस्थितियों के निर्माण में उल्लेखनीय योग दे सकते हैं, जिनके अन्तर्गत सार्वजनिक सहयोग का विकास हो सकता है।

प्रोग्रामों में जनता का भाग

६. पंचवर्षीय योजना में निर्धारित लक्ष्यों की तुलना में उसके उद्देश्य कहीं अधिक विस्तृत हैं। इसलिये यह बहुत जरूरी है कि ऐसी दशाओं का निर्माण किया जाय जिससे कि योजना के उद्देश्यों को आगे बढ़ाने और प्रोग्रामों को बनाने तथा उनको कार्यान्वित करने के कार्य में प्रत्येक व्यक्ति और समूह अपना अधिक से अधिक योग दे सके। देहाती क्षेत्रों में जनता के सहयोग को अधिकाधिक प्राप्त करने का सबसे महत्वपूर्ण तरीका यह है कि पंचायतों और सहकारी समितियों के द्वारा गांव-विकास के कार्य को सफल बनाया जाय। उपर्युक्त संस्थाओं के निर्माण के द्वारा ही किसानों को आर्थिक तथा सामग्री की सहायता देकर सामाजिक कल्याण के कार्य को पूरा किया जा सकता है और सामाजिक तथा आर्थिक भेदभाव को मिटाया जा सकता है। इस कार्य के लिये बहुत बड़ी संख्या में विस्तार कार्यकर्ताओं तथा गैर-सरकारी समाज-सेवकों की आवश्यकता होगी। जहां तक सिंचाई सम्बन्धी योजनाओं का सवाल है, उनकी सफलता पर ही बहुत हद तक पंचवर्षीय योजना की सफलता निर्भर है और इस दिशा में आशाजनक उन्नति इस प्रकार हो सकती है कि गांवों में मज़दूरों की सहकारी समितियां बनें और वे पास-पड़ोस में नई नहरों को खोदने का काम शुरू करें।

७. ग्राम-उद्योगों का विकास भी, जो देहात में बेरोज़गारी को दूर करने के लिये जरूरी है, सहकारी संगठनों की प्रगति पर निर्भर है। सामाजिक सेवा के क्षेत्र में भी यह निश्चित बात है कि जब तक समाज का क्रियाशील समर्थन बहुत हद तक प्राप्त न होगा तब तक राज्य अपने उत्तरदायित्व का बहुत छोटा अंश ही पूर्ण कर सकेगा और अगर सामाजिक कल्याण के कार्य को केवल सरकारी साधनों पर छोड़ दिया जायगा तो बहुत सी बातें अपूर्ण रह जाएँगी। इसलिये जनता को होने वाले

कष्टों के अधिकांश भाग को जनता के ऐच्छिक कार्यों द्वारा ही दूर करना होगा। वास्तव में यहां तक कहा जा सकता है कि जब तक शहरी और देहाती जनता स्वयं ही अपने लिये आवश्यक सुविधाओं और सेवाओं के सम्बन्ध में अधिकाधिक जिम्मेवारी ग्रहण न करेगी, जिसमें कि सरकार का भी कुछ सहयोग रहेगा, तब तक सामाजिक कल्याण की दिशा में प्रगति धीमी और नाकाफ़ी रहेगी।

जन-शक्ति सम्बन्धी साधन

८. आयोजित प्रयत्न की दिशा में बहुत अधिक गुंजाइश इस बात की है कि ऐच्छिक आधार पर लोगों के समय और कुशलता को, जिसका कि अभी उपयोग नहीं हो रहा है, तथा अन्य बेकार साधनों को काम में लगाया जाय और समाज के लिये तथा समाज के कमज़ोर हिस्सों के लिये इस प्रकार के आर्थिक और सामाजिक लाभ प्रस्तुत किये जायें जो कि अन्य किसी उपाय से प्राप्त नहीं किये जा सकते। देहाती क्षेत्रों में ऐच्छिक सेवा के द्वारा पानी की प्राप्ति के साधनों का निर्माण और मरम्मत हो सकती है, सड़कें और स्कूलों की इमारतें बन सकती हैं और अधिक अच्छी सफ़ाई के कार्य किये जा सकते हैं तथा इसी प्रकार के अन्य आवश्यक कार्य भी किये जा सकते हैं जो कि यथेष्ट आर्थिक साधनों के अभाव में राज्य द्वारा शायद वर्षों तक न किये जा सकें। अभी इस प्रकार के ऐच्छिक कार्य केवल छुटपुट रूप में देश में यत्र तत्र हो रहे हैं और इनको देखते हुये इस बात की बहुत अधिक सम्भावना प्रतीत होती है कि स्थानीय विकास के लिये जन-शक्ति के साधनों को लगाने के लिये सभी प्रकार के देहात के कार्यों को बहुत आगे बढ़ाया जा सकेगा। ग्राम निवासी अपने ही प्रयत्नों से जितना अधिक काम करेंगे उतना ही अधिक सरकार के लिये यह सम्भव होगा कि वह उनको सहायता दे। सामूहिक विकास योजनाओं का मुख्य उद्देश्य यही है कि स्वयं जनता द्वारा होने वाले काम से गांव के जीवन को नये सिरे से ढाला जाय। योजना के अन्तर्गत खेती-बाड़ी और सिंचाई के विकास के लिये रकमों की व्यवस्था के अतिरिक्त १५ करोड़ रुपये की व्यवस्था देहात की आबादी को ऐसे कामों में सहायता देने के लिये की गई है जिनकी तत्काल आवश्यकता है और जिनकी पूर्ति देहात के निवासी स्वयं अपने श्रम के द्वारा करेंगे।

जन-सहयोग सम्बन्धी एजेंसियां

९. ज़िला बोर्डों और म्यूनिसिपल कमेटियों जैसी स्थानिक स्वशासन संस्थाओं के द्वारा, जिनका कार्य कमेटियों के जरिये से होता है, स्थानीय आवश्यकताओं की पूर्ति में सहयोग का कार्य बहुत लाभदायक हो सकता है। लेकिन केवल यही आवश्यक नहीं कि जो लोग स्थानिक संस्थाओं के लिये चुने गये हैं, वे ही एक दूसरे से सहयोग रखें। उन लोगों को नागरिकों के सहयोग और सहायता की ओर भी देखना चाहिये। उदाहरणार्थ, किसी म्यूनिसिपल संस्था की शिक्षा समिति या स्वास्थ्य समिति यह कर सकती है कि वह किसी कस्बे के विभिन्न क्षेत्रों या वार्डों में उपसमितियां स्थापित करे। इसके बाद प्रत्येक ऐसे क्षेत्र में सावधानी के साथ ऐसे प्रोग्राम बनाये जा सकते हैं जिनमें अधिक से अधिक लोगों का क्रियाशील समर्थन और रुचि हो।

१०. राष्ट्रीय विकास में इस प्रकार के एसोसियेशनों या संस्थाओं का भी बड़ा भाग होता है जो कि धंधों के आधार पर बनाये जाते हैं, जैसे कि डाक्टरों, वकीलों, शिक्षकों, समाज-सेवियों, टेक्नीशियनों और प्रशासकों की समितियां या संस्थायें। इन संस्थाओं के अन्तर्गत राष्ट्र की प्रतिभा और ज्ञान का बड़ा महत्वपूर्ण भाग मिलता है और वे जो कुछ भी कार्य करती हैं वह मुख्यतः समाज के हितों के पूर्णतः अनुकूल होता है। परन्तु उन्हें ऐसे मानदण्डों की स्थापना करनी होती है जिनके अनुसार प्रत्येक धन्धे के सदस्यों का आचरण बने और क्रमशः उस मानदण्ड में सुधार करना होता है। ऐसे लोगों के लिये यह भी सम्भव होना चाहिये कि वे कल्याण सम्बन्धी कार्यक्रमों को संगठित करें, विशेष रूप से ऐसे कार्यों को, जिनके द्वारा किसी विशेष धंधे के सदस्य अपने धन्धे के द्वारा समाज की उन्नति कर सकें।

११. धन्धों या व्यवसायों में प्रायः ऐसे व्यक्ति प्रविष्ट होते हैं जो विश्वविद्यालयों में शिक्षा प्राप्त कर चुके हैं, और ये विश्वविद्यालय राष्ट्रीय विकास की दिशा में अद्वितीय योग दे सकते हैं। दिनों दिन इस बात को महसूस किया जा रहा है कि सरकारी नीति उसी हद तक उपयुक्त होती है जिस हद तक वह रचनात्मक चिन्तन और सुनिश्चित तथ्यों पर आधारित होती है और इन्हीं दिशाओं में विश्वविद्यालय प्रकाश-स्तम्भ का कार्य कर सकते हैं। पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत

इस बात का प्रबन्ध किया गया है कि सरकार और विश्वविद्यालयों के बीच गवेषणा के सम्बन्ध में पारस्परिक सहयोग हो; विशेष रूप से आर्थिक क्षेत्र में सरकार को नये नये लोगों की प्राप्ति के लिये अधिकांशतः विश्व-विद्यालयों की ओर देखना होता है। हाल के वर्षों में शिक्षा के स्तर में जो गिरावट आई है और जिसकी ओर बहुत से प्रेक्षकों का ध्यान गया है उसके कारण समाज को बडी चिन्ता हो गई है और यह विश्वविद्यालय की शिक्षा के विभिन्न क्षेत्रों में नेतृत्व करने वालों के लिये एक चुनौती है। विश्वविद्यालय विस्तार विभागों की स्थापना करके और अपने ट्रेनिंग पाठ्यक्रमों के अंग के रूप में क्षेत्रीय कार्यों के प्रोग्रामों का विकास करके सार्वजनिक सहयोग की एजेंसियों के रूप में अपनी स्थिति को मज़बूत कर सकते हैं।

१२. राष्ट्रीय योजना के कार्यक्षेत्र का बहुत अधिक विस्तार उन ऐच्छिक संगठनों द्वारा हो सकता है जो सामाजिक कार्यों में लगे हुये हैं। ऐसे संगठन अपने कार्यों को बढ़ा कर, रचनात्मक कार्य करने की इच्छा रखने वाले पढ़े-लिखे स्त्री-पुरुषों को बड़ी संख्या में समाज सेवा की ओर आकर्षित करके और उन सामाजिक समस्याओं को उठा कर, जिनके लिये राज्य द्वारा यथेष्ट व्यवस्था नहीं की जा सकती, यह कार्य कर सकते हैं। ऐच्छिक संगठन विशेष रूप से समाज के तीन महत्वपूर्ण वर्गों के लिये रचनात्मक कार्यों का क्षेत्र विकसित कर सकते हैं। ये वर्ग हैं, महिलायें, नौजवान तथा शिक्षक और विद्यार्थी। इन तीनों ही वर्गों का अपना बड़ा महत्व है और अभी इस बात को बहुत कम महसूस किया गया है कि रचनात्मक कार्यों के लिये इनमें कितनी क्षमता है। इन्हीं संभावनाओं को दृष्टि में रख कर पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत केन्द्रीय सरकार द्वारा ऐच्छिक संगठनों को ४ करोड़ रुपये की सहायता और विद्यार्थियों की श्रम सेवाओं तथा नौजवान शिविरों को एक करोड रुपये की सहायता देने की व्यवस्था है।

१३. जनता के सहयोग को प्राप्त करने के लिये विकास कमेटियों, योजना सलाहकार कमेटियों आदि में तथा ज़िला प्रशासन और सामूहिक विकास योजनाओं में गैर-सरकारी प्रतिनिधियों का सहयोग बड़े महत्व का सिद्ध हो सकता है। इस सहयोग का विस्तार करने के लिये व्यावहारिक कार्य के अवसर अधिकाधिक बढ़ाने चाहिये और ऐच्छिक संगठनों

को यह अवसर देना चाहिये कि वे उपर्युक्त कार्यों में अपना योग दे सकें। ऐच्छिक कार्य के क्षेत्र का विस्तार करने से न केवल खर्च में कमी होगी, बल्कि सरकारी कर्मचारियों को अवकाश मिल जायगा कि वे मुख्यतः उन्हीं कार्यों को करें जिनका करना शासन के लिये बिल्कुल जरूरी है।

भारत सेवक समाज

१४. राष्ट्रव्यापी आधार पर जनता के सहयोग को प्राप्त करने के लिये हाल में जो कदम उठाये गये हैं, उनके अन्तर्गत महत्वपूर्ण कार्य भारत सेवक समाज की स्थापना और अगस्त सन् १९५२ में सार्वजनिक सहयोग के लिये राष्ट्रीय सलाहकार कमेटी की स्थापना है। राष्ट्रीय सलाहकार कमेटी देश के विभिन्न मत रखने वाले वर्गों का प्रतिनिधित्व करती है। उसका कार्य राष्ट्रीय योजना की पूर्ति के सम्बन्ध में जनता के सहयोग की दिशा में प्रगति और प्रोग्रामों की जांच करना होगा। इस कमेटी को भारत सेवक समाज के केन्द्रीय बोर्ड से रिपोर्टें प्राप्त होंगी और उक्त बोर्ड को वह अपने सुझाव देगी।

१५. भारत सेवक समाज उन सब लोगों के लिये एक समान मंच प्रस्तुत करता है जो राष्ट्रीय योजना के सम्बन्ध में समय और शक्ति देना चाहते हैं तथा जनता के प्रयत्नों का विकास करना चाहते हैं। साथ ही उसका उद्देश्य वर्तमान ऐच्छिक संगठनों का विकास करने में सहायक बनना भी है। 'समाज' के मुख्य उद्देश्य निम्नलिखित हैं :—

(१) निम्नलिखित उद्देश्यों की पूर्ति के लिये भारत के नागरिकों को ऐच्छिक सेवा के मार्ग बताना और उनका विकास करना :

(क) राष्ट्रीय आत्म-निर्भरता का विकास और देश की आर्थिक शक्ति का निर्माण;

(ख) समाज की भलाई का विकास और समाज के अपेक्षाकृत उपेक्षित वर्गों की गरीबी और कठिनाई को मिटाना; और

(२) जनता के समय, शक्ति और अन्य ऐसे साधनों का उपयोग करना जिनका उपयोग अभी नहीं हो रहा, और उन्हें

सामाजिक और आर्थिक कार्यों के विभिन्न क्षेत्रों की ओर लगाना।

समाज का कार्य, जो कि राष्ट्रव्यापी आधार पर किया जा रहा है, अभी संगठन की आरम्भिक अवस्था में है।

—:०:—

भाग ३

विकास का प्रोग्राम

अध्याय ६

कृषि अर्थ-व्यवस्था की स्थिति

१. भूमि इस देश की सबसे अधिक मूल्यवान सम्पत्ति है। अधिकतर लोग उससे ही जीविका प्राप्त करते हैं। भूमि राष्ट्रीय आय का मुख्य साधन है। इसलिये, आर्थिक विकास की किसी भी योजना में खेती के विकास और उसके आधुनिकीकरण के उपायों को मुख्य स्थान मिलना चाहिए।

२. देश का कुल क्षेत्रफल ८१ करोड़ १० लाख एकड़ है। इसमें से १६ करोड़ ६० लाख एकड़ जमीन के बारे में कोई आंकड़े प्राप्त नहीं हैं। बाकी ६१ करोड़ ५० लाख एकड़ भूमि इस प्रकार बँटी हुई है :—

	लाख एकड़	कुल का प्रतिशत
(१) जंगल	९३०	१५
(२) कुल भूमि जिस पर खेती होती है	२६०६	४३
(३) वर्तमान परती ज़मीन	५८०	६
(४) खेती योग्य बेकार भूमि	६८०	१६
(५) ज़मीन जो खेती के लिए उपलब्ध नहीं है	६६०	१६
कुल	६१५०*	१००

खेती वाले इलाकों (नं० २ और नं० ३) का क्षेत्रफल ३२ करोड़ ४० लाख एकड़ है। फसल वाले इलाकों का कुल क्षेत्रफल कोई ३१ करोड़ ७० लाख एकड़ है, जिसमें से ७८ प्रतिशत जमीन में अनाज, १७ प्रतिशत जमीन में व्यापारिक फसलें होती हैं, १·१ प्रतिशत जमीन में बगीचे हैं और मसालों और गरम मसालों की खेती की जाती है। भारत के विदेशी व्यापार में मसालों का बड़ा महत्त्व है।

३. कुछ महत्त्वपूर्ण राज्यों के पिछले चालीस वर्षों के खेती सम्बन्धी आंकड़ों का अध्ययन करने से खेती की दो मुख्य बातों का पता चलता है, जो इस प्रकार हैं :—(१) एक साथ दो फसलें बोने के कारण फसल वाले कुल इलाके मे वृद्धि हुई है; फिर भी पिछले चालीस वर्षों में

* इसमे ३५ लाख एकड़ अवर्गीकृत क्षेत्र भी सम्मिलित है।

गाँवों में आबादी बढ़ जाने के बावजूद भी, बहुत कम नई ज़मीन पर खेती की गई है; और (२) यद्यपि अधिकतर इलाके में छोटे-छोटे खेतों में खेती की जाती है, फिर भी कीमतों में फेर-बदल होने से फसलों पर असर पड़ता है।

बहुत कम बेकार भूमि पर खेती की गई है। इससे ऐसा मालूम पड़ता है कि किसान इस जमीन को खेती योग्य बनाने में अपने को असमर्थ पाता है। इससे यह भी पता चलता है कि इस काम के लिए सरकार द्वारा संगठित रूप से प्रयत्न करने की ज़रूरत है।

उपज की प्रवृत्तियां

४. उपज के बारे में सरकारी आंकड़ों से पता चलता है कि जहाँ तक व्यापारिक फसलों का सम्बन्ध है, जमीन की प्रति एकड़ उपज मे थोड़ी वृद्धि हुई है। लेकिन अनाज की उपज के बारे में ऐसी कोई वृद्धि नहीं हुई, हालांकि सिचाई की सुविधाओं में वृद्धि हुई है और सरकार ने और दूसरे उपाय भी किये हैं। इन आंकड़ों पर अधिक विश्वास नहीं करना चाहिए क्योंकि इनका कोई वैज्ञानिक आधार नही है। इन आंकड़ों से शासकीय कार्रवाई में सहायता अवश्य मिल सकती है। सन् १९४४ के बाद से, उपज का अनुमान लगाने के बारे मे एक वैज्ञानिक तरीका शुरू किया गया है और समय आने पर इस तरीके से दीर्घकालीन प्रवृत्तियों के बारे में महत्त्वपूर्ण और विश्वसनीय आंकड़े प्राप्त किये जा सकेंगे।

पूर्ति और आवश्यकतायें

५. पिछले चालीस वर्षों में ३९ प्रतिशत आबादी बढ़ गई, जब कि उत्पादन में इसी अनुपात से वृद्धि नहीं हुई। इसका मतलब यह हुआ कि प्रति व्यक्ति के लिए देश में पैदा होने वाले अनाज की मात्रा पहले से कम हो गई है। खाद्य स्थिति के खराब होने के और भी कई कारण हैं। बर्मा को भारत से पृथक् करने के कारण देश की खेती की उपज मे १३ लाख टन की कमी हुई और सन् १९४७ में देश का बँटवारा होने से खेती की उपज ७ लाख ७० हज़ार टन और भी कम हो गई। इस कमी को पूरा करने के लिए बाहर से अनाज मँगवाना पड़ा। सन् १९४८ में कोई २८ लाख टन; सन् १९४९ में ३७ लाख टन; सन् १९५० में

२१ लाख टन और सन् १६५१ में ४७ लाख टन अनाज विदेशों से मँगाया गया।

६. खेती सम्बन्धी आंकड़ों के ठीक-ठाक न होने के कारण अनाज की कुल कमी का निश्चित अनुमान लगाना कठिन है। ऐसा मालूम पड़ता है कि सन् १६५० में देश के भीतर पैदा होने वाला अनाज जरूरत से ३० लाख टन कम था, और अगर अनाज की खपत की रफ़्तार पहले जैसी ही रहे, अर्थात् १३'७१ औंस प्रति व्यक्ति प्रति दिन, और उत्पादन न बढ़े तो सन् १६५५-५६ तक यह अन्तर ६७ लाख टन तक पहुँच जाएगा। जहाँ तक दालों का संबन्ध है, इस समय प्रत्येक बालिग के भाग में २'१ औंस दाल प्रतिदिन पड़ती है, जबकि 'पौष्टिक तत्त्वों के बारे में सलाह देने वाली कमेटी ने संतुलित भोजन के अंतर्गत ३ औंस दाल की सिफारिश की है। यदि वर्तमान मात्रा में दाल की खपत होती रही, तो अनुमान है कि सन् १६५५-५६ तक कोई ५ लाख टन दाल की और जरूरत होगी और पौष्टिक भोजन के स्तर तक पहुँचने के लिए कोई ४० लाख टन दाल की और जरूरत होगी। चीनी, तेल और चिकनाई जैसी चीज़ों के बारे में भी इसी तरह का अंतर पाया जाता है।

जहाँ तक व्यापारिक फसलों का संबन्ध है, अनुमान है कि भारत को सन् १६५५-५६ में ५३ लाख गांठ रूई की जरूरत होगी। जबकि इस समय २६ लाख ७० हज़ार गांठ रूई पैदा होती है। सन् १६५५-५६ में ७२ लाख गांठ जूट की जरूरत होगी जबकि इस समय ३३ लाख गांठ जूट पैदा होता है। इन आंकड़ों से यह पता चल जाता है कि वर्तमान अंतर को दूर करने के लिए खेती की उपज बढ़ाने की बड़ी जरूरत है।

चाय, काफी और रबड़

७. चाय, काफी और रबड़ के बगीचे वाला इलाका, फसल वाले इलाके के ०'४ प्रतिशत से भी कम है। ये बगीचे मुख्यतः देश के उत्तर पूर्व की घाटियों और दक्षिण-पश्चिमी समुद्र-तट के साथ-साथ हैं। इन बगीचों में दस लाख से अधिक परिवार काम कर रहे हैं और इनसे देश के लिए कोई ८० करोड़ रुपये की विदेशी मुद्रा प्राप्त होगी। इसमें से ७८ करोड़ रुपये की विदेशी मुद्रा सिर्फ चाय से प्राप्त होती है। चाय के बगीचों के बारे में एक महत्त्वपूर्ण बात यह है कि चाय वाले इलाकों में

पिछले दस वर्षों में अन्तर्राष्ट्रीय समझौतों के कारण कमी-बेशी नहीं हुई, फिर भी इस समय के अन्दर चाय के उत्पादन में ४३ प्रतिशत की बढ़ोतरी हुई है। काफी और रबड़ जो पहले बाहर भेजी जाया करती थी, अब अधिकतर देश को जरूरतों को पूरा करने में ही लग जाती है। सन् १९४५ के बाद से रबड़ का उत्पादन कम हो गया है। इसका एक कारण यह है कि पुराने बगीचों में रबड़ पहले से कम पैदा हुई। रबड़ के बगीचों की विकास समिति ने रबड़ उद्योग के विकास के बारे में एक पन्द्रह वर्षीय योजना तैयार की है। आशा है, इससे रबड़ का उत्पादन बहुत बढ जायगा।

मसाले और गरम मसाले

८. काली मिर्च, इलायची और काजू बाहर भेजी जाने वाली चीजें हैं। सन् १९५०-५१ में इनसे क्रमशः २० करोड़ रुपये, १.५ करोड़ रुपये और ६ करोड रुपये की विदेशी मुद्रा प्राप्त हुई, जब कि युद्ध से पहले इनसे प्रति वर्ष ३ लाख रुपये की विदेशी मुद्रा प्राप्त होती थी। इनकी कीमत काफी बढ़ जाने के बावजूद भी इन चीजों की खेती वाले इलाकों में कोई कमी-बेशी नहीं हुई। दूसरे बगीचा-उद्योगों की तरह इनको संगठित भी नहीं किया गया। यहां तक कि निर्यात की जाने वाली चीजों का अक्सर वर्गीकरण नहीं किया जाता जिससे कि अक्सर ऐसा नुकसान हुआ है जिसे रोका जा सकता था। भारत सरकार ने इन फसलों की जांच करने के लिए हाल में ही एक कमेटी बनाई है। यह कमेटी विशेष रूप से इस बात पर विचार करेगी कि इनके उत्पादन और बिक्री की व्यवस्था को एक संगठन के अधीन लाया जा सकता है या नहीं।

९. भारत में खेती की स्थिति की मुख्य-मुख्य बातों के इस संक्षिप्त विवरण में खेती की उपज पर विशेष ध्यान देने की जरूरत थी। यह खेती की हालत का सिर्फ एक ही पहलू है। खेती के विकास पर विचार करते समय किसान के जीवन और उसकी समस्याओं पर ध्यान देने की जरूरत है। इसका उद्देश्य व्यापक कार्रवाई द्वारा किसान के दृष्टिकोण और उसकी परिस्थिति को बदल देना होना चाहिये। भूमि के स्वामित्व को लेकर देश में जो सामाजिक ढाचा बनकर तैयार हो गया है, उसमें परिवर्तन करने की बड़ी जरूरत है। साथ ही, यह भी बड़ा जरूरी हो गया है कि दिन प्रतिदिन के काम में नये साधनों और टैकनीकल ज्ञान से लाभ उठाया

जाय। योजना का उद्देश्य यह है कि सामाजिक व्यवस्था में इस तरह की फेर-बदल की जाय कि अर्थ व्यवस्था का सन्तुलित रूप से विकास हो। इस सम्बन्ध में समाज के विकास, उत्पादन-वृद्धि और उचित वितरण का मुख्य रूप से ध्यान रखना होगा। बाद के अध्यायों में इस मुख्य बात के भिन्न-भिन्न पहलुओं की चर्चा की गई है।

—:०:—

अध्याय १०

सहकारिता आन्दोलन का विकास

अन्य देशो की भांति भारत में भी सहकारिता का विकास अपेक्षाकृत साधनहीन नागरिकों को ऐसी सुविधाएं देने के लिए हुआ, जिन्हे अधिक अच्छी स्थितिवाले लोग अपने निजी साधनों के बल से प्राप्त कर सकते थे। सहकारिता न केवल जनसाधारण के आर्थिक कष्टों के विरुद्ध एक प्रभावशाली उपाय है, बल्कि इस से उन में आत्मनिर्भरता की दृढ़ भावना का भी उदय होता है। अपने तजुर्बे और जानकारी को केन्द्रीभूत करके तथा एक दूसरे की मदद से वे न केवल अपनी व्यक्तिगत समस्याओं को हल ही कर सकते हैं, बल्कि अच्छे नागरिक भी बन सकते हैं।

२. सन् १६०४ में प्रथम सहकारी-समिति कानून बन जाने के बाद, भारत मे न केवल सहकारिता के प्रकारो तथा विषयों में विस्तार हुआ, बल्कि इसने धीरे-धीरे सामाजिक नियमन की दिशा में भी एक खास महत्त्व का स्थान प्राप्त किया। उस काल में जब कि व्यक्तिवाद का बोल-बाला था, सहकारी कार्यों का रूप अलग-अलग नागरिकों द्वारा अपने बचाव के लिए सगठन-बद्ध होना था। परन्तु सामाजिक नियमन के लिए सहकारी समितियों के सिद्धान्त को अपनाने के साथ-साथ उसके कर्तृत्व का स्वरूप अधिक निश्चित हो गया। अब सहकारी संगठनों को, गैर-सरकारी क्षेत्रों के अन्तर्गत संगठनों की केवल एक किस्म नहीं समझा जा सकता। प्रजातंत्रात्मक व्यवस्था के अन्तर्गत यह आर्थिक विकास सम्बन्धी योजना-बद्ध कार्य का एक अनिवार्य साधन है। पंचवर्षीय योजना के प्रत्येक प्रोग्राम को अमल में लाने के लिये शासन के सभी स्तरों पर सहकारिता को विशेष स्थान देना होगा। राज्य सरकारों, भारतीय सहकार कांग्रेस और रिज़र्व बैंक के साथ सलाह करके योजना कमीशन उन सब क्षेत्रों में, जिनके लिए सहकारिता ठीक समझी गई है, इस आन्दोलन के प्रसार के लिए विशेष प्रोग्राम बनाना चाहता है। इसके साथ ही कमीशन उन विभिन्न समस्याओं का भी अध्ययन कर रहा है जिनका सामना इस आन्दोलन को करना पड़ता है, और वह उन कानूनी, संगठन सम्बन्धी तथा अन्य ऐसी तब्दीलियों का ब्यौरेवार सुझाव रखेगा

जिनकी आवश्यकता इस आन्दोलन की नींव को मज़बूत बनाने और उसकी निश्चित प्रगति के लिये पड़ेगी ।

३. भारत में १७३,००० सहकारी समितियां हैं, जिनके एक करोड २० लाख सदस्य हैं और जिनकी चालू पूंजी २३३ करोड़ रुपये है । कर्ज, बाजार की सुविधाओं, खेती की सुविधाओं, सिचाई, चकबन्दी आदि की कृषि सहकारी समितियों के अतिरिक्त देहाती, तथा शहरी इलाकों में उपभोक्ता समितियां गृह-निर्माण समितियां, कारखाना समितियां, शहरी बैंक आदि हैं । ऐसी कुल समितियों के अंतर्गत खेती बाड़ी संबंधी समितियों का भाग ८० प्रतिशत से अधिक है, और इनमें भी शहरी कर्जे देनेवाली समितियों की बहुतायत है । पर उद्योग, व्यापार, परिवहन और फुटकर वितरण के क्षेत्रों में सहकारी समितियां अनुभव और दृढता प्राप्त कर रही हैं ।

पंचायत और सहकारी समितियों द्वारा विकास

४. यह बहुत आवश्यक है कि योजना के कृषि सम्बन्धी भाग के अन्तर्गत लक्ष्यों को निश्चित करने और उनकी प्राप्ति के लिए कार्य करने में समूचे गांव का क्रियात्मक सहयोग हो । हाल के सालों में राज्य सरकारों ने पंचायतों को ग्राम-समाज के सामूहिक हित के लिये आम तौर पर जिम्मेवार संस्थाओं के रूप में स्थापित करने में अभिनन्दनीय कार्य कर दिखाया है । पंचायतों के कार्य-क्षेत्र के अन्तर्गत इस प्रकार के अनेक कार्य होंगे, जैसे उपज के लिए कार्यक्रम बनाना; तालाब, सड़कें आदि बनाने के लिए सरकारी सहायता, कर्ज आदि की प्राप्ति तथा उसका सदुपयोग, खेती के तरीकों में सुधारों को लागू करना; सामुदायिक कार्यों के लिए स्वेच्छाश्रम का संगठन; आर्थिक तथा सामाजिक सुधार संबंधी कानूनों को अमल में लाना आदि ।

५. दूसरी ओर, विकास के अलग-अलग कार्यक्रमों के संचालन के लिए जब कि किसी सदस्य की विशेष जिम्मेवारी तथा उत्तरदायित्व का निश्चय करना जरूरी हो वहां किसी ऐसे संगठन की आवश्यकता है जिसके अन्तर्गत लोग अधिक गहरी जिम्मेवारी का अनुभव करें । ज़मीन के उद्धार के विशिष्ट और व्यावहारिक कार्यों, अधिक अच्छी खेती के लिए साधन जुटाने और गांव की उपज के लिए हाटव्यवस्था करने के काम सहकारी समितियों द्वारा सबसे अच्छी तरह किए जा सकते हैं । यह जरूरी है कि गांव की सहकारी

समितियों का पंचायतों के साथ अधिक से अधिक मेल-जोल हो। यद्यपि इन दोनों संगठनों के अपने-अपने विशेष कार्यक्षेत्र हैं, पर कई बातों के लिए दुतरफा प्रतिनिधित्व के द्वारा तथा समान तदर्थ कमेटियां बनाने से दोनों प्रकार के संगठनों द्वारा प्रजातन्त्रात्मक प्रबन्ध के ढांचे का निर्माण हो सकेगा।

विविध उद्देश्य वाली और कर्ज देने वाली समितियां

६. देहाती क्षेत्रों में काम करने वाली सहकारी समितियों के अन्तर्गत विविध उद्देश्य वाली समिति को महत्व का स्थान प्राप्त है और देश के कई भागों मे यह कोशिश की जा रही है कि कर्ज देने वाली समितियों को विविध उद्देश्य वाली समितियों में बदल दिया जाए। ऐसी तब्दीली ठीक मालूम देती है, पर अभी कर्ज देने वाली समितियों का गांव की अर्थ-व्यवस्था के अन्तर्गत महत्वपूर्ण भाग रहेगा। हाल के वर्षों में कृषि के क्षेत्र में आय की उल्लेखनीय वृद्धि हुई है, और यह बहुत जरूरी है कि देहाती आबादी की बचत की पूंजी का प्रवाह कर्ज देने वाली संस्थाओं की ओर हो। इस के लिए सहकारी कर्ज देने वाली समिति के समान उपयुक्त कोई अन्य संस्था नहीं।

क्रय-विक्रय समितियां

७. किसान के लिए आवश्यक चीजों की खरीद और उपज की बिक्री के कार्य ही कृषि-कार्यों की कुंजी हैं, और प्रायः इन्हीं दो मामलों मे किसान के प्रति न्याय नहीं होता। खरीद व बिक्री के सहकारी समितियों के संगठन द्वारा उसे प्रत्यक्ष तथा परोक्ष दोनों ही रूपों में बड़े लाभ प्राप्त होंगे। सहकारी समितियों द्वारा बीज, खाद और खेती के औजारों की प्राप्ति छोटे से छोटे किसान को भी हो सकेगी।

सहकारी खेती

८. देश के अधिकांश भागों में खेतों के आकार को बढ़ाना जरूरी है। स्वामित्व की भावना और तज्जन्य उत्पादन बढ़ाने के उत्साह को ठेस न पहुँचाते हुए, सहकारी खेती से वे सब लाभ प्राप्त किये जा सकते हैं, जो खेती की एक बड़ी इकाई से प्राप्त हो सकते हैं। इसी लिये योजना में यह सुझाव रखा गया है कि यदि गांव के वे लोग, जिनके अधिकार में गांव की खेती की कुल जमीन का कम से कम आधा रकबा हो, सहकारी फार्म स्थापित

करने के इच्छुक हों तो कानून द्वारा यह संभव होना चाहिए कि वे सारे गांव के लिए एक कृषि सहकारी समिति की स्थापना कर सकें। राज्य को भी चाहिए कि वह ऐसे फार्मों को बनाने के लिए उत्साह प्रदान करे।

औद्योगिक सहकारी समितियां

६. देहाती इलाकों में कृषि द्वारा ही सब के लिए पूरी रोजी मुहैया नहीं हो सकती। कई किसानों के पास काम कम होता है और उन्हें अन्य धन्धों की ओर देखना पड़ता है, खासकर बेकारी के दिनों में। खेतिहरों के अलावा गांवों के कारीगरों के ऐसे अन्य अनेक वर्ग भी हैं, जिनके लिये संगठित उद्योगों के मुकाबले के दबाव के कारण अपने परंपरागत धन्धों को चलाते रहना कठिन हो रहा है। उनकी समस्याओं पर अन्य अध्यायों में विचार किया गया है और यह बताया गया है कि औद्योगिक सहकारी समितियां स्थापित करने पर इन कारीगरों को क्या लाभ होंगे। पर कृषि सहकारी समितियों के मुकाबले में औद्योगिक सहकारी समितियां अब भी आरंभिक अवस्था में हैं, और बाज़ारों की होड़ा-होड़ी के बीच उनके कार्यों का चलना बहुत हद तक शंकायुक्त है। अन्यत्र यह सिफारिश की गई है कि घरेलू तथा छोटे पैमाने के उद्योगों के सुनिश्चित क्षेत्र होने चाहिए, और उन क्षेत्रों में बड़े पैमाने के उद्योगों का प्रवेश न होना चाहिए। इस सिद्धान्त को अमल में लाने से औद्योगिक सहकारी समितियों के कार्यों की सफलता और भी निश्चित हो जायगी। साथ ही इस प्रकार की सहकारी समितियों को मज़बूती से कदम जमाने में सहायता दी जाए। उनको सहकारी तौर पर बिजली, औजार, कच्चा माल, विशेषज्ञों की सलाह, और खरीद-फरोख्त की सहूलियतें प्राप्य होने में सहायता दी जानी चाहिए। योजना में १५ करोड़ रुपये की रकम घरेलू तथा छोटे पैमाने के उद्योग-धन्धों की मदद के लिए अलग रखी गई है। इस रकम में से, खास तौर पर उन उद्योगों को जो सहकारिता द्वारा चलाये जाते हों, आर्थिक सहायता देने में तरजीह दी जाएगी।

१०. न केवल देहाती इलाके में, बल्कि शहरी इलाके में भी कुछ ऐसे साधारण हैसियत के दस्तकार हैं जिन्हें आजकल की जरूरतों के अनुकूल अपने कामों को संगठित करने में कठिनाई होती है। उनमें भी सहकारिता को बढ़ाने की बहुत गुञ्जाइश है। शहरी इलाकों में औद्योगिक सहकारी समितियों को विशेष महत्व देना चाहिए। अभी तक ऐसी समितियों ने केवल मद्रास को छोड़कर अन्यत्र कहीं भी खास उन्नति नहीं की। गृह-निर्माण-

सहकारी समितियों की ओर भी ध्यान दिया जाना चाहिए।

अधिक अच्छे कार्यकर्ता

११. अन्तिम रूप में सहकारी समितियों की कामयाबी उनके अपने कार्यों के, चाहे वे उत्पादन वित्त खरीद-फरोख्त और वितरण के या निर्माण के बारे में हों, संचालन की योग्यता तथा सदस्यों और समाज की तसल्ली पर निर्भर है। प्रायः सहकारी समितियों का संगठन तथा प्रबन्ध उन लोगों के द्वारा होता है जिनमें तजुर्बे तथा योग्यता की कमी होती है। कई एक सहकारी समितियों और देश में इस आन्दोलन की असफलता का केवल यही एक कारण है। अत. सहकारी समितियों को चाहिये कि वे योग्य लोगों की भर्ती करें और मौजूदा अमले को अच्छी ट्रेनिंग दिलायें। उच्च वर्ग के कर्मचारियों की ट्रेनिंग की मौजूदा सुविधाएं काफी नहीं हैं। लेकिन इसकमी को पूरा करने के लिए, देश के विभिन्न भागों में तीन या चार कालेज स्थापित करने के लिए १० लाख रुपये की व्यवस्था की गई है।

भविष्य की नीति

१२. अतीतकाल में समय-समय पर यह शिकायत रही है कि यद्यपि आम तौर पर सरकार ने सहकारी संस्थाओं की शुरूआत की है, और उनको तरजीह देने की इच्छा प्रकट की है, पर कार्य रूप में सहकारी समितियों के बजाय अन्य संस्थाओं के साथ कई सरकारी विभागों का बर्ताव अधिक अच्छा होता है। इसकी चर्चा पहले ही की जा चुकी है। कई प्रकार के सहकारी कार्यक्रम आपस में टकराते हैं। इसलिए,जब तक हर एक विभाग और हर एक मंत्रालय, सहकारी संस्थाओं द्वारा काम करने के उसूल को स्वीकार न करे तथा अपनाए नहीं, तब तक तेज़ी के साथ स्थायी परिणाम प्राप्त नहीं हो सकते। उदाहरण के लिए, केन्द्रीय तथा राज्य सरकारों के सिंचाई तथा निर्माण विभाग प्रतिवर्ष निर्माण के कार्यों पर काफी भारी रकमें व्यय करते हैं। एक दो राज्यों को छोड बाकी सब में यह काम ठेकेदारों को सौंप दिया जाता है। यह सुझाव दिया जा रहा है कि हर एक विभाग सहकारी संस्थाओं के निर्माण की नीति अपनाए ताकि वे अंत में ठेकेदारों या अन्य बिचवैयों का स्थान ले सकें।

—:o:—

अध्याय ११

योजना के लिये खाद्य नीति

१. योजना को सफल बनाने के लिये निश्चित खाद्य नीति निर्धारित करना बहुत ज़रूरी है। देश के अधिकतर लोग जीवन-निर्वाह के न्यूनतम स्तर पर स्थित हैं। उनके लिये यह बहुत ही ज़रूरी है कि उन्हें उचित भाव पर अनाज मिलता रहे। इसलिये, अनाज के ऐसे भाव निश्चित किये जाने चाहियें जो किसान की सामर्थ्य के अन्दर हों। कीमतों की समूची सूची मे अनाज का मुख्य स्थान है, क्योंकि अनाज की कीमत में वृद्धि होने से जीवन-निर्वाह के खर्च और सभी चीज़ों के उत्पादन-खर्च में बढ़ोतरी हो जाती है।

२. यह सच है कि खाद्य-नियन्त्रण युद्ध-काल में चीज़ों की भारी कमी के कारण लागू किया गया था। लेकिन सुयोजित अर्थ-व्यवस्था में भी खाद्य-नियन्त्रण का महत्त्वपूर्ण स्थान है। विकास की योजना पर बडी रकम लगाई जाती है और इससे प्रारम्भिक काल में लोगों की आय बढ़ जाती है। लेकिन आम ज़रूरत की चीज़ों का उत्पादन उसी अनुपात से नहीं बढ़ता। इस आय-वृद्धि से सबसे पहले अनाज की मांग में वृद्धि हो जाती है, और यदि उत्पादन काफी नहीं बढा तो अनाज की कीमतें, नियन्त्रण व्यवस्था के अभाव में बढ़ जायेंगी जिससे गरीब और निश्चित आय वाले लोगों को नुकसान पहुँचेगा। इसलिये सुयोजित अर्थ-व्यवस्था मे खाद्य-नियन्त्रण के कई काम हैं जो इस प्रकार हैं :—(१) इस बात की व्यवस्था करना कि गरीब लोगों को उनकी कम से कम आवश्यकता के अनुसार अनाज मिलता रहे; (२) इस बात को रोकना कि अमीर लोग दिखावे के लिये और अधिक अनाज इस्तेमाल न कर सकें; और (३) समूची अर्थ-व्यवस्था को खतरे में डाले बिना बेकार लोगों को सीधे काम पर लगाना।

३. यद्यपि इस देश में कन्ट्रोल कई वर्षों से चालू हैं, फिर भी समय समय पर इस बारे में सन्देह प्रकट किया जाता रहा है कि कुल मिला कर यह व्यवस्था देश के लिये लाभदायक है। लेकिन अनुभव से जो

शिक्षा मिली है वह गलत नहीं हो सकती। जब किसी देश की अर्थ-व्यवस्था पर कम उत्पादन या विदेशों की प्रतिकूल परिस्थितियों का दबाव पड़ता है तो उस समय माल की बेरोकटोक खरीद और बिक्री की इजाज़त देना उचित नहीं मालूम पड़ता। दूसरे यह बात भी महत्त्वपूर्ण है कि नियंत्रण उठाने और बेरोकटोक खरीद-बिक्री की व्यवस्था लागू करने से सम्बन्ध रखने वाले अधिकतर सुझावों में कई प्रकार की सुविधायें देने की मांग की जाती है, जैसे सस्ते अनाज की दुकानें खोलना व्यापारियों को लाइसेंस देना, स्टाक पर अधिकार कर लेना आदि। प्रारम्भिक काल में ये नियन्त्रण लागू किये गये थे। इनके सन्तोषप्रद न होने के कारण, दूसरे कठोर नियन्त्रणों की शरण ली गई जो वसूली, चीज़ों के एक स्थान से दूसरे स्थान को लाने-लेजाने पर रोक, मूल्य-नियन्त्रण और राशनिंग के रूप में सामने आये।

कमी

४. यह ठीक ठीक बताना सम्भव नहीं है कि इस समय देश मे कितने अनाज की कमी है। सरकारी आंकड़ों से पता चलता है कि देश के भिन्न भिन्न भागों में अनाज की खपत हर साल बदलती रहती है। वास्तव में अंतर इतना अधिक होता है कि उससे पता चलता है कि आंकड़े अविश्वसनीय हैं। इसी तरह से उत्पादन के आंकड़ों के बारे में सन्देह है। सिचाई की छोटी छोटी योजनाओं और भूमि-सुधार के कार्य-क्रमों से देश की उत्पादन-शक्ति बढ़ गई है, फिर भी सन् १९४९-५० के बाद की खेती योग्य जमीन और उत्पादन सम्बन्धी सरकारी आंकड़ों से उत्पादन की वृद्धि का कोई पता नहीं चलता। काफी लोगों का खयाल है कि वास्तव में अनाज का उत्पादन सरकारी आंकड़ों द्वारा बतायी गयी वृद्धि से कहीं अधिक है। यदि ऐसा है भी तो व्यावहारिक दृष्टि से उसका कोई खास महत्त्व नहीं है, क्योंकि यदि उत्पादन बढ़ रहा है तो अधिक खपत भी हो रही है। सच बात तो यह है कि पिछले छः सात वर्षों से देश में प्रति वर्ष औसतन् कोई ३० लाख टन अनाज बाहर से मंगाया गया। इससे अनाज की कमी का सही सही अनुमान लगाया जा सकता है। लेकिन यह बात याद रखने की है कि यह कमी स्थिर नहीं है। और बातों के अलावा जन-संख्या में प्रति वर्ष १·२५ प्रतिशत के हिसाब से बढोतरी हो रही है और इससे प्रति वर्ष ४·५ लाख टन अधिक अनाज की जरूरत हो गई है।

५. योजना-काल में खाद्य नीति का उद्देश्य यह होना चाहिये कि देश में

अनाज का उत्पादन बढ़ जाय, खरीद-बिक्री के लिये अनाज की मात्रा में बढ़ोतरी हो जाय, जहाँ तक सम्भव हो उसके उचित वितरण की व्यवस्था की जाय, और धीरे धीरे बाहर से अनाज मँगाने की आवश्यकता खत्म हो जाय। यह बात स्पष्ट है कि अनाज उत्पादन की कोशिशों के फल का कुछ समय बाद ही पता चलेगा। इसलिये यदि खतरे को टालना है तो खाद्य नीति का आधार यह होना चाहिये कि दूसरी चीज़ों के मुकाबले अनाज की कमी बनी रहेगी। योजना काल के अन्दर देश में अनाज की कीमतों का स्तर स्थायी बनाये रखने के लिये राशनिंग, अनाज वसूली और बाहर से कम से कम अनाज मँगाना ज़रूरी होगा।

अनाज की कीमतें

६. पिछले पाँच वर्ष की कीमतों से पता चलता है कि सन् १९४७ में कन्ट्रोल उठाने के फलस्वरूप जो हानि हुई थी, उसे कभी पूरा नहीं किया जा सका। कन्ट्रोल उठाने के समय कीमतें ३० प्रतिशत तक बढ़ गई थीं। सन् १९४८ मे फिर से कन्ट्रोल लागू किये जाने के बाद कीमतों में कुछ स्थायित्व आ गया। लेकिन सन् १९४९ में रुपये के अवमूल्यन और कोरिया के युद्ध से चीज़ों की कीमतें बढ़ जाने से यह स्थायित्व कम हो गया। पिछले १२ महीनों में मुद्रा-प्रसार कम हो गया है, फिर भी आम ज़रूरत के अनाज की कीमतें बढ़ी हुई हैं। अप्रैल सन् १९५१ के बाद से थोक कीमतों में १५ प्रतिशत की कमी हुई है। गेहूँ और चावल के भाव क्रमशः एक प्रतिशत और ५ प्रतिशत ही घटे हैं। इस कारण ही जीवन-निर्वाह के खर्च में कमी नहीं हो रही है। इस समय जीवन-निर्वाह का ख़र्च ऊँचा होने के कारण मध्य वर्ग के लोगों को मज़दूर वर्ग के समान ही भारी कठिनाइयों का सामना करना पड़ रहा है। इसलिये यह ज़रूरी है कि अनाज की कीमतों को उचित स्तर से आगे बढने से रोकने की मूल नीति पर बराबर अमल किया जाय।

७. कीमतों को स्थायी बनाने की नीति में कम से कम और अधिक से अधिक कीमतें निश्चित करने पर ध्यान दिया जाना चाहिये। जब अर्थ-व्यवस्था पर मुद्रा-प्रसार का दबाव पड़ रहा हो तब इस बात पर जोर देना चाहिये कि कीमतें निश्चित की गई अधिकतम हद से आगे न बढ़ने पायें। लेकिन, यदि कीमतें बराबर गिरती रहें तो ऐसा कन्ट्रोल लागू किया जा सकता है और किया जाना चाहिये जिसमें अनाज वसूली के भाव निश्चित कर दिये गये हों। इस तरह भावों को बहुत ज्यादा गिरने से रोक कर

उत्पादकों के हितों की रक्षा की जा सकती है।

८. खाद्य-नीति का रुपया लगाने के कार्य-क्रम पर सीधा असर पड़ता है क्योंकि जितना अधिक अनाज प्राप्त होगा, समाज रुपया लगाने के लिए उतना ही अधिक प्रयत्न कर सकता है। इसका कारण यह है कि अनाज से ही मज़दूरों को शक्ति मिलती है। बहुत हद तक उचित खाद्य नीति पर यह निर्भर होगा कि किस हद तक घाटे के बजट को तैयार करने से मुद्रा-प्रसार बढ़ जायगा। यही एक कारण है जिससे घाटे का बजट बनाया जा सकता है। घाटे का बजट सीमित रखना होगा। जिस हद तक मुद्रा-प्रसार की प्रवृत्तियों को रोका जा सकेगा और उचित दामों पर अनाज और दूसरी चीज़ों की सप्लाई और वितरण की व्यवस्था की जा सकेगी, उसी हद तक घाटे का बजट तैयार करना ठीक होगा।

खाद्य-नियन्त्रण

९. इन सब बातों को ध्यान में रखते हुये ऐसा खयाल किया गया कि योजना-काल में खाद्य नियन्त्रण का बुनियादी ढाँचा कायम रखा जाय। जब तक देश में अनाज की पैदावार ७९ लाख टन न बढ़ जाय तब तक यह नहीं समझा जा सकता कि देश में आवश्यकतानुसार अनाज पैदा होने लगा है। इस लक्ष्य की प्राप्ति के बाद और परिवहन सम्बन्धी काफी सुविधायें प्राप्त होने पर, जिससे कि माल जल्दी से एक जगह से दूसरी जगह भेजा जा सके, नियन्त्रणों को ढीला किया जा सकता है या उनके स्वरूप को बदला जा सकता है। यह सब उस समय के पूँजी-विनियोग के लक्ष्यों पर निर्भर होगा।

१०. एक निश्चित आबादी से अधिक आबादी वाले शहरों और कस्बों में कानूनी तौर पर राशन व्यवस्था कायम करनी पड़ेगी और त्रावणकोर-कोचीन जैसे भारी कमी वाले इलाकों का विशेष ध्यान रखना होगा। दूसरे इलाकों के लिये नियंत्रित वितरण की गैर-कानूनी राशन व्यवस्था पर्याप्त होनी चाहिये। अनाज-वसूली एकाधिकार पद्धति या अनिवार्य रूप से उपज का एक हिस्सा प्राप्त करने के तरीके से हो सकती है। किस तरीके को लागू किया जाय, यह स्थानीय परिस्थितियों पर निर्भर होगा। इस बात का प्रबन्ध करना चाहिये कि अनाज के बचत वाले इलाकों से अधिकाधिक मात्रा में अनाज दूसरी जगहों को भेजा जा सके।

११. संतोषजनक नियंत्रण-व्यवस्था बनाये रखना निम्नलिखित बातों पर निर्भर है: (१) एक ही नीति पर चलते रहना; (२) प्रशासन की

कार्यक्षमता; और (३) जनता का सहयोग। ये बातें नियंत्रण की सफलता के लिये बहुत जरूरी हैं। भारत जैसे बडे देश में प्रशासन सम्बन्धी छोटी-छोटी बातों में फर्क होना ज़रूरी है, लेकिन मूल सिद्धान्त देश भर में एक ही होना चाहिये। सकार की नीति यह होनी चाहिये कि अधिक पैदावार वाले राज्यों से सम्मिलित भण्डार में अधिक से अधिक अनाज मिलता रहे और हर कमी वाले राज्य में वसूली और बँटवारे की ऐसी व्यवस्था हो कि वे सम्मिलित भण्डार से कम से कम अनाज लें।

खाने-पीने की आदतें

१२. अन्त में संसार में चावल की कमी और चावल के आयात की ऊंची कीमतों को ध्यान में रखते हुए लोगों की खाने-पीने की आदतों में परिवर्तन होना जरूरी है। अनुमान लगाया गया है कि ५ लाख टन चावल मँगाने पर कोई ४० करोड़ रुपये के खर्च की जरूरत होती है। दूसरी ओर गेहूँ की स्थिति ठीक है और इन परिस्थितियों में कुछ हद तक चावल की जगह गेहूँ खाने से खाद्य समस्या काफी हद तक हल हो जायगी। देश मे चावल की कमी आवश्यकता के दो या तीन प्रतिशत से अधिक नहीं है और चावल की जगह गेहूँ खाकर इस कमी को दूर किया जा सकता है। पूरक खाद्य पदार्थों के लिये भी काफी गुंजाइश है। यह सच है कि खाने-पीने की आदतें आसानी से बदली नहीं जा सकतीं। लेकिन, यदि लोगों को यह बताया जाय कि चावल के आयात पर कितना खर्च करना पड़ता है, और संतुलित भोजन से कितना लाभ होगा, तो लोग आवश्यकता के अनुसार सहयोग देने को तैयार हो जायेंगे।

—:o:—

अध्याय १२

भूमि सम्बन्धी नीति

भूमि-समस्या

१. राष्ट्रीय विकास में इस समय भू-स्वामित्व का प्रश्न सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है। यह स्पष्ट है कि इस समस्या को जिस तरीके से निपटाया जायगा, उससे आर्थिक और समाजिक संगठन पर भारी प्रभाव पड़ेगा।

२. भूमि सम्बन्धी नीति के क्या उद्देश्य होने चाहियें ? राष्ट्रीय अर्थ-व्यवस्था के लिये यह जरूरी है कि खेती की उपज बढ जाय और ग्राम अर्थ-व्यवस्था बहुमुखी हो जाय और उस में सुधार हो जाय । समाजिक दृष्टि से अर्थ-व्यवस्था ऐसी होनी चाहिये जिससे गरीबी-अमीरी और आय का अन्तर कम हो जाय, एक वर्ग द्वारा दूसरे वर्ग का शोषण बन्द हो जाय, किसान और मजदूर सुरक्षा की भावना का अनुभव करने लगें और देहात में रहने वाले भिन्न-भिन्न वर्गों के लोगों को समान दर्जे और अवसर प्राप्त होने लगें। पहली जरूरत भू-व्यवस्था कानून की है और दूसरी भूमि सुधार कानून की। भूमि सम्बन्धी नीति में इन दोनों का समावेश होना चाहिये। लेकिन, इन दोनों में संतुलन रखना जरूरी है। नीति की मुख्य-मुख्य बातें तय करने मे उन सभी हितों का ध्यान रखना होगा जिनका भूमि से सम्बन्ध है और साथ ही यह देखना होगा कि उपज पर क्या प्रभाव पड़ेगा और फिर वैसा ही कदम उठाना होगा। भूमि सम्बन्धी मामलों मे निम्नलिखित लोगों के हित निहित हैं :— (१) बिचवैये, (२) बड़े बडे मालिक, (३) छोटे और बिचले दर्जे के मालिक, (४) गैर-मुस्तकिल काश्तकार और (५) भूमिहीन मजदूर । जो भी कार्रवाई की जायगी उससे अवश्य ही एक वर्ग को फायदा होगा और दूसरे को नुकसान। जैसे जैसे सामाजिक और आर्थिक परिवर्तन किये जायेंगे वैसे-वैसे नयी सामाजिक व्यवस्था पुरानी व्यवस्था का स्थान लेने लगेगी।

बिचवैयों के अधिकार

३. पिछले कुछ वर्षों में जो भूमि सुधार हुए हैं, उनकी सबसे महत्त्वपूर्ण बात बिचवैयों के अधिकारों का खत्म किया जाना है। इसका परिणाम यह

हुआ है कि सब कहीं सरकार और किसानों के बीच सीधा सम्पर्क स्थापित हो गया है। उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश और मद्रास में जमींदारी प्रथा खत्म की जा चुकी है और बिहार में इस सम्बन्ध में कार्रवाई की जा रही है। आसाम और उड़ीसा में कानून पास किये जा चुके हैं और उन्हें जल्दी ही लागू किया जायगा। पश्चिम बंगाल मे इस सम्बन्ध में कानून बनाया जा रहा है। राजस्थान, मध्यभारत, हैदराबाद, सौराष्ट्र और देश के बीच के भाग के छोटे छोटे राज्यों में जागीरदारी प्रथा खत्म करने के कानून पास किये जा चुके हैं। बम्बई, पंजाब और पेप्सू में ऊँचे अधिकार प्राप्त लोगों के अधिकार छीन लिये गये हैं या छीने जा रहे है।

४. बिचवैयों के अधिकार खत्म करने के बारे में दो मुख्य समस्याओं का अभी तक पूरी तौर से निपटारा नहीं हुआ है, जो इस प्रकार हैं :—

(१) जमींदारों को मुआवजा; (२) आवश्यक राजस्व-व्यवस्था की स्थापना। खयाल है कि अधिकतर राज्यों में मुआवजा ऐसे बांडों के रूप में दिया जायगा जिन्हें हस्तान्तरित नहीं किया जा सकता और जिनका भुगतान चालीस साल के अन्दर किया जायगा। इन बांडों पर सूद भी मिलेगा। इस में एक खतरा है, वह यह कि सरकार को काश्तकारों द्वारा स्वामित्व अधिकार प्राप्त करने के सम्बन्ध में जो रकम प्राप्त होगी, वह शायद वर्तमान आय के रूप में काम में लाई जाय। अगर ऐसा हुआ तो हो सकता है कि राज्य सरकार अपने साधनों से अधिक खर्च करने लगे और बाद में उसे मुआवजे की रकम का भुगतान करने में कठिनाइयों का सामना करना पड़े। यह सुझाव दिया गया है कि अतिरिक्त आय अलग कोष में जमा की जाय और यह रकम विकास कार्यों पर खर्च की जाय। कमीशन का विचार है कि राजस्व और वित्तीय मामलों के विशेषज्ञों की एक कमेटी इस सुझाव पर सभी पहलुओं को ध्यान में रखते हुए विचार करे।

५. ज़मींदारी और जागीरदारी वाले इलाकों में राजस्व सम्बन्धी कागजात (लेख) और राजस्व प्रबन्ध व्यवस्था के सवाल पर तुरन्त ही ध्यान देने की जरूरत है। अस्थायी बन्दोबस्त वाले इलाकों में बहुत पहले से ही राजस्व प्रबन्ध की व्यवस्था बनी हुई है। यदि उसे और मज़बूत बना दिया गया तो वह ज़मींदारी उन्मूलन से पैदा होने वाली नयी जिम्मेदारियो को निभा सकेगी। लेकिन, स्थायी बन्दोबस्त और जागीरदारी वाले अधिकतर इलाकों में राजस्व प्रबन्ध की व्यवस्था प्रायः है ही नहीं। ज़मींदारी उन्मूलन के बाद राज्य

सरकारों पर जो दायित्व आ पड़ेगा, वह सिर्फ लगान इकट्ठा करने और भूमि सम्बन्धी कागजात रखने तक ही सीमित नहीं रहेगा, बल्कि उसे बेकार ज़मीन, जंगल, मछली उद्योग, और छोटी-छोटी सिंचाई योजनाओं का दायित्व भी अपने ऊपर लेना होगा। इसलिये, सम्बन्धित राज्यों को उन शासकीय समस्याओं के हल करने के काम को ऊंची प्राथमिकता देनी होगी, जो जमींदारी उन्मूलन के बाद उन पर आ पड़ेंगी। साथ ही राज्य सरकारों को उचित राजस्व प्रबन्ध व्यवस्था स्थापित करने के काम को भी प्राथमिकता देनी होगी।

बड़े-बड़े भू-स्वामी

६. खेतों की लम्बाई-चौडाई और उनके वितरण के बारे में जो सूचना प्राप्त है, वह बहुत कम है। सन् १९५२ में खेतों और खेती की नियमित रूप से गणना कराने की जरूरत है, क्योंकि इसके बिना कई प्रकार के भूमि सुधार करने में कठिनाई होगी। इस समय असंख्य छोटे-छोटे खेत हैं जिनमें से अधिकतर आर्थिक दृष्टि से लाभदायक नहीं हैं। ऐसे किसानों की संख्या कम है जिनके पास न बहुत छोटे और न बहुत बड़े खेत हैं और बड़े-बड़े भू स्वामी बहुत ही कम हैं। इसलिये यदि नीति का उद्देश्य यह है कि भूमिहीन किसानों के लिये भूमि की व्यवस्था करने या आर्थिक दृष्टि से अलाभकारी खेतों की लम्बाई चौडाई में वृद्धि करने के लिये बड़े-बड़े खेतों की कटौती की जाय तो प्राप्त आंकड़ों से पता चलता है कि यह उद्देश्य शायद अभी पूरा नहीं होगा। लेकिन, लोक-कल्याण और सामाजिक न्याय के आधार पर कमीशन इस सिद्धान्त के पक्ष में है कि यह निश्चित कर दिया जाय कि एक व्यक्ति अधिक से अधिक कितनी जमीन अपने पास रख सकता है।

७. भूमि की अधिकतम सीमा निश्चित करने के सिद्धान्त को दो भिन्न २ तरीकों से मान्यता दी गई है: (१) भविष्य में अधिक से अधिक कितनी जमीन प्राप्त की जा सकती है (२) तथा निजी काश्त के लिये अधिक से अधिक कितनी जमीन प्राप्त की जा सकती है। उदाहरण के तौर पर उत्तर प्रदेश में भविष्य में कोई व्यक्ति अधिक से अधिक तीस एकड़ जमीन प्राप्त कर सकता है। इसी तरह जहां कहीं पट्टेदार खेती करते हों, वहाँ भूमि का मालिक निजी खेती के वास्ते एक निश्चित हद तक ही भूमि प्राप्त कर सकेगा। बम्बई में लोग ५० एकड़ तक और पञ्जाब में ५० स्टेण्डर्ड एकड़ तक जमीन अपने अधिकार में रख सकते हैं। हैदराबाद में लोग न्यूनतम लाभकारी खेत की पांच गुनी जमीन अपने अधिकार में रख सकते हैं। अभी तक बहुत से राज्यों

ने यह निश्चित नहीं किया कि उनके यहाँ लोग अधिक से अधिक कितनी जमीन रख सकते हैं। कुछ इलाको में विशेष समस्याओं का सामना करना होगा। उदाहरण के लिये वे इलाके, जहाँ बहुत अधिक जमीन खेती योग्य बनाई जानी है। लेकिन, भूमि सुधार के लिये ऐसी सीमायें निश्चित करना बहुत ही जरूरी है।

८. इस तरह की सीमायें निश्चित करने की कई कसौटियाँ हो सकती हैं। इसका व्यावहारिक तर का यह होगा कि पहले एक "पारिवारिक इकाई" का क्षेत्र निश्चित किया जाय और फिर यह तय किया जाय कि कहाँ कहाँ इस "पारिवारिक इकाई" का कितना-कितना गुना क्षेत्र लोगों को दिया जाय। "पारिवारिक इकाई" की परिभाषा थोडे शब्दों मे इस प्रकार की जा सकती है कि एक औसत परिवार खेती के पुराने औजारों की सहायता से जितनी जमीन मे साधारण तौर से खेती कर सकता है, उतनी जमीन को "पारिवारिक इकाई" समझा जाय। इसका ठीक-ठीक क्षेत्र प्रत्येक राज्य को अपनी विशेष परिस्थितियों को ध्यान मे रखकर निश्चित करना होगा। लेकिन, मोटे तौर पर "पारिवारिक इकाई" की कोई तीन गुनी जमीन तक सीमा निश्चित करना ठीक होगा।

९. खेतों की सीमायें निश्चित करने का सिद्धान्त गत काल से लागू किया जाय या नहीं और वर्तमान खेतों पर लागू किया जाय या नहीं इस सवाल से कई समस्यायें पैदा हो जाती हैं। मुख्य प्रश्न यह है– क्या सीमा निश्चित करने पर, अतिरिक्त भूमि उस समय की बाजारू कीमत पर प्राप्त की जा सकती है? कमीशन को यह सलाह दी गई है कि ऐसा करना संविधान की व्यवस्था के अनुकूल नहीं होगा, इसलिये इस समस्या को दूसरे तरीकों से सुलझाने की जरूरत है।

१०. बड़े-बडे भू-स्वामियों की जमीनें दो तरह की हैं :—(१) ऐसी जमीनें जिन पर पट्टेदार खेती करते हैं और (२) वे जमीनें जिनका मालिक सीधा प्रबन्ध करते हैं। पहली श्रेणी में आने वाली जमीनों के बारे में कमीशन का सुझाव यह है कि निजी खेती के लिये निश्चित की गई जमीन को छोड बाकी जमीन के बारे में आम नीति यह होनी चाहिये कि ऐसी जमीन का मालिक पट्टेदारों को बनने दिया जाय। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिये एक साथ ही कई कार्रवाइयां करने की जरूरत है :– (१) पट्टेदार को पट्टे की अवधि के बारे में सुरक्षा की भावना—इसके लिये पट्टेदारों को मौरूसी अधिकार भी दिये जा सकते हैं। (२) भूमि

की कीमत निश्चित करने और पट्टेदारों से ली जाने वाली रकम के बारे में सिद्धान्त निश्चित करना। सबसे सुविधाजनक तरीका यह होगा कि भूमि का मूल्य उसके लगान का कई गुना निश्चित किया जाय और इसका भुगतान कई किश्तों में किया जाय। सरकार उन किसानों (पट्टेदारों) के साथ सीधा सम्पर्क स्थापित कर सकती है जिन्हें ये अधिकार दिये जायं और साथ ही वह इन किसानों से लगान के साथ-साथ भूमि की कीमत भी वसूल करती रहे। मालिकों को बांडों द्वारा उसी तरह से मुआवजे की रकम का भुगतान किया जा सकता है, जिस तरीके से बिचवैयों को भुगतान करना निश्चित किया गया है।

११. जहां कहीं मालिक सीधे भूमि का प्रबन्ध करते हैं, वहां मुख्य रूप से इस बात पर विचार करने की जरूरत है कि ऐसा प्रबन्ध लोक हित में है या नहीं। दूसरे शब्दों में क्या ऐसी व्यवस्था कार्य-कुशलता के प्रमाणित स्तर तक पहुँच चुकी है, जिससे योजना के अनुकूल खेती की उपज बढ़ाई जा सके? यह सुझाव दिया गया है कि प्रत्येक राज्य भू-व्यवस्था के बारे में उचित कानून बनाये, जिसमें खेती और प्रबन्ध के स्तर निर्धारित किये गये हों और साथ ही एक ऐसी संस्था की स्थापना की व्यवस्था की गई हो, जो इसको अमल में लाये। यह कानून पहले उन जमीनों पर लागू किया जायगा, जो निश्चित की जाने वाली जमीन के क्षेत्र से अधिक होंगी। ये जमीनें निजी काश्त के लिये निश्चित की गई जमीन के बराबर या उससे अधिक हो सकती हैं। इस प्रकार बड़े-बडे फार्म, जिनका मालिक सीधा प्रबन्ध करते हैं, दो भागों में विभाजित किये जा सकते हैं:- (१) वे फार्म जो इतनी योग्यता के साथ चलाये जा रहे हैं कि उनको तोड़ने से उपज में कमी होगी और (२) वे फार्म जो इस कसौटी पर ठीक नहीं उतरते। दूसरी श्रेणी मे आने वाली जमीनों या फार्मों के बारे में भूमि-प्रबन्ध कानून में यह व्यवस्था होनी चहिये कि उचित अधिकारी निश्चित मात्रा से अधिक जमीन अपने हाथ में ले सकें और उस पर खेती की व्यवस्था कर सकें।

१२. इन सुझावों के अनुसार बडे-बड़े भू-स्वामियों की जमीनों का फिर से बंटवारा करना होगा। भूमि-प्रबन्ध कानून को ठीक तरह लागू करने से पहले इस काम के लिये दफ्तर आदि खोलने और पड़ताल करने की जरूरत होगी। इस काम में दो-तीन वर्ष लगेंगे।

छोटे और मध्यवर्ती भू-स्वामी

१३. छोटे और मध्यवर्ती भू-स्वामियों की ठीक-ठीक परिभाषा नहीं की जा सकती। लेकिन उन लोगों को छोटे भू-स्वामी कहा जा सकता है, जिनके पास पारिवारिक इकाई की हद से अधिक जमीन नहीं है। जो लोग इस इकाई से अधिक और निजी काश्त के लिये निश्चित की गई जमीन से कम भूमि रखते हैं, उन्हें मध्यवर्ती भू-स्वामी कहा जा सकता है। नीति यह होनी चाहिये कि मालिकों को उपज बढाने और सहकारिता के आधार पर अपनी कार्रवाइयों को संगठित करने के लिये प्रोत्साहित किया जाय।

१४. छोटे भू-स्वामियों में वे लोग भी शामिल हैं जिनके अपने खेत एक दूसरे से दूर-दूर और ऐसे हैं जो आर्थिक दृष्टि से लाभकारी नहीं हैं। पंजाब, मध्यप्रदेश, और बम्बई में चकबन्दी से जो अनुभव प्राप्त हुए हैं, उनसे इस कार्रवाई की सार्थकता सिद्ध हो जाती है। किसान अब चकबन्दी के लाभ को अच्छी तरह समझ गया है। चकबन्दी का काम जोरशोर के साथ किया जा सकता है। उत्तर प्रदेश और बम्बई जैसे कुछ राज्यों में जमीन की कम से कम मात्रा निश्चित कर दी गई है, जिसके नीचे भूमि-विभाजन नहीं हो सकता। यह कार्रवाई उचित है और उसे दूसरे राज्यों में लागू किया जा सकता है।

१५. अक्सर यह सुझाव दिया जाता है कि बड़े-बड़े भू-स्वामियों की जमीन का बंटवारा कर दिया जाय, जिससे अलाभकारी-खेत लाभकारी खेतों में बदले जा सकें। इस बात की कम आशा है कि इस काम के लिये काफी जमीन मिल सकेगी। बड़े-बड़े जमींदारों की अतिरिक्त जमीन साधारण रूप से उन पट्टेदारों को देनी होगी जो उस पर खेती करते हैं और जो अन्त में उसके मालिक हो जायेंगे। अलाभकारी खेतों की समस्या का हल दूसरे तरीके से किया जा सकता है। यह है :—किसी गांव की ज़मीन का सहकारिता के ढंग पर प्रबन्ध करना।

१६. छोटे और मध्यवर्ती भू-स्वामियों की जमीनों को दो श्रेणियों में बांटा जा सकता है :—(१) वे जमीनें जिन पर किसान सीधे खेती करते हैं और (२) वे जमीनें जो गैर मुस्तकिल काश्तकारों को पट्टे पर दी जाती हैं। पहली श्रेणी के भू-स्वामियों की समस्यायें इस प्रकार हैं :—आर्थिक, टेकनिकल सहायता और सम्मिलित कार्रवाई का संगठन। दूसरी

श्रेणी के भू-स्वामियों के बारे मे दो बातों पर विचार करना जरूरी है :—(१) पट्टेदारों या किसानो के अधिकारों की रक्षा के उपाय ऐसे हों जो आसानी से लागू किये जा सकें और उनसे जो समस्यायें पैदा हों, उन्हे गांवों में ही लोग खुद हल कर लें। (२) इस बात से सावधानी बरतनी चाहिये कि जो भी कार्रवाई की जाय वह इस प्रकार लागू न की जाय कि उससे गांव के लोग दूसरे काम करना बन्द कर दें। भूमि पर दबाव बहुत ज्यादा है और वह उत्तरोत्तर बढ़ ही रहा है। इसलिये गांव के लोगो का स्वेच्छा से दूसरे काम शुरू करना ग्राम अर्थ-व्यवस्था के लिये लाभकारी होगा। इससे कोई फायदा नहीं होगा कि छोटे और मध्यवर्ती जमींदारो को जो अपनी जमीनें पट्टे पर दे देते हैं, अनुपस्थित जमींदार मान लिया जाय और उनकी समस्या बडे-बडे जमींदारो की समस्या की तरह हल की जाय।

गैर-मुस्तकिल काश्तकार

१७. छोटे और मध्यवर्ती भू-स्वामियो के किसानों या पट्टेदारों को पर्याप्त संरक्षण देने के उपाय किये जाने चाहियें। मुख्य प्रश्न यह है कि किन शर्तों पर भू-स्वामी निजी काश्त के लिये भूमि वापस ले सकते हैं। मालिक सभी जमीन वापस ले सकता है, जब कि वह खुद या उसका परिवार उस पर काश्त करे; लेकिन वह तीन पारिवारिक इकाई से अधिक जमीन वापस नहीं ले सकता। वापसी के लिये कुछ अवधि निश्चित करना होगा (उदाहरण के तौर पर पांच वर्ष) जिस के अन्दर ही मालिक जमीन वापस ले सकता है। यदि वह इस समय के अन्दर जमीन वापस नहीं ले सका तो उसके पट्टेदारों या किसानों को उस जमीन के खरीदने का अधिकार होगा जिसे वे जोतते हैं। जमीन खरीदने की शर्तें वही होगी जो बडे-बड़े ज़मींदारो के किसानो के लिये रखी गई है।

१८. पट्टेदारों के अधिकारों की व्याख्या करने की जरूरत है। इस संबन्ध मे दो मुख्य प्रश्नों पर विचार करना होगा, जो इस प्रकार हैं:— (१) पट्टे की अवधि और (२) लगान। कमीशन की राय में पट्टा साधारण तौर पर पाँच वर्ष के लिये होना चाहिए और साथ ही उसकी अवधि बढ़ाने की व्यवस्था होनी चाहिये। लेकिन, यदि जमीन का मालिक खुद काश्त करना चाहे तो उसे जमीन वापस लेने का अधिकार होगा। लगान इस तरीके से निश्चित किया जाना चाहिये कि किसान को उसके खेती के खर्चे और दूसरे

खतरों को ध्यान में रखते हुये काफी लाभ हो सके। देश के अधिकतर भाग में उपज का बीस प्रतिशत या पच्चीस प्रतिशत से अधिक भाग लगान के रूप में लेने के लिये उसका औचित्य बताने की जरूरत होगी।

भूमिहीन मज़दूर

१९. भूमि-वितरण कार्यक्रमों से खेतिहर मज़दूरों को सीमित लाभ ही होगा, क्योंकि भूमि-वितरण के प्रत्येक कार्यक्रम में बड़े-बडे ज़मींदारों से प्राप्त की गई जमीनों के बंटवारे में उन किसानों को प्राथमिकता दी जायगी जो प्राप्त की गई जमीन पर खेती कर रहे होंगे। इस सबसे आचार्य विनोबा भावे द्वारा शुरू किया गया भूदान यज्ञ विशेष महत्त्व रखता है। इससे भूमिहीन मज़दूर को जमीन मिल सकेगी।

२०. ऐसी व्यवस्था जीवित नहीं रह सकती जिसमे लोगों को जन्म और दूसरी परिस्थितियों के कारण समाज में ऊँचा उठने के अवसर न मिल सकें। इस लिये सामाजिक व्यवस्था में ऐसे परिवर्तन करने की ज़रूरत है जिस से गांवों में रहने वाले सभी लोग समानता का अनुभव कर सकें। यह परिवर्तन सहकारिता के आधार पर गांव का प्रबन्ध चलाने से हो जायगा। ऐसी व्यवस्था से गांव की जमीन और सभी साधनों का इस तरह से प्रयोग किया जा सकेगा कि उत्पादन में वृद्धि हो जाय और खेती के अलावा दूसरी चीजें भी तैयार की जा सकें जिससे ऐसे सभी लोगों को जो काम करने लायक हैं और काम करना चाहते हैं, काम-धंधा मिल जाय।

सहकारी ग्राम व्यवस्था

२१. ग्राम अर्थ व्यवस्था को सहकारिता के सिद्धांतों पर पुनः संगठित करना सिर्फ खेतिहर मज़दूर के हित के लिये ही उचित नही होगा। जैसा कि पहले कहा जा चुका है—बड़े-बडे ज़मींदारों से सम्बन्ध रखने वाली समस्याओं के सन्तोषजनक ढंग से हल किये जाने पर भी एक ओर छोटे और मध्यवर्ती भू-स्वामियों और दूसरी ओर पट्टेदारों और भूमिहीन मज़दूरों के हितों मे भारी अन्तर रहेगा। एक वर्ग को हानि पहुँचा कर, दूसरे वर्ग को लाभ पहुँचाने से कुछ लोगों का भला तो हो जायगा, लेकिन उससे न तो खेती की उपज मे बढ़ोतरी होगी, न ग्राम अर्थ-व्यवस्था बहुमुखी होगी और न स्थानीय रोजगार की स्थिति मे सुधार होगा। अर्थ-व्यवस्था को और अधिक नियमित करने के सुझावों का अर्थ वास्तव में गरीबी को कम करना होगा। खेती की उपज बढ़ाने की मूल शर्त यह है कि भूमि की प्रबन्ध व्यवस्था में

सुधार किया जाय। यह तभी संभव है जब गांवों में सहकारिता के सिद्धांतों पर प्रबन्ध किया जाय।

२७. सहकारी खेती और सहकारिता के सिद्धांत पर और दूसरी कार्रवाईयां करने की दिशा में देश भर में कई प्रयोग किये जा रहे हैं। इनके अध्ययन से बहुत कुछ सीखा जा सकता है। सहकारी खेती और सहकारी संगठन के बारे में प्रशिक्षण और प्रयोगों के कार्यक्रमों को और अधिक फैलाने की जरूरत है। पंचवर्षीय योजना में इस काम के लिये ५० लाख रुपये की रकम की व्यवस्था की गई है। मोटे तौर पर कमीशन का विचार है कि ग्राम पंचायतों द्वारा गांवों में भूमि सुधार और भूमि प्रबन्ध की व्यवस्था की जानी चाहिये। सर्वप्रथम पंचायतों को बड़े २ ज़मींदारों से प्राप्त की गई जमीन और बेकार जमीन का प्रबन्ध सौंपा जाय। छोटे और मध्यवर्ती ज़मींदार भी पंचायतों की मार्फत ही जमीनें पट्टे पर दें। इस प्रकार पंचायतें किसी भी दर पर भूमिहीन किसानों को ऐसी जमीनें खेती के लिये दे सकेंगी जो आर्थिक दृष्टि से लाभदायक हों। इन कार्यों से स्वाभाविक तौर पर सहकारी व्यवस्था को प्रोत्साहन मिलेगा और खेती के अलावा ऐसे रोजगार शुरू हो जायेंगे जिससे गांव के लोगों को काम-काज मिल सकेगा।

२८. सरकार को भूमि प्रबन्ध कानून बनाना होगा, जिससे गांव के लोग हमारी कल्पना की सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था स्थापित कर सकें। इस कानून में इस बात की व्यवस्था करनी होगी कि ग्राम पंचायतों को गाँव की अनजुती भूमि का या ऐसी जमीन का जिस पर मालिक सीधे खेती नहीं करते प्रबन्ध करने का अधिकार मिल जाय। दूसरे, यदि गांव के अधिकतर भू-स्वामी और मौरूसी काश्तकार सहकारिता के सिद्धांतों के अनुसार गांव की जमीन का प्रबन्ध करना चाहें तो उनका फैसला सारे गांव पर लागू होना चाहिए। यह जरूरी है कि यह प्रबन्ध ऐसा हो जिसमें सुविधा के अनुसार फेरबदल किया जा सके और जिसका स्थानीय अनुभव और परिस्थितियों के अनुरूप विकास हो सके।

भूमि सुधार सम्बन्धी सूचना और अनुसंधान

२९. देश के स्वतन्त्र होने के तुरन्त ही बाद के वर्षों में अनेक राज्यों में वहां के भूमि सुधार कानून के बारे में ब्योरेवार जांच पड़ताल की गई। यह जांच पड़ताल प्रारंभिक कार्रवाई यानी अन्तःस्थायी लोगों के अधिकार खत्म करने के लिए पर्याप्त थी। अब ऐसी स्थिति आ गई है जब कि पिछले

कानूनों के अच्छे बुरे परिणामों को ध्यान में रखते हुए भूमि-सुधार के लिये नई कार्रवाइयां की जानी चाहिए। इसके लिए पूरी-पूरी सूचना और जानकारी की जरूरत है, जो दुर्भाग्यवश अभी तक प्राप्त नहीं है। इस लिए प्रत्येक राज्य में एक ऐसा संगठन होना चाहिए जो आंकडे और सूचना प्राप्त करने का काम करे। केन्द्र में भी एक ऐसी ही संस्था बनाई जाय, जो राज्यों में प्राप्त किए गए अनुभव और ज्ञान को संचित करे और आगे की जांच पडताल की योजना तैयार करे। जब किसी भी कार्रवाई से लाखों व्यक्तियों के जीवन पर प्रभाव पड़ता हो तो यह जरूरी हो जाता है कि उसकी पुष्टि वैज्ञानिक तरीके से इकट्ठे किये गए आंकड़ों और जानकारी की सहायता से की जाय। कमीशन ने सुझाव दिया है कि इस काम में सहायता देने के लिए केन्द्र में एक भूमि सुधार संस्था की स्थापना की जाय।

अध्याय १३

खेतिहर मज़दूर

समस्या की भीषणता

खेतिहर मज़दूर का अर्थ गांव के उस मज़दूर से है जिससे मज़दूरी देकर खेती का काम कराया जाता है। जब तक खेतिहर-मज़दूरों के बारे में की गई जांच के आंकड़ों वगैरह का पता नहीं चल जाता तब तक सन् १९५१ की जनगणना के आधार पर ही ऐसे मज़दूरों की संख्या आदि के बारे में जानकारी प्राप्त की जा सकती है। खेती का काम करने वाले २४ करोड ९० लाख लोगों में से १८ प्रतिशत लोग खेतिहर-मज़दूर या उनके आश्रित बताये गये थे। भिन्न-भिन्न राज्यों में यह अनुपात अलग-अलग है—सबसे अधिक यानी ३७ प्रतिशत त्रावन्कोर-कोचीन में और ८ प्रतिशत उत्तर-प्रदेश में। सबसे अधिक खेतिहर-मज़दूर उन इलाकों में हैं जहां भूमि पर लोगों का दबाव अधिक है और जहां खेती को छोड दूसरे आर्थिक साधनों का विकास रुक गया है।

२. खेतिहर मज़दूरों की संख्या में वृद्धि होने के कई कारण हैं। इनमें से कुछ इस प्रकार हैं—(१) ग्राम उद्योगों मे गिरावट आ जाना, जिससे बहुत से कारीगर कुछ समय के लिये मज़दूर का काम करने लगे और (२) खेतों का विभाजन जिससे किसानो को मज़दूरी करनी पडी। काश्तकारी संबंधी कानूनो के लागू किये जाने के बाद बडे-बडे फार्मों के क्षेत्रों में कमी करने से यह समस्या और अधिक बढ़ गई है। बडी संख्या में खेतिहर-मजदूरों के विद्यमान होने से भूमि संबंधी वर्तमान प्रणाली में अनिश्चितता और कमजोरी आ जायगी।

उन्नति के आम उपाय

३. पंचवर्षीय योजना में मूलतः उन कारणों को दूर करने की कोशिश की गई है जिनके सबब से खेतिहर-मज़दूर वर्तमान स्थिति में पहुँचे हैं। चूंकि ये लोग ग्राम-समुदाय के अंग हैं, इसलिये उनकी आर्थिक स्थिति खेती के विकास पर निर्भर है। योजना में सिंचाई और भरपूर खेती को विस्तृत बनाने

के जो कार्यक्रम शामिल किये गये हैं, उनसे गांवों में रोजगार की स्थिति सुधर जायेगी और इस प्रकार खेतिहर मज़दूरों को अधिक अवसर मिल सकेंगे। भूमि-सुधार और भूमि को खेती-योग्य बनाने के उपायों से कुछ ज़मीन खेतिहर मजदूरों के लिये प्राप्त हो जायेगी। इसके अलावा भारत सरकार की योजना मे भूमिहीन खेतिहर मजदूरों के पुनर्वास के लिये २ करोड़ रुपये की व्यवस्था की गई है। ज्यों-ज्यों समूची अर्थ-व्यवस्था का विकास होगा त्यों-त्यों अधिकाधिक लोग गावों से शहरी इलाको में नौकरी के लिये जायेंगे और इस प्रकार जो लोग गांवों से बाहर जायेंगे और जो लोग गांवों में रह जायेंगे—दोनों के लिये नौकरी प्राप्त करने की स्थिति पहले से अच्छी हो जायेगी। इसके अलावा योजना में ग्राम-उद्योगों के और खादी के विकास के महत्त्वपूर्ण कार्यक्रम शामिल हैं, जिनसे खेतिहर-मज़दूरो को सीधा फायदा पहुँचेगा। पिछड़े हुए वर्गों की भलाई के लिये योजना मे जो व्यवस्था की गई है उससे भी खेतिहर-मजदूरों को लाभ पहुँचेगा, क्योंकि अधिकतर पिछड़े हुए लोग खेतिहर-मजदूरों में ही पाये जाते है। कम मजदूरी वाले इलाकों, बडे-बडे फार्मों और भरपूर खेती के लिये चुने गये इलाको मे मज़दूरी की कम से कम दर से सम्बन्ध रखने वाले कानून को लागू करने से भी इन लोगों को फायदा होगा।

विशेष कार्रवाइयां

४. खेतिहर मज़दूरों की भलाई के लिये निम्नलिखित उपायों की भी सिफारिश की गई है :—

(१) खेतिहर मज़दूर प्राय: उन जमीनों के मालिक नहीं होते जहाँ उनके मकान बने होते हैं। इस कारण उनकी स्थिति बहुत ही खराब हो जाती है। ऐसे भूमिहीन किसानों को जिन्हे अपने मकान वाली भूमि पर अस्थायी अधिकार प्राप्त हो, मौरूसी अधिकार दिये जाय। जहां कहीं भी मकानवाली जमीन समस्त गांव के अधिकार में हो वहा ग्राम-पंचायतों से यह बात मनवाने की कोशिश करनी चाहिये कि ये जमीने मुफ्त दे दी जायें। जो जमीनें दूसरे लोगो के अधिकार मे हो वहा संभव हो तो उन लोगों को समझा-बुझा कर और यदि जरूरी हो तो कानून बना कर यह काम किया जाना चाहिये। यदि कोई मुआवजा देना पडे, तो इसकी व्यवस्था ग्राम पंचायतों को करनी चाहिये। कई गांवों में तो मकान इतने पास-पास बने होते हैं कि मकानों के लिये नई जगहों की व्यवस्था करनी होगी। भूमिहीन

किसान और हरिजनों का इन नई जगहों में पूरा-पूरा ध्यान रखा जाना चाहिये और जहां कहीं भी संभव हो वगीचे के लिये भी व्यवस्था करने की कोशिश की जानी चाहिये।

(२) आचार्य विनोवा भावे ने भूमिहीन किसानों के लिये भूमि प्राप्त करने के वास्ते जो आन्दोलन शुरू किया है, उसका नैतिक दृष्टि से काफी महत्त्व है। ऐसे भूमिहीन मजदूरों को जिन्हें दान में दी गई जमीन पर खेती करने के लिये चुना गया हो, खेती के औजार और दूसरी सहायता देकर, भूदान-यज्ञ में योग दिया जाना चाहिये।

(३) सहकारी कर्मचारियों की सहायता से राज्य सरकारों के खेती, जंगल और सार्वजनिक निर्माण विभागों को गांव के मज़दूरों की सहकारी समितियां वनाने की कोशिश करनी चाहिये। इस प्रकार की समितियां वनाने को बढ़ावा देना चाहिये और इस वात की कोशिश करनी चहिये कि वे रचनात्मक कार्य कर सकें। वम्वई में जंगलों में काम करने वाले मज़दूरों की सहकारी समितियां और दूसरे इलाकों में ऐसी ही दूसरी समितियों की सफलता से पता चलता है कि यदि इन समितियों को बढ़ावा दिया गया तो गांवों में रोजगार की स्थिति में सुधार हो सकता है।

(४) खेती के योग्य वनाई गई जमीनें और खेती योग्य वेकार भूमि का प्रवन्ध भूमिहीन किसानों की सहकारी समितियों के लिये अलग कर देना चाहिये। यद्यपि इस तरह से प्राप्त की गई ज़मीन थोडी होगी फिर भी ऐसी योजनाओं से खेतिहर मज़दूरों के परिवारों को आशा वंधेगी और प्रोत्साहन मिलेगा।

(५) चूंकि खेतिहर मज़दूरों के पास न तो जमीन होती है और न ही कोई दूसरी चीज जो गिरवी के तौर रखी जा सके, इसलिये वे सरकार से आर्थिक सहायता प्राप्त नहीं कर सकते। लोगों को कर्जे देने में शायद कुछ शासकीय कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। लेकिन, राज्य सरकारों के लिये भूमिहीन मज़दूरों की सहकारी समितियों को आर्थिक सहायता देना संभव होना चाहिये जिससे कि वे मकान वना सकें, वैल और औजार खरीद सकें और सहायक उद्योग शुरू कर सकें। शिक्षा संवंधी वजीफे विशेषकर व्यावसायिक और टेक्नीकल शिक्षा के लिये देने चाहियें। अधिकतर राज्यों में ऐसे वजीफे दिये जा रहे हैं।

जिला-विस्तार-संस्थाओं में खेतिहर मज़दूरों की भलाई और उनकी रोजगार की समस्या का उतना ही ध्यान रखा जाना चाहिये जितना कि किसानों की समस्याओं का। विस्तार संस्थाओं की स्थापना की चर्चा इस पुस्तक में दूसरी जगह की जा चुकी है। इस बात की कोशिश की जानी चाहिये कि ग्राम-पंचायतें खेतिहर-मज़दूरों की भलाई के बारे में उतनी ही जिम्मेदारी का अनुभव करें जितनी कि वे गांव में रहनेवाले दूसरे वर्गों के प्रति अनुभव करती हैं।

—:०:—

अध्याय १४

कृषि के लिए कार्यक्रम

खाद्यान्नों और व्यापारिक फसलों में आज जो कमी मौजूद है, उसकी चर्चा पहले एक अध्याय में की जा चुकी है। पंचवर्षीय योजना इसको पूरा कर देना चाहती है, विशेषतः मुख्य फसलों के सम्बन्ध में, यथा अनाज, रुई, पटसन, तिलहन और गन्ना।

उत्पादन के लक्ष्य

२. योजना में अतिरिक्त उत्पादन के ये लक्ष्य रखे गये हैं:—

वस्तु	मात्रा (लाख में)	प्रतिशत वृद्धि
खाद्यान्न	७६ (टन)	१४
रुई	१२.६ (गाँठे)	४२
पटसन	२०.९ (गाँठें)	६३
गन्ना	७ (टन)	१२
तिलहन	४ (टन)	८

खाद्यान्नों में ७६ लाख टन को मोटे रूप में इस तरह विभाजित किया जा सकता है :—

चावल	४० लाख टन
गेहूँ	२० लाख टन
चना और दालें	१० लाख टन
ज्वार-बाजरा	५ लाख टन

३. उत्पादन वृद्धि के ये लक्ष्य राज्यों की सरकारों से सलाह मशविरा करके तैयार किए गए हैं। जिन कार्यक्रमों पर ये संख्यायें आधारित हैं, वे सबसे पहले १९५१ की गर्मियों में तैयार किये गये थे। उसके बाद इस सम्बन्ध में राज्यों की सरकारों के साथ कितनी ही बार बात-चीत की गई। इन विचार-विनिमयों के परिणाम-स्वरूप व्यापारिक फसलों के उक्त लक्ष्य तैयार किये गये, परन्तु खाद्यान्नों के सम्बन्ध में यह पाया गया कि उनकी बढी हुई उपज ७२ लाख टन न होकर ६५ लाख टन ही हो पाएगी।

साथ ही अन्न उपजाने वाली कुछ भूमि में यदि व्यापारिक फसलें पैदा की गई, तो खाद्यान्नों की उपज में ६० लाख टन से अधिक की वृद्धि न हो सकेगी। इस कारण कृषि सम्बन्धी कार्यक्रम पर अधिक ज़ोर देना अत्यन्त आवश्यक हो गया।

४. अब जो कृषि सम्बन्धी कार्यक्रम पेश किया गया है, उसके दो भाग हैं।

(१) राज्यों की सरकारों से सलाह-मशविरा करके जो स्कीमें तैयार की गई हैं, उनसे खाद्यान्नो की उपज में ६० लाख टन की वृद्धि होगी और उन पर १२५ करोड रु० खर्च होगा।

(२) योजना कमीशन ने जो पूरक स्कीमें तैयार की हैं, उन से खाद्यान्नों की उत्पत्ति में कम से कम १६ लाख टन की वृद्धि होगी। इन अतिरिक्त स्कीमों का परिचय निम्नलिखित विवरण से मिलेगा :—

(क) सिंचाई के छोटे साधनों के लिये अतिरिक्त व्यवस्था	३० करोड रुपये
(ख) नल-कूप या ट्यूब वेल लगाने के अतिरिक्त कार्य	६ करोड रुपये
(ग) राष्ट्रीय कृषि विस्तार संगठन	३ करोड़ रुपये
(घ) 'अधिक अन्न उपजाओ' के लिए पूरक व्यय (१९५२-५३)	१० करोड़ रुपये
(च) सामूहिक विकास-योजनायें जिनमें से ६६ योजनाएं जारी की जा चुकी हैं	९० करोड़ रुपये

५. दो अन्य साधनों का भी जिक्र किया जा सकता है। एक तो योजना की पूर्ति के अन्तिम दिनों में खाद का उत्पादन बढ़ाने पर विशेष ज़ोर दिया जा सकता है। दूसरे, कृषि सम्बन्धी धन की मात्रा अब तक की अपेक्षा बहुत अधिक बढ़ा दी गई है। यह आशा की जाती है कि १९५५-५६ तक छोटे किसानों के लिए सरकारी तौर पर तथा सहकारी समितियों द्वारा १०० करोड रुपयों की व्यवस्था कर ली जायगी। इसके अतिरिक्त मध्यम कालीन कर्जों के लिए २५ करोड रुपयों का तथा दीर्घ-कालीन कर्ज के लिए ५ करोड रुपयों का और भी प्रबन्ध हो सकेगा।

६. जब अतिरिक्त उपज के उक्त लक्ष्य प्राप्त कर लिए जायेंगे तो

खाद्यान्नों की कमी बहुत अंशों तक मिट जाएगी। व्यापारिक फसलों में तब भी कुछ कमी रहेगी, परन्तु वह काफी साधारण होगी। इसी कारण योजना में रुई की १२ लाख गांठें तथा पटसन की ८ लाख गांठें बाहर से मंगाने की व्यवस्था है।

कार्यक्रम

७. राज्यों की सरकारों की सलाह से खाद्यान्नों के उत्पादन में ६५ लाख टन की वृद्धि करने का जो कार्यक्रम बनाया गया है, वह इस तरह पूरा किया जायगा:—

सिंचाई के बड़े साधन	२०·१
सिंचाई के छोटे साधन	१७·८
भूमि का सुधार तथा विकास.	१५·१
खाद और उर्वरक	६·५
अच्छे बीज	५·६
	६५·१

सिचाई के बडे और छोटे साधनों से १६० लाख एकड़ भूमि की सिंचाई हो सकेगी। इसमें से राज्यों की योजनाओं में सिंचाई के छोटे साधनों द्वारा ८२ लाख एकड़ भूमि को सिंचित करने का ब्यौरा इस प्रकार है:—

	(लाख एकड़)
१. बांध और जलमार्ग	४४
२. कुँयें (नये तथा मरम्मती)	१६
३. ट्यूब वेल (सिंचाई के बड़े साधनों में सम्मिलित से भिन्न)	७
४. तालाब (नव-निर्मित तथा सुधारे गये)	८
५. पम्प के साधन	७
योग	८२

सिंचाई की छोटी योजनाओं के लिये जो ३० करोड़ अतिरिक्त रुपयों की व्यवस्था है, उससे ३० लाख एकड़ और भी भूमि की सिंचाई हो सकेगी।

खाद्यान्नों की
तब भी कुछ
योजना में रुई
मंगाने की व्य

७. राज्य
टन की वृद्धि
जायगा:—
हिं
सिं
भू
ख
अ

सिंचाई के
हो सकेगी। इ
८२ लाख एक

४.
५.

सिंचाई की
व्यवस्था है, उस

८. उक्त ३० करोड़ रुपयों को मिला कर सिंचाई के छोटे साधनों पर ७७ करोड़ रुपया व्यय किया जायगा। इसके अतिरिक्त सामूहिक विकास-योजनाओं के लिये सुरक्षित धन में से लगभग एक तिहाई सिंचाई के साधनों पर ही व्यय किया जायेगा। अतः इन योजनाओं की उन्नति के साथ-साथ सिंचाई के छोटे साधनों द्वारा पूर्वोक्त क्षेत्रफल से भी अधिक भूमि का सिंचन हो सकेगा।

९. भूमि-सुधार के कार्यक्रम के लिये राज्यों की योजना में २५ करोड़ रुपये की रकम रक्खी गई है और केन्द्रीय योजना में १० करोड़ रुपये की (केन्द्रीय ट्रैक्टर संगठन की मद में)। इससे ७४ लाख एकड़ नई भूमि का विकास हो सकेगा। इसमें से केन्द्रीय ट्रैक्टर संगठन १४ लाख एकड़ भूमि का उद्धार करेगा और राज्यों के ट्रैक्टर संगठन १२ लाख एकड़ भूमि का। शेष ४८ लाख एकड़ भूमि को स्थानीय किसान राज्यों की सहायता से तथा अन्य साधनों से कृषि योग्य बनायेंगे।

व्यापारिक फसलें

१०. जिन बुनियादी हालतों में एक तरह का उत्पादन बढ़ सकता है, उन्हीं में दूसरी तरह का उत्पादन भी बढ़ सकता है। व्यापारिक फसलों को बढ़ाने के कार्यक्रम के लिये धन का प्रबन्ध वस्तु-कमेटियां इस प्रकार विशेष उपरिशुल्क (सेस) लगा कर करेंगी।

रुई	३ करोड़ ५० लाख रुपये
गन्ना	१ करोड़ ३० लाख रुपये
तिलहन	५० लाख रुपये

पटसन के लिये उपरिशुल्क नहीं है, इससे योजना में पटसन के लिये ५० लाख रुपया रक्खा गया है।

व्यापारिक फसलों के उत्पादन पर कीमतों के उतार चढ़ाव का प्रभाव खाद्यान्नों के उत्पादन की अपेक्षा बहुत अधिक पड़ता है। व्यापारिक फसलों के जो लक्ष्य निश्चित किये गये हैं, वे इसी आधार पर हैं कि उनकी तथा खाद्य अन्नों की वर्तमान कीमतों का अनुपात इसी तरह बना रहेगा।

योजना के प्रभाव

११. अभी यह कहना कठिन है कि इस कृषि-सम्बन्धी कार्यक्रम का

फसलों के वर्तमान रूप पर क्या प्रभाव पडेगा। किसान अपने खेत में क्या चीज़ बोये, इसका निश्चय वह कई बातें सोच कर करता है—उपज की कीमत, मौसम की परिस्थितियाँ, आवश्यक साधनों की उपलब्धि, और ये सब बातें बदलती रहती हैं। सिंचाई की व्यवस्था, यातायात की सुविधा, शहरी क्षेत्रों की वृद्धि और लोगों के खान-पान की आदतों में परिवर्तन—इन सब का भी विभिन्न फसलों के क्षेत्रफल पर प्रभाव पड़ता है। तथापि उपलब्ध सामग्री के आधार पर तथा यह ध्यान में रख कर कि खेती-बाडी के लिये १ करोड़ एकड नई भूमि प्राप्त हो जायगी तथा १ करोड़ ६० लाख एकड़ नये क्षेत्र की सिचाई की जा सकेगी, यह कहा जा सकता है कि पाँच वर्षों की समाप्ति पर फसलों का रूप इस प्रकार होगाः—

(क्षेत्रफल एकडों मे)

	१६५०-५१	१६५५-५६
चावल	७ करोड ६० लाख	८ करोड़
गेहूं	२ करोड़ ४० लाख	२ करोड़ ७० लाख
अन्य अन्न	६ करोड़ ३० लाख	६ करोड़
चना तथा दालें	४ करोड़ ७२ लाख	४ करोड़ ६० लाख
कपास	१ करोड़ ४६ लाख	१ करोड़ ८० लाख
पटसन	१४ लाख	२० लाख
गन्ना	४२ लाख	४५ लाख
तिलहन	२ करोड़ ६७ लाख	२ करोड़ ७० लाख
फल और सब्ज़ी	५० लाख	६० लाख
अन्य फसलें	२ करोड ५० लाख	२ करोड ४० लाख

कृषि-सम्बन्धी आयोजन

१२. पंच-वर्षीय योजना में कृषि उत्पादन के जो लक्ष्य रक्खे गये हैं, वे इस सम्बन्ध में विशाल प्रयत्न के द्योतक हैं। इन लक्ष्यों की परीक्षा करते हुये यह ध्यान में रखना चाहिये कि मौसम-सम्बन्धी प्रभावों के सम्बन्ध में कोई भी भविष्य वाणी कर सकना सम्भव नहीं है। कृषि के साथ इन प्रभावों

का जन्मजात सम्बन्ध है और १० प्रतिशत उत्पादन तक उसका प्रभाव पड जाता है, इस तरह उससे सारे अनुमान विचलित हो जाते हैं। परन्तु उत्पादन में वृद्धि का अनुमान बड़ी सतर्कता से लगाया गया हैं, विशेषतः अच्छे वीजों, अच्छी खादों और उर्वरकों से प्राप्त होने वाली वृद्धि के सम्बन्ध में।

—:०.—

अध्याय १५

सामूहिक विकास और देहात विस्तार-योजनायें

१. सामूहिक विकास एक प्रणाली है और देहात विस्तार एक साधन, जिसके द्वारा पंच-वर्षीय योजना ग्रामों के सामाजिक और आर्थिक जीवन में रूपान्तर उत्पन्न करना चाहती है। योजना में सामूहिक विकास योजनाओं के लिये ९० करोड रुपये की रकम रक्खी गई है और यह प्रस्ताव किया गया है कि आगामी १० वर्षों में देश भर में ऐसे केन्द्रों का जाल बिछा दिया जाय। इस अध्याय में राष्ट्रीय पुनर्निर्माण के कार्य में इस कार्यक्रम की महत्ता पर कुछ प्रकाश डाला जायगा।

२. पिछले ३० वर्षों में राज्यों के विभिन्न विभागो मे ग्राम-विकास के कितने ही प्रयत्न किये गये हैं। परन्तु इन प्रयत्नों में परस्पर ताल-मेल लाने की ओर कोई विशेष ध्यान नहीं दिया जा सका और न ग्राम-जीवन को पूरी तरह समझने की कोशिश की गई। ग्राम-विकास के वे बिखरे हुये प्रयत्न कुछ व्यापक परिणामों की ओर ले जाते हैं। सबसे पहले तो जब सरकार के कितने ही विभागों के लोग अपने-अपने काम के लिये गाव में पहुंचते हैं, तो इसका मानसिक प्रभाव गांव मे गडबड उत्पन्न कर देता है। ग्राम जीवन सरकारी कार्यों की तरह विभिन्न भागों में विभाजित नहीं है। इस लिये कम से कम विभिन्न मुख्य सरकारी विभागों को ग्राम-वासियों तक स्वयं अपने कार्य-कर्त्ताओं द्वारा न पहुँच कर ऐसे बिचवैयों द्वारा पहुँचना चाहिये, जिसे आजकल ग्राम कार्य-कर्त्ता कहा जाता है। दूसरी बात यह है कि ग्रामों के सुधार की खास ज़िम्मेवारी स्वयं उन्हीं को सौंपनी चाहिये। जब तक ग्राम-वासी यह न समझेंगे कि ये कार्यक्रम उनके अपने भले के लिये हैं और उनके अपने हैं, तब तक स्थायी परिणाम की आशा नहीं की जा सकती। कोई सुधार जबरदस्ती उनके गले मढ़ने से कोई लाभ न होगा। इसी तरह जिन कार्यक्रमों में गांव का धन न लग कर पूरी तरह सरकारी रुपया लगेगा, वे कार्यक्रम भी कम समय तक चल सकने वाले सिद्ध होंगे। उद्देश्य यह है कि हम ग्राम-वासियों में श्रेष्ठतर जीवन की इच्छा उत्पन्न कर दें।

सामूहिक विकास कार्यक्रम

३. पिछले तजुर्बों से जो शिक्षा मिली है, उसके आधार पर एक सामूहिक विकास कार्यक्रम तैयार किया गया, जो १९५२ से जारी किया गया। इस कार्यक्रम का विचार पूरी तरह से नया नहीं है, परन्तु अब से पहले धन की कमी से उसकी पूर्ति में बाधा पहुँचती रही है। देश भर में आज जो ५५ सामूहिक विकास-योजनायें जारी हैं, उन में से प्रत्येक लगभग, ३०० गाँवों में फैली है, जिनका क्षेत्रफल लगभग ४५० से ५०० वर्गमील तक, खेती वाली जमीन लगभग १,५०,००० एकड़ और आबादी लगभग २ ००,००० है। प्रत्येक योजना क्षेत्र ३ विकास मंडलों में बांटा गया है, प्रत्येक विकास-मंडल में लगभग १०० गाँव हैं और ६० हज़ार से ७० हज़ार तक आबादी है। प्रत्येक विकास-मंडल को पुनः ५-५ गाँवों के समूहों में बांटा गया है और इनमें से प्रत्येक एक-एक ग्राम कार्यकर्त्ता की देखरेख में रहेगा।

४. सामूहिक विकास-योजनाओं के अन्तर्गत मुख्य विषय ये होंगे—खेती बाडी सम्बन्धी के मामले, यातायात, शिक्षा, स्वास्थ्य, पूरक रोज़गारी, मकान बनाने के काम तथा समाज सेवा। खेती-बाडी के कार्यक्रम में ये बातें सम्मिलित हैं—परती तथा बंजर भूमि को खेती के योग्य बनाना, छोटे साधनों से सिंचाई की व्यवस्था, यह उद्देश्य रख कर कि खेती-बाड़ी के लिये उपलब्ध कुल भूमि के कम से कम आधे भाग की सिंचाई की व्यवस्था हो जाय, कृषि के लिये अच्छे साधनों का उपयोग, अच्छे बीजों, खादों, रासायनिक खादों का प्रयोग और कुछ गाँवों में नस्ल की सुधार के केन्द्र बना कर पशु-जगत में उन्नति। इस कार्यक्रम की देखभाल के लिये प्रति ५ गाँवों के पीछे एक कार्यकर्त्ता रक्खा जायेगा। अन्य कार्यों के अतिरिक्त वह इस बात का भी प्रयत्न करेगा कि गाँवों में स्वस्थ सहकारिता आन्दोलन को बल मिले। यह उद्देश्य होगा कि प्रत्येक गाँव अथवा ग्राम समूह में कम से कम एक बहुमुखी कार्य करने वाली सहकारी समिति अवश्य स्थापित हो जाये।

सड़कों का कार्यक्रम इस तरह बनाया जायेगा कि योजना क्षेत्र का प्रत्येक गांव उस क्षेत्र से गुज़रने वाली राज्य की बड़ी सडक से अवश्य संयुक्त हो जाय। इन छोटी सड़कों को गाँव के स्वयंसेवक बनायेंगे।

शिक्षा के क्षेत्र में प्रारम्भिक और माध्यमिक शिक्षा का न केवल विस्तार किया जायगा, अपितु उसमें सुधार भी किये जायेंगे। धंधों की तथा टैक्निकल शिक्षा पर बल दिया जायगा और शहरी तथा देहाती दोनों क्षेत्रों में दस्तकारी

और धन्धो की पद्धति में उन्नति करने की सुविधाएँ दी जायेंगी।

स्वास्थ्य संगठन के लिये प्रत्येक विकास-मंडल में ३ प्रारम्भिक स्वास्थ्य केन्द्र होंगे और योजना के मुख्य कार्यालय पर एक माध्यमिक स्वास्थ्य केन्द्र होगा, जिसके अन्तर्गत एक अस्पताल तथा एक चलता फिरता चिकित्सालय होगा। इसका मुख्य उद्देश्य यह होगा कि सम्पूर्ण क्षेत्र में स्वास्थ्य-वर्धक पानी मिले, मनुष्यों तथा पशुओं के मल मूत्र का उचित उपयोग हो और संक्रामक बीमारियां न फैलने पायें। ग्राम-वासियों को अच्छे मकान बनाने की शिक्षा भी दी जायगी। घनी आबादी वाले गाँवों में निवास-स्थानों के लिये नई भूमि विकसित की जायगी, खेल-कूद के मैदान बनाए जायेंगे और भवन-निर्माण की सामग्री दी जायगी। जहाँ तक सम्भव होगा, इन क्षेत्रों मे गृह-उद्योग तथा छोटे उद्योगों का संगठन कर बेकारी तथा अर्ध-बेकारी की समस्या को हल किया जायगा।

५. प्रत्येक सामूहिक विकास-योजना क्षेत्र के लिये एक प्रोजैक्ट एग्जि-क्यूटिव आफिसर नियुक्त किया जायेगा, जिसके नीचे लगभग १२५ ग्राम-कार्यकर्त्ता रक्खे जायेंगे। इस स्टाफ को तथा सामूहिक विकास के अन्य कार्यकर्त्ताओं को अमेरिका के फोर्ड प्रतिष्ठान की सहायता से ३० केन्द्रों में शिक्षा दी जायेगी। प्रत्येक केन्द्र में लगभग ७० व्यक्तियों को प्रशिक्षित किया जा सकेगा। इनके अतिरिक्त कृषि विस्तार के कार्यकर्त्ता गाँवों के किसानों, पंचों और मुख्य व्यक्तियों को भी दक्ष बनाने का प्रयत्न करेंगे। जनता का सहयोग न केवल योजना की पूर्ति के लिये आवश्यक है, अपितु योजना बनाने में भी उनका सहयोग अपेक्षित है। अत प्रत्येक प्रोजैक्ट अफसर के अधीन एक गैर-सरकारी प्रोजैक्ट सलाहकार-समिति बनाई जायगी। भारत सेवक-समाज नाम के स्वेच्छा संघ द्वारा भी गांव वालों का सहयोग प्राप्त करने का प्रयत्न किया जायगा।

६. इस प्रोग्राम में कितने ही बडे कार्य भी सम्मिलित हैं, जो प्रायः सरकारी ढंग पर बडे खर्च से किये जायेंगे, इस लिये यह आवश्यक समझा गया है कि किसी क्षेत्र में कोई नई सामूहिक विकास-योजना शुरू करते हुये यह नियम बना लिया जाय कि उस क्षेत्र से उस योजना के लिये कम से कम अमुक राशि अवश्य प्राप्त हो जायेगी।

७. आधारभूत ग्रामीण सामूहिक-योजनाओं पर आगामी तीन वर्षों में ६५ लाख रुपया व्यय करने का अन्दाज़ है। इनमें से ४८ लाख ४७ हज़ार

रुपये का व्यय रुपयों में होगा और शेष डालरों में। सम्मिलित योजनाओं पर अर्थात् उन योजनाओं पर जिनका क्षेत्र देहात और शहर दोनों हैं, १११ लाख रुपया व्यय किया जायगा। केन्द्रीय सरकार अनावर्तक या गैर चालू व्यय का ७५ प्रतिशत और आवर्तक या चालू व्यय का ५० प्रतिशत देगी तथा आत्म निर्भर-योजनाओं के लिये कर्ज भी देगी। शेष व्यय राज्यों की सरकारें करेंगी और आशा है कि तीन वर्षों के बाद वे व्यय का पूरा उत्तरदायित्त्व ले सकेंगी।

८. हमारा सामूहिक विकास कार्यक्रम अमेरिकन टैक्निकल सहयोग करार से बंधा हुआ है और कुछ सामूहिक विकास-योजनाओं में उसे उक्त कार्यक्रम से समर्थन प्राप्त होगा। उसके अधीन भारत को नल-कूप लगाने, खाद पैदा करने, कृषि के औज़ारों के लिये लोहा प्राप्त करने और कार्यकर्त्ताओं को ट्रेनिंग देने की सुविधायें प्राप्त होंगी। इस से भी प्रोजैक्टों की आवश्यकतायें पूरी की जा सकेंगी।

९. सामूहिक विकास-योजना के अन्तर्गत होने वाले कार्यों का वैज्ञानिक मूल्यांकन बहुत उपयोगी सिद्ध होगा। वह हमें बतायेगा कि कौन से उपाय प्रभावशाली सिद्ध हो रहे हैं और कौन से व्यर्थ। उससे यह भी ज्ञात हो सकेगा कि सामूहिक विकास-योजनायें भारत की आर्थिक स्थिति और संस्कृति पर क्या प्रभाव डाल रही हैं। योजना कमीशन ने इस कार्य के लिये एक पृथक् स्वतन्त्र इकाई बनाने का निश्चय किया है।

राष्ट्रीय विस्तार सेवायें

१०. अधिक अन्न उपजाओ पड़ताल कमेटी ने प्रस्ताव किया था कि एक ऐसे राष्ट्रीय विस्तार संगठन का निर्माण होना चाहिये, जो कि प्रत्येक किसान के पास पहुँच सके और देहाती जीवन के सम्पूर्ण विकास में सहायक हो सके। उस कमेटी ने जो कार्यक्रम सुझाया था उसके अनुसार केन्द्रीय सरकार राज्यों की सरकारों को सहायता देगी और आगामी १० वर्षों में देश भर में इस तरह की विस्तार सेवायें व्याप्त हो जायेंगी। हमारी योजना में इसे जगह दी गई है। योजना के कार्यकाल के ५ वर्षों में १,२०,००० गांवों को ये सेवायें प्राप्त हो सकेंगी, अर्थात् देश के लगभग एक चौथाई गांव इस से लाभ उठा सकेंगे। केन्द्रीय तथा राज्यों की सरकारें वर्तमान सेवाओं का पुनः संगठन तथा सुधार करने और उन्हें समुचित शिक्षा देने के लिये एक विस्तृत कार्यक्रम बनायेंगी। इस तरह के विस्तार संगठन से ग्रामों में होने वाले कार्य को विशेषतः कृषि उत्पादन बढ़ाने के कार्य को बहुत बड़ी प्रेरणा मिलेगी।

११. विस्तार कार्यकर्त्ताओं की शिक्षा-दीक्षा पर बहुत अधिक ध्यान देने की आवश्यकता है। उन्हें न केवल देहात की समस्याओं को समझना है, बल्कि देहातियों के मनोविज्ञान को भी समझ कर उन्हें उनकी दिक्कतों मे ठीक सलाह देनी है। उन्हें देहात में स्थानीय नेतृत्व शक्ति की खोज करनी है और उससे काम लेना है। उनकी सफलता इसी बात पर निर्भर है कि वे देहातियों का कितना विश्वास प्राप्त कर सकते हैं। इस कार्य को भली प्रकार संगठित करने के लिये यह उचित होगा कि सभी कार्यकर्त्ता चाहे वे ग्रेजुएट हों, चाहे अल्पशिक्षा प्राप्त, देहात में सबसे साधारण दर्जे का काम शुरू करें और उस कार्य में जो श्रेष्ठ सिद्ध हों, उन्हें ऊँचा स्थान दिया जाये।

१२. एक ग्रामवासी का विश्वास कठिनता से प्राप्त किया जा सकता है, परन्तु उस विश्वास को खोया बहुत आसानी से जा सकता है। इस लिये यह बहुत आवश्यक है कि प्रारम्भ में वही बातें की जायें, जिनसे उपज बढ़ने के उद्देश्य में सफलता मिलनी निश्चित हो। कुछ विश्वास प्राप्त करने के बाद ऐसे उपाय भी व्यवहार में लाये जा सकते हैं, जिनकी सफलता उतनी निर्विवाद नहीं है। परन्तु जब तक उन बातों में पूर्ण सफलता प्राप्त न हो जाये, वे बातें परीक्षा के रूप में ही की जानी चाहियें।

१३. अन्त में यह भी आवश्यक है कि विस्तार-कार्यकर्त्ताओं को अनुसन्धान कार्यकर्त्ताओं का सहयोग प्राप्त रहे, ताकि वे अपनी दिक्कतों का हल उनसे जान सकें। अतः विस्तार कार्य तथा अनुसन्धान कार्य में अधिकतम सहयोग का प्रबन्ध करना आवश्यक है।

—:०:—

अध्याय १६

कृषि के लिये धन

भारत में कृषि-उत्पादन करोड़ों छोटे किसानों पर निर्भर है। इन्हीं किसानों की निपुणता तथा कार्यशक्ति में वृद्धि होने से भारत का उत्पादन बढ़ेगा। धन की कमी से तथा उधार मिलने का प्रबन्ध न होने से उन में से अधिकांश न अच्छे बीज ले सकते हैं और न अच्छी खाद तथा वैज्ञानिक साधन प्राप्त कर सकते हैं। उनमें से कुछ तो कुँओं और तालाबों तक की मरम्मत नहीं करवा पाते। अतः किसानों के लिए समय पर और उचित दरों पर कर्ज का प्रबन्ध हमारी योजना का एक अविच्छिन्न अंग हैं। इस कार्य के लिये जितनी भी एजेन्सियां हैं, उन सब का समन्वय करके उन्हें इस कार्य में जुटाया जाएगा।

२. किसान को ३ तरह के कर्जों की आवश्यकता होती है :—

(क) छोटी अवधि वाले, (ख) मध्यय अवधि वाले तथा (ग) लम्बी अवधि वाले। छोटी अवधि वाले कर्ज बीज, खाद, और उर्वरक खरीदने तथा मजदूरों की मजदूरी देने के लिये लिये जाते हैं और फसल कटने के बाद चुकाये जाते हैं। मध्यम अवधि वाले कर्ज, कुँआं खोदने, बैल खरीदने, नल लगाने तथा नए औज़ार लेने के लिए दिये जाते हैं और किस्तों में ३ से ५ वर्ष तक चुकाए जाते हैं। जो कर्ज १० से २० वर्षों में चुकाए जाते हैं वे लम्बी अवधि के हैं। कर्ज चुकाने, बड़ी मशीनें खरीदने अथवा नई जमीन लेने के लिए ये कर्ज लिए जाते हैं।

३. किस तरह के कर्ज के लिए कितने रुपयों की आवश्यकता है, इसका अन्दाज लगा सकना कठिन है। फिर भी यह स्पष्ट है कि इस विशाल कार्य के लिए जितने धन की आवश्यकता है उसका प्रबन्ध हो सकना बहुत कठिन है।

धन के प्रबन्ध के साधन

४. किसानों को इनसे धन प्राप्त होता है :—

[१] निजी एजेन्सियां :—(क) साहूकार और ज़मींदार (ख) व्यापारिक बैंक।

[२] सरकारी या अर्ध-सरकारी एजेन्सियां (क) सरकार (ख) सहकारी समितियां।

कुछ समय पहले तक साहूकार और ज़मींदार सबसे बड़े साधन रहे हैं। कर्ज़े हल्के करने वाले कानूनों ने उनकी संख्या में बहुत कमी कर दी है और अब संस्थाओं द्वारा कर्ज देने की पद्धति जारी करने की आवश्यकता है। व्यक्तिगत क्षेत्रों के क्षीण हो जाने पर सरकार,जो पहले केवल कष्टों के समय सहायता देने का काम करती थी, अब कृषि-विकास के लिए भी धन का प्रबन्ध करने लगी है। उदाहरण के लिए १९४९-५० में तकावी ऋण की मद में लगभग १५ करोड़ रुपया बांटा गया, जबकि १९३८-३९ में केवल एक करोड़ रुपया बांटा गया था।

५. देहात को सहकारी समितियों से भी काफी परिमाण में धन प्राप्त होता है। देश भर में आज १,४२,००० कृषि सहकारी समितियां हैं, जिन्होंने १९४९-५० में २८ करोड़ रुपया किसानों को उधार दिया, जबकि १९३८-३९ में यह राशि केवल ७ करोड़ थी। इस राशि का दो तिहाई भाग बम्बई और मद्रास में काम आया और पांचवें भाग से कुछ कम उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश और पंजाब में। अन्य क्षेत्रों में इस आन्दोलन को ज़ोरदार बनाने की आवश्यकता है।

सहकारी समितियों द्वारा ऋण

६. बम्बई, मद्रास तथा कुछ अन्य राज्यों के अनुभव से यह सिद्ध हो गया है कि कृषि के लिए धन जुटाने का सबसे अच्छा साधन सहकारी समितियां हैं। समितियों को अपने सदस्यों के स्वभाव और आचार का ठीक ज्ञान रहता है, और वे रुपया उधार देते हुए उन सब बातों तथा ज़मानत का ध्यान कर लेती हैं। वे इस बात पर भी निगरानी रख सकती हैं कि उधार दिया हुआ रुपया ठीक काम पर खर्च हो रहा है या नहीं। कर्ज़ वसूल करने के सम्बन्ध में भी उनकी स्थिति इस कारण अधिक अच्छी होती है कि वे जान-बूझ कर रुपया न चुकाने वाले व्यक्ति पर जन-मत का दबाव डाल सकती हैं। स्थानीय बचत संग्रह का कार्य भी वे अधिक अच्छी तरह कर सकती हैं।

७. सहकारी समितियों के धन का बड़ा भाग शेयरों, कर्ज़ों या रक्षित धन से आता है, अतः उन पर भी बैंकों के नियम लागू होते हैं। नुकसान से बचने के लिए प्रायः वे उन्हीं को उधार देती हैं, जो ज़मानत दे सकते हैं। यह अभीष्ट है कि वे उन किसानों को भी उधार देने का प्रयत्न करें, जिनमें कर्ज़ चुका सकने की क्षमता है। इस में कुछ न कुछ खतरा तो अवश्य

होगा। इस लिए यह आवश्यक है कि इस खतरे से होने वाले नुकसान को पूरा करने का उत्तरदायित्व सरकार अपने ऊपर ले ले। बम्बई सरकार ने इस सिद्धान्त को स्वीकार कर लिया है और अन्य राज्यों को उसका अनुसरण करना चाहिये। अपेक्षाकृत कम विकसित राज्यों को भी इस पद्धति का उपयोग करना चाहिये।

८. इस तरह यदि सहकारी समितियो को अपना कार्य-क्षेत्र बढ़ाना होगा तो उनकी सदस्य संख्या भी बढानी पडेगी और उनकी कार्य-पद्धति में सुधार करना होगा। सन् १९४६ में सहकारिता आयोजन कमेटी ने यह सिफारिश की थी कि आगामी १० वर्षों मे हमें पचास प्रतिशत गांवों और ३० प्रतिशत देहाती आबादी को सहकारिता के क्षेत्र में ले आना चाहिये। प्रयत्न करना चाहिए कि १९५५-५६ तक यह लक्ष्य प्राप्त कर लिया जाए।

९. सहकारी समितियो की सफलता बहुत अंशों तक उनके कार्यकर्त्ताओं पर निर्भर होगो। हाल ही में रिजर्व बैंक ने पूना में इन समितियों के उच्च कार्यकर्त्ताओ की ट्रेनिंग का कोर्स जारी किया था। अन्य स्थानों पर भी यह प्रयत्न किया जाना चाहिए। इस कार्य के लिए कमीशन ने १० लाख रुपया रक्खा है और उसे ऊँची प्राथमिकता दी गई है।

१०. इन सहकारी समितियों को जब तक जनता की बचत यथेष्ट मात्रा में प्राप्त नहीं होने लगती, तब तक उन्हें रिजर्व बैंक से आर्थिक और टेकनिकल सहायता की आवश्यकता रहेगी। रिआयती कर्जों की स्कीम के अधीन आजकल भी रिजर्व बैंक इन समितियों को स्टेट कोओपरेटिव बैंकों के द्वारा कृषि कार्यों के लिये तथा पैदावार की बिक्री के लिए बैंक की प्रचलित दर से २ प्रतिशत कम दर पर उधार देता है। इनके लिए कर्ज चुकाने की अवधि भी ६ महीने के बजाय १५ महीने रक्खी जाती है। इन रियायतों का परिणाम यह हुआ है कि सन् १९५१-५२ में सहकारी बैंकों ने रिजर्व बैंक से १२½ करोड रुपये का कर्ज लिया, जबकि १९४६-४७ में यह कर्ज केवल १·५ लाख था। अभी तक बम्बई और मद्रास ही इस रिआयत से विशेप लाभ उठा रहे हैं। तथापि रिजर्व बैंक अब अन्य राज्यों के सुस्थिर सहकारिता आन्दोलनों को भी स्वीकार करने लगा है

११. ज्यों-ज्यों राज्यों में इन संस्थाओं की संख्या बढ़ती जाये, त्यों-त्यों रिजर्व बैंक और सरकार को चाहिये कि वे सहकारी समितियों को अधिक से अधिक सहायता दें। आगामी चार वर्षों में इन संस्थाओं को दिये गये कर्ज

की राशि १०० करोड़ रुपया प्रतिवर्ष तक पहुँच जानी चाहिये। इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिये प्रत्येक राज्य में कृषि सम्बन्धी अर्थ-व्यवस्था और सहकारिता के विकास की एक विस्तृत योजना आन्दोलन के नेताओं, रिजर्व बैंक तथा केन्द्रीय सरकार की राय से तैयार की जानी चाहिये।

मध्यम और लम्बी अवधि के कर्ज

१२. जहां छोटी अवधि के कर्ज से किसान की तात्कालिक आवश्यकतायें पूरी होती है, वहां मध्यम अवधि के कर्ज से वह अपनी खेती-बाड़ी का क्षेत्र और उपज बढ़ा सकता है। इस लिये मध्यम अवधि के कर्ज को विशेष रूप से बढ़ाने की आवश्यकता है।

१३. अभी तक रिजर्व बैंक सहकारी समितियों को मध्यम अवधि के कर्जों के लिये कोई सहायता नहीं देता। हाल ही में बैंक ने यह स्वीकार किया है कि वह ५ करोड़ रुपये तक की राशि मध्यम अवधि के कर्जों के लिये देगा और अब इसे सम्भव बनाने के लिये रिजर्व बैंक कानून में संशोधन किया जा रहा है। यह देखते हुये कि उत्पादन की वृद्धि तथा सहयोग समितियों के कार्य में फैलाव की बहुत गुंजायश है, यह रकम पर्याप्त सिद्ध न होगी। अतः कमीशन ने इस कार्य के लिये ५ करोड़ की रकम रक्खी है, जो अगले ३ वर्षों में क्रमशः दी जायगी। इसके अतिरिक्त प्रबन्ध तथा सहकारी समितियों के प्रयत्न से यह आशा की जा सकती है कि योजना की समाप्ति तक प्रतिवर्ष २५ करोड़ रुपया मध्यम अवधि के कर्जों के लिये उपलब्ध हो सकेगा।

१४. सन् १९४९-५० में २८३ भूमि-गिरवी बैंकों ने लगभग एक करोड़ रुपया २० वर्ष तक की लम्बी अवधि के कर्जों के रूप में दिया था। ये बैंक मद्रास, बम्बई, मैसूर और मध्य प्रदेश में हैं। अन्य राज्यों में भी इनकी स्थापना की जा रही है। अभी तक ये बैंक प्रायः पुराने कर्ज चुकाने के लिये ही लम्बी अवधि का नया कर्ज देते रहे हैं। भविष्य में ये कर्ज उपज बढ़ाने के लिये देने चाहियें, ताकि उस बढ़ी हुई आय से पुराने क़र्ज भी चुकाये जा सकें। भूमि-गिरवी बैंकों को अब उत्पादन बढ़ाने के इच्छुक किसानों को सहायता देनी चाहिये।

१५. हाल ही में कुछ केन्द्रीय बैंकों को लम्बी अवधि के लिये कम दर पर कर्ज देने मे असुविधा प्रतीत हुई, यद्यपि उनके ऋणपत्र (Debentures) का उत्तरदायित्व सरकार ने अपने ऊपर ले लिया था। परिणाम यह प्रतीत होता है कि लम्बी अवधि के कर्जों के लिये भूमि-गिरवी बैंक पर्याप्त सिद्ध

न होंगे। यह बात योजना के उद्देश्यों के अनुकूल न होगी। अतः कमीशन ने सहकारी-समितियों के साधनों के अतिरिक्त ५ करोड़ रुपया लम्बी अवधि के कर्जों के लिये रक्खा है।

१६. इस राशि तथा मध्यम अवधि के कर्जों के लिये रक्षित अन्य राशियों के बँटवारे के लिये कमीशन ने ये सिफारिशें की हैं:—

(१) इन कर्जों को कृषि-उत्पादन बढ़ाने के कार्यक्रमों के साथ सम्बद्ध किया जाय।

(२) उन क्षेत्रों तथा वर्गों को तरजीह दी जाय, जिनको सहकारी समितियों से ऋण नहीं मिल रहा।

(३) कर्जों का बँटवारा सहकारी संगठनों द्वारा होना चाहिये। जहाँ सहकारी संगठन न हों, वहाँ उनका बँटवारा ऐसे संगठनों द्वारा होना चाहिये, जो क्रमशः सहकारी संगठनों के रूप में विकसित हो सकें या उनमें मिल सकें।

(४) अन्य चीजों के साथ, दीर्घ कालीन कृषि ऋण भूमि-गिरवी बैंकों द्वारा जारी किए गये ऋणपत्र (Debentures) खरीद कर भी लिया जा सकता है।

(५) इन सिफारिशों की पूर्ति के लिये भारत सरकार रिजर्व बैंक तथा अन्य सम्बद्ध संस्थाओं की सलाह से एक विस्तृत योजना तैयार करे।

—:०:—

अध्याय १७

कृषि हाट व्यवस्था

किसान को अपनी उपज की जो कीमत मिलती है, उसका उत्पादन पर तथा उसकी भलाई पर महत्त्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। बहुत बार वह अच्छी कीमत नहीं प्राप्त कर सकता। जहां रुई और मूँगफली आदि को रखने के लिये बहुत जगह की जरूरत होती है, जिसका प्रबन्ध किसान नहीं कर पाता, वहां फल, सब्ज़ी, गन्ना आदि जल्दी खराब हो जाते हैं। अपने पास अधिक माल रखने की शक्ति न होने के कारण प्रायः छोटे किसान होड़ा-होड़ी में अपनी उपज के दाम बहुत गिरा देते हैं।

२. कृषि की उपज का बाजार कितनी ही बातों पर निर्भर है। उपज को इकट्ठा करना होता है, उसे कहीं रखना पड़ता है, उसका वर्गीकरण कर उसे एक स्टैंडर्ड का बनाना होता है और उसे कहीं ले जाकर उसकी बिक्री की बातचीत करनी होती है। किसान इनमें से कुछ काम तो कर सकता है, पर उपज को भंडार में रखने और बेचने के लिये जिस विशेष ज्ञान तथा साधनों की आवश्यकता होती है, वे प्रायः किसान के पास नहीं होते। अतः जो यह कार्य करते हैं, उन्हें उसका युक्तियुक्त पुरस्कार मिलना चाहिए।

नियन्त्रित बाजार

३. गांव का साहूकार किसान को इस शर्त पर रुपया उधार देता है कि वह अपनी उपज उसे अथवा उसके द्वारा निर्दिष्ट व्यक्ति को बेचेगा। उपज के बेचने के समय साहूकार इस स्थिति का लाभ उठाता है और उचित अनुचित उपायों से कम से कम कीमत देने का प्रयत्न करता है। मंडी का दलाल भी प्रायः इसी मनोवृत्ति से काम करता है।

४. किसान को उपज की उचित कीमत मिले, इस उद्देश्य से बम्बई, मद्रास, हैदराबाद और मध्य-प्रदेश में नियन्त्रित मंडियां बनाई गई हैं। उपज से मिले दामों में अनुचित कटौती नहीं की जा सकती और दलालों तथा तोलने वालों की भी दर निश्चित की गई है। इन सुधारों से किसानों

को लाभ हुआ है। १९५५-५६ तक अन्य राज्यों की महत्त्वपूर्ण मंडियों मे भी इस तरह का प्रबन्ध हो जाना चाहिये।

सहकारी मंडियों की उन्नति

५. क्षेत्र की दृष्टि से इन नियन्त्रित मंडियो के लाभ सीमित हैं। वास्तव मे जब तक मंडियों के रूप में परिवर्तन न किया जाय, मध्यस्थों की संख्या तथा खर्च मे बहुत कमी नहीं की जा सकती। अतः कुछ राज्यों मे सहकारी मंडियां बनाने का प्रयत्न किया गया है। उदाहरण लिये के उत्तर प्रदेश में पिछले १० वर्षों मे १,६०० गन्ना सहकारी यूनियने तथा प्रारम्भिक समितियां बनाई गई हैं। राज्य भर में चीनी के कारखानों को जितना गन्ना बेचा जाता है, उसका ८५ से ९० प्रतिशत इन्हीं सस्थाओं द्वारा बेचा जाता है। इस गन्ने की कीमत वर्ष भर में २५ करोड़ रुपये तक पहुँचती हैं। बिक्री के अतिरिक्त ये सहकारी समितियां ऋण व्यवस्था और हाट व्यवस्था मे सम्बन्ध स्थापित करने का भी प्रयत्न करती हैं। वे किसानों के लिये अच्छे बीज खाद तथा अन्य सामग्री का भी प्रबन्ध करती हैं।

बम्बई में रुई के लिये सहकारी मंडियां स्थापित की जा रही हैं। कर्नाटक में ये समितियां पृथक्-पृथक् समूहों में काम करती हैं और गुजरात में कपास के सभी उत्पादक अपनी उपज का एक साथ संग्रह कर लेते हैं।

६. सहकारी मंडियों की उन्नति की रफ्तार अभी तक धीमी रही है। पहले तो व्यापारी इन्हें पसन्द नहीं करते। दूसरे, खरीदार कीमत चुकाने में विलम्ब करते हैं। उदाहरण के लिये १९५० के अन्त तक उत्तर प्रदेश में चीनी के कारखाने सहकारी समितियों से जितना गन्ना खरीद चुके थे, उसके हिसाब में २ करोड़ रुपये का भुगतान बाकी था। परिणाम यह हुआ कि कुछ सहकारी समितियों को भुगतान करने के लिये धन एकत्र करने के निमित्त ठेकेदार नियुक्त करने पड़े। इन ठेकेदारों का कार्य आपत्तिजनक और बहुत महँगा था। इस दिक्कत से बचने के लिये गुजरात की रुई बेचने वाली संस्थाओं ने अपनी रुई ओटने तथा गांठ बांधने वाली फैक्टरियां खड़ी कर लीं।

७. इससे यह प्रतीत होता है कि ऋण और हाट व्यवस्था को संयुक्त कर देनेपर भी जो सहकारी समितियां केवल बिक्री के लिये कमीशन एजेण्ट का काम करती हैं, वे प्रभावशाली नहीं होतीं और उत्पादकों के हितों की रक्षा और समृद्धि के लिये यह आवश्यक है कि सहकारी समितियों को प्रक्रियात्मक (Processing) सुविधायें प्राप्त रहें।

८. कुछ उपज बिना विशेष प्रक्रिया के भी बेची जा सकती है। ऐसी वस्तुओं की बिक्री करने वाली सहकारी समितियों का उपभोक्ता सहकारी समितियों से सीधा सम्बन्ध होना चाहिए। अब भी गेहूँ, दालों, मिरचों, फल, सब्ज़ी आदि का बहुत काफी अन्तर्राज्यीय व्यापार है। यह कार्य बिक्री-सहकारी समितियों द्वारा और भी अधिक अच्छी तरह किया जा सकता है। इसी तरह की व्यवस्था राज्य के आन्तरिक व्यापार के लिये भी की जा सकती हैं।

९. मालूम होता है कि बिक्री की कुछ सहकारी समितियां बिना यथेष्ट साझे की पूँजी के बनाई गई हैं। इन समितियों को रिजर्व बैंक जो सहायता देता है, वह उनकी आधारभूत पूँजी पर निर्भर है। इस लिये यह आवश्यक है कि इन समितियों के सदस्य इनमें यथेष्ट पूँजी एकत्र करे।

१०. बिक्री के लिए विशेष ज्ञान और टेक्निकल योग्यता की आवश्यकता होती है। जो सहयोगी सघ किसी ग्राम-समूह में अथवा एक ही वस्तु की बिक्री का कार्य करते रहे हैं, उनके लिये किसी दक्ष व्यक्ति को रखना कठिन हो जाता है। इसलिये इन संघों का क्षेत्र काफी बड़ा, कम से कम एक तहसील, अवश्य होना चाहिये। इसी तरह एक ही वस्तु की बिक्री करने वाले सहयोगी संघों को थोक बिक्री का काम अपने पैमाने पर संगठित करना चाहिए।

गोदाम और भण्डार

११. उपज को रखना बिक्री सहकारी समितियों के लिए एक अन्य कठिनाई बन जाता है। अधिकांश उपज जमा कर बिक्री के लिये मण्डी में भेज दी जाती है, जहां रेल, सड़क और बैंकिंग आदि की सुविधाएं प्राप्त होती हैं। वस्तु को गिरवी रख कर बैंक रुपया उधार दे देते हैं। मण्डियों में उपज को आगे भेजने में सुविधा रहती है, इस से उसे रखने के गोदाम मण्डियों में ही बनने चाहिए। अभी तक वहां गोदाम प्राप्त करने में बहुत खर्च आता है और उनका प्रबन्ध असन्तोषजनक है। इसलिए सहकारी समितियों को अपने गोदाम बनाने चाहिएं। मद्रास, बम्बई, उड़ीसा आदि कुछ राज्य इस समस्या से अवगत हैं और मण्डियों में गोदाम बनाने के लिए सहकारी समितियों को आर्थिक सहायता दे रहे हैं। अन्य राज्यों को उनका अनुसरण करना चाहिए।

१२. कुछ कमेटियों तथा कमीशनों ने देश में गोदामों की सुविधाएं प्रदान करने पर बल दिया है। अभी तक गोदाम की रसीद को हुंडी का महत्व

नहीं दिया गया, इसले उसके आधार पर रिजर्व बैंक सहकारी समितियों तथा अनुसूचित बैंकों को रुपया उधार नहीं दे सकता। इसके लिए रिजर्व बैंक ने लाइसेंस प्राप्त गोदाम बनाने की सलाह दी है।

विकास का भावी स्वरूप

१३. यद्यपि कुछ राज्य बिक्री सहकारी समितियों के निर्माण को प्रोत्साहन दे रहे हैं, फिर भी देश भर में उनके विकास के लिए कोई सुदृढ़ नीति न तो बनाई गई है और न बरती जा रही है। सहकारी बिक्री को उत्पादन के लिए धन प्राप्ति के साथ मिला कर तथा सहकारी समितियों को उपज के बाद की प्रक्रियाओं (Processing) का स्वामित्व देकर उपज खूब बढ़ाई जा सकती है, खर्च घटाया जा सकता है और उपज को आयोजित किया जा सकता है। अतः बिक्री के सहकार-संघों के निर्माण की परिस्थितियाँ हमें बहुत शीघ्र उत्पन्न कर लेनी चाहिये। कमीशन की राय है कि भविष्य में सहकारी समितियों को ही अपने प्रक्रिया के कारखाने (Processing plants) बनाने तथा नियन्त्रित करने चाहिए। जहां ऐसी समितियां नहीं हैं, वहां उनका निर्माण कर उन्हें साधन सम्पन्न बनाना चाहिए।

१४. सहकारी बिक्री और सहकारी प्रक्रिया की टेकनिकल, आर्थिक और प्रबन्ध सम्बन्धी समस्याओं का गहरा अध्ययन करने की आवश्यकता है। इसलिए केन्द्र में इस विषय के ४ विशेषज्ञों की स्थायी समिति बनाई जाय। यह कमेटी राज्यों की सरकारों को तथा सहकारी समितियों को इस विषय की विस्तृत स्कीमें बनाने में सहायता देगी और इस बात पर निगरानी रखेगी कि किस राज्य में कितनी उन्नति हुई है।

१५. ज्यों-ज्यों सहकारी समितियां अपनी स्थिति मजबूत बनाती जाएं, त्यों-त्यों नियन्त्रित मण्डियों के प्रबन्ध उनके अधीन होते जाने चाहिए। वर्तमान समय में भी नियन्त्रित मण्डियों की प्रबन्ध समितियों में सहकारी समितियों को समुचित प्रतिनिधित्व मिलना चाहिये। जब किसानों के लिए उनकी उपयोगिता सिद्ध हो जाए तब सहकारिता के सिद्धान्तों पर चलने वाले संघों को यह अधिकार दिया जाय, कि वे मण्डियों में बिकनेवाली उपज पर थोडा सा शुल्क लगा सकें। इस से ये समितियां अपना कार्य बढ़ा सकेंगी। इस तरह प्रत्येक मण्डी के लिये कुछ धन संग्रह कर सकना भी सम्भव हो जायगा। इस धन के आधार पर बैंक उन्हें कर्ज की और अधिक सुविधाएँ दे सकेंगे।

उपज का वर्गीकरण

१६. काजू, काली मिर्च, मसाला, ऊन आदि उपजों का उचित वर्गीकरण न होने से विदेशी बाजार में उनको कम कीमत मिलती है। तम्बाकू और सन का वर्गीकरण करने से सन्तोषजनक लाभ प्राप्त हुआ है। निर्यात को प्रोत्साहन देने की दृष्टि से इन चीजों का वर्गीकरण करने का प्रस्ताव है—ऊन, सुअर के बाल, लाख, भेड़ और बकरी की खालें, काजू, तेलों के बीज, तेल और सेमल की रुई। इस पर ८६,४७,००० रुपया खर्च आयेगा जो १९३७ के कृषि उत्पादन (वर्गीकरण और क्रय-विक्रय) कानून के अनुसार एक छोटा शुल्क लगा कर जमा किया जायगा। यह कार्यक्रम इस प्रकार है :—

वर्ष	योजना का क्षेत्र	विकास-व्यय (रुपयों में)
१९५१–५२	तम्बाकू और सन का वर्गीकरण	५,०६,०००
१९५२–५३	भेड़ों और बकरियों की खालों का वर्गीकरण	१४,४१,०००
१९५३–५४	काजू, मिर्च, मसाले और लैमनग्रास तेल का वर्गीकरण	२२,६२,०००
१९५५–५६	सेमल की कपास, रीठे, रोजिन, टरपैन्टाइन, तेल के बीज तथा तेलों का वर्गीकरण	३३,००,०००
	जोड़	८६,४७,०००

इन वस्तुओं का निर्यात-मूल्य ११० करोड़ रुपया है। वर्गीकरण से इस में १० से १५ प्रतिशत की वृद्धि हो जाएगी।

१७. राष्ट्रीय स्वास्थ्य की दृष्टि से खाद्य उपजों, विशेषतः दूध-घी और तेल के वर्गीकरण की भी सिफारिश की गई है। देश भर में समानता लाने के लिए वर्गीकरण के माप राज्यों की सरकारों तथा भारतीय स्टैण्डर्ड इन्स्टीट्यूट की राय से नियत करने चाहिए।

वजन तथा माप

१८. देश में वजन और मापों की विभिन्नता परेशानी उत्पन्न करती है। समानता लाने के लिए सन् १९३९ में केन्द्रीय सरकार ने राज्यों में स्टैण्डर्ड

वेट्स एक्ट (प्रमाणिक वजन कानून) जारी किया था। कमीशन की राय है कि इस कानून से उत्पादक और उपभोक्ता दोनों को लाभ होगा, इस से यह सब राज्यों में लागू होना चाहिए।

—:o:—

अध्याय १८

कृषि विकास की कुछ समस्याएँ

इस अध्याय में कृषि-विकास की कुछ ऐसी समस्याओं का जिक्र किया जायगा जिन का हल नए अनुसन्धान पर निर्भर करता है ।

सिंचाई तथा वर्षा

२. भारत में कुल कृषि योग्य भूमि का ४/५ भाग मुख्यतः वर्षा पर निर्भर करता है। अतः भारत में किसी न किसी फसल का फेल हो जाना एक बहुत प्रचलित बात है। स्पष्ट है कि कृषि की उपज को बढ़ाने के लिए हमें सिंचाई का प्रबन्ध बढ़ाना चाहिए ।

३. सिंचाई की योजनाओं को बडी और छोटी इन दो भागों मे बांटा जाता है। इन दोनों से आजकल क्रमशः २ करोड ६ लाख और २ करोड़ ९४ लाख एकड भूमि सींची जाती है। सिंचाई का दूसरा वर्गीकरण उपाय के आधार पर भी किया जाता है। जब कि अधिकांश नहरें राष्ट्र की सम्पत्ति हैं, कुएं, तालाब आदि व्यक्तियों के पास हैं। भारत के मुख्य-मुख्य राज्यों में इस दृष्टि से पिछले वर्षों में निम्नलिखित स्थिति रही है :—

औसत (लाख एकडों में)

	नहरों द्वारा सिंचित क्षेत्र		व्यक्तिगत प्रयत्नों से सिंचित क्षेत्र	
अवधि	उत्तर प्रदेश	मद्रास	उत्तर प्रदेश	मद्रास
१९२०–२५	२१·५	३८·०	५१·८	५०·७
१९२५–३०	२६·१	३९·५	४९·८	४६·९
१९३०–३५	३१·५	३८·८	५०·०	४७·७
१९३५–४०	३६·२	३९·१	५४·०	४४·१
१९४०–४५	३९·५	४२·४	५२·५	४७·६

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि इन २५ वर्षों में जब व्यक्तिगत साधनों से सिंचित भूमि में वृद्धि नहीं हुई, नहरों से सिंचित भूमि में उत्तर प्रदेश तथा मद्रास में क्रमशः ८३·७१ प्रतिशत और ११·६ प्रतिशत वृद्धि

हुई । इस से यह प्रतीत होता है कि इस सम्बंध में भविष्य में व्यक्तिगत पूंजी लगने की सम्भावना कम थी, और नये भूमि सुधारों के कारण जोत कम हो जाने से तो सम्भावना और भी कम हो जायगी। भविष्य में सिंचाई का प्रबंध सामूहिक ढंग से करना होगा, चाहे उसके लिये राज्य की सहायता प्राप्त हो या न हो ।

४. सिचाई के छोटे और माध्यमिक साधनों से बहुत से स्पष्ट लाभ हैं । उनसे व्यापक क्षेत्र में लोगों को कारोबार मिलता है, उन पर अपेक्षाकृत कम खर्च आता है और उन्हें शीघ्र ही पूरा किया जा सकता है। उनके निर्माण के लिये लोकमत को भी अधिक आसानी से अनुकूल बनाया जा सकता है । इन कारणों से तथा उत्पादन की अधिकता में उनका बड़ा भाग होने से उनके लिये योजना में ३० करोड़ रुपया रक्खा गया है ।

५. यह बहुत ज़रूरी है कि सिंचाई के इन साधनों की नियमित रूप से मरम्मत और देखभाल होती रहे । कितनी ही बार लोग सिंचाई के पानी का टैक्स तब तक नहीं देते जब तक नाले नालियों की मरम्मत नहीं की जाती, क्योंकि उसका उत्तरदायित्व निश्चित करने में विलम्ब हो जाता है । कमीशन की सिफारिश है कि नहरों की रक्षा, मरम्मत, प्रबन्ध आदि के लिये राज्य के सिचाई विभाग को उत्तरदायी बनाना चाहिये और वह अपना कार्य ग्राम पंचायतो तथा सहकारी समितियों की सहायता से करे । जो व्यक्ति इस पानी से जितना लाभ उठायें, उनसे उसी अनुपात में टैक्स लेना चाहिये ।

६. फिर भी बहुत सा क्षेत्र वर्षा पर ही निर्भर करेगा, अतः सूखी कृषि की समस्याओ की ओर सबसे अधिक ध्यान देने की आवश्यकता है । वर्षा के पानी को खेतों में ही रोक कर, तथा ज़मीन की सतह के वर्षाजल को धूप द्वारा उड जाने से बचा कर जमीन की तरी की रक्षा की जा सकती है और बिना सिचाई के ही सफलतापूर्वक फसलें उगाई जा सकती हैं । इस महत्त्वपूर्ण विषय पर बम्बई राज्य के शोलापुर और बीजापुर में तथा पंजाब के रोहतक में अनुसन्धान किया गया है । इसमें सन्देह नहीं कि बांध और मेड़ें बनाकर और ठीक ढंग से निरा-खोद कर तथा सूखी जमीन में भी उग आने वाले बीजों के प्रयोग से खराब वर्षों में सामान्य उपज तथा साधारण वर्षों में अधिक उपज प्राप्त की जा सकेगी ।

अच्छे बीज

७. वर्तमान ढंग की कृषि की एक बड़ी सफलता अच्छे किस्म के बीजों

हैं। आमतौर से किसानों को इस की उपयोगिता का ज्ञान है तथा उत्पत्ति बढ़ाने के कार्य मे अच्छी किस्म के बीजों से बहुत बड़ी सहायता ली जा सकती है। परन्तु इन बीजों की यथेष्ट उपलब्धि तथा वितरण का सन्तोष-जनक प्रबन्ध नहीं है और बहुत बार जब तक ये बीज किसान के पास उपयोग के लिये पहुँचते हैं, उनकी शक्ति क्षीण हो चुकी होती है।

८. कमीशन की सिफारिश है कि जहां तक हो सके उन बीजों की वृद्धि तथा वितरण के कार्य को विकेन्द्रित करने की आवश्यकता है, ताकि शक्तिशाली बीज विशुद्ध रूप में प्रत्येक गांव में पहुँच सकें। इस उद्देश्य के लिये कृषि विभाग की ओर से बहुत बड़ी संख्या में बीज फारम खोलने की आवश्यकता होगी। सामूहिक विकास के प्रत्येक क्षेत्र में, जिसमें लगभग १०० गांव होंगे, इस तरह का एक फारम अवश्य होना चाहिये। इन से आस-पास के गांवो को ठीक तरह से अच्छे बीज मिल सकेंगे। इन फारमो को बढाने और चलाने का उत्तरदायित्व बडे फारमों के मालिकों पर डालना चाहिये।

९. कृषि विभाग को इस सम्बन्ध में बहुत सावधान रहना चाहिये कि जब तक इन बीजों की श्रेष्ठता का पूर्ण निश्चय न हो जाय, तब तक उनका वितरण न किया जाय। बीजों में बार-बार परिवर्तन करने से किसान का विश्वास जाता रहता है। साथ ही उससे विकास क्षेत्र के कार्यकर्ताओ की दिक्कतें भी बढती हैं।

१०. सुधरे हुये बीजों की टेक्नीकल तथा व्यवस्था सम्बन्धी बातों पर प्रतिवर्ष विचार करने तथा इन बीजों को लोकप्रिय बनाने के लिये भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् को उत्पादको तथा विस्तार कार्यकर्ताओ की एक स्थायी समिति बनानी चाहिये।

साधारण और रासायनिक खाद

११. भारत जैसे बडे देश में भूमि की उपजाऊ शक्ति में बहुत भिन्नता है। अभी तक भूमि का विधिवत् प्रमापीकरण नहीं किया गया। परन्तु यह सर्वविदित है कि भूमि की उपजाऊ शक्ति के लिये आवश्यक ऐन्द्रियक भाग, नत्रजन, फास्फेट तथा पोटाश इन चारों वस्तुओं में से भारत की भूमि में पहली तीन चीजों की कमी तथा पोटाश की अधिकता है। यह कमी खादों द्वारा पूरी की जा सकती है और इन खादों को (क) ऐन्द्रियक और (ख) अनैन्द्रियक इन दो भागों मे बाँटा जा सकता है। ऐन्द्रियक खाद दो तरह के

हैं :—स्थूल तथा सारभूत। स्थूल खादों में गोबर, कूड़ा, खाद मल-मूत्र तथा हरी खाद सम्मिलित है तथा सारभूत खादों में खली, हड्डी का चूरा, सूखा खून, सींग और खुर आदि सम्मिलित हैं।

१२. अन्दाज है कि भारत में प्रतिवर्ष लगभग ८० करोड टन गोबर होता है। दुर्भाग्य से इस का एक बहुत बडा भाग जलाने के काम में लाया जाता है। इसे कृषि के लिये बचाने के उद्देश्य से अन्यत्र यह सिफारिश की गई है कि गांवों के आस पास ईंधन की प्राप्ति के लिये बाग लगाये जांय और पत्थर के कोयले को लोक-प्रिय बनाया जाय।

१३. मनुष्य के मल में नत्रजन, फासफोरस तथा ऐन्द्रियक तत्व काफी अंश में रहता है। शहरी इलाकों में प्राय: उसे कूडे के साथ मिलाकर खाद के रूप में गांवो तक पहुँचा दिया जाता है। अधिकांश राज्यों की सरकारों ने कानून बनाकर स्थानीय संस्थाओं के लिये यह कार्य अनिवार्य बना दिया है। भारत के ३००० शहरों में से १६८४ शहरों मे यह कार्य हो रहा है, और प्रति वर्ष १७ लाख टन खाद बनाई जा रही है। योजना के अनुसार अन्य नगरों में भी यह कार्य प्रारम्भ किया जायगा। इस तरह योजना के अन्तिम वर्ष तक भारत के शहरों से ३० लाख टन उपयोगी खाद प्राप्त होने लगेगी।

खेती के लिये मानवीय तथा पशुओ का मूत्र और भी अधिक उपयोगी है। परन्तु उसे एकत्र करने का तथा काम मे लाने का कोई कारगर उपाय अभी नही निकल पाया।

१४. भूमि में नत्रजन की कमी को पूरा करने के लिये दालों आदि की फसलें बोकर उन्हें कच्ची अवस्था में हल चलाकर ज़मीन में गाड देने का उपाय प्रचलित है। इसे हरी खाद की प्रथा कहते हैं। बडे खेतों के मालिक ही प्राय: इस उपाय को बरतते हैं। छोटे खेतों में भी इस प्रथा को प्रोत्साहन मिलना चाहिये, विशेषत: दालों को अन्य फसलों के बाद बारी से बोने के लिये। सरकार को चाहिये कि वह हरी खाद के लिये सिंचाई-कर तथा भूमि-कर में कमी करके प्रेरणा प्रदान करे।

१५. खली में बहुत नत्रजन होती है और कुछ उसकी खाद विशेष उपजों के बहुत लिये उपयोगी सिद्ध हुई है। परन्तु खाद्य खलियां पशुओं के भोजन के लिये अधिक उपयोगी हैं। देश में पशुओ के भोजन की कमी है। अतः खली का प्रयोग खेतों मे न कर पशुओं के भोजन

के रूप में ही करना चाहिये। केवल अखाद्य खलियों को ही खाद के रूप में वरतना चाहिये। उनके साथ यदि रासायनिक खादें मिलाई जा सकें तो परिणाम और भी अधिक अच्छा होता है।

१६. भूमि की उपजाऊ शक्ति बढ़ाने के लिये कसाईघरों का पूरा अवशिष्ट खून, सींग, खुर, मास आदि बहुत उपयोगी सिद्ध होते हैं। यह अन्दाज लगाया गया है कि देश के कसाईघरों से साल भर में १० हजार टन सूखा खून एकत्र किया जा सकता है। उन्हीं से खाल के टुकड़े तथा अखाद्य मांस के टुकडे भी एकत्र किये जा सकते हैं। उन्हें मिलाकर टैंकेज (Tankage) के नाम से बेचा जाता है और उनमें ३ से लेकर १० प्रतिशत तक नत्रजन तथा ७ से लेकर २० प्रतिशत फास्फोरिक एसिड होती है। यदि म्युनिसपैलिटियां इस (खून, टैंकेज आदि) सब को उचित ढंग से एकत्र कर सकें तो इस से उन्हें अच्छी आय हो सकती है। फल और सब्जी की उपज के लिये यह विशेष उपयोगी है।

१७. फास्फोरस की कमी को पूरा करने के लिये हड्डियों का चूरा विशेष उपयोगी है—विशेषतः अम्ल प्रधान भूमि के लिये। हमारे देश में प्रति वर्ष १½ लाख टन हड्डियां एकत्र होती हैं। परन्तु हमारे देश में प्रतिवर्ष जितने पशु मरते हैं, उन से ६ लाख टन हड्डियां एकत्र की जा सकती हैं। उक्त १½ लाख टन में से भी हड्डियों का चूरा केवल एक चौथाई भाग का ही बनाया जाता है। शेष हड्डियां विदेश वाले हम से खरीद लेते हैं और उनसे सरेस आदि बनाते हैं। इस तरह भारत की भूमि एक महत्वपूर्ण खाद से वंचित रह जाती है। भारत ही में सरेस बना कर हड्डियों के इस निर्यात को रोका जा सकता है। हड्डियों का चूरा करने के लिये साधन बढ़ाना भी आवश्यक है, विशेषतः उन इलाकों में जहां रेल नहीं जाती। इसी तरह हड्डियों को जमा करने के लिये भी अच्छा प्रबन्ध होना चाहिये। जापानी 'बोन डाइजैस्टर' इस सम्बन्ध में उपयोगी सिद्ध हो सकता है। इस मशीन द्वारा हड्डी में से सरेस और चर्बी खींच ली जाती है और तब हड्डी का चूरा बनाना बहुत आसान हो जाता है।

१८. इस देश में निरिन्द्रिय अर्थात् संश्लिष्ट (Synthetic) खादों में अमोनियम सल्फेट तथा सुपर फास्फेट सबसे अधिक प्रचलित हैं। इनमें से पहली नत्रजन प्रधान और दूसरी फास्फोरस प्रधान है। ये दोनों

हमारे देश में बन रही हैं। यह अभीष्ट है कि हमारे देश में अमोनियम फास्फेट भी बनाया जाय, जिस में उपर्युक्त दोनों तत्व हैं और जो इस देश में हुये विभिन्न क्षेत्रों के परीक्षणों में सभी जगह सफल सिद्ध हुआ है।

१९. यह आलोचना की जाती है कि देश में प्राप्त सभी सेन्द्रिय खादों का उपयोग किये बिना रासायनिक खादों का निर्माण प्रारम्भ कर दिया गया है। जहाँ तक इस आलोचना का सम्बन्ध सेन्द्रिय खादों के पूर्ण प्रयोग से है, यह ठीक है; परन्तु रासायनिक खादों का निर्माण तब तक न किया जाय, यह कहना अयुक्तियुक्त होगा। दोनों पद्धतियां एक साथ चल सकती हैं, और उन्हें एक साथ चलाना चाहिये। भूमि की उपज शक्ति बढ़ाने के लिये दोनों आवश्यक हैं। अकेले रासायनिक खादों का लगातार प्रयोग भूमि को हानि पहुँचाता है। सेन्द्रिय खादों का प्रयोग भी अत्यन्त आवश्यक है और एक ही भूमि में दोनों का प्रयोग होना चाहिये।

२०. खादों और रासायनिक खादों के उत्पादन, सुरक्षा वितरण और उपयोग पर निरन्तर निरीक्षण रखने की आवश्यकता है। इसके लिये कमीशन ने भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् द्वारा एक विशेषज्ञ समिति की स्थापना की सिफारिश की है।

कृषि के औजार तथा मशीनें

२१. कृषि के सुधरे हुये औजारों से समय और धन की बचत होती है, और उपज भी अधिक होती है। इस तरह इस क्षेत्र में अनुसंधान को प्रोत्साहन देने की आवश्यकता स्पष्ट है। राज्यों के वर्तमान कृषि इंजीनियरिंग विभाग केवल बिजली से चलने वाले औजारों के सम्बन्ध में अनुसंधान करते हैं। देशी कृषि औजारों के सुधार के लिये एक विशेष अफसर की नियुक्ति आवश्यक है। भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद्के इंजीनियरिंग विभाग में भी इस सुधार की आवश्यकता है। केन्द्रीय संस्था का यह अफसर देशी औजारों के गुण-दोष की परीक्षा के साथ-साथ बाहर से मंगाये गए औजारों के सम्बंध में भी प्रयोग करेगा। विभिन्न राज्यों में हो रहे इस विषय के परीक्षणों में परस्पर तालमेल रखना तथा विकास-योजना के कार्यकर्त्ताओं को सब बातों से परिचित रखना भी इसी अफसर का काम होगा। व्यापारिक क्षेत्रों तथा उत्पादकों को अपने परीक्षणों के परिणामों से सूचित करना भी उसी का काम होगा।

२२. कृषि के औजारों का सम्बन्ध फसल, भूमि तथा जलवायु से है, अतः तत्सम्बन्धी अनुसंधान प्रादेशिक आधार पर होना चाहिये ; उसके लिये विभिन्न राज्य मिल कर काम कर सकते हैं। तदनुसार भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् (I. C. A. R.) विशेषज्ञों, प्रगतिशील किसानों, राज्यों की सरकारों के प्रतिनिधियों तथा निर्माताओं व व्यापारियों की प्रादेशिक कमेटियां बना सकती है। ये कमेटियां उन समस्याओं का निर्देश करेंगी, जिन्हें हल करने की आवश्यकता है। राज्यों द्वारा बनाई गई स्कीमों की विवेचना करना तथा समय-समय पर प्रगति की जांच करना इन्हीं कमेटियों का कार्य होगा।

२३. अनुसंधान के अतिरिक्त यह भी आवश्यक है कि सुधरे हुये औजारों को लोकप्रिय बनाया जाय तथा उनकी प्राप्ति का यथेष्ट प्रबन्ध किया जाय। प्रत्येक राज्य मे जो एक-एक विशेष अफसर नियुक्त किया जायगा, उसका भी यही कार्य होगा। इस कार्य में वह विस्तार कार्यकर्त्ताओं का सहयोग प्राप्त करेगा। किसानों से नये औजारों की सिफारिश तभी करनी चाहिये, जबकि उनकी अधिक उपयोगिता निस्संदेह प्रमाणित हो जाय।

२४. जब अनुसंधान कार्य संगठित हो जायगा और कृषि औजारों के नये ढांचे तैयार हो जायेंगे तब इस बात की आवश्यकता होगी कि उनका निर्माण छोटी-छोटी निर्माता सहकारी समितियों के सुपुर्द किया जाय। इस से ग्रामीण कारीगरों को काम मिल जायगा। इसी के परिणाम स्वरूप यह भी सम्भव है कि वे लोहे के ट्रंक, बाल्टियां आदि उपयोगी चीजें बनाने लगें।

२५. खेती के शक्ति-चालित उपकरण इस देश मे दूसरे विश्व युद्ध के दिनों में तथा उसके बाद प्रचलित हुए। ट्रैक्टरो, तेल के इंजनों तथा बिजली की मोटरो के लिये प्राप्त होने वाली सरकारी सहायता के कारण ये उपकरण और भी अधिक व्यापक बने। नीचे दी हुई संख्याओ से इनकी बढती हुई लोकप्रियता का आभास मिलता है:—

वर्ष	बाहर से आये ट्रैक्टरो की संख्या
१९४९-५०	३,३१८
१९५०-५१	४,९३०
१९५१-५२	७,४००

ट्रैक्टर विशेषतः इन कार्यों के लिये अधिक उपयोगी सिद्ध होते हैं —

(क) वीरान तथा झाड-झंखाड वाली भूमि को कृषि योग्य बनाने के लिये ।

(ख) कम आबादी वाले उन इलाकों के लिये, जहां श्रमिकों की कमी है ।

(ग) पानी के विकास के लिये तथा मिट्टी के कटाव को रोकने के लिये नालियाँ और बन्द आदि बनाने के लिये ।

केन्द्रीय ट्रैक्टर संगठन ने उत्तर प्रदेश में तराई के क्षेत्र में तथा मध्य-प्रदेश, मध्य भारत और भोपाल में कांस भरी भूमि को सुधार कर ट्रैक्टर की उपयोगिता सिद्ध कर दी है ।

२६. जबकि उपर्युक्त उद्देश्यों के लिये ट्रैक्टर सचमुच बहुत उपयोगी सिद्ध होते हैं, इस बात की ओर पूरा ध्यान देने की आवश्यकता है कि अन्य क्षेत्रों में उनके प्रयोग द्वारा बेकारी न बढने पाये । इस बात का अभी तक कोई अटूट प्रमाण नही मिला कि उनसे उत्पादन बढ़ता है, सिवाय उन क्षेत्रों के जिनमें कृषि कार्य मे तीव्र गति विशेषतः आवश्यक है । ट्रैक्टरों द्वारा जो नई भूमि सुधारी गई है, उसपर होने वाले व्यय के सम्बन्ध में कुछ तथ्य अवश्य उपलब्ध हैं, परन्तु ट्रैक्टरों द्वारा तथा बैलों की सहायता से जोती गई भूमियों पर होने वाले व्ययादि का तुलनात्मक अध्ययन अभी तक नहीं किया गया । भारतीय अनुसंधान परिषद् को विभिन्न क्षेत्रों और विभिन्न फसलों की दृष्टि से यह अध्ययन करना चाहिये । परन्तु अभी बहुत समय तक भारतीय कृषि मुख्यतः पशुओं की शक्ति पर ही निर्भर रहेगी ।

पौधो की रक्षा, क्वारंटीन तथा गोदाम

२७. अभी तक इस बात का वैज्ञानिक ढंग पर अध्ययन नहीं किया जा सका कि कीडो और बीमारियों से कितनी खेती खराब हो जाती है, फिर भी यह अन्दाज लगाया गया है कि केवल गोदाम में ही १० प्रतिशत उपज नष्ट हो जाती है । फसल की बीमारियां तथा उनके इलाज सर्वविदित हैं । बीमारी रोकने के उपाय बीज बोने के समय ही बरतने चाहियें । ग्रामों मे इस कार्य लिये कोई नया संगठन बनाने की आवश्यकता नहीं है । परन्तु इन बीमारियों की रोकथाम के लिये विशेष उपाय बता सकने वाले विशेषज्ञ कर्मचारी अवश्य ही अपेक्षित हैं ।

२८. फसलों को कीड़ों और बीमारियों से बचाने के लिये किये जाने वाले उपायों को चार भागों में बांटा जा सकता है:—

(१) क्वारंटीन या पृथक्करण,

(२) जीव-विज्ञानीय नियन्त्रण,

(३) बोने की पद्धति में परिवर्तन, तथा

(४) रासायनिक चिकित्सा।

पिछले दिनों में क्वारंटीन का समुचित प्रबन्ध न होने से देश में पौधों की कितनी ही बीमारियों के कीटाणु आ गये। इस कारण कुछ ही महीने पहले बम्बई में बीजों के निरोगीकरण के लिये एक आधुनिक साधन सम्पन्न शोधनयन्त्र (Fumigatorium) लगाया गया है। योजना के अनुसार क्वारंटीन तथा शोधनयन्त्र का प्रबन्ध मद्रास और कलकत्ता में भी होगा।

२९. जीवविज्ञानीय नियन्त्रण के लिये बीमारियों की रोकथाम के उद्देश्य से कीड़े रखने की आवश्यकता होती है। उदाहरण के लिये प्रिकली पीअर नामक बीमारी को रोकने के लिये कोकिनील (Cochineal) कृमि की आवश्यकता होती है। इस दृष्टि से भारत मे यथेष्ट उन्नति हुई है।

३०. बोने की पद्धति में कुछ परिवर्तन करके भी कुछ बीमारियां रोकी जा सकती हैं। इससे बिना व्यय के लाभ होता है। उदाहरण के लिये गेहूँ के बोने के समय मे कुछ परिवर्तन कर देने से हेसियन नामक गेहूँ नाशक मक्खी से छुटकारा पा लिया गया तथा इसी उपाय से कपास की तीरक नाम की बीमारी से छुटकारा पाया गया। इस पद्धति से बीमारी से छुटकारा तो प्राप्त हो जाता है, परन्तु उपज की मात्रा पर इस पद्धति का अनुकूल प्रभाव नहीं पड़ता। इस कारण किसान प्राय अधिक उपज के लालच में खतरा मोल लेने से नहीं घबराता।

३१. कृमि नाशक दवाइयां, विशेषतः डी. डी. टी. तथा बी. एच. सी. बहुत उपयोगी सिद्ध हुई हैं और योजना मे उनके भारत में निर्माण पर विशेष ध्यान दिया गया है। इन कृमि नाशकों के निर्माण के लिये भारत ही में आवश्यक सामग्री प्राप्त हो जाय, इस सम्बन्ध में अधिकतम अनुसंधान करने की आवश्यकता है।

कृषि-शिक्षा तथा ट्रेनिंग

३२. कृषि कार्यक्रम की सफलता बहुत अंशों तक इसी बात पर निर्भर करेगी कि विस्तार कार्यकर्त्ता किस योग्यता से किसानों की सहायता कर सकते हैं। अभी तक इस विस्तार कार्य की यह कमजोरी रही है कि कार्य न दिखा कर केवल प्रचार पर बल दिया गया है। इस कमी को दूर करने के लिये कार्यकर्त्ताओं को कृषि सम्बन्धी कार्यों की अधिकतम शिक्षा देनी चाहिये। बम्बई के मंजरी ढंग के स्कूल, जहां शिक्षाकाल दो वर्ष है, कृषि सम्बन्धी स्कूलों के लिये नमूने के रूप में रक्खे जा सकते हैं। इन स्कूलों में कृषि का सारा काम विद्यार्थी अपने हाथ से करते हैं। देश के वर्तमान कृषि सम्बन्धी स्कूल हमारी बढती हुई मांग के लिये पर्याप्त नहीं हैं, अतः फोर्ड प्रतिष्ठान की सहायता से ३० नए विशेष ट्रेनिंग केन्द्र खोले गये हैं। योजना काल में १० नए नियमित कृषि स्कूल भी खोले जायेंगे।

३३. आजकल देश में २२ कृषि कालेज हैं और उनसे प्रतिवर्ष १००० नये स्नातक निकलते हैं। इन कालेजों में व्यावहारिक अनुभव की कमी रहती है। अतः भारतीय कृषि शिक्षा परिषद् ने सिफारिश की है कि इन कालेजों के विद्यार्थियों के लिए यह आवश्यक कर दिया जाय कि वे प्रतिवर्ष दो महीने गांव में व्यावहारिक अनुभव प्राप्त करें।

कृषि अनुसंधान

३४. अनुसंधान से न केवल बहुत सा नया ज्ञान प्राप्त हुआ है, बल्कि उससे कितने ही उपयोगी परिणाम भी निकले हैं। उनमें से बहुत से परिणामों का प्रयोग भी होने लगा है। परन्तु विस्तार कार्यकर्त्ताओं के प्रशिक्षित न होने के कारण इस प्रक्रिया में बाधा पहुँच रही है। योजना के अनुसार आगामी १० वर्षों में देश भर मे विस्तार सेवा को संगठित कर देने का कार्यक्रम है। अब इस कार्य का प्रारम्भ किया जा रहा है, इस से यह अत्यन्त आवश्यक है कि विभिन्न ढंग की मिट्टी, जलवायु और विभिन्न प्रदेशों के सम्बन्ध में अनुसंधान कर उसके परिणाम विस्तार कार्यकर्त्ताओं को बताये जायें और भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् उपयोगी सूचनाओं के सार प्रकाशित करने में क्रियात्मक सहायता दे।

३५. अनुसंधान एक निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया है। नई समस्याओं को हल करने के नए उपाय खोजने होते हैं। इस तथ्य को दृष्टि में रख कर

डा० स्टुअर्ट ने सिफारिश की है कि प्रत्येक 'उपज-भूमि-क्षेत्र में एक एक अनुसंधान और परीक्षण शाला बनाई जाय। जब तक यह नहीं होगा अथवा अनुसंधान केन्द्रों में नवजीवन संचार नहीं किया जायगा, विस्तार कार्य को बढ़ाना सम्भव नहीं रहेगा। इसी तरह की संस्थाओं से जापान के कृषि-विकास को बहुत सहायता मिली है और कमीशन अनुभव करता है कि राज्यों की सरकारों तथा कृषि अनुसंधान परिषद् को इस ओर अधिक से अधिक ध्यान देना चाहिए।

३६. कृषि अनुसंधान परिषद की स्थापना १६३० में इस उद्देश्य से हुई थी कि देश में कृषि सम्बन्धी अनुसंधान को संगठित और समन्वित किया जाय। कोमोडिटी कमेटी और सैंट्रल रिसर्च इन्स्टीट्यूट आदि संस्थाओं पर इसका यथेष्ट नियन्त्रण न होने के कारण यह संस्था अपना मूल उद्देश्य अच्छी तरह पूरा न कर पाई। यदि इस को अपने कर्त्तव्य का पालन करना है तो इसका नियन्त्रण कृषि अनुसंधान सम्बन्धी सभी केन्द्रीय तथा राज्यों की संस्थाओं पर रहना चाहिये और इसी को अनुसंधान की भावी दिशा का निर्देश करना चाहिए। यह भी वांछनीय है कि प्रगतिशील उत्पादकों, व्यापारियों तथा अन्य सम्बद्ध लोगों का सम्पर्क इस अनुसंधान-कार्य से रहे।

३७. भारत अब कृषि-विकास के विशाल कार्य का प्रारम्भ कर रहा है। इस कार्य की गति इसी बात पर निर्भर करती है कि अनुसंधान कार्यकर्त्ता किसानों की व्यावहारिक कठिनाइयों का हल क्या और किस शीघ्रता से बताते हैं। इस कार्य के लिये कृषि अनुसंधान के सारे संगठन को बहुत श्रेष्ठ दशा में लाने की आवश्यकता है। कमीशन अनुभव करता है कि अब वह स्थिति आ गई है कि भारत में होने वाले सम्पूर्ण कृषि सम्बन्धी अनुसंधान की परीक्षा करने के लिये एक ऊँचे दर्जे की कमेटी बनाई जाय, जो इस बात को भी सिफारिश करे कि वर्तमान कोमोडिटी कमेटियाँ और केन्द्रीय अनुसंधान संस्थाओं में क्या परिवर्तन किये जायें, जिस से वे देश की बढ़ती हुई अनुसंधान की मांग को भली प्रकार पूरा कर सकें।

—:०:—

अध्याय १६

पशु-पालन

भारत के देहाती आर्थिक जीवन में पशुओं का बहुत महत्वपूर्ण स्थान है। देश की वार्षिक आय में उनकी सहायता से १० अरब रुपया प्राप्त होता है। इस में वह रकम सम्मिलित नहीं, जो पशुओं को कृषि के अतिरिक्त अन्य कार्यों मे लगाने से होती है। भारत में लोगों की एक बडी संख्या शाका-हारी है और उसे पशुओं से प्राप्त होने वाला पोषक तत्व प्रोटीन, दूध और दूध से बनी वस्तुओं से ही प्राप्त होता है।

२. सन् १६५१ की जनगणना के अनुसार भारत में १५ करोड गाय बैल और ४ करोड ३० लाख भैंस-भैंसे हैं। दुर्भाग्य से हमारे देश में इतने पशुओं को पालने के लिये पर्याप्त खाद्य सामग्री नहीं है। जितने चारे की आवश्यकता है, उसका केवल ७८ प्रतिशत और सानी का सामान केवल २८ प्रतिशत ही हमारे देश में है। साथ ही हमारे देश में दूध देनेवाली गायों और काम करने वाले अच्छे बैलों की तो बहुत ही कमी है और निकम्मे गाय-बैल तथा अन्य पशु बड़ी संख्या में हैं। ये निकम्मे पशु भारत के पशुओं की भोजन-समस्या को और भी विकट बना रहे हैं। अतः समस्या के दो रूप हैं—एक तो अच्छे पशुओं की नस्ल बढ़ाना और दूसरा काम न आ सकने वाले पशुओं से छुटकारा पाना।

३. पशुओं की नस्ल को सुधारने का काम सरकार, पशुपालक तथा दान से चलने वाली संस्थायें करती हैं। भारत में प्राप्त होने वाली नस्लों के तीन भाग किये जा सकते हैं:—दूध देने वाले, बोझ ढोने या खींचने वाले तथा दोनों कामों में आने वाले पशु। भारत सरकार की नस्ल-रक्षा नीति का उद्देश्य यह है कि दोनों कामों मे आने वाले पशुओं का वंश बढ़ाया जाय। आज कल सरकार प्रतिवर्ष लगभग ७५० सांड़ विभिन्न राज्यों में बांटती है। ये सांड वंशक्रम से पाले जा रहे हैं। लोगों के पास भी ऊँची कोटि के स्वीकृत सांड हैं। परन्तु ये सब देश की पूरी आवश्यकता का केवल ०.५ प्रतिशत हैं और अभी तक इस कमी को पूरा करने के लिये आवश्यक प्रयत्न नहीं किया

आया। परिणाम यह होता है कि वंशक्रम से सुधरे सांडों से उत्पन्न हुई गायें पुन: साधारण साँड़ों से गर्भवती हो जाती हैं और वंश सुधार का किया कराया काम व्यर्थ हो जाता है। अतः इस बात का प्रबन्ध करने की आवश्यकता है कि अच्छे सांड काफी संख्या में प्राप्त हों और रद्दी साँड़ों से वंशोत्पत्ति का क्रम रोक दिया जाय।

केन्द्र ग्राम योजना

४. भारत सरकार द्वारा प्रारम्भ की गई केन्द्र ग्राम योजना का उद्देश्य यह है कि भारत भर में इस काम के लिये कुछ केन्द्र ग्राम चुन लिये जायें। प्रत्येक केन्द्र में, जो तीन या चार ग्रामों का होगा, ३ वर्ष से बड़ी आयु की ५०० गायें रक्खी जायेंगी। प्रजनन के उद्देश्य से प्रत्येक केन्द्र में बहुत श्रेष्ठ कोटि के ३ या ४ सांड रक्खे जायेंगे और रद्दी साँडों को यातो हटा दिया जायगा या बधिया बना दिया जायगा; और कृत्रिम गर्भाधान का भी प्रबन्ध किया जायगा। इन पशुओं के वंशानुक्रम का तथा दूध की मात्रा का पूरा ब्योरा रक्खा जायेगा तथा उन्हें समुचित भोजन देने के अतिरिक्त बीमारियों से भी बचाया जायेगा।

योजना में ६०० केन्द्र ग्राम, १५० कृत्रिम गर्भाधान केन्द्र तथा २२५ सांड़ पालने के केन्द्र खोलने का लक्ष्य रक्खा गया है। इस लक्ष्य की प्राप्ति पर प्रतिवर्ष ६०,००० सांड़ प्राप्त होने लगेंगे। इस समय ६० कृत्रिम गर्भाधान केन्द्र तथा १५० केन्द्र-ग्राम कार्य कर रहे हैं।

चुने हुए गावों में इस सम्बन्ध की अन्य आवश्यक बातों, यथा ग्राम चरागाह बनाना, चारे की फसलों को हेर-फेर कर बोना, बरसात में उत्पन्न घास को सुरक्षित रखना आदि, की ओर भी ध्यान दिया जायगा। जिन राज्यों में साधारण बैलों को खस्सी करने तथा जानवरों की बीमारियों की रोक थाम करने के बारे में कानून नहीं हैं, वहां ऐसे कानून बनाये जायेंगे।

गोसदन

५. पशुओं की नस्ल में सुधार करने के साथ-साथ निकम्मे जानवरों को गोसदनों में भेज दिया जायेगा। ये गोसदन बंजर भूमि, जंगल या बहुत दूर के स्थानों पर खोले जायेंगे जहां चरने की सुविधा रहेगी। नर पशुओं को वधिया कर दिया जायगा। प्रत्येक गोसदन में एक छोटी चर्मशाला भी खोली जायगी और मरे हुए पशुओं का चमड़ा, खालें, सींग, खुर आदि

सभी का समुचित उपयोग किया जायगा। प्रस्ताव है कि ४७ लाख रुपये के व्यय से ऐसे १६० गोसदन खोले जायें।

चारा

६. यदि पशुओं को अच्छा भोजन न दिया जाय और उनकी उचित देख-भाल न की जाय तो उनकी नस्ल के सुधार का प्रभाव बहुत-कुछ नष्ट हो जाता है। सिंचित प्रदेशों में दालों के ढंग के चारों (leguminous) की उपज कर यथेष्ट हरा चारा प्राप्त किया जा सकता है। साथ ही यह प्रस्ताव किया गया है कि देश में कुद्ज़ू की बेलें तथा क्लोवर (दोनों चारे के काम में आते हैं) की उत्पत्ति की सम्भावना पर विचार किया जाय और घाटियों में बरसात में उत्पन्न घास को सुखा कर उसका संग्रह कर लिया जाय। यह अन्यत्र कहा जा चुका है कि खलियों का प्रयोग खाद के रूप में न किया जाय, क्योंकि वह पशुओं के लिये शक्तिशाली आहार है।

बीमारियों की रोक-थाम

७. अच्छे वंश तथा अच्छे भोजन का लाभ भी निरर्थक हो जायगा यदि पशुओं की बीमारियों की रोकथाम नहीं की जायेगी। बीमारी से यदि पशु की मृत्यु न भी हो तो उसकी कार्य-शक्ति और जीवन-शक्ति बहुत कुंठित हो जाती है। भारत में व्याप्त पशुओं को बीमारियों में से रिंडरपेस्ट सबसे भयंकर है और देश के ६० प्रतिशत पशु इसी बीमारी से मरते हैं। अतः इस बीमारी की रोकथाम और इस के निरोध के लिये नव आविष्कृत लैपिनाइज्ड टीका लगवाने के निमित्त १५ लाख ७० हज़ार रुपये की रकम रक्खी गई है।

देश में पशु-चिकित्सालयों की संख्या २००० से बढ़ाकर २६४० कर दी जायेगी।

मुर्गी-पालन

८. मुर्गी-पालन एक महत्वपूर्ण पूरक व्यवसाय है और इससे देहाती क्षेत्रों के गरीबों की आय बढ़ाई जा सकती है। अंडों का खाद्य-महत्व बहुत अधिक है और इसके भोजन से लोगों को लाभ पहुँचेगा। आजकल भारत में मुर्गियों की संख्या लगभग ७ करोड़ है। एक साधारण मुर्गी देहात में प्रति वर्ष ५० अंडे देती है। उन्हें अच्छा भोजन देने से यह संख्या तथा अंडों का आकार दोनों बढ़ाये जा सकते हैं। भारतीय पशु-रोग गवेषणा

शाला की एक खोज के फलस्वरूप अंडों का उत्पादन लगभग १०० प्रतिशत बढ़ जायगा। इस देश के मुर्गी-पालन में सबसे बड़ी बाधा रानीखेत नामक बीमारी के कारण है। इस बीमारी का टीका निकल आया है और अब आशा है कि मुर्गी-पालन में बहुत उन्नति हो सकेगी। अगले ५ वर्षों में राज्यों की सरकारें मुर्गी-पालन को प्रोत्साहन देने के लिये २५ लाख १५ हज़ार रुपया व्यय करेंगी। केन्द्र ग्रामों की योजना में मुर्गी-पालन के विकास के लिए आवश्यक अच्छी नस्ल आदि पर भी ध्यान दिया जायगा।

भेड़ और ऊन

९. भारत की ३ करोड़ ६० लाख भेड़ें ऊन और मांस का अच्छा स्रोत हैं। भारत में प्रति वर्ष ५ करोड़ ५० लाख पाउण्ड ऊन पैदा होती है और इसमें से ४३० लाख रुपयों के मूल्य की ३ करोड़ १६ लाख पाउण्ड ऊन विदेशों में निर्यात कर दी जाती है। औसतन प्रत्येक भेड़ से केवल २ पाउण्ड ऊन प्राप्त होती है, जो बहुत कम है और बढ़ाई जा सकती है। इस लिये भारतीय कृषि अनुसन्धान परिषद् ने एक योजना बनाई है जिस के अनुसार चुनी हुई विभिन्न श्रेणियों की भेड़ों के परस्पर मिश्रण आदि साधनों द्वारा सुधार करने के लिये तीन प्रादेशिक केन्द्र खोलने का निश्चय किया गया है। ये केन्द्र उत्तर प्रदेश के पहाड़ों, राजस्थान तथा दक्षिण के पठार में खोले जायेंगे।

पशु-रोग-चिकित्सा की शिक्षा तथा अनुसंधान

१०. इस समय भारत में ९ पशुरोग चिकित्सा कालेज हैं और उन से प्रति वर्ष २७५ स्नातक निकलते हैं। इसके अतिरिक्त आइजट नगर में केन्द्रीय सरकार की एक पशुरोग गवेषणाशाला है, जिसमें स्नातकोत्तर शिक्षा का प्रबन्ध है और इसकी एक शाखा मुक्तेश्वर में भी है पंचवर्षीय योजना में इस शिक्षा तथा ट्रेनिंग के लिये ८४ लाख ४३ हजार रुपया रक्खा गया है। इस में से ९२ प्रतिशत 'क' भाग के राज्यों में पशु चिकित्सक स्नातकों और पशुपालकों को ट्रेनिंग देने के लिये व्यय किया जायगा। देहाती दर्जे के कार्यकर्त्ताओं को यह शिक्षा दी जायेगी कि पशुओं का प्रारम्भिक उपचार किस तरह किया जाता है।

कार्यक्रम

११. जानवरों और पशुपालन के लिये कुल मिला कर १४ करोड़ ७३ लाख ६२ हजार रुपया व्यय किया जायगा । इस का ब्यौरा इस प्रकार है :—

(क)

केन्द्रीय सरकार	रुपया
१. केन्द्र ग्राम योजना	२,६३,५३,०००
२. गोसदन	६७,१५,०००
३. रिण्डरपेस्ट चिकित्सा	१५,७०,०००
४. अन्य स्कीमें	५,६४,०००
योग	४,१२,०२,०००

(ख)

राज्यों की सरकारें	रुपया
१. 'क' भाग के राज्य	७,६४,७०,०००
२. 'ख' भाग के राज्य	१,६४,६०,०००
३. 'ग' भाग के राज्य	७१,६०,०००
जोड़	१०,६०,६०,०००
कुल जोड़	१४,७२,६२,०००

—:०:—

अध्याय २०

दुग्धशालाएँ तथा बागवानी

दूध एक महत्वपूर्ण भोजन है, विशेषत: भारत जैसे देश के लिये, जहां की अधिक आबादी शाकाहारी है। तथापि दुर्भाग्य से भारत में दुग्ध-व्यवसाय बहुत पिछड़ा हुआ है। यहां एक गाय से औसतन ४१३ पाउण्ड (लगभग ५ मन १½ सेर) दूध प्राप्त होता है। यह औसत संसार में सबसे कम है। १९५१ की गणना के अनुसार भारत में दूध तथा दूध से बनी चीज़ों की खपत प्रति व्यक्ति ५½ औंस (एक औंस = ½ छटांक) है, अर्थात् प्रतिदिन एक सेर का छठा भाग। जानकारों की राय है कि प्रति दिन १० औंस दूध एक व्यक्ति को मिलना चाहिये। भारत भर में पंजाब और राजस्थान को छोड़ कर और किसी राज्य में यह औसत नहीं। गांवों में बहुत कम दूध पैदा होता है, और वह भी बिखरे हुये क्षेत्र में। एक गांव की औसत २½ मन प्रतिदिन से अधिक नहीं आती। जहां अधिक दूध पैदा होता है, वहां उसका उपयोग घी या खोया बनाने के लिये किया जाता है।

२. दूध और उससे बनी चीज़ों की बड़ी मांग शहरी इलाकों से आती है। इस पर भी इन क्षेत्रों में दूध की पहुँच असन्तोषजनक और कम है। आजकल ६० से ७० प्रतिशत तक दूध म्युनिसिपल क्षेत्र में रहने वाली गायों और भैंसों से प्राप्त होता है। ये दूध देने वाले पशु बहुत अस्वास्थ्यकर परिस्थितियों तथा घनी आबादी में रक्खे जाते हैं और दूध तथा उनके वंश पर इसका बुरा प्रभाव पड़ता है। जब ये पशु दूध देना बन्द कर देते हैं तो उनका बड़ा भाग कसाइयों को बेच दिया जाता है। इस तरह रक्खे जाने वाले पशु न सिर्फ आर्थिक दृष्टि से अलाभकर सिद्ध होते हैं, अपितु वे देश के पशुधन पर एक बड़ा बोझ हैं। शेष ३० से ४० प्रतिशत दूध आसपास के देहात से आता है। दूध का व्यवसाय जिन ग्वालों के हाथ में है, वे दूध को रखने तथा ले जाने का बहुत ही असन्तोषजनक और अस्वास्थ्यकर प्रबन्ध करते हैं। कुछ पिंजरापोल, गोशालायें तथा दुग्ध सहकारी समितियां भी हैं, परन्तु ये दुग्ध-शालायें कुल आवश्यकता का बहुत ही छोटा भाग हैं। दूध

अच्छा नहीं होता, फिर भी शहरी खरीदारों को उसके लिये ऊँचे दाम देने पड़ते हैं। वास्तव में संसार के अन्य महत्वपूर्ण देशों की तुलना में भारत में दूध महँगा है।

३. इस लिये दूध की उत्पत्ति में वृद्धि करने की अत्यन्त आवश्यकता है। दुग्ध-शालाओं और दूध पहुँचाने के लिये राज्यों की सरकारों ने २७ स्कीमें बनाई हैं, जिन पर ७ करोड़ ८० लाख रुपया व्यय आयेगा। परन्तु बम्बई को छोड़ कर और सभी जगह पर्याप्त प्रबन्ध नहीं रहेगा और योजना में बनाई स्कीमों के अनुसार केवल कुछ शहरों में ही दूध की यथेष्ट प्राप्ति हो सकेगी।

४. यह समस्या केवल सरकारी प्रेरणा से ही हल हो सकती है। यह कार्य राज्यों की सरकारों, म्युनिसिपल कमेटियों, स्थानीय पिंजरापोलों और गोशालाओं और उत्पादकों की सहकारी समितियों को एक-दूसरे के साथ मिलकर करना चाहिये। दिल्ली और पूना जैसे शहरों में दूध के उत्पादन तथा वितरण का सहकारिता के सिद्धांतों पर सफल प्रयत्न किया गया है, यह भावी विकास की दिशा सूचित करता है। यह निर्देश किया गया है कि प्रत्येक शहरी क्षेत्र में एक दुग्ध-परिषद् (दूध बोर्ड) होना चाहिये। यह एक स्थायी संस्था हो, जिसके वैतनिक कार्यकर्त्ता हों और इसमें उत्पादकों, विभाजकों, उपभोक्ताओं, म्युनिसिपैलिटियों, स्वास्थ्य अधिकारियों तथा राज्य सरकार के प्रतिनिधि रहें। यह बोर्ड शहरी तथा उपशहरी इलाकों में सहकारी समितियों द्वारा दूध पैदा करने, सदस्यों को गाय-भैंस खरीदने के लिये तथा दूध एकत्रित और वितरित करने के लिये रुपया उधार देने का प्रबन्ध करने और अपने वितरण स्थानों या ठीक-ठीक व्यक्तियों द्वारा दूध के वितरण का प्रबन्ध करेगा। पशुओं के लिये चारे आदि का प्रबन्ध सहकारी समितियां करेंगी। सरकार तथा म्युनिसिपल कमेटियों को इस काम के लिये सहकारी बैंकों को आवश्यक आर्थिक सहायता देनी चाहिये। बोर्ड को अपनी योजना में यह कार्य भी सम्मिलित करना चाहिये कि ग्वालों और उनके पशुओं को शहर से बाहर निकट के गांवों में बसाया जाय। दूध की श्रेष्ठता पर तथा दूध और उससे उत्पन्न वस्तुओं के दामों पर नियन्त्रण रखना भी इसी बोर्ड का कार्य होगा।

यह भी निर्देश दिया गया है कि कुछ केन्द्र-ग्राम शहरों के पास चुने जायें। इस तरह अधिक उत्पन्न हुये दूध की मांग पहले ही विद्यमान रहेगी।

५. देहाती इलाकों में दूध की अधिक उत्पत्ति की समस्या का सीधा सम्बन्ध वहां कृषि की उपज बढ़ने के साथ है। केन्द्र ग्रामों द्वारा अच्छी नस्लों के प्रचार से तथा अधिक खेती होने पर चारा अधिक अच्छा मिलने से दूध की उत्पत्ति स्वतः बढ़ेगी।

बागबानी

६. दूध की तरह फल और सब्ज़ियां भी भोजन का बहुत महत्वपूर्ण भाग हैं। अन्दाज़ लगाया गया है कि भारत में प्रतिवर्ष ६० लाख टन फल तथा ४० लाख टन सब्ज़ियां पैदा होती हैं। इस हिसाब से इस देश में प्रति व्यक्ति प्रतिदिन १॥ औंस (पौने चार तोला) फल और १¼ औंस (सवा तीन तोला) सब्ज़ी प्राप्त होती है, जब कि स्वास्थ्य के नियमों के अनुसार यह मात्रा प्रतिदिन ३ औंस (डेढ छटांक) फल और १० औंस (५ छटांक) सब्ज़ी होनी चाहिये। इस लिये फल और सब्ज़ियों की उपज बढ़ाने का हमारे देश में असीम क्षेत्र है। फल और सब्ज़ी का उत्पादन बढ़ाने के लिये एक तो उनका उत्पादन-क्षेत्र बढ़ाना चाहिए और दूसरे वैज्ञानिक साधनों द्वारा प्रति एकड उपज बढ़ानी चाहिये। राज्यों की फल और शाक-सब्ज़ी सम्बन्धी गवेषणा, सब्ज़ी के बीजों का बढाना, 'नर्सरी बनाना आदि—बागवानी की योजनाओं पर कुल १ करोड़ २१ लाख २२ हज़ार रुपया खर्च होगा।

७. बागबानी का और अधिक विकास करने के लिये इन बातों पर ध्यान रखना चाहियेः—

(क) फल पैदा करने वाले क्षेत्रों में फल-उत्पादकों को नर्सरियां खोलने, कीड़ों और बीमारियों की रोकथाम तथा बिक्री का प्रबन्ध करने के लिये सहकारिता के आधार पर सगठित करना चाहिये।

(ख) सहकारी सिद्धान्तों पर शहरों के चारों ओर उपशहरी इलाकों का विकास करना चाहिये, और वहाँ फल और सब्ज़ियाँ उगानी चाहियें। शहरी इलाकों में बीज और पौधे देकर घरों ही में सब्ज़ियां बोने की प्रथा बढानी चाहिये।

(ग) फलों और सब्ज़ियों के सुरक्षण का प्रबन्ध वैज्ञानिक ढंग पर किया जाना चाहिये।

अन्य देशों में फलो और सब्ज़ियो को सुरक्षित रखने के उद्देश्य से इस

प्रकार प्रोत्साहन दिया जाता है:—

(१) बहुत सस्ती चीनी दी जाती है;

(२) इस कार्य के लिये आने वाली मशीनों पर या तो कर लिया ही नहीं जाता या बहुत कम लिया जाता है;

(३) इस काम के लिये आने वाले कच्चे माल तथा तैयार माल के किराये में रियायत की जाती है।

हमारे देश में बागबानी का विकास करने के लिये भी ऐसे ही उपाय बरतने चाहियें।

८. बागबानी का विकास करने तथा फलों को सुरक्षित रखने के लिये खाद्य तथा कृषि मंत्रालय को सम्पूर्ण देश के लिये एक "फल तथा सब्ज़ी बोर्ड" बनाना चाहिये।

—:o:—

अध्याय २१

जंगलात

भारत की आर्थिक व्यवस्था में जंगलात का एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण स्थान है। जंगलों से ईंधन प्राप्त होता है, जानवरों के चरने के लिये चरागाह मिलते हैं और साथ ही इस प्रकार के कच्चे माल जैसे लकड़ी, बांस, लाख, गोंद और कत्था आदि प्राप्त होते हैं जो घरों में, उद्योग-धन्धों में तथा खेती में काम आते हैं। भूमि के उपजाऊपन की रक्षा में तथा ज़मीन के जलीय अंश को कायम रखने में वे सहायता देते हैं। उनके कारण पहाड़ी इलाके अत्यधिक भूमि-क्षय से बचते हैं और चौरस ज़मीन वायु जन्य क्षय तथा अन्य भूमि-क्षय से बचती है।

जंगली इलाके

२. सन् १९४९-५० में भारत में जंगलात का क्षेत्रफल १४ करोड़ ७७ लाख एकड़ याने कुल ज़मीन के क्षेत्रफल का १८ प्रतिशत था। १२ मई सन् १९५२ को जंगलात के सम्बन्ध में नीति सम्बन्धी प्रस्ताव में यह सुझाव रखा गया था कि "कुल मिला कर भारत को अपने सामने यह उद्देश्य रखना चाहिये कि वह अपनी कुल ज़मीन के क्षेत्रफल के एक-तिहाई को जंगलात के रूप में रखे।" इस प्रकार देखने से पता चलेगा कि हमारे सामने जो लक्ष्य है उसमें, और वर्तमान समय में जो क्षेत्र जंगलात के रूप में हैं उसमे, बड़ा फर्क है। इसके अलावा एक बात यह भी है कि हमारे सारे जंगलात मुख्यतः हिमालय, विन्ध्य और दक्षिण तक ही सीमित हैं। सिन्धु-गंगा का समतल क्षेत्र करीब-करीब जंगलात से खाली है। नियमित जंगलात का योजनात्मक विस्तार जिन बातों पर निर्भर है, वे ये हैं कि किस हद तक ऐसे इलाके प्राप्त हैं जहां इस समय कोई खेती-बाड़ी नहीं होती और दूसरी बात यह है कि कहां तक जंगलात को खेती के विस्तार की मांग के सामने बचा कर रखा जा सकता है। इसलिये जरूरत इस बात की है कि फौरन बंजर ज़मीनों की नाप-जोख की जाय जिससे कि ज़मीनों का किस प्रकार उपयोग हो, इस सम्बन्ध में एक संतुलित और पूरक पद्धति विकसित की जा सके।

३. इस बीच में जंगलात सम्बन्धी केन्द्रीय बोर्ड को चाहिये कि वह ज़मीन के सही उपयोग के सिद्धांत के अनुसार यह बात बता दे कि प्रत्येक राज्य में उस राज्य के क्षेत्रफल का कितना हिस्सा जंगलात के रूप में रखा जाय। केवल उन्हीं इलाकों में जंगल काटने की अनुमति दी जा सकती है जिनमें स्थायी खेती के लिये ऐसा किया जा रहा हो और जहां निर्दिष्ट अनुपात से अधिक क्षेत्रफल में जंगल हो, या जहां ऐसा किया जा सकता हो कि जितना जंगल काटा जाय, उतने ही क्षेत्रफल में जंगल फिर से उगाया जाय। इसके साथ ही इस कार्य के लिये उपयुक्त बंजर ज़मीनों में बराबर जंगलात का विस्तार किया जाय।

४. नियमित जंगलात के क्षेत्रफल का विस्तार अनिवार्य रूप से दीर्घ-कालीन योजना का ही अंग हो सकता है। फिर भी जिन इलाकों में जंगल काटे गये हैं, उनमें फिर जंगल उगा कर या जहाँ जंगलात का ठीक-ठीक प्रबन्ध नहीं किया गया है, उनका ठीक प्रबन्ध करके बहुत कुछ तरक्की की जा सकती है। उदाहरण स्वरूप कोई चार करोड़ एकड़ ज़मींदारी जंगलात अभी हाल में राज्य सरकारों के हाथ में आये हैं। इनमें से अक्सर क्षेत्रों में हाल के वर्षों में जगलात अधिक काटे गये हैं, इसलिये उनमें फिर से जंगल उगाने की जरूरत है। जिन स्थानों मे सरकारी जंगलात का क्षेत्र बढ़ गया है, क्योंकि इस बीच में भूतपूर्व रियासतें राज्य के अन्तर्भुक्त हो गई हैं, उनमें उपयुक्त प्रशासन सम्बन्धी सगठन करने की आवश्यकता है। पंचवर्षीय-योजना में इसके लिये प्रबन्ध किया गया है।

५. तीन दिशाओं में फौरन विस्तार की गुंजाइश है—एक तो भूमि क्षय को रोकना; दूसरे, वृक्ष वाली ज़मीन का विस्तार; और तीसरे, गांवों में बाग़ात की स्थापना। भूमि क्षय को रोकने के उपाय अन्यत्र बताये गये हैं। जनता और स्थानीय संस्थाओं के सहयोग से वृक्षों का रोपण बढ़ाया जा सकता है। इस दिशा में वन-महोत्सव कार्यक्रम के रूप में बहुत उपयोगी कार्य का सूत्रपात किया जा चुका है। अब इसे अच्छी तरह संगठित करके चालू रखने की जरूरत है।

गांव के बाग़ात

६. ईंधन और चारे की वृद्धि लिये गांवों में वृक्षों का रोपण करना चाहिये। इस समय ईंधन के लिये लगभग ५० लाख टन लकड़ी उत्पन्न होती है, जिसका मतलब यह है कि प्रति व्यक्ति प्रति साल

केवल आधा मन ईंधन प्राप्त है जब कि अमेरिका में प्रति व्यक्ति औसत २७ मन या उससे अधिक है और सारी दुनिया में यही औसत ०·३४ टन याने करीब ६-१० मन है। सिन्धु-गंगा की समतल भूमि में गांव के इलाकों में ईंधन और चारे की बहुत कमी है। इसी से गोबर जलाने की पद्धति शुरू हुई है, जब कि होना यह चाहिये था कि खेतों को उपजाऊ बनाये रखने के लिये उसका इस्तेमाल किया जाय। इस लिये चुने हुए स्थानों में बाग़ात लगाये जायें और चारा तथा ईंधन की कमी को दूर किया जाय। साथ ही केवल पेड़ लगा कर ही चुप न बैठा जाय, बल्कि इन बाग़ात की रक्षा की जाय। सामूहिक विकास योजना के लिये चुने हुये क्षेत्रों में शुरूआत की जानी चाहिये।

पत्थर का कोयला

७. ईंधन की पूर्ति को बढ़ाने तथा खाद के लिये गोबर बचाने का एक तरीका यह भी है कि गांवों में, विशेष कर सिन्धु-गंगा के मैदान में, पत्थर के कोयले का इस्तेमाल बढ़ाया जाय। इन इलाकों में जरूरत सबसे अधिक है, और कोयले की खानें इनके पास होने के कारण पत्थर का कोयला पहुँचाना अपेक्षाकृत आसान भी है। इस कोयले की बिक्री को स्वीकृत एजेंसियों के ज़रिये इस प्रकार संगठित किया जाय कि न तो नफा ही रहे और न कोई नुकसान हो, और हमारे सामने लक्ष्य यह होना चाहिये कि सन् १९५५-५६ तक देहाती इलाकों में जितना कोयला इस्तेमाल होता है उससे दस लाख टन पत्थर का कोयला अधिक इस्तेमाल हो सके। कोयले का प्रचार करने के लिये जो साफ्ट कोक सेस कमेटी बनी थी और जो लड़ाई के ज़माने में लुप्त हो गई, उसे पुनरुज्जीवित करने का प्रश्न विचाराधीन है।

इमारती लकड़ी

८. लड़ाई के जमाने में इमारती लकड़ी का उत्पादन बढ़ा क्योंकि उस जमाने में पेड बहुत काटे गये, पर तब से इसमें कमी हुई है और अब यह उत्पादन घट कर प्रतिवर्ष १८ लाख टन रह गया है। बाहर से आई हुई लकडी को मिलाकर इस समय कुल इमारती लकड़ी जो प्राप्त है, वह २१ लाख टन है। इसमें से ७२ प्रतिशत निजी उपभोक्ताओं के द्वारा काम में लाई जाती है और बाकी को सरकार काम में लाती है। युद्ध के जमाने से प्रतिरक्षा कार्यों के लिये इमारती लकडी की मांग घट गई है, पर घरेलू और निर्माण सम्बन्धी कार्यों के लिये इस की मांग इस कारण बहुत अधिक बढ़ी

है कि अब शहरों में बसने की प्रथा बढ़ रही है और साथ ही साथ पुनर्वास का कार्यक्रम चालू है। इसके अलावा जरूरत से कहीं कम इस्पात प्राप्त होने के कारण इस्पात को बचाना जरूरी हो गया है, और इसकी जगह पर इमारती लकड़ी बहुत काम में आ रही है। इस लिये यह सुझाव है कि उपयुक्त रूप से तैयार की हुई लकडी का इस्तेमाल टेलीफोन, टेलिग्राफ और बिजली के तार की लाइनों के लिये किया जाय जैसा कि अधिकांश यूरोपीय देशों में होता है। प्रतिवर्ष अन्डमान से करीब ५० हजार लट्ठे और सुन्दरवन तथा महानदी क्षेत्र से ३० हजार लट्ठे प्राप्त करना सम्भव होगा। केन्द्रीय और राज्य के सार्वजनिक निर्माण विभागों को चाहिये कि इस सम्बन्ध में खोज करें कि कहां तक निर्माण तथा इंजीनियरिंग कार्य के लिये तैयार लकडी का अधिकतर प्रयोग किया जा सकता है।

९. इन उपायों से इमारती लकडी की मांग में वृद्धि होगी और उसकी पूर्ति या तो प्रति एकड़ पैदावार बढा कर करनी पड़ेगी या ऐसे उपयुक्त जंगलों के विकास से की जायगी जो संचार के अभाव के कारण अब तक अधिक काम में नहीं लाये जा सके। राज्य सरकारों की योजनाओं मे जंगलात में संचार के विकास के लिये १ करोड ४ लाख रुपये की व्यवस्था की गई है, पर इसके अलावा भी ऐसे जंगलों के उपयोग के कार्यक्रम बनने चाहियें, जो इस समय दुर्गम हैं।

१०. कुछ भी हो, ये उपाय ऐसे है जो अनिवार्य रूप से दीर्घकालीन हैं। फौरन इमारती लकडी अधिक से अधिक परिमाण में प्राप्त करने के लिये कई एवज़ी पेड़ों जैसे सलाई तथा अन्य नष्ट होने वाले पेडों को काम में लाना चाहिये, पर ऐसा उन्हें बाकायदा वैज्ञानिक रूप से तैयार करके ही करना चाहिये। इस लिये प्रत्येक सरकारी लकड़ी-चिराई के कारखाने में वैज्ञानिक रूप से लकडी तैयार करने के लिये भट्टे और यंत्र होने चाहियें, तथा रेल-विभाग को चाहिये कि वह लकडी को सिझाने वाले भट्टों और मजबूत बनाने वाले यंत्रों की संख्या को इस प्रकार से बढ़ावे कि इमारती लकड़ी संबंधी सारी जरूरत पूरी हो सके।

११. ऊपर बताये हुए उपायों के काम में लाये जाने पर ऐसी आशा की जाती है कि इमारती लकड़ी का परिमाण १ लाख टन बढ सकेगा। उत्तरी अन्डमान के विकास से १ लाख टन लकड़ी और भी मिल जायगी। ज़मीं-

दारी प्रथा नष्ट हो जाने के बाद जो निजी जंगल राज्य सरकारों के अधिकार में आ गये हैं, उनका ढंग से लाभ उठाने पर कोई ६० हजार टन और लकड़ी मिल सकेगी। सन् १९५५-५६ के अन्त तक इस प्रकार कुल इमारती लकड़ी का परिमाण २ लाख या २॥ लाख टन याने १० प्रतिशत बढ़ जायगा।

जंगल सम्बन्धी धंधे और छोटी उपजें

१२. इमारती लकड़ी और ईंधन के अलावा जंगल से कई प्रकार का महत्वपूर्ण कच्चा माल मिलता है, जो दियासलाई, प्लाई वुड तथा कागज़ के धंधे के लिये उपयोगी होता है और जो रायन धंधे के लिये भी उपयोगी हो सकता है। इन धंधों के विकास के लिये कार्यक्रम अन्यत्र दिये गये हैं। दियासलाई के धंधे के विस्तार के लिये सन् १९५५-५६ तक अन्डमान से आने वाली लकड़ी में कोई ४५ हजार टन की वृद्धि हो जायगी। अन्डमान से लगभग ३० हजार टन प्लाई वुड अधिक मिल सकेगी और आम की लकड़ी के इस्तेमाल से २० हजार टन और भी मिल सकेगी। कागज के धंधे में जो जंगल की चीजें काम में आती हैं, उनमें बांस मुख्य है और दूर के इलाकों से इसे लाकर इस्तेमाल करने में बहुत अधिक पूँजी लगती है, पर यदि कागज की मिलों को दीर्घकालीन पट्टे पर सीधा माल मिलने लगे, तो उससे ऐसे इलाकों का विकास होगा जिन से अब तक इस सम्बन्ध में कोई काम नहीं लिया जाता। इसी प्रकार अखबारी कागज़ और रायन के लिये हिमालय के दूरतम इलाको से फर के लट्ठे काम में लाने चाहियें, जहाँ वे बहुत प्रचुरता के साथ मिलते हैं। इस सम्बन्ध में कार्य करने के नये तरीकों का परीक्षण हो रहा है।

१३. जंगलात से ऐसी चीजें भी मिलती हैं जैसे लाख, चमडा रंगने की चीजें, गोंद और राल, जडी-बूटियाँ इत्यादि, जिनका वार्षिक मूल्य ३ करोड ३ लाख रुपये कूता गया है। इनमें से दो चीजें अर्थात् लाख और हरड़ निर्यात के बहुत महत्वपूर्ण द्रव्य हैं। उदाहरणार्थ सन् १९५०-५१ में भारत से ११·८७ करोड़ रुपये की बीज-लाख, चपडा लाख और शेलाख तथा १·३२ करोड रुपये की हरड़ और उससे बनी चीजें बाहर भेजी गईं। इन उपजों के निर्यात को बढ़ाने की गुंजाइश बहुत है बशर्ते कि इनका श्रेणी-विभाजन किया जाय, और इनके संग्रह के कार्यक्रम को तेज़ किया जाय। योजना में जंगल की उपजों के श्रेणी-विभाजन के सूत्रपात के सम्बन्ध में व्यवस्था है।

चरागाह

१४. सरकारी जंगलात में ढोरों के चराने से ६९ लाख रुपये की सालाना आमदनी होती है। इससे भी महत्वपूर्ण बात यह है कि इससे १ करोड़ ३० लाख गाय-बैलों, तीस लाख भैंसों और ६० लाख दूसरे जानवरों को चारा मिलता है। फिर भी यह समझ लेना चाहिये कि जंगल में कम मूल्य पर ढोर चराने की सुविधा का एक पतनकारी असर भी होता है। इससे असावधानतापूर्वक ढोरों की संख्या बढ़ाने की दुष्ट प्रवृत्ति चल पड़ती है, जिसका अन्तिम नतीजा यह होता है कि जंगली चरागाह में कमी होती है, ढोरों के गुण में न्यूनता आती है, और इसके बाद भी संख्या का बढ़ना जारी रहता है जिससे कि गुण में और भी कमी होती है। इस प्रकार जंगलात में मुफ्त और बेरोकटोक चराने की सुविधा पशुपालन के प्रति एक गम्भीर कुसेवा प्रमाणित होती है। इसलिये होना यह चाहिये कि देहाती इलाकों के रहने वालों तथा खेतिहरों को उसी हद तक मुफ्त में पशु चराने की सुविधा देनी चाहिये जिस हद तक उनकी अपनी खेती सम्बन्धी जरूरत अथवा घरेलू दूध की जरूरत पूरी होती है। इन जरूरतों के अलावा जो भी जानवर पाले जायें, उन्हें व्यापारी संस्था का हिस्सा समझा जाये, और उन पशुओं से जो उत्पादन होता है उसके अनुसार लोगों से चराने का शुल्क वसूल किया जाय।

१५. रैयतवारी इलाकों मे काफी चरागाह प्राप्त होते हैं। जो साधारणतः गाँवों के सार्वजनिक चरागाह कहलाते हैं, बराबर उनकी अवहेलना की गई है, और उनमें भूमिक्षय होता रहता है। ऐसी जमीनों में बारी बांध कर चराने का काम लेना चाहिये। यदि यह न किया जा सके, तो उन पर पेड बो देना चाहिये या खेती करनी चाहिये। किसी भी हालत में उन्हें और अधिक भूमिक्षय का शिकार नहीं होने देना चाहिये जिससे कि पड़ोस के इलाकों में खेती को नुकसान न पहुँचे।

जंगलात प्रशासन

१६. यद्यपि जंगलात राज्य सरकारों के विषय हैं, फिर भी राष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था में उनके महत्व का तकाजा यह है कि जंगलात के सम्बन्ध में जो नीति हो, उसके विषय में केन्द्रीय रूप से कुछ हद तक नीतियों का एकीकरण होना चाहिये। इसलिये यह सिफारिश की जाती है कि राज्य

सरकारों की चालू योजनाओं में जो बातें की जानेवाली हैं, उनकी सूचना जंगलात के इन्स्पेक्टर जनरल के पास भेजी जाय जिससे कि वे उसकी जांच कर सकें और उस पर राय दे सकें। क्षेत्रीय आधार पर समय-समय पर कुछ अन्तर्राज्य सम्मेलन भी बुलाये जाने चाहिये जिससे कि जंगलात के कर्मचारीगण औद्योगिक समस्याओं पर विचार-विनिमय कर सकें।

जंगलात विषयक खोज और शिक्षा

१७. देहरादून की जंगलात शोध संस्था ने जंगलों तथा जंगल के उपयोग के सम्बन्ध में बहुत मूल्यवान शोध कार्य किये हैं। इमारती लकड़ी और बांस को कीड़ों और बीमारियों के हमलों से सुरक्षित करने के सम्बन्ध में उपाय खोज निकालने के अतिरिक्त इस संस्था ने कागज, प्लाईवुड, राल और तारपीन, सेटोनीन, और अन्य कई वस्तुओं के उत्पादन के लिये धंधे स्थापित करने के लिये सहायता दी है। पर जनता तक शोध के परिणामों को पहुँचाने के लिये एक अच्छा सा अभिलेख-दफ्तर खोलना चाहिये, और शोध संस्था तथा उद्योग धंधों में घनिष्ठ सम्पर्क स्थापित करना चाहिये।

दक्षिण के लिये एक पृथक शोध-केन्द्र स्थापित करने की बात पर भी ध्यान देना चाहिये।

जंगली कबीले

१८. जंगली इलाकों में बहुत से कबीले रहते हैं, जिनकी उन्नति और कल्याण के सम्बन्ध में जिन बातों को करना है, वे पिछड़ी हुई जातियों की उन्नति सम्बन्धी कार्यवाहियों में अन्यत्र गिनाई गई हैं। जिन ठेकेदारों के जरिये जंगल की अधिकांश उपजों को एकत्र किया जाता है वे इन सीधे-सादे लोगों का शोषण करने के लिये सचेष्ट रहते हैं। बम्बई में जंगली कबीलों की सहकारी समितियां बहुत सफलता के साथ संगठित हुई हैं और उन्होंने ठेकेदारों की जगह ले ली है, और यही दूसरे स्थानों के लिये भी लक्ष्य होना चाहिये। जंगल विभाग पर इन सहकारी समितियों को संगठित करने की जिम्मेदारी होनी चाहिये।

१९. कुछ कबीलों में एक जगह खेती करने के बाद उस जगह को छोड़ कर दूसरी जगह खेती करने की परिपाटी है, जिससे बहुत से जंगलों को भारी नुकसान पहुँचा है। ऐसे लोगों की इस बुरी आदत को छुड़ाने में कुछ समय लगेगा, पर यह जोर डालना चाहिये कि वे कहीं पर बस जायं और भरपूर खेती करने की प्रथा को स्वीकार करें। जहां सम्भव हो वहां उन्हें

जंगलों से दूर खेती करने लायक जमीनों में बसा देना या चौरस जमीन बना कर उन्हें खेती करना सिखाना चाहिये। जिन इलाकों में फल उत्पन्न हो सकते हैं वहां यदि संचार साधनों की उन्नति की जाय और अच्छी किस्मों के फल उत्पन्न किये जायें, तो फल-उत्पादन को प्रोत्साहन प्राप्त होगा। यदि इन उपायों को काम में लाया जाय तो कबीलेवाले हट-हट कर खेती करने की फजूल पद्धति को छोड कर एक जगह पर बस कर खेती करने के लिये राजी किये जा सकते हैं।

कार्यक्रम

२०. जंगलात विकास सम्बन्धी किसी भी कार्यक्रम में स्थान-भेद के अनुसार कुछ खास बातें ऐसी हो सकती हैं, जिनके सम्बन्ध में प्राथमिकता का निश्चय करना होगा, पर साधारण रूप में ये उपाय इस प्रकार होंगे :—

(क) जिन इलाकों में पहिले से अधिक जंगलात राज्य के नियन्त्रण में आये हैं, उनमें जंगलात प्रशासन को मजबूत किया जाय;

(ख) जिन इलाकों का अधिक दोहन हुआ है, उनका नवीनीकरण किया जाय;

(ग) जहां अधिक पैमाने पर भूमिक्षय हुआ है, वहां जंगलात लगाये जाँय;

(घ) जंगलात में आवागमन के साधनों का विकास किया जाय;

(च) गांवों के बागात का विकास किया जाय; तथा

(छ) कई प्रकार की लकडी, जो अब तक इमारती लकडों के रूप में काम में नहीं आ रही, ठीक ढंग से सिझाने और मसाला लगा कर मजबूत बनाने के बाद काम में लाई जा सकती है, और इस प्रकार इमारती लकड़ी की मात्रा बढ़ाई जा सकती है।

इन तात्कालिक कर्तव्यों के आधार पर जंगलात संबंधी योजना में इस प्रकार खर्च की व्यवस्था है :—

१. जंगल विकास	६११·२ लाख रु०
२. प्रशासन	२४६·४ लाख रु०

३. जंगल संबंधी धंधे	४६·५ लाख रु०
४. शिक्षा और प्रशिक्षण	३६·३ लाख रु०
५. शोध	१०·० लाख रु०
कुल	६५६·५ लाख रु०

जंगल विकास सम्बन्धी योजनाओं में संचार, भूमि-रक्षा, गांव में बाग लगाना तथा निजी जंगल और बंजर जमीन की उन्नति सम्बन्धी बातें भी आ जाती हैं।

बाजरे की इस ऊँची फसल को अच्छी खाद और सुधरे हुए बीजों के द्वारा उगाया गया है।

चित्र मे दिखाए गए जुताई करने वाले मजबूत बैलों की जरूरत अधिक से अधिक

नवीन जीवन का आरम्भ। दिल्ली के निकट विस्थापितों की एक सहकारी समिति के सदस्य जमीन की सफाई कर रहे हैं।
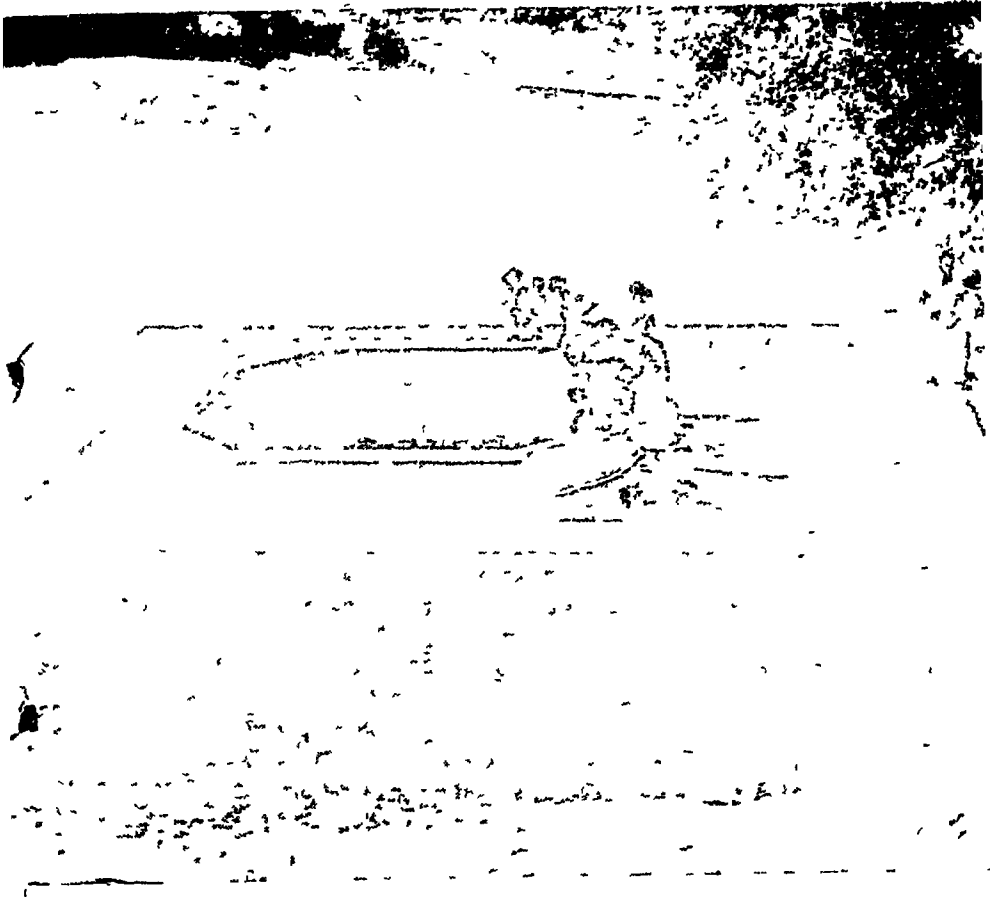
एक कुवां जिसे पूरी तरह गांव वालों ने ही बनाया। सरकार ने केवल टेक्नीक

केन्द्र ग्राम-योजना के अन्तर्गत पशुओं की नस्ल सुधारने के लिये एक अच्छी नस्ल का सांड

इच्छापूर्वक काम करने वालों के द्वारा सड़क का निर्माण
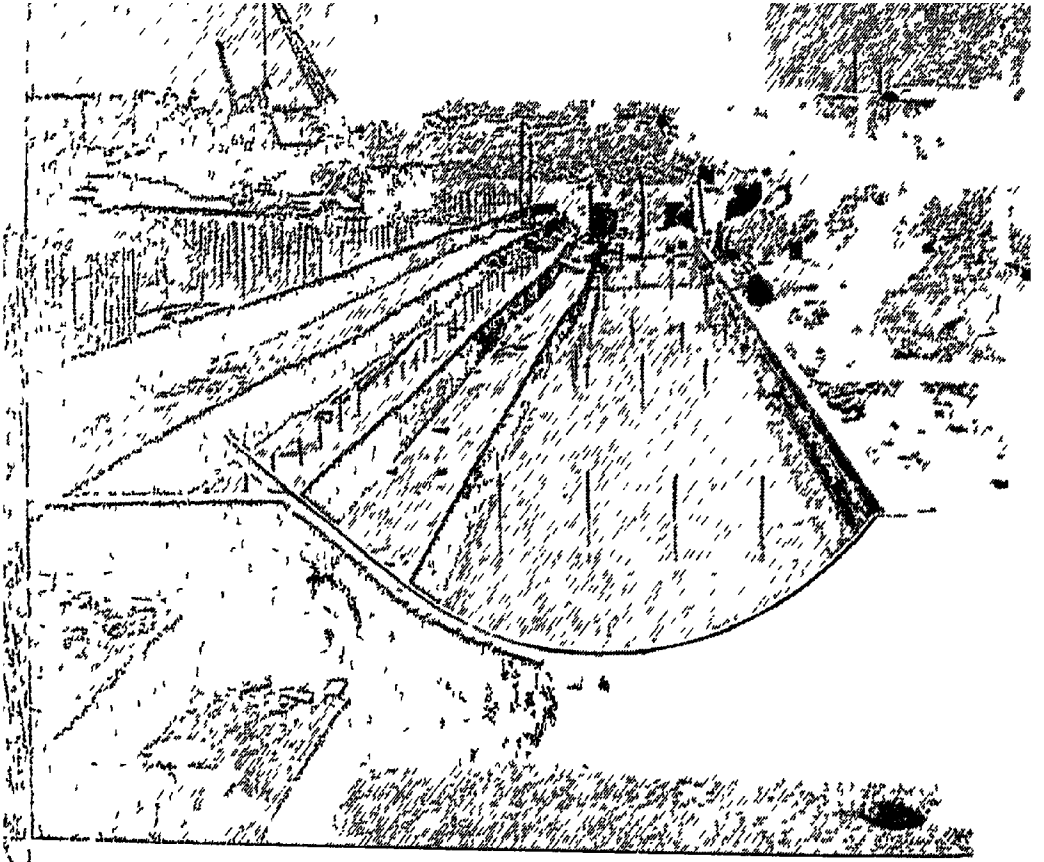
दामोदर घाटी योजना। बोकारो नदी के आर-पार एक बांध का निर्माण। पृष्ठभूमि मे
(बिजलीघर का लोहे का ढांचा दिखाई दे रहा है

दामोदर घाटी योजना। तिलैया बांध का निर्माण-कार्य
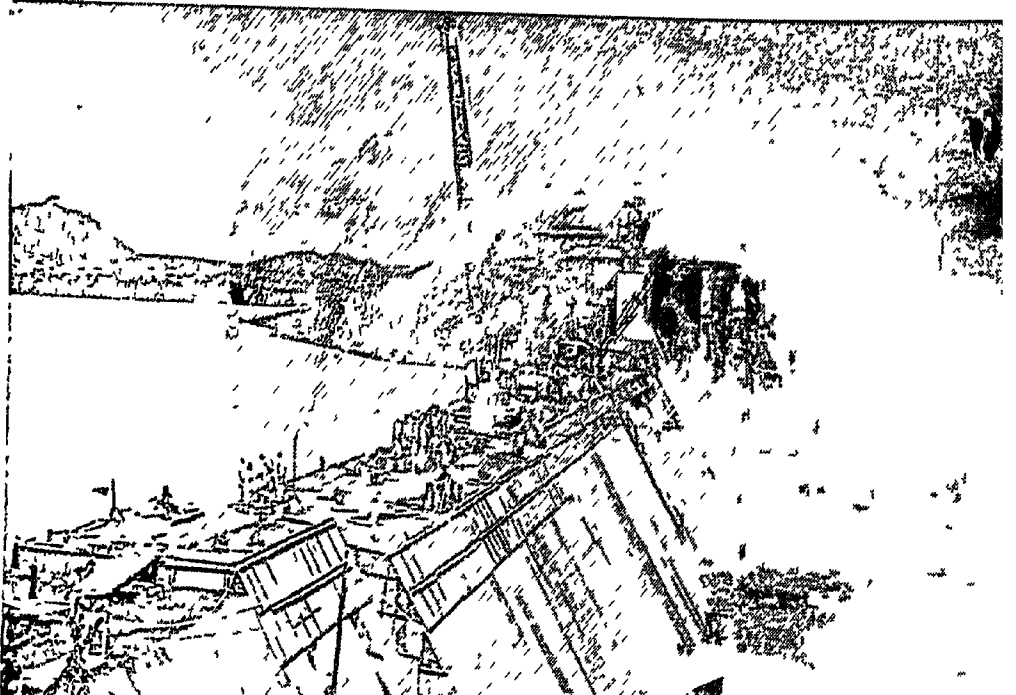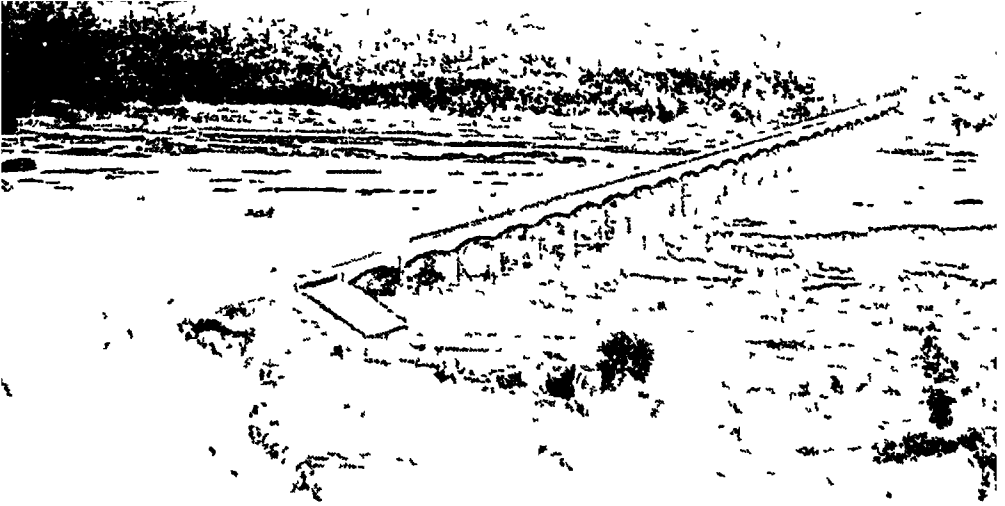
हीराकुड योजना। महानदी पर रेल और सड़क का पुल

हीराकुड योजना। बाईं तरफ की दीवार का निर्माण
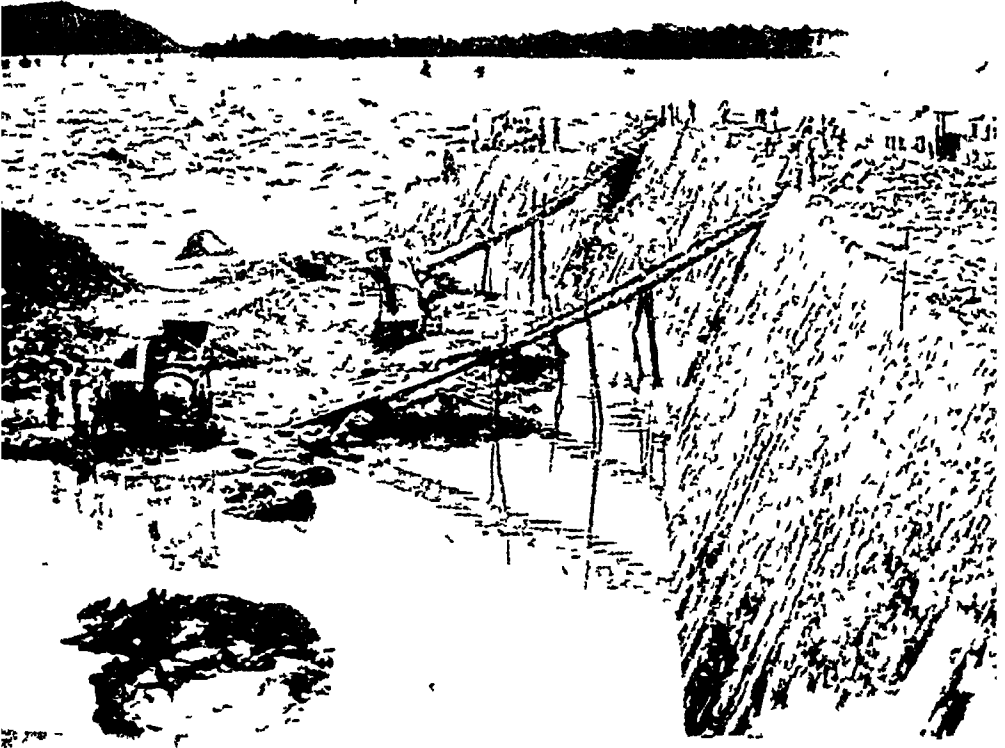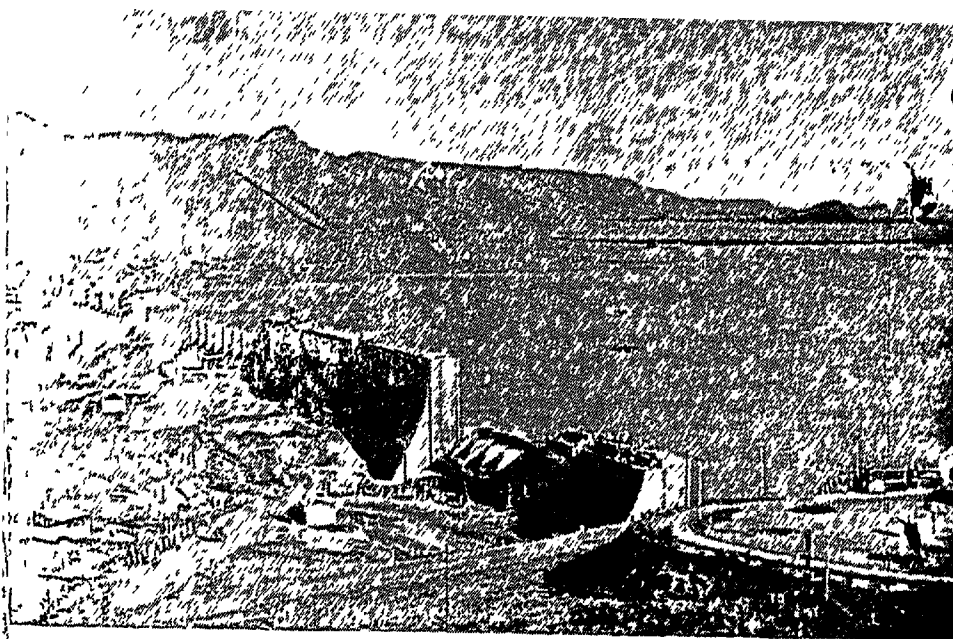
तुंगभद्रा बांध

भाखरा-नांगल योजना । पहाड़ी धाराओं के लिये आड़ी-तिरछी नालियों का निर्माण
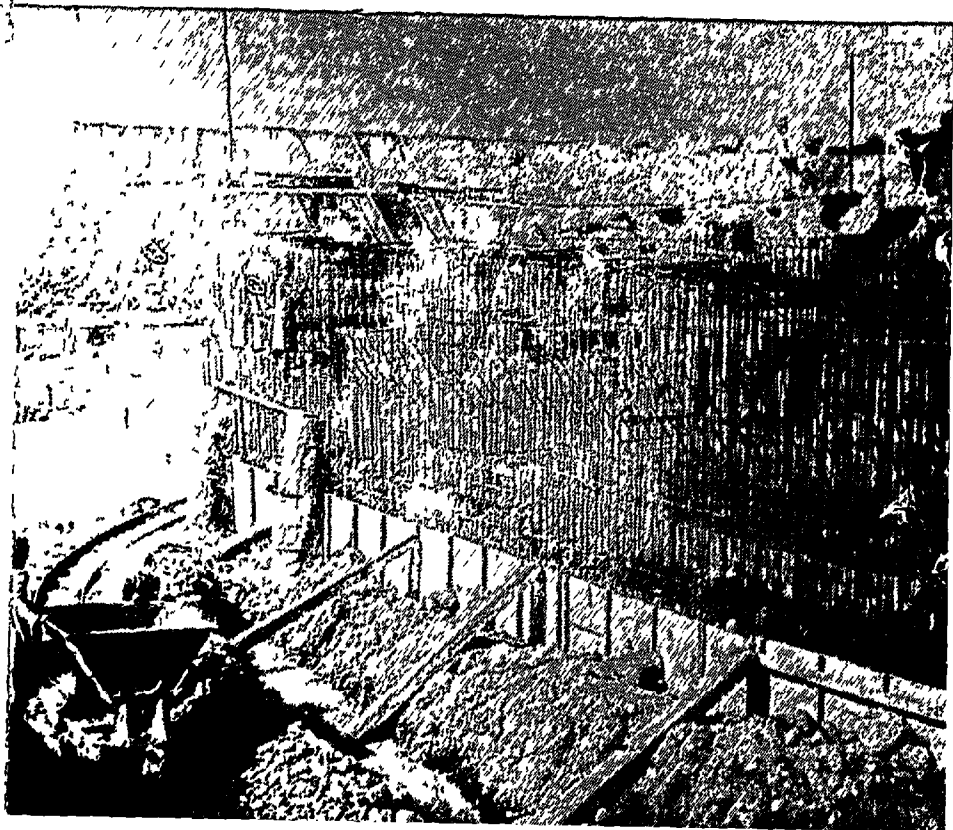
एक खान मजदूर अभ्रक खोद रहा है। अभ्रक भारत का एक सबसे अधिक मूल्यवान खनिज पदार्थ है
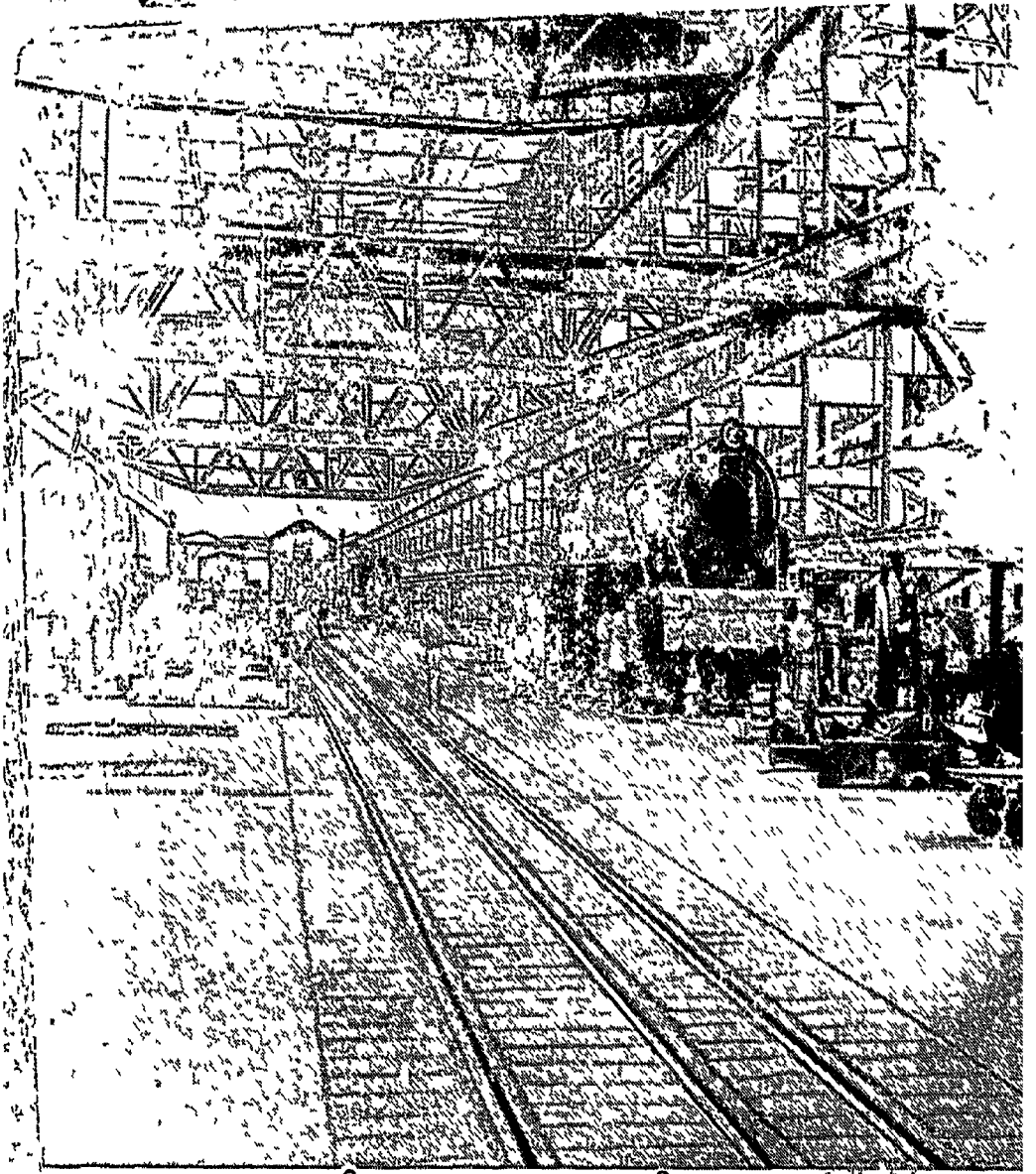
चित्तरंजन लोकोमोटिव फैक्टरी मे इंजन के हिस्से जोड़ने की जगह
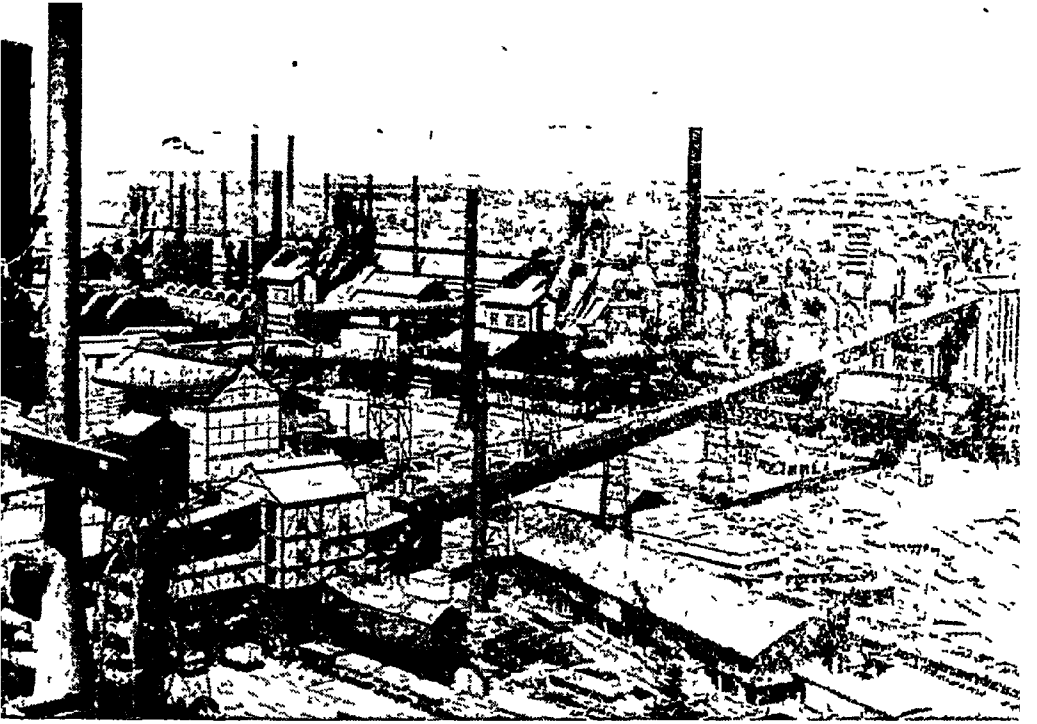
पंचवर्षीय योजना के अंग के रूप मे दुनिया के एक सबसे बड़े लोहा और इस्पात के टाटानगर-स्थित प्लांट का विस्तार

सिन्द्री का रासायनिक खाद का कारखाना जिसकी उत्पादन-सामर्थ्य ३५०,००० टन अमोनियम सलफेट प्रति वर्ष है
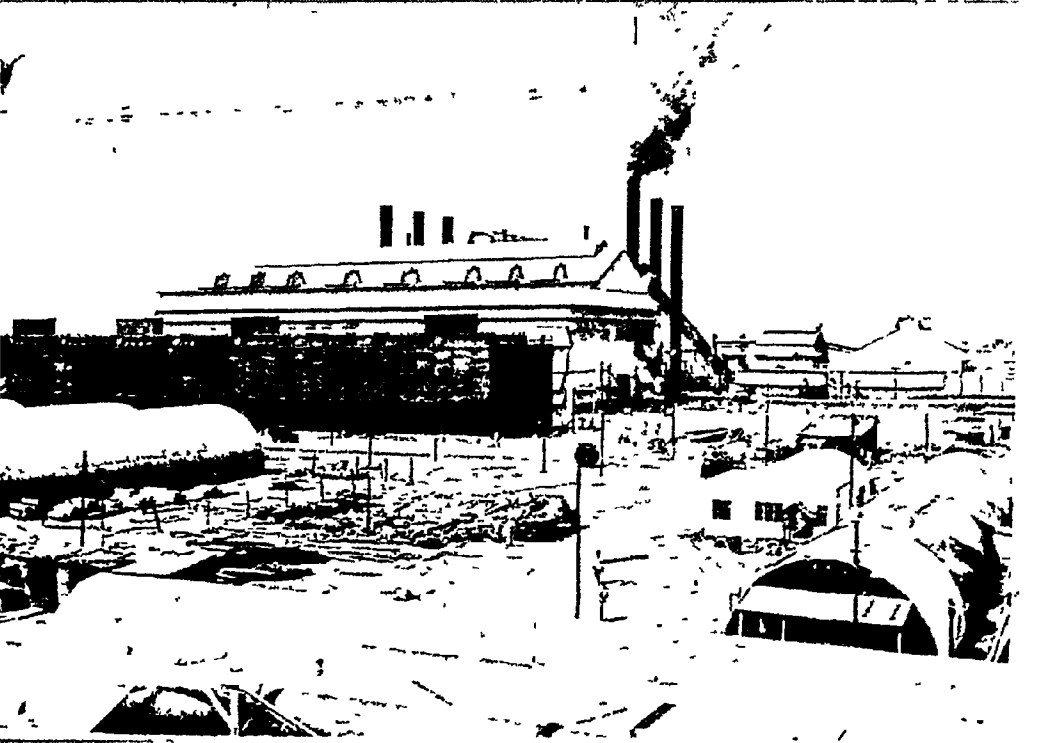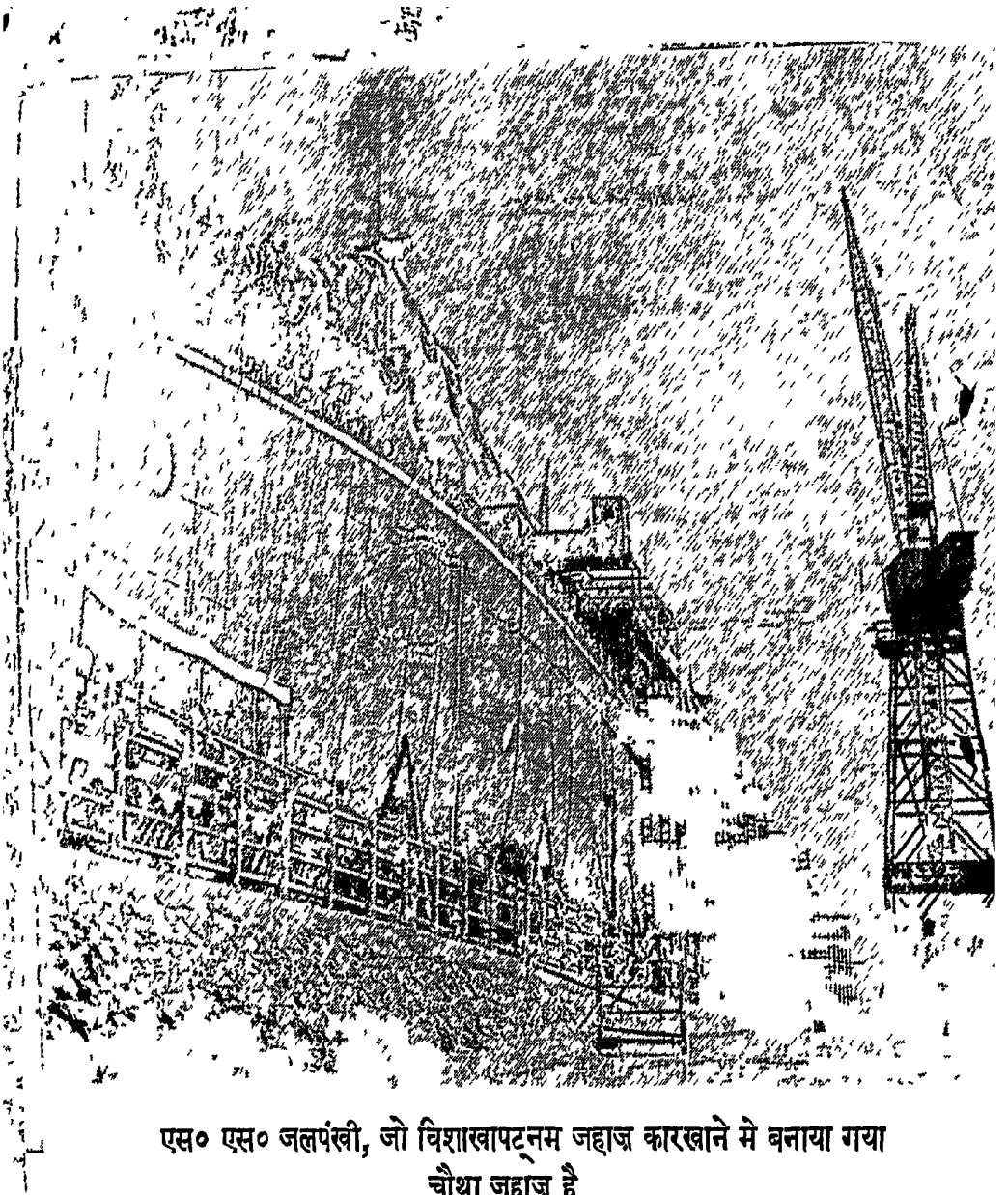
एस० एस० जलपंखी, जो विशाखापट्नम जहाज़ कारखाने मे बनाया गया
चौथा जहाज़ है

मलेरिया निरोधक आंदोलन की तैयारी। दिल्ली के मलेरिया इन्स्टीट्यूट में विद्यार्थी काम कर रहे

पंचवर्षीय योजना में नर्सों की ट्रेनिंग के लिए और अधिक सुविधाओं की व्यवस्था है।
नर्सिंग की शिक्षा प्राप्त करने वाली महिलाएँ लेक्चर सुन रही हैं

शिशु-कल्याण केन्द्र

कल्याण-कार्य करने वालों को दस्तकारी की शिक्षा दी जा रही है।

बुनियादी शिक्षा। खेतों में कपास के पौधों की निराई

एक छोटे पैमाने का उद्योग : फीता बनाना

अध्याय २२

भूमि-रक्षा

भूमि-रक्षा शब्द अपने व्यापक अर्थ में न केवल भूमिक्षय पर नियन्त्रण का द्योतक है, बल्कि इसके अन्तर्गत वे सब उपाय आ जाते हैं, जिनका उद्देश्य भूमि की उत्पादकता को ऊँची सतह पर कायम रखना है। ऐसा होते हुए भी इस अध्याय में केवल उन्हीं बातों का वर्णन है जिनका सम्बन्ध भूमि क्षय को रोकने से है। देश के बहुत बडे इलाके भूमिक्षय के फलस्वरूप बिल्कुल बेकार हो गये हैं, और इससे भी बड़े हिस्से को आंशिक रूप से हानि हुई है और उनकी उत्पादकता घटी है। भूमि की ऊपरी सतह, जिसमें उसका सबसे ऊपजाऊ हिस्सा होता है, बहुत अधिक घुल जाती है। इसका बहुत अधिक प्रसार है, और इससे प्रतिवर्ष बहुत अधिक हानि होती है। इसी प्रकार भूमि की परतों का क्षय, जो सतही भूमि-क्षय के साथ ही साथ चला करता है, बराबर बढ़ती पर है। राजस्थान मरुभूमि के किनारे पर भूमिक्षय वायु के कारण होता रहता है जिससे कृषि योग्य जमीन पर मरुभूमि का रेत चढता जाता है।

२. भूमिक्षय का सबसे महत्त्वपूर्ण कारण जंगलात तथा दूसरे वनस्पतियों का ढालू जमीन पर, मरुभूमि के किनारों पर तथा भूमिक्षय की प्रवृत्तिवाले दूसरे इलाकों पर नाश हो जाना है। कृषि योग्य जमीनों पर भी यदि त्रुटिपूर्ण ढंग से खेती की गई, जैसे कि ढालवाली जमीनों के किनारों पर हल नहीं जोता गया या जैसे बारी-बारी से फसल बदल कर खेती करनी चाहिये वैसे नहीं की गई, तो भूमिक्षय होता है। पडती जमीन, चरागाह तथा बिना खेती की छोडी हुई खराब जमीनों की अवहेलना से भी बहुत नुकसान हो जाता है।

३. भूमिक्षय को रोकने के लिये तथा भूमिक्षय वाली जमीन की उत्पादकता के पुनरुद्धार के लिये इन उपायों को काम में लाना जरूरी है :—

(क) वैज्ञानिक ढंग से जंगलात लगाये जायें और लगे हुये जंगलों की रक्षा की जाये।

(ख) खेती के तरीकों में सुधार किया जाय। इनमें ऐसी बातें आती हैं जैसे ढालवाली जमीनों में ऊपर-नीचे हल न चला कर सहारे सहारे चलाया जाय, फसल अदल-बदल कर बोई जाय, उपयुक्त परिमाण में खाद और उर्वरकों का प्रयोग किया जाय, बिना जोती हुई जमीन तथा पड़ती जमीन की ठीक से परवा की जाय।

(ग) इंजीनियरिंग सम्बन्धी कार्यवाही। इस में बाँध आदि का निर्माण तथा फालतू पानी के निकास के लिये नालियाँ आदि आती हैं।

४. कुछ भूमि में कई सालों से भूमिक्षय को नियन्त्रण में लाने के उपाय काम में लाये जा रहे हैं, पर इस समस्या पर अभी तक राष्ट्रीय पैमाने पर कुछ नहीं किया गया। भूमिरक्षा सम्बन्धी जिस कार्यक्रम का प्रस्ताव पंच-वर्षीय योजना में किया गया है, वह समस्या की महत्ता को देखते हुए छोटा है, इसमें सन्देह नहीं; फिर भी इस कार्य-क्रम से इस सम्बन्ध में देशव्यापी पैमाने पर कुछ करने का सूत्रपात किया गया है। क्योंकि इस सम्बन्ध में अब तक बहुत काम किया गया है, इसलिये इस सोपान पर एक बृहत्तर कार्यक्रम को उठाने की गुंजाइश बहुत सीमित है। भूमि की विशेपताओं तथा देश में भूमि-क्षय की किस्म तथा उसकी भयानकता के सम्बन्ध में आंकड़े बहुत कम हैं, और ऐसे लोगों की कमी है जिनको इस कार्य को उठाने के सम्बन्ध में जरूरी प्रशिक्षण तथा तजुर्बा हो। इस योजना के काल में धीरे धीरे इन सीमाओं पर अधिकांश में विजय प्राप्त कर ली जायेगी। केन्द्र तथा राज्यों में प्रशासन यन्त्र तथा नाप-जोख और शोध सम्बन्धी संगठन स्थापित कर दिये जायेंगे, अत्यावश्यक आँकड़े आदि संगृहीत होंगे और उपयुक्त कानून बना दिये जायेंगे। प्रत्येक राज्य को एक भूमि-उपयोग और भूमि-रक्षा बोर्ड स्थापित करना पड़ेगा, जो भूमि रक्षा के लिये जिम्मेदार होगा और उस राज्य की भूमि-क्षय समस्या की जल्दी जल्दी छानबीन करने के बाद एक कार्यक्रम बनाएगा। उपयुक्त नाप के एक या एकाधिक क्षेत्र, जो बड़े इलाकों के जहां तक हो सके प्रतिनिधि रूप होंगे,

काम के लिये चुन लिये जायेंगे और उनमें पंचवर्षीय योजना-काल में काम किया जायेगा। जिन राज्यों को जरूरत होगी वे अपने कार्यक्रमों के निर्माण तथा उन्हें कार्य-रूप में परिणत करने के मामले में केन्द्र से विशेषज्ञो की सहायता प्राप्त कर सकेंगे। इस सम्बन्ध में राज्य सरकारें जो कुछ खर्च करेंगी उसके अलावा केन्द्रीय सरकार दो करोड़ रुपये लगायेगी, जो योजना-काल में उन कार्यक्रमों पर खर्च होंगे।

भूमि रक्षा संस्थायें

५. चूंकि भूमि-रक्षा सम्बन्धी अधिकांश कार्य स्वयं किसानों के द्वारा किये जायेंगे, इसलिये उन्हें इस उद्देश्य के लिये सहकार संस्थायें बनाने में प्रोत्साहन दिया जाना चाहिये। इन संस्थाओं को उस हालत में कानूनी स्वीकृति मिलनी चाहिये जब कि किसी एक क्षेत्र में किसानों में से एक विशेष संख्या इस संस्था की स्थापना के लिये अपना निर्णय दे दे। उस हालत में जिन इलाकों से उन किसानों का सम्बन्ध है, उन इलाकों के किसानों को खेती-बाड़ी में उन सारी उन्नत बातों को करना पड़ेगा, जिन के सम्बन्ध में संस्था हिदायत देगी। ऐसी संस्थाओं को सरकार से स्वीकृत भूमि-रक्षा सम्बन्धी कार्यक्रमों के लिये प्रौद्योगिक पथ-प्रदर्शन तथा वित्तीय सहायता मिलनी चाहिये।

कानून

६. राज्य सरकारों को ऐसे कानून बनाने होंगे जिनके द्वारा ये अधिकार प्राप्त हों :—

(क) किसानो की खेती में उन्नति करना तथा उसकी लागत का बटवारा किसानों में और राज्य में करना।

(ख) किसानों की सहकार संस्थाओं का निर्माण करना।

(ग) कुछ इलाकों को संरक्षित इलाके घोषित करना, और उनमें कुछ कार्रवाइयों पर रोक लगाना जिस से कि बहुत बडे क्षेत्र भूमि-क्षय, बाढ़, सूखा, या रेत से बच जायें।

शोध और प्रदर्शन

७. पंचवर्षीय योजना मे देहरादून के जंगलात शोध संगठन की भूमि-रक्षा शाखा की स्थापना की व्यवस्था है, जिसमें भूमि-रक्षा सम्बन्धी

कई समस्याओं पर शोध किया जायेगा। इसके अतिरिक्त देश में बहुत दूर-दूर के स्थानों पर जिन इलाकों में अधिक भूमि-क्षय जारी है तथा जिन्हें पंचवर्षीय योजना काल में भूमि-रक्षा कार्य के लिये चुना गया है, ६ शोध और प्रदर्शन केन्द्र स्थापित किये जायेंगे।

८. यह भी प्रस्ताव रक्खा जा रहा है कि भूमि-रक्षा के सम्बन्ध में एक दीर्घ-कालीन कार्यक्रम बनाने के लिये अखिल भारतीय पैमाने पर भूमि तथा भूमि के प्रयोग की नापजोख करके भूमि की विशेषताओं के सम्बन्ध में आँकड़े तथा इस समय भूमि को किस काम में लाया जा रहा है इस सम्बन्ध में वर्तमान परिस्थिति के तथ्य एकत्र किये जायं। यह नापजोख एक केन्द्रीय संस्था के द्वारा होगी जिस से कि श्रेणी विभाजन तथा मानचित्र-निर्माण के कार्य में एक-रूपता रहे।

सामूहिक विकास योजना क्षेत्र मे भूमि-रक्षा

९. सामूहिक विकास योजना क्षेत्रों के उन हिस्सों में जो मैदानों में हैं, भूमि-क्षय कोई बड़ी समस्या नहीं है। पर पहाड़ी इलाकों मे, जहाँ जमीन का उपजाऊ हिस्सा बराबर भूमि-क्षय से कटता चला जा रहा है, भूमि-रक्षा सम्बन्धी उपाय विकास-कार्यक्रम का एक प्रधान अग होना चाहिये। इसी प्रकार देश की मरुभूमि या अर्ध-मरुभूमि वाले हिस्सों में, जैसे राजस्थान में, जंगल रोपना तथा पेड़ों से बने हुये वनस्पति वाले 'हिस्सों' का निर्माण तथा भूमि को रोकने वाली घासों का बोना विकास योजनाओं के लिये बहुत महत्वपूर्ण है।

नदी घाटी योजना-क्षेत्र में भूमि-रक्षा

१०. नदियों के आस-पास के क्षेत्रों में भूमि-रक्षा के सम्बन्ध में उपाय जल सम्बन्धी साधनों तथा बाँध और जलाशयों के निर्माण की ही तरह आवश्यक हैं। यदि ये उपाय नहीं किये गये और भूमि-क्षय बराबर बिना बाधा के चालू रहा तो उसके कारण जो बहुत अधिक परिमाण में रेत एकत्र होता रहेगा, उससे बांधों और जलाशयों का जीवन घट जायगा, उनकी कार्य क्षमता को ठेस पहुँचेगी और सारे काम की लागत बढ़ जायेगी। इसलिये भूमि-रक्षा का कार्यक्रम प्रत्येक नदी घाटी योजना के आस-पासके क्षेत्रों में लागू करना चाहिये, भूमि-क्षय तथा भूमि के उपयोग सम्बन्धी आंकड़े और तथ्य एकत्र करने चाहियें और जिन क्षेत्रों में खतरा अधिक है उनको अलग दिखा

कर उनमें जंगलात तथा दूसरे वनस्पतियों की रक्षा करनी चाहिये, और ऐसा पशुओं को चराने तथा पेड़ काटने पर नियन्त्रण लगा कर किया जाय। उपर्युक्त नदी क्षेत्रों के नीचे के क्षेत्रों में किसानों पर यह दबाव डालना चाहिये कि वे भूमि-रक्षा के कार्यक्रम की रूपरेखा तैयार करने के लिये संस्थायें बनावें। जब ये कार्यक्रम स्वीकृत हो जायं तो सरकार से प्रौद्योगिक तथा वित्तीय सहायता ले कर उन्हे चालू करना चाहिये।

११. बहुत सी नदियाँ दो या उससे अधिक राज्यों से होकर बहती हैं। इसलिये कार्यक्रमों की सफलता सम्बद्ध राज्यों के सहयोग पर निर्भर है, और उनमें आपस में इस प्रकार से काम होना चाहिये कि जो खर्च आवे उसका युक्तियुक्त रूप से आपस में बँटवारा कर लिया जाय। प्रस्तावित केन्द्रीय संगठन इस बात को भी देखेगा कि सहयोग वाले कार्यक्रम में राज्यों में आपस में ढंग का समझौता है।

राजस्थान मरुभूमि की समस्या

१२. राजस्थान और पंजाब, पेप्सू, उत्तर-प्रदेश, सौराष्ट्र और कच्छ से लगे हुए हिस्सों में मरुभूमि तथा अर्ध-मरुभूमि की अवस्था मौजूद है। योजना आयोग के प्रथम मसविदे की रिपोर्ट में मरुभूमि के आगे बढ़ने की बात कही गई है, और हाल ही में इस समस्या पर विचार करने के लिये एक तदर्थ समिति की नियुक्ति हुई थी। कमेटी ने कई सिफारिशें कीं, जिसमें एक यह भी थी कि राजस्थान के पश्चिमी किनारे पर एक पांच मील चौड़ा वनस्पति क्षेत्र उगाया जाय। इस सम्बन्ध में पहले कदम के रूप में जोधपुर में एक शोध स्टेशन खोला जा रहा है, जिसमे जमीनों, भूमि के उपयोग तथा मरुभूमि (Silviculture) पर शोध किया जायगा। वनस्पति क्षेत्र के उगाने के लिये एक प्रारम्भिक योजना बनाई जायगी। मरुभूमि की वृद्धि से कई राज्यों का सम्बन्ध है, इसलिये इससे लोहा लेने के लिये एक ऐसा कार्यक्रम बनना चाहिये जिसमें सब राज्यों का सहयोग रहे। साथ ही उसमें केन्द्रीय संगठन के प्रतिनिधि भी रहें, और यह साफ कर दिया जाय कि किस राज्य को कितना काम करना है।

संगठन

१३. उपर बताये गये कार्यक्रमों को रूप देने के लिये तथा भूमि

उपयोग और भूमि रक्षा के क्षेत्र में उपयुक्त नीतियों की रचना करने और उनको काम में लाने के लिये यह सिफारिश की जाती है कि केन्द्र में एक केन्द्रीय भूमि उपयोग तथा भूमि रक्षा संगठन तथा प्रत्येक राज्य में एक भूमि उपयोग और भूमि रक्षा आयोग बने।

—:०:—

अध्याय २३

मछली उद्योग

मछली उद्योग से भारत की राष्ट्रीय आय मे सालाना १० करोड़ रुपये आते है, और मछली प्रोटीनों, विटामिनों तथा खनिज लवणों से युक्त होने के कारण एक बहुत मूल्यवान खाद्य है। सारे देश के बहुत से इलाकों में मछली हमारे खाद्य का एक बहुत महत्वपूर्ण अंग है।

उत्पादन की प्रवृत्तियां

२. योजना में ८ लाख रुपये इस बात के लिये रक्खे गये हैं कि उत्पादन के मौजूदा आंकड़ों में सुधार हो, क्योंकि वर्तमान आंकडे बहुत ही अनुपयुक्त हैं। जो आंकड़े प्राप्त हैं उनसे यह ज्ञात होता है कि कोई १० लाख टन मछली उपलब्ध होती है, जिसमें से ७० प्रतिशत सामुद्रिक और नदी के मुहानो से प्राप्त मछलियां हैं और ३० प्रतिशत ताजे पानी की मछलियां है। इस प्रकार से प्रति व्यक्ति प्रतिवर्ष ३.४ पौंड मछली बैठती है। पर संतुलित खाद्य के अन्तर्गत प्रति वयस्क व्यक्ति प्रतिदिन ३ औंस या सालाना ६१ पौंड मछली और या गोश्त होना चाहिए। चूंकि गोश्त का प्राप्त परिमाण इससे भी कम है, इसलिये संतुलित खाद्य की मांग तथा प्राप्त परिमाण के बीच बहुत बडी खाई है।

देश के अन्दर का मछली उद्योग

३. देश के अन्दर के मछली उद्योग को विकसित करने के लिये ऐसे जलाशयों की तुरन्त पडताल और श्रेणी-विभाजन होना चाहिये जिससे कि अधिक खर्च के विना ही मछली उद्योग को आगे वढ़ाया जा सके। इसी तरह स्थिर पानी की भी पैमाइश होनी चाहिये, जिसको विकसित करने के लिये वडी पूंजी की ज़रुरत है। इसी के साथ साथ मछली के बीज सम्बन्धी साधनों की भी जांच होनी चाहिये जिससे कि उन्हें बड़े पैमाने पर भण्डारों में रखा जा सके। जो राज्य मछली के बीजों में भी पीछे हैं, उनमें ऐसे क्षेत्रों से बीज पहुँचाना चाहिये जिनमें बीज अधिक हैं, साथ ही अधिक बीज वाले क्षेत्रों में बड़े पैमाने पर मछली के बीजों का संग्रह तथा विभाजन संगठित किया जाना चाहिये। बिलकुल छोटी और मँझोली मछलियों के परिवहन में

बहुत अधिक नुकसान होता है, पर बैरकपुर में केन्द्रीय आन्तरिक मछली उद्योग शोध केन्द्र में तथा कटक के उप-केन्द्र में जो काम किया गया है उससे यह पता चलता है कि मछलियों की मौत को बहुत काफी हद तक घटाया जा सकता है। इस काम को जोर-शोर से करना चाहिये। बँधे हुये पानी में कार्प मछली के कृत्रिम अण्डोत्पादन के शोध को बहुत महत्व दे कर काम करना चाहिये। यह उस किस्म की मछली है, जिसे बहुत साधारण रूप में भारत में पैदा किया जाता है, पर यह बँधे हुये पानी में अण्डा नहीं देती, इस लिये प्रतिवर्ष इसका नये सिरे से भण्डार बनाना पड़ता है। इस विषय में भी जोर-शोर से शोध-कार्य होना चाहिये जिससे कि ऐसे सस्ते यान्त्रिक उपाय या रासायनिक कीट-नाशक पदार्थ विकसित हों जिससे सेवार को नष्ट किया जा सके। बात यह है कि बहुत से स्थानों में सेवार के कारण देश के अन्दर का मछली उद्योग बहुत क्षति-ग्रस्त हो रहा है।

४. गांव के जलाशयों में निजी अधिकारों के अस्तित्व के कारण अक्सर देश के अन्दर के मछली उद्योग के विकास में बाधा पहुँचती है। ज़मींदारी प्रथा के खात्मे के साथ साथ ये अधिकार भी अधिकतर समाप्त हो गये हैं। अब मछली मारने का अधिकार राज्य सरकारों मे निहित है, और अब यह सरकार की ज़िम्मेदारी है कि वह मछली उद्योग का ढंग से विकास करें। चूंकि देश के अन्दर का मछली उद्योग देश भर में फैला हुआ है, इसलिये बहुत बड़े पैमाने पर विस्तार संगठन से ही विकास का काम हो सकता है। यह सुझाव रखा जा रहा है कि मछली उद्योग के विस्तार का काम खेती विस्तार संगठन के साधारण कार्यों में होना चाहिए, और मछली विकास विद्या खेती विद्यालयों तथा उच्चविद्यालयों में विषय के रूप में पढ़ाई जानी चाहिये।

५. भारत की बहुत दीर्घ सामुद्रिक तट रेखा में असंख्य मुहाने, नमकीन पानी वाली झीलें और स्थिर जलाशय हैं जिनसे काफी मछलियां प्राप्त होती हैं। नमकीन पानी वाला क्षेत्र १९ लाख एकड़ है जिसमें चिल्का झील भी है जो २५६,००० एकड़ पर फैली हुई है, और जिससे सालाना ३,००० टन मछली प्राप्त होती है। इस क्षेत्र में से अधिकांश अब राज्य सरकारों के हाथ में आ गया है, और यह बहुत कुछ अविकसित भी है। त्रावन्कोर कोचीन में एक बहुत छोटे से क्षेत्र का उद्धार किया गया है, और उसे उत्पादक मछली धंधे के क्षेत्र में परिणत किया गया है। दूसरे

राज्यों में भी इस प्रकार के काम संगठित होने चाहियें, और इन इलाकों को ढंग से मछुवाहों की सहकारी-समितियों के हाथों में बांट देना चाहिये।

समुद्री मछली उद्योग

६. समुद्री मछली उद्योग के विकास के लिये यह आवश्यक है कि इस समय जो देहाती नावें आदि काम में लाई जाती हैं, उनमें यन्त्रों का प्रयोग हो। इस समय इन नावों की संख्या अनुमानित रूप से ७०,००० है। वर्तमान नावें तट से कुछ मीलों के अन्दर ही काम कर सकती हैं, और उनका बहुत सा समय मछली धंधे के क्षेत्र से समुद्र को आते जाते नष्ट हो जाता है। इसका नतीजा यह है कि पैदावार कम होती है। यदि यान्त्रिक नाव का प्रयोग हो, तो मछली मारने वालों के लिये यह सम्भव होगा कि इस समय वे जितनी दूरी तक जाते हैं, उससे अधिक दूरी तक जायें, और वे अधिकतर घण्टों तक मछली मारने का काम करें। पंचवर्षीय योजना में १४० नावों के यान्त्रिकीकरण की व्यवस्था रखी गई है, इसमें से १०० बम्बई की, २० सौराष्ट्र की और २० मद्रास के पश्चिमी तट की नावें होंगी। इस बात की भी व्यवस्था की गई है कि बहुउद्देश्य सिद्ध करने वाली १४ नावें ३०-३५ फुट की यान्त्रिक नावें होंगी।

७. भारत के पश्चिमी तट में इस बात की अच्छी सम्भावना है कि दूसरे देशों में प्रचलित बहुत बड़े जहाजों को इस काम मे लगाया जाय, जो समुद्र में ही मछली के शिकार के लिये डटे रहे और उनमें आने जाने के लिये तथा उनसे शिकार के लिये दौड़-धूप करने के लिये ऐसे द्रुतगामी 'टग' जहाज हों जिनमें मछली को बरफ में जमा कर रखने की उपयुक्त सुविधायें हों। पंचवर्षीय योजना में दो ऐसे बड़े जहाजों के प्रबन्ध की बात है, जो सौराष्ट्र और कोचीन तट से दूर अपना काम करेंगे। इसके अतिरिक्त प्रयोगात्मक उद्देश्य से दो 'पर्स साइनर' ढंग के जहाजों की व्यवस्था भी की गई है, जिन में से एक करवार के इर्दगिर्द 'मैकेरेल' पकड़ने के काम में तथा दूसरा कोचीन तट से दूर 'सार्डीन नामक मछली पकडने के काम में लगे रहेंगे। इस प्रकार गहरे समुद्र में मछली के शिकार का विकास किया जायगा। व्यापारिक ट्रालिंग के संचालन की संभावना भी है। इस लिये यह प्रबन्ध किया गया है कि अरब समुद्र में व्यापारी कामों के लिये एक ट्रालर हो, और पश्चिमी बंगाल के सरकार के पास 'बुल ट्रालिंग' के लिये छोटे ट्रालर हों।

कर्मचारी और प्रशिक्षण

८. ट्रालिंग व्यापारिक रूप से तभी सफल हो सकता है, जब जो लोग इस काम में लगाये जायें, वे कार्य कुशल हों। इस लिये आधुनिक मछली शिकार के सम्बन्ध में ८ शिक्षार्थियों को शिक्षा दी जा रही है। एक जापानी कम्पनी, जो १९५१ से पश्चिमी समुद्र तट पर व्यापारिक ट्रालिंग का काम कर रही है, कुछ भारतीयों को प्रशिक्षित करेगी। इसके अतिरिक्त विशेषज्ञों जैसे मछली धंधे के इंजीनियर, जहाज़-निर्माता, बन्दरगाह-विशेषज्ञ तथा मछली मारने के जहाजों के उपयुक्त प्रौद्योगिक लोगों को बिन्दु चार कार्यक्रम के अनुसार अथवा कृषि खाद्य संस्था के ज़रिये से प्राप्त किया जा रहा है। इस काम के लिये याने यान्त्रिक नौकाओं में काम करने के लिये शिक्षार्थियो को प्रशिक्षित करने के लिये ५,००,००० लाख रुपये की व्यवस्था की गई है।

भूमि पर मछली उद्योग के संगठन

९. भूमि पर मछली उद्योग के संगठनों में ये काम आते हैं, जैसे नाव को ज़मीन से लगा कर उसकी मरम्मत आदि करने की सुविधायें, बरफ जमाने के कारखाने, परिवहन की तात्कालिक सुविधा, चीजों की कुशल रूप से बिक्री। व्यापारिक रूप से मछली उद्योग को आगे बढ़ाने में ये काम बहुत ही महत्व के हैं इस लिये पंचवर्षीय योजना मे मद्रास और बम्बई, पश्चिमी बंगाल, उड़ीसा और सौराष्ट्र में ९ बरफ के कारखानों तथा चीजों को जमा कर रखने के कारखानों की स्थापना की व्यवस्था है। इसी प्रकार पुर्जे इकट्ठे करने के महत्वपूर्ण केन्द्रों में इन्सुलिटेड गाड़ियों के प्रबन्ध की व्यवस्था है।

कुछ छोटे मछली शिकार के बन्दरगाह, विशेष कर पश्चिमी समुद्र तट के बन्दरगाहों के रास्ते, जमी हुई रेत से रुके हुये हैं, इसलिये उनमे नाव तथा जहाज ला कर लगाने के लिये यह ज़रूरी है कि इन रुकावटों को दूर किया जाय। पंचवर्षीय योजना में इस उद्देश्य के लिये एक ड्रेजर की व्यवस्था की गई है।

पूर्ति

१०. मछली उद्योग मे बिचवैयों की भरमार है। मछुवाहो को अपने धंधे के लिये जिस चीज की भी जरूरत पड़ती है, जैसे नाव, कांटा, सूत, पाल का कपडा, वह सब उन्हीं के जरिये से मिलता है, और ये लोग इस प्रकार उनकी कमाई का बहुत बडा हिस्सा मार लेते हैं। इस लिये मछुवाहों

की सहकार-समितियों का संगठन जरूरी है जिससे कि वे अपनी अनिवार्य आवश्यकताओं की चीजों को उनसे प्राप्त कर सकें, और बिचवैयों पर कम निर्भर रहें। पंचवर्षीय योजना में पूर्ति की चीजों के वितरण को सुविधाजनक बनाने तथा मछली शिकार के कीमती सरंजामों के क्रय में सहायता देने के लिये ६०,००,००० लाख रुपये की व्यवस्था की गई है।

मछली की बिक्री

११. ताजे पानी की अधिकांश मछलियां ताजी मछलियों के रूप में बेची और खाई जाती हैं। दूसरी तरफ समुद्री मछली में से भी २० प्रतिशत ताजी मछली के रूप में बेची जाती हैं। बाकी ८० प्रतिशत या तो धूप में सुखा कर या नमक में जमा कर या मछली के खाद्य या खाद मे तब्दील कर बेची जाती हैं। ताजी मछली की बहुत बडी मांग की पूर्ति करने के लिये यह ज़रूरी है कि सामुद्रिक मछली में से और अधिक हिस्सा ताजी मछली के रूप में बाजार में आये, पर ऐसा केवल पूर्ति की दृष्टि से ही नहीं, मछवाहों को अधिक पैसा दिलाने के हित मे भी ज़रूरी है। यहीं पर आकर बरफ में जमा कर रखने के साधन तथा सुविधाओं और फौरन परिवहन की सुविधाओं की बात आती है। कई मछली-उद्योग-केन्द्र ऐसे हैं जिनकी अपने आसपास की भूमि से कोई संचार सम्बन्धी सुविधा नहीं है, और यह तो साफ है कि संचार का विकास एक दीर्घकालीन प्रक्रिया है।

१२. जब तक संचार की उन्नति न हो, और फौरन परिवहन की सुविधाओ की प्राप्ति न हो, तब तक बहुत सालों तक अधिकतर मछली को धूप मे सुखा कर या नमक मे जमा कर रखना पडेगा। जो कुछ भी हो इस सम्बन्ध में काम आने लायक सरकारी विभागो का यदि अधिकतर उपयोग किया जाय, और शोध से यह मालूम हो कि विभिन्न मछलियो को रखने के लिये कितने नमक का प्रयोग होना चाहिये, कैसे नमक का उपयोग किया जाना चाहिए तथा किन मौसमो में कौन से तरीके अच्छे हो सकते हैं, तो बहुत अच्छा काम हो सकता है। एक ज़माने में नमक में मछली जमाने के सरकारी कारखाने इस लिए बहुत जनप्रिय हो गए थे कि वहां जो नमक दिया जाता था, वह नमक-कर से मुक्त था, पर जब से नमक पर कर ही उठा दिया गया, तब से ये लोग निजी कारखानों की शरण ले रहे हैं। इस प्रवृत्ति पर इस तरह रोकथाम हो सकती है कि मद्रास, त्रावन्कोर कोचीन तथा सौराष्ट्र में जो इस सम्बन्धी कारखाने चालू हैं, उनमे दिये जाने वाले नमक

के एक अंश का दाम सरकार दिया करे।

१३. बड़े पैमाने पर मछली शिकार से कई बार ऐसी अवस्था उत्पन्न हो सकती है कि जब बहुत अधिक मछलियां पकडी जायें, बाज़ार में गुंजाइश ही न रहे, और इस लिए मछली के दाम में बहुत घटा बढ़ी हो सकती है, और इससे छोटे मछवाहों को ही अधिक तकलीफ पहुँचने की सम्भावना है। इसलिए यह सुझाव रखा जा रहा है कि बम्बई, कोचीन और कलकत्ते में जो भी मछलियाँ पकड़ी जायें वे राज्य सरकारों के द्वारा संगठित सहकार-समिति के ज़रिये से बेची जाएं। इस बीच में बिक्री के लिए आयोग, जिन में मछवाहे, व्यापारी, खरीदार और राज्य सरकारों के प्रतिनिधि हों, इन केन्द्रों में स्थापित किए जाएं जिससे बिक्री पर नियन्त्रण रहे।

मछली उद्योग सम्बन्धी योजना

१४. पंचवर्षीय योजना में ५,८०,००,००० लाख रुपए इस काम के लिए रखे गए हैं कि मछली विकास कार्यक्रम को चालू किया जाय। जितनी सारी योजनाएं हैं, उनसे मछली का उत्पादन योजना-काल में १० लाख टन से बढ़ कर १५ लाख टन हो जायगा। पोषण के संबन्ध में परामर्श देने वाली कमेटी के अनुसार ७० प्रतिशत देश वासियों के लिए प्रति वयस्क व्यक्ति १.२ औंस के हिसाब से ६० लाख टन मछली की ज़रूरत है। इस प्रकार १५ लाख टन का लक्ष्य प्राप्त होने पर भी असली लक्ष्य बहुत दूर रह जाता है। इस से यह ज्ञात होता है कि आगे कितनी खाईं भरनी है।

—:o:—

अध्याय २४

गांव के धन्धे

बड़े पैमाने पर उद्योग-धन्धों की वृद्धि के कारण गांव में उत्पन्न बहुत सी उपजों की मांग घट गई है, जिसका नतीजा यह है कि गांव के बहुत से कारीगरों की श्रेणियां अपने परम्परागत कामों की दृष्टि से आंशिक रूप से बेकार हो गई हैं। केवल इतना ही नहीं, अब ये लोग खेती में काम करने वालों की भीड़ को बढ़ा रहे हैं। इस बीच में देहाती क्षेत्र से बाहर आर्थिक प्रगति इतनी अधिक नहीं हुई है कि इस प्रकार जमीन पर जो दबाव बढ़ रहा है, उसकी रोकथाम की जा सके। इसलिये देहाती इलाकों के विकास के किसी भी कार्यक्रम में गांव के धन्धों के विकास को एक केन्द्रीय स्थान अवश्य देना होगा।

संगठन

२. भूतकाल में हमारे गांव हद तक आत्मभरित इकाई के रूप में थे। एक छोटे से मंडल के अन्दर वस्तुओं और सेवाओं का पारस्परिक नियमित आदान-प्रदान होता था, और इस मंडल के लोग एक बडी हद तक एक दूसरे पर निर्भर होते थे। आज भी यदि गांवों के धन्धों का पुनरुद्धार किया जाय, तो वह अनिवार्य रूप से सबसे पहले स्थानीय मांग पर तथा एक छोटे से दायरे में पारस्परिक विनिमय के विकास पर निर्भर होंगे। पर गांव के संगठन को बदली हुई परिस्थिति के अनुसार बदलना पडेगा। अब यह एक शिथिल ढांचे के रूप में, जिसमें लोग एक दूसरे से अलग काम करते हैं, काम नहीं कर सकता। इस के विपरीत इसे बँधी हुई इकाई के रूप में काम करना पड़ेगा, और सरकार से सहायता लेकर इसमें इतनी सामर्थ्य होनी चाहिये कि वह सब देहात के मजदूरों को, चाहे वे किसान, खेतिहर मजदूर या कारीगर हों, काम देने मे समर्थ हों। इसलिये अब गांव के धंधे संगठित समुदाय के रूप में काम करने वाले ग्राम समाज के अंग होंगे कम से कम हमारे सामने अन्तिम उद्देश्य यही है, पर इस बीच में कारीगरों की सहकारी समितियों के बनने से कुछ न कुछ उपयोगी संगठन प्राप्त होगा।

३. इस प्रकार गांव का संगठन तो आधार होगा, पर केन्द्र में भी एक संगठन ऐसा होना चाहिये जो गांव के धंधों की समस्याओं का अध्ययन करे, राज्य सरकारों के लिये अनुकूल परिस्थितियों, रचनात्मक संगठनों तथा सहकारी समितियों की सृष्टि करे ताकि कुटीर उद्योगों का विकास हो सके। इस लिये यह प्रस्ताव रखा जा रहा है कि एक खादी और ग्रामोद्योग बोर्ड स्थापित किया जाय। यह बोर्ड सरकार के विभागीय यन्त्र के बाहर होगा और इसमें खादी, और गांव के धन्धे के क्षेत्रों के तजरबेकार कार्यकर्ता होंगे और केन्द्रीय सरकार के कुछ प्रतिनिधि भी होंगे। यह बोर्ड खादी और गांव के धन्धों के विकास के सम्बन्ध में कार्यक्रम बनाने के अतिरिक्त इन बातों की व्यवस्था करेगा जैसे कार्यकर्ताओं का प्रशिक्षण, जरूरी चीजों तथा यन्त्रों का उत्पादन तथा पूर्ति, कच्चे मालों की पूर्ति, बिक्री, शोध इत्यादि। बोर्ड का एक कार्य यह भी होगा कि कुटीर उद्योगों की प्रगति के सम्बन्ध में जो सूचनाएँ और तजर्बे प्राप्त होंगे, उन्हें वह प्राप्त और प्रसारित करेगा। जो राज्य केन्द्रीय संगठन के साथ घनिष्ट सहयोग से काम करेंगे, उनके लिये भी ऐसे संगठनों की जरूरत होगी।

राज्य की नीति

४. हमारी नीति का एक प्रधान लक्ष्य यह होगा कि प्रत्येक कुटीर उद्योग के लिये एक ऐसे क्षेत्र की व्यवस्था की जाय जिसमें वह संगठित रूप से कार्य कर सके। जब भी एक बडे पैमाने पर चलने वाला धन्धा कुटीर उद्योग से होड करेगा उस समय दोनों के लिये एक सामान्य उत्पादन सम्बन्धी कार्यक्रम इस प्रकार से चलना चाहिये कि दोनों धीरे-धीरे घनिष्ट रूप से एक दूसरे के अंग हो जायं। मांग और पूर्ति की परिस्थितियों के सम्बन्ध मे निर्णय करने के अतिरिक्त इन कार्यक्रमों में ऐसी बाते आ सकती हैं, जैसे उत्पादन के क्षेत्रों को रिजर्व करना, बडे पैमाने के धन्धे के विस्तार पर रोक लगाना, बड़े पैमाने के धन्धे पर एक कर लगाना, कच्चे मालो की पूर्ति के लिये व्यवस्था करना तथा शोध और प्रशिक्षण मे आदान प्रदान और सहयोग स्थापित करना।

५. संगठित वस्त्र धन्धा तथा करघे के बुनकरो के बीच छोटे पैमाने पर अपने अपने क्षेत्र को रिजर्व कर देने का प्रयत्न पहले ही किया जा चुका है। इसी सिद्धांत को कई दूसरे धन्धों मे प्रसारित किया जा सकता है। उदाहरण-स्वरूप तेल के उत्पादन में खाने में काम आने वाले तेल कुटीर शिल्प में

उत्पादित हो सकते हैं, और इसी प्रकार अखाद्य तेल, तेल की मिलों में उत्पादित हो सकते हैं। प्रक्रियात्मक (प्रोसेसिंग) धन्धों के क्षेत्र मे बड़े पैमाने पर उद्योग-धंधे के विस्तार को आगे मना कर दिया जाय। हां, यदि सरकार या सहकारी संगठन एक इकाई स्थापित करना चाहें, तो बात दूसरी है।

६. बड़े पैमाने के उद्योग-धन्धे पर एक कर लगाने का उद्देश्य यह है कि उससे मिले जुले कुटीर शिल्प को लाभ पहुँचाया जाय। एक सामान्य उत्पादन कार्यक्रम में यदि कुटीर शिल्प में उन्नति कुल मिला कर सारे धंधे के हित में है, तो उस धंधे के संगठित अंगों को चाहिये कि वे इस प्रकार का कर लेकर कमजोर तथा असंठित हिस्सों में प्रौद्योगिक उन्नति और संगठन को आगे बढावें। इस प्रकार से मिल के बने कपड़ों पर कर लगाने का उद्देश्य यह होगा कि खादी और करघे के धंधे को विकसित करने के लिये एक कोष एकत्र किया जाय। इसी प्रकार के कारणों से मिल के तेल पर एक बहुत मामूली सा कर इस उद्देश्य से लगाया जा सकता है कि देहाती इलाकों में होने वाले तेल के धंधे को लाभ पहुँचाया जाय।

शोध और प्रशिक्षण

७. यह तो बहुत जरूरी है कि देहाती धंधों को राज्य सरकार से प्रोत्साहन तथा सहायता मिले, पर इसका बहुत ही कम समय के लिये मूल्य हो सकता है जब तक कि इसके साथ ही इस बीच मे उत्पादन की प्रौद्योगिक प्रणाली में तेजी से उन्नति नहीं होती है। इस लिये देहातों मे फैले हुए धंधों के सम्बन्ध में शोध और प्रशिक्षण को बहुत अधिक महत्व दिया जाना चाहिये। शोध के लिये एक केन्द्रीय संस्था की योजना को प्रस्तावित खादी और गांव के धन्धों का बोर्ड फौरन तैयार करे। देश मे अन्य संस्थाओं के साथ सम्पर्क रखने के साथ ही साथ इस संस्था का यह काम होगा कि वह अपनी समस्याओं को राष्ट्रीय प्रयोगशालाओं के सम्मुख पेश करे, और उससे जो परिणाम निकले उसकी सूचना छोटे शोध केन्द्रों तथा कारीगरो तक पहुँचावे। केन्द्रीय सरकार की योजना मे १५ करोड रुपया कुटीर और छोटे पैमाने के धंधों के लिये सुरक्षित रखा गया है, इसका एक हिस्सा इस उद्देश्य के लिये काम में लगाया जाय।

८. इस के अलावा गांव के कारीगरों को बड़े पैमाने पर पद्धतिगत प्रशिक्षण दिया जाय क्योंकि जो प्रदर्शन किये जाते हैं तथा भूमि पर शिक्षा

देने वाले दल भेजे जाते हैं, वे इस परिस्थिति में नहीं होते कि वे बराबर पथप्रदर्शन कर सकें या प्रशिक्षण दे देने के बाद उसके नतीजे का अनुसरण करते रह सकें। कुछ ऐसे केन्द्र खोले जाने चाहियें जिनमें प्रशिक्षण के साथ साथ उत्पादन हो, और जो प्रारंभिक वर्कशापों के रूप में हो जैसा कि उत्तर-प्रदेश में किया गया है, और उससे उपयोगी परिणाम निकल सकते हैं। ऐसे केन्द्रों में जो कारीगर प्रशिक्षित होते हैं वे अधिकतर योग्यता के साथ कार्य-क्षेत्र में उतर कर अपना सिर ऊँचा रख सकते हैं, और साधारण देहाती कारीगर की तुलना में अपने धंधे को अधिक विकसित कर सकते हैं।

वित्त

९. गांव के कारीगर मुख्यतः स्थानीय खपत के लिये उत्पादन करते हैं, और यदि वे गांव के बाहर के बाजार के लिये उत्पादन करते हैं, तो वे साधारणतः पूंजी के लिये बिचवैयों की शरण लेते हैं। देहाती धन्धों के लिये वित्त को खेती के लिये वित्त की समस्या से अविच्छेद्य समझना चाहिये। पर सरकार गांव के कारीगरों को किसी हद तक तभी सहायता देना शुरू कर सकती है जब कि औद्योगिक सहकारी समितियाँ स्थापित हो जांय। यदि आवश्यक संगठन हो जाय तो न केवल वित्तीय सहायता को प्रसारित करना सम्भव होगा, बल्कि नये विकास कार्यक्रमों को शुरू करना भी सम्भव होगा।

औद्योगिक कार्यक्रम

१०. योजना कमीशन ने कुछ देहाती धन्धों के लिये ५ साल के कार्यक्रम बनाये हैं, और यह प्रस्ताव किया जाता है कि बनने वाला खादी और गांव के धंधों का बोर्ड राज्य सरकारों के परामर्श से इन योजनाओं को पूरा करे। कार्यक्रम का खाका नीचे दिया जाता है:—

(क) तेल का धन्धा:—कोल्हुओं और तेल की मिलों के लिये उत्पादन का एक सामान्य कार्यक्रम बनाया जाय। घानी के उत्पादन को बढ़ाकर १० से १३·८ लाख टन बीज पेरना कर दिया जाय, जिससे वर्तमान समय में मिलों में जितनी पिराई होती है, उसमें से एक हिस्सा अन्यत्र चला जायगा, और उनकी जगह पर बिनौले का पेरना चलाया जाय। अकुशल कोल्हुओं की जगह पर अच्छी किस्मों के कोल्हू प्रचारित किये जायं। उन्नत

कोल्हुओं को बनाने और मरम्मत के लिये कारीगरों के प्रशिक्षण के लिये पांच क्षेत्रीय प्रशिक्षण केन्द्र तथा एक शोध और प्रशिक्षण संस्था की स्थापना का प्रस्ताव रक्खा जा रहा है।

(ख) नीम के तेल का साबुनः—योजना में यह लक्ष्य रखा गया है कि कई राज्यों में उत्पादन और प्रदर्शन केन्द्र स्थापित किये जांय, जहां साबुन बनाने के लिये नीम के तेल को काम में लाया जायगा। इसमे नीम सम्बन्धी ११ इकाइयों की व्यवस्था है जिनमे से प्रत्येक सालाना १२६० मन नीम तेल तैयार करे, और इसे सालाना ७८ टन साबुन के उत्पादन के लिये काम में लावे।

(ग) धान की भूसी निकालनाः—हाथ से धान की भूसी निकालना गांव का बहुत महत्वपूर्ण धंधा है, और आज भी करीब ६५ फी सदी धान की भूसी इसी प्रकार निकाली जाती है। हमारे सामने लक्ष्य यह है कि हाथ से भूसी निकालने की पद्धति को उन्नत किया जाय जिससे कि अधिक विशुद्ध चावल और भूसी मिले, और वर्तमान पद्धति को हटा कर पत्थर की चक्कियों का इस संबंध में उपयोग किया जाय। चावल कूटने के इलाकों में ४ साल के लिये कोई ५० हजार चक्कियों के वितरण को आर्थिक सहायता दी जायगी। हलर किस्म की चावल-मिलों को धीरे धीरे हटा दिया जायगा।

(घ) ताड़ का गुड़ः—यह अनुमान किया गया है कि ताड के गुड़ का उत्पादन ८० हजार टन बढ़ाया जा सकता है, जिससे कि गुड़ निकालने वालों तथा उनको सहायता देने वालों के रूप में ६० हजार मजदूरों को काम मिल सकेगा। इसके अंतर्गत भी प्रशिक्षण और शोध की योजना रखी गई है।

(च) गुड़ और खांडः—अधिक रस प्राप्त करने के लिये उन्नत ढंग के एक लाख रस पेरने वाले कोल्हू लगाये जायेंगे।

(छ) चमडाः—इस कार्यक्रम में देहातों में चमड़े का काम करने वाले मजदूरों के लिये सहकारी समितियों के संगठन का तथा नगर-पालिका और आस पास के देहाती क्षेत्रों में चमड़ा निकालने के

उन्नत तरीके और चमड़े के सम्बन्ध में अन्य प्रशिक्षण दिया जायगा।

(ज) कम्बल:—यह प्रस्ताव किया गया है कि प्रतिरक्षा सेवाओं के लिये आवश्यक कम्बलों के उत्पादनों के लिये कम्बल का सूत तैयार करने और बुनने के ४ केन्द्र स्थापित किये जांय। यह प्रस्ताव है कि शक्ति परिचालित यन्त्र से ऊन बुनने और साफ करने का काम लिया जाय, पर सूत की कताई और बुनाई हाथ से की जाय।

(झ) हाथ का बना कागज:—इस समय मौजूद ११ केन्द्रों को सामान, प्रशिक्षण तथा शोध के सम्बन्ध में सहायता दी जाय जिससे वे उन्नत किस्म के हाथ के बने कागज का उत्पादन कर सकें, जो इस समय बाहर से आते हैं।

(ट) मधुमक्खी पालन:—कुछ राज्यों के चुने हुए क्षेत्रों में मधुमक्खी पालन को विकसित किया जाय। प्रत्येक क्षेत्र में एक उपकेन्द्र होगा, जो २० से लेकर ३० गांवों तक की सेवा कर सकेगा। मधुमक्खी के छत्ते तथा अन्य सामग्री सरकारी सहायता प्राप्त दर में दी जायेगी और मधुमक्खी पालकों की सहकारी समितियां शहद इकट्ठा करने तथा उसकी बिक्री करने के लिये बनाई जाएंगी।

(ठ) दियासलाई का धन्धा:—योजना का लक्ष्य यह है कि कुटीर शिल्प के रूप में उत्पादित दियासलाई को ६ लाख ग्रौस से बढ़ा कर चार साल के अन्त तक १८ लाख ग्रौस कर दिया जाय, और ऐसा प्रशिक्षण तथा कुछ रियायतें देकर किया जाय।

(ड) खादी:—कुछ अस्थायी प्रस्ताव किये गये हैं, पर उन पर विचार प्रस्तावित खादी और गांव के धन्धों का बोर्ड करेगा।

(ढ) नारियल की जटा का धन्धा:—यह धन्धा बहुत ही बुरी हालत में है और सहकारी समितियों के रूप में इसका संगठन होना चाहिये। त्रावन्कोर कोचीन सरकार ने इस सम्बन्ध में एक कार्य-क्रम बनाया है।

यह प्रस्ताव किया जाता है कि गांव का तेल सम्बन्धी धन्धा तथा नीम तेल से साबुन बनाने का धंधा सहायता की अपेक्षा करता है और इन्हें कर लगा कर सहायता पहुँचानी चाहिये और योजना में जो १५ करोड़ रुपया इस कार्य के लिये रखा गया है उससे बाकी सहायता प्राप्त होनी चाहिये।

अध्याय २५

छोटे धन्धे और दस्तकारियां

इससे पहले के अध्याय में उन सारे छोटे धन्धों की समस्याओं पर विचार विचार किया गया है जो गाँव की आर्थिक व्यवस्था के महत्वपूर्ण अङ्ग हैं । इस अध्याय में उन छोटे धन्धो पर विचार किया जायगा जिन्हें दो भागों में बाँटा जा सकता है, एक तो वे जो परम्परागत हुनर और शिल्प से सम्बद्ध हैं और दूसरे वे जो तुलनात्मक रूप से आधुनिक काल में उत्पन्न हुए हैं और जिनका उसी ढंग के बड़े पैमाने पर चलाने वाले धन्धों से घनिष्ट सम्बन्ध है ।

२ सार्वजनिक सेवा तथा बडे पैमाने पर चलाए जाने वाले धन्धों में नियुक्तियों की संख्या सीमित होने के कारण छोटे धन्धों मे ऐसे लोगों के लिये नियुक्ति का बहुत आशाप्रद मौका है, जिनको कोई प्रशिक्षण और शिक्षा प्राप्त हुई है । इसके अलावा छोटे धन्धों और दस्तकारियों में घर में ही रहते हुए स्त्रियों के लिये काम मिलने की अधिक संभावना है। इस नाते उनका महत्व बहुत है । महायुद्ध के युग में सारे देश में प्रतिरक्षा की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये छोटे धन्धे उत्पन्न हो गये। यद्यपि तब से इन में से कई धन्धे लुप्त हो चुके हैं, फिर भी अब यह जो तजुर्बा हो रहा है कि इन युद्धकालीन धन्धों से उत्पन्न कई चीजें बाहर से आने लगी हैं, इससे यह साफ हो जाता है कि इस क्षेत्र में विस्तार की गुंजाइश है । अब तक विकास तथा उन्नति के कोई सुचिन्तित कार्यक्रम नहीं रहे हैं और गत दो दशकों में छोटे धन्धों की जो कुछ उन्नति हुई है, वह बहुत कुछ योजना हीन प्रक्रिया से ही हुई है और उसमें वे उपादान अनुपस्थित रहे जिनसे कार्यकुशलता और स्थायित्व आता है । छोटे धन्धों का योजनात्मक विकास एक बहुत बड़ा और महत्वपूर्ण काम है, पर केन्द्रीय सरकार ने अभी इसको अपने हाथ में लिया है और एक प्रथम कदम के रूप में कुछ चुने हुए धन्धों के सम्बन्ध मे, जैसे ऊनी वस्त्र, खेलकूद के सामान, खेती के औजार, पीतल के बर्तन, कांसा और साइकिल के हिस्सो के सम्बन्ध में एक कार्यक्रम सम्बन्धित राज्यों की सलाह से तैयार किया जा रहा है ।

केन्द्रीय सरकार की योजना में पन्द्रह करोड़ रुपयों की व्यवस्था इस लिये है कि स्वीकृत कार्यक्रमों के लिये पूंजी दी जाय और राज्यों को इस सम्बन्ध में यथेष्ट सहायता पहुँचाई जाय।

३. छोटे धन्धों को तीन किस्मों में बाँटा जा सकता है :—(१) वे धन्धे जिनमें छोटे पैमाने पर उत्पादन को कुछ सुविधायें प्राप्त हैं और उस क्षेत्र मे बडे पैमाने पर उत्पादन के प्रवर्तन से उन्हे कोई विशेष हानि नहीं पहुँचती। (२) वे धन्धे जिनमें छोटे पैमाने पर उत्पादन का काम इतना ही है कि बडे पैमाने पर उत्पादित किसी द्रव्य का कोई हिस्सा किसी सोपान में उसके द्वारा उत्पादित होता है और (३) वे धन्धे जिनमे छोटे पैमाने पर चलाये हुये धन्धें को उसी द्रव्य सम्बन्धी बड़े पैमाने के धन्धे से होड़ लेनी पडती है।

४. प्रथम श्रेणी के धन्धों में इन चीजों के उत्पादन का नाम लिया जा सकता है: ताले, मोमबत्तियां, बटन, चप्पल और बैजें। ये धन्धे व्यक्ति को आधार बना कर चलाये तो जा सकते हैं पर उन्हें इस उद्देश्य से समूह के आधार पर संगठित करना चाहिये कि बिक्री तथा चीजों को बाजार में ले जाना और साथ ही उत्पादन के कार्य में पूंजी प्राप्त होना सरल हो जाय।

५. द्वितीय श्रेणी के छोटे धन्धों मे साइकिल के हिस्से, बिजली सम्बन्धी सामान, छुरी-काटे, चीनी के बर्तन और खेती के औजारों का उत्पादन बहुत महत्वपूर्ण उदाहरण हैं। महायुद्ध के जमाने में इन्जीनियरिंग की छोटी इकाइयों ने बहुत अधिक प्रगति की, पर बाद को उनमें से बहुत से धन्धो को लोहा और इस्पात की कमी के कारण बहुत हानि पहुँची। कच्चा लोहा, और इस्पात की अधिकतर पूर्ति होने पर जैसा कि पंचवर्षीय योजना मे होने की व्यवस्था रखी गई है, यह निःसंदेह है कि इन धन्धों का पुनर्जीवन और विस्तार होगा। फिर भी यह विकास तभी संभव होगा जब कि कुल मिलाकर एक खास धन्धे के लिये एक कार्यक्षेत्र रिजर्व कर दिया जाय और उसे पूंजी, संगठन और प्रशिक्षण की काफी सहायता केन्द्रीय तथा राज्य सरकारों की ओर से दी जाय।

६. तीसरी श्रेणी के धन्धों मे जिनकी उसी क्षेत्र के बड़े पैमाने के धन्धे से जबरदस्त होड होती है, सब से ज्वलन्त उदाहरण कर्घा उद्योग का

है। केन्द्रीय सरकार ने एक कमेटी नियुक्त की है और वह इस धन्धे को संरक्षण देने की सारी बात पर विचार कर रही है और इस बीच में इस धन्धे को सहायता पहुँचाने की दृष्टि से करघे के बुनकारों के लिये उत्पादनों की कुछ खास श्रेणियां बिल्कुल रिजर्व कर दी गई हैं। फिर भी यह बहुत जरूरी है कि दूसरी और तृतीय श्रेणी के धन्धों के लिये केन्द्रीय सरकार जल्दी से जल्दी इस बात पर विचार करे कि विभिन्न धन्धों के क्षेत्र में सामान्य उत्पादन कार्यक्रम के सिद्धान्त को कहां तक और कैसे लागू किया जाय। यह तो साफ है कि प्रत्येक धन्धे के अनुसार कार्यक्रम का ढंग भी दूसरा होगा। कुछ क्षेत्रों में बहुत जरूरी बातें यह होंगी कि कच्चे माल की पूर्ति का अवश्य प्रबन्ध हो, उत्पादन का एक क्षेत्र निर्दिष्ट हो और शायद बड़े पैमाने के धन्धे पर एक बहुत मामूली कर लगाया जाय। दूसरे क्षेत्रों में एक सुसम्पूर्ण कार्यक्रम बनाया जाय जिसमें बड़ी और छोटी इकाइयों को सुलझा कर एक दूसरे की पूरक बना दिया जाय।

७. छोटे पैमाने के धन्धों के उत्पादन की मांग को योजनात्मक रूप से इस प्रकार विकसित किया जा सकता है कि एक तो उन्हीं से स्टोर खरीदे जांय, दूसरे आयात की स्थान-पूर्ति की जाय। जहां तक पहले उपाय का सम्बन्ध है, यह निर्णय किया जा चुका है कि जहां गुण, माल पहुँचाने की तारीख आदि के आधार पर बातों की तुलना की जा सकती है, वहां कुटीर शिल्प तथा छोटे धन्धे के उद्योगों को तरजीह दी जाय और इसके अलावा कुटीर शिल्प तथा छोटे धन्धे के उत्पादन को उस हालत में भी तरजीह दी जाय जबकि सहकारी समिति के जरिये से या केन्द्रीय सरकार द्वारा स्वीकृत किसी एजेन्सी की मार्फत उनकी बिक्री होती हो। इससे सहकारी संगठनों की वृद्धि को प्रोत्साहन मिलेगा। जो कुछ भी हो, कुटीर शिल्प के उत्पादन को उस हालत में भी तरजीह दी जाय जब कि वे बिचवैयों के जरिये से बाजार में आती हैं, बशर्ते कि वह उस्ताद बुनकर या उस्ताद मोची को परम्परागत काम देने वाला है। सब राज्यों में इसी नीति को एकरूपता के साथ प्रयोग में लाया जाय।

८. आयात से आये हुये द्रव्यों का कुटीर शिल्प तथा छोटे पैमाने के धन्धों के उत्पादन द्वारा कहां तक स्थानान्तरण किया जा सकता है, इस संबंध में एक प्राथमिक अध्ययन किया गया है पर ऐसा मालूम होता है कि विभिन्न व्यवसायों में लगे हुये प्रौद्योगिक विशेषज्ञों तथा व्यापारियों के समूहों के

द्वारा इस विषय की अच्छी तरह जांच कराई जानी चाहिये। फौरन ही इस परीक्षण को हाथ में लेना चाहिये। छोटे पैमाने के उत्पादन को नये शहरों में प्रसारित करने तथा जहां वे मौजूद हैं उनमें विस्तार करने के लिये कदम उठाये जाने चाहिये। सच्ची बात तो यह है कि सामूहिक विकास योजनाओं में से कुछ के कार्यक्रम में ऐसा करना आ जाता है।

प्रशिक्षण और शोध

९. पंचवर्षीय योजना में प्रशिक्षण के प्रश्न को बहुत काफी महत्व दिया गया है। पुनर्वास तथा कामदिलाऊ विभाग के डाइरेक्टर जनरल ने १४,४,००० लोगों को प्रशिक्षित किया है। इसी प्रकार पुनर्वास मन्त्रालय ने पश्चिमी पाकिस्तान से आये हुये ५२,००० लोगों को और पूर्वी पाकिस्तान से आये हुए ८,००० लोगों को प्रशिक्षित किया है। इस समय १२,००० लोग प्रशिक्षण पा रहे हैं। शिक्षा के केन्द्रीय मंत्रालय ने भी औद्योगिक संस्थाओं को उच्च प्रशिक्षण के लिये सहायता दी है। राज्य सरकार की योजनाओं में प्रशिक्षण के ये कार्यक्रम आ जाते हैं:—

	१९५०-५१	१९५५-५६
औद्योगिक विद्यालयों की संख्या	३६५	४५६
प्रशिक्षित छात्रों की संख्या	१४,७५०	२१,७९७
प्रौद्योगिक और धन्धों सम्बन्धी संस्थाओं की संख्या	२६०	४०७
प्रशिक्षित व्यक्तियों की संख्या	२६,७०२	४२,९९७

प्रशिक्षण का रुख उन व्यवसायों की तरफ होना चाहिये जिनमे स्थायी काम की आशायें उचित रूप से निश्चित मानी जायें।

१०. आधुनिक ढंग के छोटे धन्धों की प्रौद्योगिक उन्नति के लिये यह सुझाव रखा जा रहा है कि राज्य सरकारों के साथ मिलकर केन्द्रीय सरकार बड़े धन्धों के साथ सम्बन्धित शोध संस्थाओं में छोटे धन्धों के लिये विशेष विशेष शोध विभागों के खोलने की व्यवस्था करे।

वित्त

११. इन विकास कार्यक्रमों के लिए पूंजी की व्यवस्था करने के लिये,

यह जरूरी है कि औद्योगिक वित्त कारपोरेशन स्थापित किये जांय। यह सम्भव है कि कुछ राज्य अपने उद्योग-धन्धों की अविकसित हालत के कारण इस सम्बन्ध मे साधन प्राप्त करके आवश्यकता की पूर्ति न कर सकें। ऐसे क्षेत्रों के मामले में क्षेत्रीय वित्त कारपोरेशनों के संगठन की स्थापना पर विचार करना चाहिये।

दस्तकारियां

१२. दस्तकारियों की मुख्य विशेषताओं में एक यह है कि हुनरमन्द शिल्प से काम लिया जाय। दस्तकार साधारण तौर पर बिचवैयों के हाथ में शिकार के रूप में होते हैं जो छोटे पैमाने पर काम करते हैं और जैसा आर्डर मिलता है उसी के अनुसार काम करते हैं। वे अपनी पूंजी की व्यवस्था आप कर लेते हैं और कारीगरों, चालान करने वालों तथा विदेशी खरीदारों के बीच एक कड़ी सी बन जाते हैं। कुछ ऐसे उदाहरण हैं जिनमें बिचवैयों की कोशिश पर उन्नति हुई है, पर अधिकांश रूप में देखा जाय तो दस्तकारियों का वर्तमान संगठन कार्यकुशलता, चीज़ के गुण की उन्नति या उत्पादन में वृद्धि के लिये उपयोगी साबित नहीं हुआ है। इसके साथ ही ये बिचवैये समुचित रूप से इस बात का भी पता नहीं लगा पाते कि विदेशी बाजारों की जरूरतें क्या हैं। नतीजा यह है कि कुछ अपवादों के अतिरिक्त दस्तकारियां अपने तरीकों और दृष्टिकोण में बिल्कुल जहां की तहां पड़ी हुई हैं।

१३. दस्तकारियों की अधिकांश मांग विदेशों से आती है। बात यह है कि घरेलू मांग इस लिये सीमित है कि यहां के लोगों की क्रय शक्ति बहुत कम है। उत्पादन को बढाने के उपायों में तथा मांग की वृद्धि करने के उपायों में अंतरंग सम्बन्ध होना चाहिये। इस प्रकार से उदाहरणस्वरूप बनारस, मुरादाबाद, जयपुर और तंजौर के पीतल के बर्तनों के लिये मांग बढ़ाई जा सकती है बशर्ते कि खरीदने वालों की जरूरत के अनुसार अधिक उपयोगी चीजें बनाई जांय। इसी प्रकार से बनारस में तैयार जरी, जरी के काम की साड़ियों तथा अन्य वस्तुओं की मांग बहुत अधिक बढ़ाई जा सकती है बशर्ते कि विदेशी खरीदारों की रुचि और जरूरतों का ध्यान के साथ अध्ययन किया जाय। नारियल के जटा के धंधे मे वर्तमान समय में जो मन्दी आई हुई है, वह आंशिक रूप से विनिमय पर रोक के कारण है, पर साथ ही इसका कारण यह हो सकता है कि उत्पादन के गुण में कमी हुई है, उपयुक्त संगठन का अभाव है और बाजार देखकर उत्पादन करने

में असमर्थता पाई गई है। अमरीका जैसे देशों में भारतीय दस्तकारियों के लिये मांग बहुत अधिक बढाई जा सकती है यदि हमारे यहां के लोग चीज देते समय उसी दर्जे को कायम रखें, जैसा कि वह नमूना भेजते समय दिखाते हैं और साथ ही यदि बहुत अधिक माल एक साथ दिया जा सके। वर्तमान समय में बिचवैये इस हालत में नहीं हैं कि वे बहुत सीमित परिमाण में माल को पूंजी देकर आगे बढावें।

१४. यदि जहां-तहां दस्तकारियों के भंडार स्थापित किये जांय, तो दस्तकारियों की उपज की उन्नति में बहुत अधिक लाभ पहुंच सकता है, विशेषकर यदि यह भंडार बिक्री करने तक ही अपनी गति-विधि को सीमित न रखें बल्कि कारीगरों को यह भी बताते रहे कि किन चीजों की नई मांग हो रही है और किस प्रकार के नमूने मांगे जा रहे हैं। यदि उपभोक्ताओ की सहकारी समितियों का उत्पादकों की सहकारी समितियों के साथ घनिष्ट सम्पर्क रहे तो भीतर की मांग बहुत स्थायी रूप से बढ़ाई जा सकती है। इसी प्रकार से केन्द्रीय या राज्य सरकारों को भारत के उत्पादक और बाहर के बड़े क्रेताओं के साथ सम्पर्क कायम रखना चाहिए।

१५. यदि कारीगर बिचवैयों पर कम निर्भर रहे और उसे औद्योगिक ज्ञान तथा प्रदर्शन दिया जाय तो सहकारी समितियो को संगठित करना पड़ेगा और दस्तकारियों के केन्द्र में संस्थाएं बनानी पडेंगी जिनमे सहकारी समितियों के साथ साथ छिटपुट व्यक्ति भी सदस्य के रूप मे काम कर सकेंगे। किस श्रेणी का माल बनाया जाय, यह बताना पडेगा और उत्पादन की प्रत्येक महत्वपूर्ण दिशा में इसे लागू भी करना पडेगा। चीजों के नक्शो और कच्चे मालों के सम्बन्ध मे अध्ययन संगठित करना पडेगा और इस बात की व्यवस्था करनी पडेगी कि ऐसी औद्योगिक समस्याओं का पता लगाया जाय जिनके कारण कारीगर के काम में बाधा पहुंच रही है और जहां तक संभव है उन्हे सुलझाना पडेगा। केन्द्रीय सरकार को चाहिये कि दस्तकारियों में शोध के लिये एक पृथक संस्था कायम करे और वही संस्था तरह तरह के नमूनों और नक्शों को तैयार करे तथा उनका अध्ययन करे। ऐसी संस्थाएं कला और शिल्प विद्यालयों, जैसे शान्ति निकेतन की तरह संस्थाओं तथा राज्य के उद्योग विभागों के साथ सहयोग करके काम कर सकती हैं।

—:०ॐ०:—

अध्याय २६

सिंचाई और बिजली

जल सम्बन्धी साधनों का अन्दाजा

भारत में नदियों का राष्ट्रीय जीवन पर बहुत जबरदस्त प्रभाव रहा है। यहां की प्राचीनतम सभ्यताएं सिन्धु, गंगा तथा उनमें जाकर मिलने वाली नदियों के किनारों पर पनपी हैं। दक्खिन में बहुत अधिक लोग अपने अस्तित्व के लिये नदियों पर निर्भर हैं। देश के अधिकांश भागों में नदी के जल के बिना सफल खेती सम्भव नहीं है। इस प्रकार से भूमि और जल के साधनों का एकांगी भाव से संयुक्त विकास-क्रम देश की आर्थिक व्यवस्था के लिये बहुत भारी महत्व रखता है।

२. सिंचाई या अनाज उत्पन्न करने के लिये जल का कृत्रिम रूप से प्रयोग भारत में बहुत पुरानी कला है। बहुत से भागों में यह कला उतनी ही पुरानी है जितनी कि खेती है। दक्षिण में बहुत से जलाशय युगों से मौजूद हैं। कावेरी नदी के द्वीपों की नहरें दूसरी शताब्दि से शुरू होती हैं और यमुना की नहरें पहले पहल १४वीं सदी में बनाई गईं। कुछ विशेष अनुकूल अवस्थाओं में नदी के पानी से बहुत सस्ती बिजली या तो प्रत्यक्ष रूप से या पन-बिजली के उत्पादन से उत्पन्न हो सकती है। भारत में जहां कि बहुत कम तेल है और कोयले की खानें देश के कुछ हिस्सों में ही फैली हुई हैं, जल विद्युतिक शक्ति को स्वभावतः विकास में बहुत बड़ा भाग प्राप्त हो जाता है। नदियों के अतिरिक्त जमीन के नीचे जो पानी है उससे भी घरेलू तथा खेती सम्बन्धी कार्यों के लिये अच्छा काम लिया जा सकता है। जमीन के नीचे के पानी तथा नदी के जल के उपयोग के कार्यक्रमों को एक साथ गूंथ कर काम करना चाहिये।

जल के मौजूदा साधन

३. भारत की नदियों को मोटे तौर पर दो हिस्सों में बांटा जा सकता है—(१) उत्तर भारत की वे नदियां जो बर्फ से निकलती हैं, (२) मध्य तथा दक्षिण भारत की नदियां। हिमालय से उत्तर में सिन्धु, गंगा और ब्रह्मपुत्र निकलती हैं। मध्य तथा दक्षिण भारत की मुख्य नदियां हैं महानदी, गोदावरी, कृष्णा और कावेरी जो बंगाल की खाड़ी में पूर्व की ओर बहती

हैं। इसके अलावा नर्बदा और ताप्ती भी हैं जो पश्चिम की ओर अरब समुद्र में बहती हैं। चम्बल, बेतवा और सोन इस प्रायद्वीप के उत्तरी किनारे में बह कर गंगा नदी की पद्धति में समा जाती हैं।

४. उत्तर भारत की नदियां बर्फ से निकलती हैं और पूरे साल भर बहती रहती हैं, यद्यपि जाड़ों में जल की उतनी प्रचुरता नहीं रहती। मध्य और दक्षिण भारत की नदियां सम्पूर्ण रूप से वर्षा पर निर्भर हैं जिसका नतीजा यह होता है कि सूखे मौसम में वे कभी कभी एक धुंधली रेखा के रूप में रह जाती हैं। यह अन्दाज लगाया गया है कि सारी नदियों में जितना पानी बहता है वह १ अरब ३५ करोड़ ६० लाख एकड़ फुट है जिसमें से ७ करोड़ ६० लाख एकड़ फुट या ५.६ फी सदी इस समय आबपाशी या सिंचाई के काम में आता है। नीचे यह दिखलाया जा रहा है कि किस नदी घाटी में जल का कितना साधन काम में लाया जाता है:—

नदी क्षेत्र	जल के सालाना बहाव का अन्दाजा	वर्तमान समय में कितना जल उपयोग में आता है	प्रस्तावित कार्यक्रम	कितने जल का उपयोग किया जायगा
१. सिंधु नदी	भारत और पाकिस्तान में कुल मिला कर १७ करोड़ एकड़ फुट	करीब ८० लाख एकड़ फुट	भाखरा-नांगल योजना	८० लाख एकड़ फुट
२. गंगा नदी	४० करोड़ एकड़ फुट	बहुत कम जल का उपयोग मुख्यतः गंगा, यमुना और शारदा नदियों की नहरों के जरिये से हो रहा है।	दामोदर घाटी योजना	२७ लाख एकड़ फुट
३. ब्रह्मपुत्र	३० करोड एकड़ फुट	इतना कम कि उल्लेख योग्य नहीं; आम तौर पर आबपाशी अनावश्यक है क्योंकि आसाम में बहुत अधिक पानी बरसता है।		

४. गोदावरी	८ करोड़ ४० लाख एकड़ फुट	करीब १४ फी सदी		
५. महानदी	७ करोड़ ४० लाख एकड़ फुट	मुहाने के द्वीपों के इलाकों में बहुत थोड़ा पानी काम में लाया जाता है।	हीराकुड योजना	करीब १ करोड़ १० लाख एकड़ फुट
६. कृष्णा	५ करोड़ एकड़ फुट	करीब १८ फी सदी	तुंगभद्रा योजना	६० लाख एकड़ फुट
७. कावेरी	१ करोड़ २० लाख एकड़ फुट	करीब ६० फी सदी		
८. नर्वदा	३ करोड़ २० लाख एकड़ फुट			
९. ताप्ती	१ करोड़ ७० लाख एकड़ फुट		काकरापर योजना	

५. अनगिनत नदियां तथा छोटी नदियां आदि हैं जिनमें वर्षा ऋतु में जब तब पानी मिल जाता है। इनमें से बहुतों में छोटे मोटे आवपाशी के जलाशय बनाये गये हैं, फिर भी बहुत से नये जलाशयों के बनाने की गुंजाइश है। जमीन के नीचे के सोतों से खेती, उद्योग-धन्धा तथा घरेलू जरूरतों के लिये यत्रतत्र काफी जल की पूर्ति हो जाती है। घरेलू जल के लिये देश में सर्वत्र कुयें बनाये गये हैं और इनका उपयोग आवपाशी के लिये भी होता है। यह कोई आज की बात नहीं बल्कि बहुत प्राचीन काल से हो रहा है,पर इस जरिये से बड़े पैमाने पर आवपाशी तभी हो सकती है जब कि बिजली के पम्पों से नलकूप चलाये जांय। इस समय जो सूचनायें प्राप्त हैं उनसे यह ज्ञात होता है कि यदि इस सम्बन्ध में बड़े पैमाने पर आवपाशी की गई, तो वह उत्तर प्रदेश, बिहार, पंजाब, राजस्थान और गुजरात में ही आर्थिक रूप से सफल हो सकती है।

आवपाशी के लिये जल के साधन

६. आवपाशी के लिये जल के साधन इस प्रकार हो सकते हैं—(१) प्रत्यक्ष रूप से, जैसे नदियों से नहरों में पानी बहा कर; (२) बाढ़ से जो पानी आता है या छोटे छोटे पनालों से होकर वर्षा का जो जल आता है, उसको जलाशय में एकत्र कर; (३) कूयें, पोखर तथा नलकूप लगा कर

नदियों में जो पानी बहता है उसका कुल हिस्सा न तो आबपाशी के लिये मिल ही सकता है और न उसकी आवश्यकता ही है। जिन इलाकों में अधिक पानी बरसता है, जैसे पश्चिमी तट या उत्तर पूर्व भारत, वहां या तो आबपाशी की बिल्कुल जरूरत ही नहीं है या बहुत कम जरूरत है। बाकी जगहों में वर्षा की ऋतु में जो विराट् जलराशि चलती है, उसे बडी हद तक काम में लगाना सम्भव नहीं क्योंकि न तो यह किसी प्रकार संभव है कि इतने बड़े पानी को कहीं अन्यत्र रखा जाय और इस में से थोडा पानी रखने के अतिरिक्त बाकी पानी को रखना आर्थिक रूप से सहायक भी नहीं कहा जा सकता। इस लिये बिल्कुल सही तौर पर यह नहीं कहा जा सकता कि नदी का कितना पानी यानी उसकी कितनी फी सदी आबपाशी के लिये उपयोग में आ सकती है। सम्भव है कि कुल १३५ करोड ६० लाख एकड़ फुट या सारे पानी का करीब एक तिहाई या ४५ करोड एकड फुट पानी उपयोगी तरीके से काम में लाया जा सकता है, जबकि इस समय ७ करोड़ ६० लाख एकड़ फुट ही काम में आ रहा है।

मौजूदा विकास

७. सौ साल पहले २० या ३० लाख एकड़ जमीन देशी आबपाशी के तरीकों से जैसे छोटे जलाशयों और बाढ़ के पानी की नहरों से तथा कोई ५० लाख एकड़ जमीन, जो मुख्यतः भारत के पश्चिमी भाग में थी, सींची जाती थी। जो पहला बड़ा आबपाशी सम्बन्धी संगठन या ढांचा बना, वह भारत के उत्तर प्रदेश में १८५४ में गंगा की नहर के रूप में खोला गया था। इस के बाद पंजाब में अपर बाड़ी दुआब और मद्रास में गोदावरी और कृष्णा के मुहानों के द्वीपों की पद्धतियों में आबपाशी का क्रम आरम्भ हुआ। इस शताब्दि के प्रारंभ के इर्द गिर्द आबपाशी के दूसरे कई प्रबन्ध तैयार किये गये, और इसके बाद प्रथम महायुद्ध के बाद इस काम को फिर उठाया गया।

८. हाल के वर्षों में बिजली से चलाये हुए नलकूपों के कारण बहुत विस्तृत पैमाने पर जमीन के नीचे के पानी को काम में लाने के तरीकों के परिवर्तन से एक नई पद्धति हमारे सामने आ गई है, और उत्तर प्रदेश में कोई दो हजार ऐसे नलकूप हैं जो राज्य सरकार के अधीन हैं। बिहार, पंजाब तथा दूसरे कुछ राज्यों ने इस प्रकार से जमीन के नीचे के पानी को काम में लगाने का कार्यक्रम जारी किया है। पर मोटे तौर पर देखने पर यह

कहा जा सकता है कि नलकूप के द्वारा आबपाशी साधारण नहरों से आबपाशी से अधिक खर्चीली है।

६. भारत में इस समय जितनी जमीन पर खेती हो रही है, उसका रकबा २७ करोड़ ७० लाख एकड़ के करीब है। सब तरीकों से जो कुल रकबा आबपाशी में आ जाता है, वह ५ करोड़ एकड़ वाले या खेती वाले इलाके की १८ फी सदी है। इस प्रकार बहुत बड़े क्षेत्र पड़े हुए हैं, जिनमें आबपाशी अभी होनी है। यदि आबपाशी के लिये अधिक सुविधायें मिलें तो बहुत से बड़े क्षेत्रों में, जो अब तक बन्जर पड़े हुए हैं, खेती हो सकती है, और उनका उत्पादक उपयोग भी हो सकता है। इसके अलावा दूसरे कई क्षेत्र ऐसे हैं जहां पर यदि आबपाशी हो तो वहां प्रति एकड़ उपज बहुत बढ सकती हैं, और कई जगहों में तो एक की जगह दो बार फसल हो सकती है। इसके अतिरिक्त जहां आबपाशी के लिये मौका है वहां किसान के मन में उन्नत खेती जैसे अच्छे बीज, खाद, फसलों का आवर्तन आदि करने के लिये उत्साह होता है क्योंकि उसे यह आशा होती है कि नतीजे अच्छे रहेंगे। आबपाशी के कारण खेत से अधिक उपज निकलेगी, किसानों के लिये नये काम मिलेंगे और इस नाते देश के बहुत बड़े हिस्सों मे इसके कारण खेती का सारा नकशा ही बदल जायगा। सच तो यह है कि यदि देश के जल सम्बन्धी साधनों का अधिक से अधिक सम्भव रूप से उपयोग किया जाय, तो भारत अपनी बढती हुई आबादी के लिये पुष्टि के क्रमोन्नतिशील मानदण्ड की व्यवस्था करने में समर्थ हो सकता है। जो कुछ भी हो, खाद्य समस्या का समाधान करने के लिये यह जरूरी होगा कि आगामी पन्द्रह बीस सालों में सिंचाई वाले क्षेत्र को दुगुना कर दिया जाय।

१०. नदियों का एक और महत्वपूर्ण उपयोग उन पर नावों तथा जहाजों का चलना है। एक समय उत्तर भारत की नदियां संचार का मुख्य साधन थीं। रेलों के बनने के साथ नदी के द्वारा चीजों का भेजा जाना तथा मनुष्यों का आना जाना घट गया और आज नदी पर यातायात आसाम, पश्चिमी बंगाल और बिहार तक सीमित है। इसके अतिरिक्त जलमार्ग भी धीरे धीरे बेकार हो गये हैं क्योंकि गर्मियों में नदियों का अधिकांश पानी आबपाशी के लिये खींच लिया जाता है। मध्य तथा दक्षिण भारत में देश के अन्दर का परिवहन कभी बहुत विस्तृत नहीं रहा है, इसका कारण यह है कि नदियों में जितना पानी होता है उसमें केवल बहुत छोटी नावें ही चल सकती हैं।

प्रति वर्ष देश भर में बाढ़ों से बहुत काफी हानि होती है। आसाम, बिहार, पश्चिमी बंगाल और उड़ीसा के हिस्सों में बहुत बड़े-बड़े बांध बनाये गये हैं। बाढ़ के पानी को रोक रखने के लिये बड़े बांधों का निर्माण बाढ़ से हानि को रोकने का सबसे अच्छा उपाय है।

जलमार्ग से चीजों को इधर से उधर ले जाना साधारण रूप से रेल से परिवहन के मुकाबले में सस्ता पड़ता है। इसके अतिरिक्त आपत्ति काल में देश के बचाव तथा सुरक्षा के लिये परिवहन के वैकल्पिक मार्ग अपरिहार्य हैं। बांधों के द्वारा बाढ़ के पानी को रोक रखने, तथा उसे धीरे-धीरे जल विद्युत् के उत्पादन के लिये छोड़ते रहने की प्रक्रिया ने देश के अन्दर के परिवहन के क्षेत्र में नई सम्भावनाएँ उत्पन्न कर दी हैं। साथ ही बाढ़ नियन्त्रण तथा बाढ़ के पानी के संरक्षण के उपाय किये जाने चाहियें।

शक्ति उत्पादन के साधनों का अनुमान

११. शक्ति इन-इन जरियों से उत्पन्न हो सकती है–(१) समाप्त हो जाने वाले साधन जैसे कोयला, खनिज तेल, सड़ी हुई लकड़ी के टुकड़े, प्राकृतिक गैसें इत्यादि और (२) समाप्त न होने वाले साधन जैसे झरने, वायु और बाढ़। बाढ़ों और वायु से शक्ति उत्पादन के साधन सीमित हैं। ईंधनों में केवल अल्कोहोल ही, जो सीरे से बनाई जा सकती है, ऐसी चीज है जिससे इस देश में उस तरीके का काम हो सकता है। जब तक आणविक शक्ति तथा सूर्य की शक्ति क्षेत्र में नहीं आती, तब तक भारत में शक्ति के साधनों का विकास कोयला, तेल और पानी से ही हो सकता है।

जहाँ तक मालूम है, भारत में पैट्रोल के साधन बहुत कम हैं, पर ऐसा अंदाज लगाया जाता है कि भारत में २,००० हजार करोड टन कोयला है जिसमें से ४०० करोड़ टन अच्छी क़िस्म का है। अच्छी किस्म के कोयले को बहुत महत्वपूर्ण धातु-विज्ञान सम्बन्धी तथा अन्य ऐसे कामों के लिये रिजर्व रखना है, पर घटिया दर्जे का बहुत काफी कोयला प्राप्त है जो कि उपयुक्त रूप से बनी हुई भट्टियों में शक्ति उत्पादन के लिये काम में लाया जा सकता है। इससे लिगनाइट नामक पदार्थों का बहुत बड़ा इस्तेमाल निकल आता है। लिगनाइट दक्षिण अर्काट तथा कच्छ में बहुत अधिक परिमाण में मिल सकते हैं। इसके साथ ही अधिक राख युक्त कोयले अब तक अनुपयोगी समझे जाते थे, पर जहाँ इस प्रकार का कोयला मिलता है,

उस के पास बिजली की शक्ति के उत्पादन मे यह वस्तु बहुत उपयोगी सिद्ध हो सकती है।

फिर भी हमारे देश में कोयले का बटवारा बहुत असमान तरीके से है। और फिर कई क्षेत्रों में तो औद्योगिक केन्द्रों से कोयले की खानें इतनी दूर हैं कि थरमल शक्ति का उत्पादन आर्थिक रूप से लाभदायक नहीं कहा जा सकता। भारत की जल विद्युतिक शक्ति का साधन बहुत अधिक है और यह अन्दाज लगाया गया है, इसका परिमाण ४ करोड किलोवाट होगा।

वर्तमान शक्ति-उत्पादन

१२. भूत काल में जितने भी बिजली बनाने के कारखाने थे, उन सब का उद्देश्य यही होता था कि वे शहरी इलाकों के घरेलू तथा औद्योगिक कामों में सहायक हो सकें। गत शताब्दि के अन्त की ओर कलकत्ते में विद्युतिक शक्ति की पूर्ति के लिये पहला बड़ा स्टेशन बना और उसके बाद के बीस सालों में दूसरे शहरों में पूर्ति के दूसरे स्टेशन खोले गये। उनमें से अधिकांश थरमल स्टेशन थे। १९२० तक सार्वजनिक बिजली के कारखानों की प्रगति धीमी ही रही, पर तब से निरन्तर द्रुत विस्तार होता रहा है। १९३९ के बाद १२ सालों मे बिजली उत्पन्न करने की कुल सामर्थ्य केवल दुगुनी हुई है। १९३९ में इसका परिमाण दस हजार किलोवाट था, अब १९५० में १७-लाख १० हजार किलोवाट हो गया है। उसी जमाने में कुल उत्पादित बिजली का परिमाण २५० करोड़ किलोवाट से ५१० करोड किलोवाट हो गया। सार्वजनिक हित के लिये परिचालित शक्ति स्टेशनों के अतिरिक्त कुछ औद्योगिक तथा रेल के कारखाने ऐसे हैं जिनमे बिजली उत्पादन का अपना प्रबन्ध है। इन कारखानों की कुल बिजली उत्पादन शक्ति १९५० में ५,८८,००० किलोवाट थी। इन स्टेशनों को लेकर १९५० में कुल बिजली उत्पादन की शक्ति करीब करीब २३ लाख किलोवाट थी जिस मे से १७ लाख किलोवाट थरमल स्टेशनों से और करीब ५,६०,००० किलोवाट जल विद्युतिक कारखानो से थी। ५० हजार और उससे अधिक आबादी के सब शहरों और २० हजार आबादी के भी कुछ शहरों में इस समय बिजली है, पर देहातों में बिजली पहुँचाने का कार्यक्रम अभी अधिक तरक्की नहीं कर सका। देश में करीब ५,६०,००० गांवों में से केवल ३ हजार गांवों में ही बिजली है। यह विकास भी मुख्यतः मैसूर, मद्रास और उत्तर

प्रदेश में हुआ है और इनका सम्बन्ध जल विद्युतिक शक्ति के विकास से है।

१३. देश के विकास के लिये सस्ती बिजली बहुत जरूरी है और आधुनिक समय में इसके विस्तार को देख कर ही राष्ट्रीय विकास तथा उस देश के लोगों के रहन सहन के मानदंड को नापा जाता है। आबपाशी के लिये पानी पम्प करने तथा खेती के बहुत से कामों में और घरों में इस से सस्ती शक्ति मिल सकती है। बिजली के अधिक प्रयोग से भारत के ग्राम्य जीवन मे वह परिवर्तन आ सकता है, जिसकी बहुत सख्त जरूरत है। न केवल इससे खेती के उत्पादन के तरीके में परिवर्तन हो सकता है और कुटीर शिल्प तथा छोटे पैमाने के धन्धों को प्रोत्साहन मिल सकता है, बल्कि इससे ग्राम्य जीवन और भी आकर्षक हो सकता है। इस प्रकार से गांव के जो लोग ऊब कर शहरों में आते रहते हैं, उनके आने पर भी रोक थाम हो सकती है। गत १० या २० सालों में जो भी प्रगति हुई है उसके बावजूद भारत में बिजली का प्रयोग बहुत ही सीमित है और अब भी प्रति व्यक्ति प्रति वर्ष केवल १४ किलोवाट शक्ति काम में आती है। करीब करीब सभी जगह बिजली की मांग बढ रही है और देश में कई इलाके ऐसे हैं जहां बिजली की जरूरत फौरन है और जहां पर इस सम्बन्ध में उन्नति जरूरत के अनुसार नहीं हुई। इस प्रकार बम्बई, दिल्ली, उत्तर प्रदेश के कुछ भाग, मद्रास तथा पश्चिमी बंगाल में बिजली की बहुत कमी है। इसीलिये इन इलाकों का आर्थिक विकास रुका हुआ है। इसके अतिरिक्त बहुत सी उत्पादक इकाइयाँ अब बहुत पुरानी हो चुकी है और उन्हें बदल कर नये यन्त्र लगाने की जरूरत है।

योजना मे विकास

१४. यद्यपि आबपाशी और बिजली की शक्ति का विकास राज्य सरकारों की जिम्मेदारी है, फिर भी कई कारणों से एक राष्ट्रीय नीति की आवश्यकता है। पहली बात तो यह है कि भारत के हर भाग में आबपाशी के लिये सुविधायें नहीं हैं। जहां पर ये सुविधायें हैं, वहां सारे देश की खाद्य सम्बन्धी आवश्यकताओं को देखते हुए उनको पूर्ण रूप से विकसित करना चाहिये। दूसरी बात यह है कि इस सम्बन्ध में जो काम चालू हैं और जिन्हें अभी करना है, उनके कारण हमारे सामने इंजीनियरिंग तथा अन्य बहुत सी समस्याएँ उन के मुकाबले में अधिक हैं जिन्हें सम्पूर्ण किया जा चुका है और इस बात की ज़रूरत है कि उनका सामना करने के लिये सब

ज्ञान तथा साधन लगा दिये जांय। ऐसा बडे पैमाने पर प्रौद्योगिक कर्मचारियों के प्रशिक्षण के लिये भी जरूरी है। तीसरी बात यह है कि चूंकि नदी घाटियां राज्य की सरहदों तक सीमित नहीं हैं, इस लिये विभिन्न राज्यों के विकास कार्यों को संयुक्त करके चलाने की जरूरत है, जिससे कि अधिक से अधिक नतीजा निकले। एक राज्य के जलाशय में जो पानी जमा किया जाय, सम्भव है कि उससे अन्य राज्य की आबपाशी हो और एक राज्य में जो बिजली उत्पन्न हो, सम्भव है कि उसे दूसरे राज्य में इस्तेमाल किया जाय। अन्त में एक बात यह भी है कि बडी योजना मे जो खर्च आ सकते हैं, वे सम्भव है कि राज्यों के साधनों के बाहर हों और केन्द्र की सहायता के बगैर उन्हे आगे न बढाया जा सके।

१५. देश में आबपाशी और बिजली उत्पादन सम्बन्धी ऐसी योजनाओं के परीक्षण से, जो या तो चालू हैं या जिन पर जांच हो रही है या जिन पर विचार हो रहा है, यह मालूम होता है कि उन सबके बनने में २,००० करोड़ रुपये का खर्च आयेगा और उनके कारण ४ से साढ़े ४ करोड़ एकड़ जमीन में और आबपाशी होगी और कोई ७० लाख किलोवाट बिजली और उत्पन्न हो सकेगी। हम इस सम्बन्ध में निश्चित हैं कि इतने बड़े कार्य-क्रम को पूरा करने तथा खेती करने के तरीके को बहुत जोर शोर से बदलने और साथ ही कुटीर, शिल्प और छोटे पैमाने के धन्धों को बढ़ाने से ही (बड़े पैमाने के धन्धे तो रहेंगे ही) देश के लोगों के रहन सहन में थोड़ी बहुत उन्नति हो सकती है।

१६. किसी भी बहु-उद्देश्य-युक्त बड़ी नदी घाटी योजना को बनाने के लिये यह जरूरी है कि दो से पांच साल तक जांच कार्य तथा योजना तैयार करने में लगाये जांय और ५ से १० साल तक उसका निर्माण किया जाय। इसलिये यह जरूरी है कि उसके प्रौद्योगिक तथा वैयक्तिक संगठन को और साथ ही उसमें जिस तरह के यान्त्रिक सरंजाम काम में आयेंगे उन्हें अच्छी तरह संगठित किया जाय और उस संबंध में ध्यानपूर्वक सारी तैयारी कर ली जाय। बडी योजनाओं को कम खर्च में तभी बनाया जाना सम्भव होगा जब एक दीर्घकालीन योजना बहुत सावधानी से तैयार की जाय और उसमें जो वित्तीय आंकड़े आदि दिये जांय, वे बहुत अच्छे ढंग से तैयार हों। साथ ही जो प्रौद्योगिक साधन और सामान प्राप्त हो सकता है उसको भी ध्यान में रखा जाय।

आबपाशी और बिजली शक्ति के लिये योजना

१७. गत कुछ सालों में सारे देश में आबपाशी तथा बिजली उत्पादन की नई योजनाओं के सम्बन्ध में काफी सरगर्मी रही है । कई बड़ी और छोटी योजनाएं कार्यरूप में परिणत करने के लिये ग्रहण कर ली गई हैं । कुछ तो ऐसी हैं कि जिनसे केवल आबपाशी का काम सिद्ध होगा और कई ऐसी हैं जो बहु-उद्देश्य-युक्त हैं । इनमें से कइयों मे ब्यौरेवार जांच का कार्य समाप्त होने से पहले ही तथा उनके प्रौद्योगिक और वित्तीय पहलुओं के आर्थिक अध्ययनों के पहले ही काम शुरू कर दिया गया है। चाहे चालू बाँध योजनाओं और जो योजनाएं अभी चालू नहीं हुई हैं, उनकी तुलनात्मक लाभ-हानि के सम्बन्ध में कोई भी मत क्यों न रखा जाय, इस सम्बन्ध में दो मत नहीं हो सकते कि उन्हें जल्दी से जल्दी समाप्त करना चाहिये, जिससे कि उन पर जो कुछ भी खर्च आ चुका है, उससे कुछ नतीजा निकले और लाभ हो, विशेषकर पहले से अधिक खाद्य उत्पादन के रूप में यह लाभ जल्दी से जल्दी होना जरूरी है । प्रस्तावों को पेश करने में हमें इस महत्त्वपूर्ण बात का ख्याल रखना है । इसलिये आबपाशी तथा बिजली उत्पादन के सम्बन्ध में पंचवर्षीय योजना का मुख्य उद्देश्य यह है कि इन योजनाओं को समाप्त कर दिया जाय और इसलिये हमारे लिये यह संभव नहीं हुआ कि हम नई योजनाएँ सामने रखें ।

१८. जो योजनाएँ चालू हैं, उन पर यह आशा की जाती है कि मंजूर-शुदा तखमीनों के आधार पर कुल मिला कर उनके पूरे होने तक ७६५ करोड रुपये खर्च होंगे । १९५१ के मार्च के अन्त तक इन पर १५३ करोड रुपया खर्च आ चुका था और पंचवर्षीय योजना की अवधि में इन पर ५१८ करोड रुपये और खर्च किये जायेंगे । ऐसा करने पर यह अन्दाज लगाया गया है कि योजना के अन्तिम साल तक पहले के मुकाबले में ८५ लाख एकड जमीन पर और भी आबपाशी होगी और दस लाख अस्सी हजार किलोवाट बिजली अधिक उत्पन्न होगी। इन योजनाओं की समाप्ति तथा पूर्ण विकास के बाद पहले के मुकाबले में १६९ लाख एकड और अधिक भूमि पर आबपाशी होगी और पहले के मुकाबले में १४ लाख किलोवाट अधिक बिजली उत्पन्न होगी । इन बृहत् योजनाओं के संबंध में ब्यौरे इस अध्याय के अन्त में मिलेंगे । इन पर पंचवर्षीय योजना की अवधि में प्रति वर्ष जो खर्च तथा सम्भव लाभ होंगे वे यों हैं—

वर्ष	खर्च (करोड़ रुपये)	पहले से अधिक आबपाशी (एकड)	पहले से अधिक बिजली (किलोवाट)
१९५१-५२	८५	६४६,०००	५८,०००
१९५२-५३	१२१	१,८९०,०००	२३९,०००
१९५३-५४	१२७	३,५५५,०००	७२४,०००
१९५४-५५	१०७	५,७४९,०००	८७५,०००
१९५५-५६	७८	८,५३३,०००	१,०८२,०००
अन्तिम		१६,९४२,०००	१,४६५,०००
पांच साल का कुल योग	५१८		

आबपाशी की बहुत अधिक आवश्यकता के कारण इन योजनाओं को इस ढंग से चलाया जा रहा है कि आबपाशी के कार्यक्रम जल्दी से जल्दी पूरे हो जायें और बिजली शक्ति के विकास को मांग के अनुसार धीरे-धीरे पूरा किया जाय।

१६. इन योजनाओं पर खर्च योजना के अन्तिम दो सालों में घटता चला जायगा। इस बात को ध्यान मे रखते हुए दूसरे बहुत जरूरी कामों को विशेषकर पिछड़े हुए इलाकों में शुरू करना है। विशेषकरके पांच नई बृहत् योजनायें पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत चुनी गई हैं और अंतिम दो सालों मे इन के लिये ४० करोड़ रुपये के खर्च की व्यवस्था की गई है। उन पर कुल खर्च २०० करोड से अधिक बैठेगा। इन योजनाओं के सम्बन्ध मे ब्यौरे इस प्रकार हैं—

योजना का नाम	किस इलाके को लाभ रहेगा	कुल खर्च का तखमीना (लाख रुपये)	अंत में होने वाले लाभ: सिंचित क्षेत्र (हज़ार एकड)	अंत में होने वाले लाभ: बिजली (किलोवाट)
कोसी (सोपान १)	बिहार और नेपाल	६,६००	२,६२०	४० (बाढ़ नियंत्रण भी होगा)
कोयना (सोपान १)	बम्बई	३,३००	-	२४०

कृष्णा (अभी तक दायरा स्पष्टीकृत नहीं है)	मद्रास और हैदराबाद	आंकड़े प्राप्त नहीं		आंकड़े प्राप्त नहीं
चम्बल (सोपान १)	मध्यभारत और राजस्थान	३,३७५	१,२००	८०
रीहन्द	उत्तर प्रदेश	३,५००		२४०

जल का आर्थिक उपयोग

२०. देश के सब हिस्सों में आबपाशी के सम्बन्ध में नई सुविधायें देने का प्रयास किया जा रहा है, पर इसके अलावा यह भी जरूरी है कि जो जल प्राप्त है उससे अधिक से अधिक फायदा उठाया जाय। इस उद्देश्य को प्राप्त करने के लिये यह जरूरी है कि विभिन्न फसलों की पानी संबंधी जरूरत का तथा आबपाशी के लिये कौन समय ठीक है इसका पता लगाया जाय। दूसरी बात यह है कि नहरों पर लाइनिंग डाल कर तथा नालियों को सुरक्षित कर पानी के जमीन में समा जाने को कम किया जाय। इसके अतिरिक्त खेतों में पानी का बेकार खर्च भी दूर करना पड़ेगा। इसलिये कमीशन ने इस मामले में राज्य सरकारों के सामने सुझाव रखे हैं।

बिजली शक्ति का विकास

२१. पंचवर्षीय योजना की अवधि में कितना बिजली उत्पादन तथा कितना भार होगा इस सम्बन्ध में क्षेत्रीय रूप से संभावित आंकड़े इस प्रकार हैं—

	१९५५-५६ तक जो वृद्धि होगी (हजार किलोवाटों में)		
	अधिष्ठापित क्षमता	फर्म पावर	जितने भार की आशा की जाती है
१. बहूद्देश्य-युक्त योजनायें			
(क) भाखरा-नांगल	९६	७२	६६
(ख) दामोदर घाटी योजना	१९४	१४४	१३२
(ग) हीराकुड बांध	४८	२४	२४

२. मद्रास, मैसूर, हैदराबाद और त्रावन्कोर-कोचीन	४०२	५११†	६३६
३. बम्बई इलाका	८३	३५८†	४१७
४. बिहार-बंगाल और मध्य प्रदेश	८८	६५	१०१
५. उत्तर प्रदेश	१०६	१५७†	१४६
६. दूसरे क्षेत्रों की योजनायें	६२	६६	६६
कुल	१०८२	१,२६७	१,५६४

इससे यह मालूम होगा कि सरकारी क्षेत्र में १० लाख किलोवाट से कुछ अधिक उत्पादन-क्षमता बढ़ेगी, जिसमें से ३३८,००० किलोवाट या एक तिहाई तीन बहूद्देश्य-युक्त योजनाओ से प्राप्त होंगी। इस अन्तिम आंकड़े से विकास का केवल पहला सोपान दिखाया गया है। अन्त में जाकर बिजली उत्पादन संबंधी उनकी क्षमता १० लाख किलोवाट तक बढ़ जायगी। नीचे दी गई तालिका में यह दिखाया जा रहा है कि १९५० मे विभिन्न कार्यों में कितनी बिजली खपी और १९५५ में कितनी खपेगी।

	बिजली की खपत (लाख किलोवाटों में)				
	१९५०	१९५० की कुल बिजली की फी सदी	१९५५	१९५५ की कुल बिजली की फी सदी	१९५० पर कितनी फी सदी वृद्धि हुई
घरेलू रोशनी और शक्ति	५,२५०	१३	८,६००	१३	६४
व्यापारिक रोशनी और शक्ति	३,०६०	७	४,३००	७	३६
औद्योगिक	२६,०४०	६३	४१,०००	६३	५८
आबपाशी	१,६२०	४	३,३२०	५	१,०५
दूसरे कार्य	५,५८०	१३	७,५२०	१२	३५
कुल	४१,५८०	१,००	६४,७४०	१,००	५६

† ऐसी योजनाओं के क्षेत्र मे जिनकी बिजली किसी वर्तमान बिजली पद्धति में डाली गई है,सारी बिजली शक्ति पद्धति के फर्म पावर को पूरी पद्धति पर कुल मिलाकर जितने भार की आशा की जाती है, उसी के साथ दिखाया जा रहा है।

उद्योग-धन्धों में ही बिजली का सबसे अधिक इस्तेमाल होता है, और उनमें कुल बिजली की करीब दो तिहाई काम में आती है। घरेलू तथा व्यापारी उपयोग के कार्य इसके बाद आते हैं। इस समय आबपाशी में कुल उपयुक्त बिजली की करीब ४ फी सदी आती है, पर पंचवर्षीय योजना की अवधि में यह खपतशायद दुगुनी हो जाय, और इसी बीच में यह आशा की जाती है कि उद्योग धन्धों में बिजली की खपत ६० फी सदी और बढ़ेगी।

२२. बिजली उत्पन्न करने वाली हर बड़ी इकाई के भार के विकास के विषय में उचित योजना बनाने पर बहुत ज़ोर दिया गया है। पंचवर्षीय योजना में बिजली उत्पन्न करने की जो योजनाएँ हैं, उनमें से अधिकांश के लिए ब्यौरेवार या प्राथमिक भार का लेखा जोखा तैयार किया गया है, और जो बिजली उत्पन्न होगी वह मुख्यतः औद्योगिक क्षेत्रों में फैली हुई बिजली की कमी को पूरा करने, पुराने तथा बेकार यन्त्रों की स्थान-पूर्ति करने तथा नलकूप और नदियों से आबपाशी के लिये पानी पंप करने आदि के लिये काम में आयेगी। नये बड़े पैमाने के उद्योग-धन्धों के लिये स्थान चुनने में नये बिजली उत्पादन केन्द्रों से कहाँ तक उन्हें बिजली प्राप्त हो सकेगी इस पर ध्यान दिया जा रहा है। देहात में खेती बाड़ी, कुवें से पानी खींचना, कुटीर तथा छोटे पैमाने के धन्धों में बिजली के इस्तेमाल को बहुत अधिक महत्व दिया जा रहा है।

नीति और प्रशासन

२३. राज्य सरकारें प्राथमिक रूप से इस बात के लिये जिम्मेदार हैं कि वे आबपाशी और बिजली उत्पादन के कार्यक्रमों को चलावें, और केन्द्रीय जल और बिजली कमीशन उनके प्रयासों को संयुक्त करेगा। जो कुछ भी हो, कुछ राज्यों के पास ढंग का संगठन नहीं है जिससे कि बड़ी योजनाएँ तैयार हो सकें और वे काम में लाई जा सकें। केन्द्रीय जल और बिजली कमीशन को इस ख्याल से बड़ा बनाया जा रहा है, जिससे कि वह ऐसे राज्यों को मदद दे सके। इसके अलावा जितनी बड़ी योजना को हम कार्यरूप में परिणत करना चाहते हैं उसके लिये एक केन्द्रीय संगठन की जरूरत है, जो राज्य सरकारों को विस्तृत और ब्यौरेवार डिज़ाइन तैयार करने में, औजार आदि प्राप्त करने में, कर्मचारी वर्ग को भर्ती और प्रशिक्षित करने में तथा एक योजना से दूसरी योजना में यन्त्र और कर्मचारी वर्ग के स्थानान्तरित करने में मदद देगा।

२४. भारत की करीब-करीब सभी नदियाँ एकाधिक राज्य से होकर बहती हैं। केन्द्रीय सरकार की यह नीति है कि राज्य की सरहदों की परवाह न करते हुए नदियों के पानी को अधिक से अधिक उपयोग में लाया जाय। इसलिये केन्द्रीय सरकार ऐसे उपाय कर रही है, जिससे प्रत्येक नदी-घाटी का उपयोग सम्बद्ध सभी राज्य संयुक्त रूप से करें। राज्य जल-विद्युत साधनों से शक्ति उत्पादन करने के काम में भी सहयोग कर सकते हैं। जल-विद्युत शक्ति के उत्पादन के लिये प्रत्येक राज्य में अच्छे स्थान नहीं हैं। जहाँ ऐसे स्थान हैं, वहाँ उनसे इतनी अधिक बिजली शक्ति उत्पन्न होती है कि उस राज्य के अन्दर उतनी बिजली की खपत नहीं हो सकती। इस लिये राज्यों में सहयोग का यह रूप हो सकता है कि वे जल-विद्युत उत्पादन में एक साथ हाथ बटावें और एक संयुक्त कारखाना स्थापित करें, या एक राज्य दूसरे से बहुत अधिक परिमाण में बिजली खरीदे, या पड़ोस के राज्यों में विभिन्न बिजली उत्पादन पद्धतियों मे बिजली की लेनदेन हो। इस प्रकार राज्यों में सहयोग के उदाहरण मौजूद हैं। उदाहरणस्वरूप मुचकुन्ड जल विद्युतिक स्टेशन को मद्रास राज्य उड़ीसा के साथ मिलकर विकसित कर रहा है। बम्बई सरकार मैसूर के जोग जलविद्युतिक स्टेशन की अधिकांश बिजली को ले लेगी, और भाखरा में जो बिजली विकसित होगी उसे पंजाब, पेप्सू, राजस्थान, दिल्ली, उत्तर प्रदेश संयुक्त रूप से इस्तेमाल करेंगे।

जहां तक व्यावहारिक रूप से संभव है, सारे देश के लिए या कम से कम वृहत्तर क्षेत्रों के लिये इस समय मौजूद तथा नये जल विद्युतिक और थरमल स्टेशनों के बीच सहयोग की एक व्यापक दीर्घकालीन योजना बनाई जानी चाहिये।

आबपाशी के कार्यक्रमों के लिये वित्तीय सहायता

२५. आबपाशी के कार्यक्रम उत्पादक या अनुत्पादक हो सकते हैं। जिनसे इतनी आय हो जाती है कि पूंजी पर सूद वसूल हो जाता है वे उत्पादक समझे जाते हैं और उनको सार्वजनिक ऋणों से वित्तीय सहायता दी जाती है। दूसरे जिनसे इतनी आय नहीं होती, वे अनुत्पादक समझे जाते हैं और उन्हें साधारण राजस्व या विशेष अनुदानों से वित्तीय सहायता दी जाती है। इस समय जो कार्यक्रम तैयारी की अवस्था में हैं, वे भूतकाल में समाप्त कार्यक्रमों से अधिक व्ययसाध्य हैं और उन्हें चालू रखने तथा

जारी रखने में भी अधिक खर्च होगा । इसलिये यह जरूरी है कि राज्य सरकारें कुछ ब्यौरों में इस बात पर भी पुनर्विचार करें कि किसान से पानी के कितने पैसे लिये जायें ।

२६. जहां मांग प्रतिवर्ष भिन्न भिन्न होती है और प्राप्त जलराशि का पूर्ण रूप से उपयोग नहीं होता है, वहां पर आबपाशी के लिये एक कर की वसूली उचित है । जहाँ आबपाशी की दर बहुत साल पहले तय की गई थी और इस बीच में उगाई गई फसलों के दाम में बहुत काफी वृद्धि हुई है, वहाँ दरों को बढ़ाने के लिये बहुत काफी कारण मौजूद हैं । खेती सम्बन्धी आय-कर आय का एक दूसरा सम्भव साधन है । जिन जमीनों को आब-पाशी सम्बन्धी बड़ी योजनाओं की सेवा प्राप्त हो रही है, उनका मूल्य भी काफी बढा है । इसलिये न्याय का तकाजा यह है कि जिन लोगों को इस प्रकार यह अनुपार्जित आय-वृद्धि का फायदा पहुँचा है वे समाज के साथ इसे बांट लें जिससे कि उस प्रकार जो आय अधिक होगी, उससे इन कार्यक्रमों में जो पूंजी लगी है, उसका एक हिस्सा वसूल हो । भारत में भूतकाल में कई बार बेहतरी की फीसों या जमीन के मूल्यों में अनुपार्जित वृद्धि में हिस्से के रूप में वसूली हुई है । मैसूर में १८८८ से ही बेहतरी की फीस या कर चालू रहा है । इस सम्बन्ध मे प्रति एकड़ पर जो कुछ लिया जाता है, वह चाही हुई जमीन और भूड जमीन के मूल्यों में जो अन्तर बैठता है उसकी एक तिहाई से आधे तक होता है । इरविन नहर पद्धति के अनुसार जमीन के मालिक को प्रति एकड १५० रु० एक मुश्त या किस्तों मे देना पडता है, हां एक मुश्त देने पर ७ फी सदी कम देना पड़ता है । इस प्रकार से जमीन की बेहतरी के लिये धन एक मुश्त में या वार्षिक किस्तों में चाहे वह नकद हो या चीजों में हो, लिया जा सकता है । किसान को यह भी स्वतंत्रता होनी चाहिये कि वह नकद रुपयों के बदले जमीन दे सके ।

२७. हम यह सिफारिश करते हैं कि जिन राज्य सरकारों ने अभी तक आबपाशी के नये कार्यक्रमों पर बेहतरी की फीस वसूल करने के सम्बन्ध में कानून नहीं बनाया है, वे इस सम्बन्ध में कानून बनावें और अपने हाथ में यह शक्ति लेवें कि जमीन के बडे मालिकों से जमीन के ही रूप में अपनी फीस वसूल कर सकें । इस प्रकार जो जमीन प्राप्त हो उसमें उन लोगों को बुलाया जा सकता है, जिन की जमीन बांधों या नहरों में आ गई है, या ये जमीनें भूमिहीन मजदूरों को देकर तथा अन्य ढंग से काम में लाई जा सकती

हैं। इस बात के लिये भी कदम उठाने चाहिये कि जमीन की सट्टेबाजी न हो। इस बात को करने का एक उपाय यह है कि उस जमीन का राष्ट्रीयकरण किया जाय जिससे आबपाशी के कार्यक्रम से फायदा पहुँचने वाला हो, या इसे आबपाशी के कार्यक्रम के पहले चालू दाम पर खरीद कर उस कार्यक्रम की समाप्ति पर उसे बढ़े हुए दाम पर बेचा जाय।

बिजली उत्पादन योजनाओं के लिये वित्त की व्यवस्था

२८. बिजली उत्पादन की किसी योजना से जो कुल आय हो, वह इतनी काफी हो कि उस पर जो लागत लगाई जाय, उसकी घिसाई-पिटाई और चलाने आदि में जो कुछ खर्च आवे उसका सूद उससे निकल आवे, तभी उसे एक ऐसा उत्पादक सार्वजनिक कार्य माना जा सकता है, जिसे सार्वजनिक ऋण से वित्तीय सहायता दी जाय। भूतकाल में इस सम्बन्ध में कोई बहुत अधिक कठिनाई नहीं हुई। यह एक सर्वमान्य सिद्धांत है कि राज्य के द्वारा चलाई गई योजनाओं से जो बिजली दी जाय, वह बिना मुनाफे के दी जाय।

२९. यद्यपि भारत में बिजली उत्पादन के विकास के लिए काफी गुंजाइश है फिर भी, बिजली के बडे बड़े ब्लाक उत्पादित होने पर ही वे राज्य की ओर से बिना किसी प्रयास के खुदबखुद ले लिये जायेंगे ऐसी आशा नहीं की जा सकती। पहले से ही इसका नकशा बन जाना चाहिये कि किस तरह से उत्पादित बिजली खर्च होगी। इसके अलावा प्रत्येक बड़ी बिजली उत्पादक इकाई के लिये बिजली के भार का किस प्रकार विकास होगा इसकी भी योजना बनाई जानी चाहिये। बिजली उत्पादन स्टेशन के इलाके में भार के सम्बन्ध में योजना बनाना औद्योगिक और आर्थिक योजना निर्माण से बहुत घनिष्ठ रूप से सम्बद्ध है। यह व्यवस्था भी करनी चाहिये कि गांववाले अधिक से अधिक सुविधाजनक तरीके से बिजली का उपयोग कर सकें। तजरबे से यह ज्ञात हुआ है कि यदि आवश्यक सुविधायें दी जायें, तो खेती के लिये बिजली का उपयोग बहुत जनप्रिय हो सकता है। राज्य को चाहिये कि वह किसानों को अपने अहातों में बिजली लगाने तथा बिजली के सामान खरीदने के लिये कर्ज दे। सच तो यह है कि संयुक्त राष्ट्र अमेरिका के देहाती वैद्युतिक प्रशासन की तरह किसी योजना को ग्रहण करना पड़ेगा। इस योजना के अनुसार गांव की सहकारी समितियों को गांव में बिजली लगाने तथा उसके विकास के लिये दीर्घकालीन कर्ज दिये जाने चाहिये। खेती में

शक्ति का प्रयोग कई तरह से बड़ा सुविधाजनक है। उदाहरणस्वरूप उद्योग धन्धे में एक किलोवाट बिजली इस्तेमाल करने में कोई ३००० रु० का प्रारम्भिक खर्च पड़ता है जब कि खेती में केवल १२०० रु० का प्रारम्भिक खर्च पड़ेगा। इसके अलावा किसानों को जिन बिजली सम्बन्धी सामानों की जरूरत है, उनमें से अधिकांश देश में तैयार किये जा सकते हैं और उन्हें चलाने में भी बहुत ऊँचे दर्जे के प्रौद्योगिक ज्ञान की जरूरत नहीं है।

आबपाशी के लिये बड़े और छोटे कार्यक्रम

३०. अक्सर ये प्रश्न उठाये जाते हैं कि (१) पंचवर्षीय योजना की आबपाशी सम्बन्धी योजनाओं में आबपाशी के बड़े और छोटे कार्यक्रमों का तुलनात्मक महत्त्व क्या है और (२) ऐसे कार्यक्रमों को कहां तक आर्थिक रूप से सफल कहा जा सकता है। बड़े और छोटे कार्यक्रमों में कोई विरोध नहीं हो सकता। देश के कुछ कार्यक्रमों के लिये गुंजाइश है और कुछ में केवल छोटे कार्यक्रमों की ही गुंजाइश है। प्रत्येक इलाके में उसी प्रकार का कार्यक्रम चालू करना चाहिये, जिसके लिये वहां सुविधायें हैं। इस प्रकार से बड़े और छोटे कार्यक्रम एक दूसरे के पूरक हैं न कि एक दूसरे के प्रतियोगी। पंचवर्षीय योजना में आबपाशी की ऐसी ८ योजनायें हैं (जिनमें बहूद्देश्य-युक्त योजनायें भी आती हैं) जिनमें से प्रत्येक पर पांच करोड़ रुपये से अधिक, १६ ऐसी योजनायें हैं जिनमें से प्रत्येक पर एक करोड़ से पांच करोड़ रुपये, २१ ऐसी हैं जिनमें से प्रत्येक पर ५० लाख से १ करोड़ रुपये तक और २७ ऐसी हैं जिनमें से प्रत्येक पर १० लाख से ५० लाख रुपये तक खर्च पड़ेगा। पंचवर्षीय योजना की अवधि में आबपाशी की इन योजनाओं से जिन इलाकों को सिंचाई हो सकेगी, उनका कुल परिमाण ८० लाख एकड़ होगा ऐसी आशा की जाती है, जब कि १ करोड़ १० लाख एकड़ की सिंचाई आबपाशी की छोटी योजनाओं, नलकूप योजनाओं आदि से होगी जो पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत हैं और उनपर ७७ करोड़ रुपया खर्च आयेगा।

३१. आबपाशी के छोटे और बड़े कार्यक्रमों की तुलनात्मक सुविधाओं तथा असुविधाओं को संक्षेप में यों बताया जा सकता है—

छोटे कार्यक्रम इन दृष्टियों से सुविधाजनक हैं—

(क) इन सब पर प्रारम्भिक खर्च कम है।

(ख) ये जल्दी से काम में लाये जा सकते हैं और जल्दी असर दिखा सकते हैं।

(ग) उन्हें किसी विशेष सहायता की इसलिए जरूरत नहीं है कि उन्हें न तो विदेश से आये हुए औद्योगिक विशेषज्ञों और न सामान की जरूरत है।

(घ) उन्हें कार्य रूप में परिणत करने के लिये स्थानीय साधनों को आसानी से गतिशील किया जा सकता है।

दूसरी ओर उनकी असुविधायें इस प्रकार हैं—

(क) उन्हे कायम रखने में अधिक खर्च आता है।

(ख) तुलनात्मक रूप से उनका जीवन स्वल्पकालीन होता है।

(ग) उनसे सीमित 'संरक्षण' मिलता है।

सारे देश में ऐसे बहुत से कार्यक्रम इस हालत में हैं कि किसी मे थोडी मरम्मत की जरूरत है तो किसी में अधिक की। तजुरबा यह बताता है कि आबपाशी के छोटे कार्यक्रमों को तभी कायम रखा जा सकता है यदि उनसे लाभ उठाने वाले उन्हे कायम रखने की जिम्मेदारी अपने ऊपर ले लें। इस सम्बन्ध में यह बता देना जरूरी है कि जहां पर इस प्रकार की जिम्मेदारी डालने कानून मौजूद भी हैं, वहां भी उन्हे कड़ाई के साथ काम में लाना संभव नहीं हुआ है।

आबपाशी की बड़ी योजनाओं की सुविधायें ये हैं—

(क) वे साधारणतः बहूद्देश्ययुक्त हैं याने आबपाशी के अतिरिक्त उनसे ऐसे ऐसे लाभ होते हैं जैसे जल वैद्युतिक शक्ति, बाढ़ नियन्त्रण की सुविधायें, जहाजरानी इत्यादि।

(ख) वे इस समय बेकार बहने वाले नदी के जल को काम में ले आते हैं और सच कहा जाय तो केवल यही उपाय है जिससे इस प्रकार के फालतू पानी को काम में लाया जा सकता है।

(ग) अकाल के सालो में उनसे अधिक संरक्षण मिलता है क्योंकि ऐसों के साथ बडे केचमैंट इलाके संयुक्त होते हैं।

असुविधा यह है कि प्रारम्भिक खर्च बहुत बडा होता है और उसमें समय भी अधिक लगता है। फिर भी अलग अलग क्षेत्र में वित्तीय पहलू भी अलग अलग हैं।

सार्वजनिक सहयोग

३२. यह स्पष्ट है कि आबपाशी तथा बिजली उत्पादन के कार्यक्रमों को कार्यरूप में परिणत करने के कार्य में जनता के सहयोग को प्राप्त करना तथा जनता का जोश उभाड़ना बहुत जरूरी है। जनता को यह अनुभव करना चाहिये कि योजना में जो कार्यक्रम बनाये गये हैं वे उन्हीं के लाभ के हैं और उनको पूरा करने के लिये उन्हें त्याग करने की जरूरत है। जनता के सहयोग को प्राप्त करने के विभिन्न उपाय हैं और प्रत्येक इलाके में उनका रूप भिन्न भिन्न होगा। इन उपायों में से एक तो यह है कि एक बेहतरी का चन्दा लिया जाय। यह अन्दाज लगाया गया है कि बेहतरी के करों के रूप में किसी भी कार्यक्रम के खर्च की एक तिहाई से एक चौथाई तक वसूल किया जा सकता है और जैसा कि हम पहले ही बता चुके हैं, बेहतरी के कर को जमीन के रूप मे वसूल करना बहुत दृष्टियों से उपयोगी होगा।

३३. एक और भी तरीका है जिसके द्वारा ऐसे कार्यक्रमों को कार्यरूप में परिणत करने के परम्परागत उपायों को उन्नत किया जा सकता है। ऐसे कार्यक्रमों के सम्बन्ध में लेखा तैयार करते समय, जिनमें बेपढ़े-लिखे मजदूरों की जरूरत होती है जैसे बृहत्तर कार्यक्रमों मे नहर खोदना जिस पर कार्यक्रम पर होने वाले खर्च का एक बड़ा हिस्सा खर्च होता है, नियम यह होना चाहिये कि मजदूरी का इस प्रकार का ढंग सैद्धांतिक रूप से रखा जाय कि स्वयं गांव वाले ही उस काम को करें और वह ठेकेदारों को न दिया जाय। प्रत्येक गांव या गांव के समूह में गांव वाले ऐसी सहकारी समितियों में संगठित हों कि वे अपने इलाके में उस काम को कर सकें। इस उपाय से एक तो खर्च कम पडेगा, दूसरे जो गांववाले उससे फायदा उठायेंगे इसलिये उन मे यह शक्ति पैदा होगी कि वे उसे संपूर्ण करने मे अपना योग दे सकेंगे। कुछ कार्यक्रमों में यह तरीका अपनाया गया है और यह आशा की जाती है कि सब कार्यक्रमों में यही प्रचलित पद्धति होगी।

भविष्य की योजनाओं मे नये कार्यक्रमों को शामिल करने की शर्तें

३४. जब पंचवर्षीय योजना कुछ समय तक, मान लीजिये दो साल तक, चालू रहे तब उससे जो प्रगति हुई है उसे देखना पड़ेगा और उसके आगे एक योजना बनानी पड़ेगी जो छठे साल से चालू होगी। यह जरूरी है कि इस

संबंध में एक तरीका बनाना चाहिये कि किस प्रकार आगे की इस योजना में नये कार्यक्रम शामिल किये जांय और उनमें से कौन पहले चालू किया जाय और कौन बाद में। इस योजना मे कार्यक्रमो को शामिल कराने के लिये ये मोटे मोटे सिद्धांत रहने चाहिये—

(क) किसी भी कार्यक्रम को योजना के अन्तर्भुक्त करने के पहले उसके प्रौद्योगिक, आर्थिक और वित्तीय पहलुओं पर यथेष्ट विचार हो जाना चाहिये।

(ख) जिन कार्यक्रमों से देश के खाद्य उत्पादन में वृद्धि हो, उन्हें नदी-जल के दूसरे इस्तेमालों पर तरजीह दी जानी चाहिये।

(ग) जिन कार्यक्रमों के सम्बन्ध में यह समझा जाय कि वे लाभजनक हैं या प्रति एकड पर आबपाशी तथा बिजली की प्रति इकाई पर व्यय की दृष्टि से लाभदायक हैं तथा जो थोड़े समय में फल दिखावें, उन्हें तरजीह दी जानी चाहिये।

(घ) ऐसे इलाकों की जरूरतों का पहले ख्याल करना चाहिये जो खाद्य और बिजली के उत्पादन में पिछड़े हुए हैं, साथ ही पिछड़े हुए इलाकों की जरूरतों को भी ध्यान में रखना चाहिये।

अखिल भारतीय आधार पर विभिन्न योजनाओं में से तुलनात्मक रूप से पहले किसे काम में लाया जा सकता है, इस पर परामर्श देने के लिए एक कमेटी बनाने का प्रस्ताव है, जो प्रत्येक योजना के परीक्षण के बाद अपना मत देगी। इसके सदस्य ये लोग होंगे—

(क) एक अध्यक्ष जो भारत सरकार द्वारा नियुक्त होगा।

(ख) प्राकृतिक साधन और वैज्ञानिक अनुसन्धान मन्त्रालय का एडिशनल सचिव।

(ग) वित्त मन्त्रालय का एक प्रतिनिधि।

(घ) आबपाशी के केन्द्रीय बोर्ड का अध्यक्ष।

(च) एक प्रमुख इन्जीनियर जो सरकारी नौकर न हो।

जिस समय किसी राज्य के मुख्य इंजीनियर के द्वारा कोई योजना बनाई जाय, और उस पर विचार हो, तो उसे भी इस कमेटी का सदस्य कोआप्ट कर लिया जाय।

इस प्रकार की योजनाएँ इन लोगों की सहायता से बननी चाहिये—वित्त-मन्त्रालय, प्राकृतिक साधन और वैज्ञानिक अनुसन्धान मन्त्रालय और सम्बद्ध राज्य सरकारें। ऐसा तभी किया जाय जब कमेटी ने उन सारी योजनाओं की छानबीन कर ली हो जिन पर जांच की गई है, और जिनके लिये खर्च आदि का तखमीना तैयार हो चुका है।

अध्याय २७

खनिज साधनों का विकास

भारत की खनिज सम्पत्ति में वे वस्तुएँ पर्याप्त संख्या में उपलब्ध हैं जो देश के औद्योगिक विकास के लिये आवश्यक हैं। कोयले और लोहे के सम्बन्ध में—मूल उद्योगों के लिये आवश्यक खनिज-साधन पर्याप्त है और भारत में बढ़िया किस्म के कच्चे लोहे के संग्रह तो संसार के श्रेष्ठतम संग्रहो में से हैं। इसी प्रकार टिटेनियम और थोरियम की कच्ची धातुओं और अभ्रक, बाक्साईट, इल्मेनाइट तथा मोनोज़ाइट के बडे संग्रह हैं और रिफ्रेक्ट्रीज़, एब्रेज़िव्स और लाइमस्टोन के साधन पर्याप्त हैं। तथापि तांबे, टीन, सीसा, जस्ता, निकल, कोबाल्ट और गन्धक की तथा इनसे भी अधिक पेट्रोलियम की देश में कमी है। इसके अतिरिक्त खनिज संग्रहों का वितरण असम है। देश के कुछ भाग दरिद्र हैं जबकि अन्य अपेक्षाकृत समृद्ध हैं।

२. कुछ समय पहले तक खनिज साधनों और उनके उपयोग की ओर कम ध्यान दिया जाता था। देश के उपयोग के लिये अपेक्षित कोयले, कच्चे लोहे और पेट्रोलियम को छोड़कर अधिकांश खनिज उत्पादन बिना किसी प्रक्रिया, विभाजन, श्रेणी तथा रूपभेद के निर्यात कर दिया जाता था। साथ ही खनिज साधनों की खोज-बीन पूर्ण अथवा भरपूर रूप से नहीं की गई थी। उनके बारे में विशेषकर उनके गुणों के बारे मे पर्याप्त जानकारी भी नहीं थी।

खनिज नीति

३. चूँकि खनिज वस्तुएँ आधुनिक उद्योगों का आधार हैं, इसलिये उनके उपयोग तथा उत्पादन के बारे में एक तर्कसंगत नीति का होना आवश्यक है। इस नीति की जड-बात संरक्षण तथा अर्थ-सम्मत उत्पादन होने चाहिएँ। इसकी आवश्यक बातें इस प्रकार हैं :—

(१) खनिज संग्रहों की मात्रा और महत्त्व का पूर्णतया निश्चय होना चाहिये ताकि आर्थिक आधार पर उत्पादन को संगठित किया जा सके।

(२) उत्खनन कार्यों को अधिक कुशलता से सम्पन्न किया जाय ताकि मार्जिनल श्रेणी के उत्खनन में छीज और उच्च श्रेणी की कुछ ही कच्ची धातुओं के उत्खनन को रोका जा सके। यथासम्भव सभी श्रेणी की धातुओं को निकालना चाहिये और जहाँ सम्भव हो वहाँ इनके मेल से बिकने योग्य श्रेणी बना लेना चाहिये।

(३) विशेष कर गन्धक, टंग्स्टेन, टिन, वनाडियम आदि सामारिक महत्त्व के खनिज-साधनों के विकास की ओर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिये।

(४) उत्खनन उद्योग, देशी तथा विदेशी खनिज मंडियों और अन्तर्राष्ट्रीय खनिज व्यपार की प्रवृत्तियो के बारे में आँकड़े एकत्र किये जाने चाहियें।

(५) अभ्रक, मेंगानीज़ और क्रोमाइट जैसे खनिजो को, जो अधिकतर निर्यात के लिये ही निकाले जाते हैं, जहाँ तक सम्भव हो विदेशी मंडियों के लिये तैयार अथवा अर्ध-तैयार माल के रूप में परिवर्तित करना चाहिये।

(६) नीची श्रेणी की कच्ची धातुओं के बारे में उपलब्ध आंकडों का व्यापारिक ढंग पर मूल्यांकन होना चाहिये और खनिजों की सफाई और संस्कार के बारे में गवेषणा होनी चाहिये।

४. योजना में उक्त सिद्धान्तों पर आधारित तथा प्राथमिकता की दृष्टि से निश्चित एक कार्यक्रम है। इस कार्यक्रम को प्रमुखतया क्रियान्वित करने वाले सरकारी संगठन ये हैं—भारत का भूगर्भ पर्यवेक्षण विभाग, भारतीय खान विभाग और ईंधन गवेषणाशाला, राष्ट्रीय धातु शोधन शाला और केन्द्रीय काँच तथा मिट्टी-पात्र गवेषणाशाला आदि राष्ट्रीय प्रयोगशालाएँ। इन सभी संगठनों की शक्ति बढ़ाई जा रही है। इन संगठनों के कार्य में समन्वय स्थापित करने के अभिप्राय से प्राकृतिक साधन और वैज्ञानिक गवेषणा मंत्रालय ने एक टैकनिकल समिति भी स्थापित कर दी है।

कुछ अधिक महत्त्वपूर्ण खनिजों के सम्बन्ध में अपनाये जाने वाले कार्यक्रम इस प्रकार हैं—

कोयला

५. भारत में कोयला उत्पादन करने वाले प्रमुख क्षेत्र बिहार और

पश्चिमी बंगाल में हैं जहाँ से कि कुल उत्पादन का ८२ प्रतिशत भाग प्राप्त होता है। अन्य क्षेत्र मध्यप्रदेश, उड़ीसा, हैदराबाद और आसाम में हैं। उत्खनन योग्य कोयले के संग्रह अनुमानतः २०,०००,०००,००० लाख टन हैं, जिसमें से ५,०००,०००,००० लाख टन बढ़िया श्रेणी का है। 'कोकिंग' कोयले के संग्रह अनुमानतः केवल २,०००,०००,००० लाख टन के लगभग हैं।

६. यद्यपि सामान्यतः औद्योगीकरण की योजनाओं के लिये कोयले के संग्रह पर्याप्त हैं परन्तु 'कोकिंग' और अर्ध-कोकिंग कोयले की स्थिति संतोष-जनक नहीं है। इसलिये भावी नीति परिरक्षण उपायों के कठोरता के साथ पालन की होनी चाहिये।

७. गत ३ दशकों से कोयले का उत्पादन प्रायः दोगुना हो गया है और सन् १९५१ में तो यह संख्या अधिकतम ३४० लाख टन तक पहुँच गई। रेलें सबसे अधिक कोयला (करीब ३१ प्रतिशत) खपाती हैं जिनमें से ⅘ हिस्सा कोकिंग कोयला और अर्ध-कोकिंग कोयला होता है। लगभग ११ प्रतिशत कोयला तो खदानों में ही खप जाता है। यह सुझाव रखा गया है कि यदि प्रबन्धक अपने कर्मियों पर उचित नियन्त्रण रखें जो कि प्रायः गुण एवं मात्रा का ध्यान किये बिना कोयला ले जाते हैं, तो कोयले की एक बड़ी मात्रा का बचाना सम्भव हो सकेगा।

८. धातु शोधन कोयले के कुल उत्पादन का ४० प्रतिशत भाग रेलों में और २१ प्रतिशत भाग लोहा और इस्पात उद्योग में लगाया जाता है। १३ प्रतिशत भाग का उपयोग कोयला गोदाम और निर्यात में होता है तथा शेष विविध उद्योगों में खप जाता है। लोहा और इस्पात के उत्पादन तथा जलाने के अतिरिक्त अन्य उद्देश्यों के लिये धातु शोधन कोकिंग कोयले का उपयोग अनावश्यक तथा लाभ रहित है। अतः इसके स्थान पर अन्य श्रेणी के कोयले का उपयोग किया जाना चाहिये। रेलें यथासम्भव शीघ्रता से कोकिंग कोयले की खपत को घटाने के लिये कदम उठा रही हैं।

९. कोकिंग कोयले के परिरक्षण की नितान्त आवश्यकता पर ध्यान देते हुए योजना ने सिफारिश की है कि (१) धातु शोधन कोकिंग कोयले के वर्त-मान उत्पादन स्तर को कायम रहने दिया जा सकता है परन्तु यदि बिना किसी बड़े खर्च के उन्हें पुनः खोला जा सकता हो तो कोकिंग कोयले का उत्पादन करने वाली खानों को बन्द कर दिया जाये, नये क्षेत्रों को विकसित न किया जाये। (२) कोयले के संग्रह, मिश्रण तथा धोने को कानून द्वारा लागू किया

जाये। इससे कोकिंग कोयले के उत्पादन में कमी की सम्भावना है। (३) कुछ चुनी हुई खानों के उत्खनन प्रभाविक ढंग से बन्द किये जायें। (४) जहाँ कोकिंग कोयला आवश्यक नहीं है वहाँ उसके स्थान पर दूसरे कोयले का प्रयोग किया जाये। (५) खानों से लोहे और इस्पात उद्योग की आवश्यकताओं से अधिक निकले कोयले का विदेशी विनिमय कमाने के अभिप्राय से निर्यात किया जाय।

१०. विकास कार्यक्रम :—(१) भारत के प्रायः १०० कोयला-क्षेत्रों में से कुछ ही को १००० से लेकर २००० फुट तक खोदा गया है। इसलिये सब क्षेत्रों के भूगर्भ शास्त्र की दृष्टि से नक्शे तैयार किये जाएँ और उनके संग्रहों का विस्तार जानने के लिये उनके साधनों का अनुमान लगाया जाय। योजना में इस बात की व्यवस्था कर दी गई है। इसके साथ ही चालू खदानों का पर्यवेक्षण किया जाये ताकि उपलब्ध साधनों का निश्चित अनुमान प्राप्त हो सके। विभिन्न कोयला खदानों में कोयले के स्तरों की प्रकृति तथा गुणों का एक भौतिक तथा रासायनिक पर्यवेक्षण होना चाहिये।

(२) कैलौरी महत्व, राख तत्व, नमी और जलाने के गुणों के आधार पर समस्त भारतीय कोयलों का वैज्ञानिक वर्गीकरण होना चाहिए। वर्गीकरण का प्रमुख लक्ष्य विभिन्न उद्देश्यों के लिये उपयुक्त वर्ग तथा श्रेणी निर्धारित करना हो। यह कार्य एक विशेषज्ञ समिति को सौंप दिया जाय जो कि भारतीय कोयलों तथा अन्य देशों के वैज्ञानिक वर्गीकरण से परिचित हों। इस प्रकार का वर्गीकरण विभिन्न उद्योगों के लिये कोयले के आवंटन और वितरण पर नियन्त्रण रखने में सहायक होगा और साथ ही प्रमापों के अनुसार कोयले के क्रय-विक्रय को भी सम्भव बनायगा।

(३) इस समय देश में निकाले गये कोयले के ६० प्रतिशत भाग को रेलें ढोती हैं, कोई नौका-नयन-योग्य जलमार्ग नहीं है जिनके द्वारा सस्ती दर पर कोयला ढोया जा सके। कुछ कोयला स्टीमरों द्वारा कलकत्ते से तटवर्ती क्षेत्रों को भेजा जाता है परन्तु समुद्री मार्ग का भाड़ा रेल से कहीं अधिक होता है। यदि कोयला उद्योग को तर्क-संगत प्रणाली पर लाना है तो उपभोक्ताओं तक उपयुक्त कोयला निकटतम कोयला खदानों से पहुँचाने का प्रबन्ध करना आवश्यक होगा। इस उद्देश्य को दृष्टि में रखते हुए रीवा, हैदराबाद और आसाम तथा मध्य प्रदेश के कोरबा जैसे दूरस्थ कोयला-क्षेत्रों के उत्पादन को बढ़ानाहोगा। रानीगंज, रामगढ़ और करणपुर की वर्तमान

कोयला-खदानों के कोयला क्षेत्रों के गैर-कोकिंग कोयले के उत्पादन को भी बढ़ाया जाना चाहिये ताकि वह अनावश्यक उद्देश्यों के लिये प्रयोग किये जाने वाले कोकिंग कोयले का स्थान ले सके। इन क्षेत्रों के विकास के लिये अपेक्षित परिवहन सुविधाओं पर ८५० लाख रुपये का अनुमान है। दक्षिण-भारत, पश्चिमी भारत, कच्छ और उत्तरी भारत की कठिन पूर्ति स्थिति को सुधारने के लिये भी इस प्रकार के उपाय किये जाने चाहिएँ।

११. कोयले के अधिक उत्पादन के उपर्युक्त कार्यक्रम के अतिरिक्त दक्षिण अरकाट में लिगनाइट के बृहत् संग्रहों की खोज-बीन और कुछ रेल-कोयला खदानों के विकास की योजनाएँ भी तैयार की जा चुकी हैं।

१२. प्रतिव्यक्ति-पाली उत्पादन बढाने के अभिप्राय से सरकार यंत्रीकरण, उचित नक्शे-बन्दी और भावी खानों के आयोजन, मजूरी की काम-दर-प्रणाली (piece-work system) की पुर. स्थापना और उत्पादन की इकाई से भत्ते को जोडने के सुझावों पर विचार कर रही है।

१३. अब तक भारत में कोयले के उत्खनन अथवा उपयोग सम्बन्धी समस्याओं पर संगठित गवेषणा नहीं हुई है। ईंधन गवेषणाशाला को कोक के उत्पादन और कार्बनीकरण, कोक की भट्टियों के डिजाइन, कोयले के धोने और मिश्रण तथा कोयले से गंधक दूर करने के गवेषणा कार्य को अपने हाथ में लेना चाहिए।

१४. योजना आयोग ने यह सुझाव रखा है कि बढिया क़िस्म के जलाने के कोयले का परीक्षण कानून द्वारा किया जाना चाहिये तथा वर्तमान विभिन्न उपकरों के स्थान पर एक संयुक्त उपकर लगाया जाना चाहिये। इससे प्राप्त धन का उपयोग सुरक्षा संवर्धन, परिरक्षण उपाय, श्रम कल्याण गवेषणा आदि में किया जाना चाहिये और अन्त में यह सुझाव रखा गया है कि कोयला उद्योग की समस्याओं को एक समुचित ढंग से सुलझाने के लिये एक कोयला बोर्ड स्थापित किया जाना चाहिये। इसके अनुरूप १९५२ का कोयला खान (परिरक्षण और सुरक्षा) अधिनियम लागू कर दिया गया है। यह अधिनियम केन्द्रीय सरकार को कोयले के परीक्षण के लिये उपाय अपनाने का अधिकार देता है। इस अधिनियम के अन्तर्गत केन्द्रीय सरकार ने ३ सदस्यों और एक सभापति का एक बोर्ड बना दिया है और कोयले और कोक पर निर्माण-शुल्क की दरें और हार्ड कोक पर लगने वाले अतिरिक्त शुल्क की दरें निर्धारित कर दी हैं।

कच्चा लोहा

१५. भारत के पास कच्चे लोहे के बृहत् साधन हैं। बढ़िया किस्म का कच्चा लोहा बिहार, उड़ीसा, मध्य प्रदेश, मद्रास, बम्बई और मैसूर में पाया जाता है। उत्तर प्रदेश के अल्मोड़ा जिले, पेप्सू और पश्चिमी बंगाल के कोयला क्षेत्रों में भी अपेक्षाकृत छोटे संग्रह हैं। निचली श्रेणी के संग्रह देश के विभिन्न भागों में छितरे हुये हैं। अनेक स्थानों के कच्चे लोहे में लौह की ऊंची मात्रा मिलती है और फास्फोरस तथा गन्धक की कमी होती है। बढ़िया किस्म के कच्चे लोहे (जिसमें ६० प्रतिशत से अधिक लोहा मिलता है) के संग्रह अनुमानतः १,००,००० लाख टन से भी अधिक हैं जिनमें से अधिकांश बिहार और उड़ीसा में केन्द्रित हैं।

१६. यद्यपि कच्चे लोहे के संग्रहों का सामान्यतः पर्यवेक्षण किया जा चुका है परन्तु कुछ अपवादों को छोड़ कर अनुसंधान इतना पर्याप्त तथा विशद नहीं था कि उनके परिणाम और गुण का सही अनुमान दे सके। अतएव यह सुझाव रखा गया है कि उड़ीसा के बोनाई और क्योंझर, मध्यप्रदेश के दुर्ग, चाँदा और बस्तर, बम्बई के रत्नगिरि और मद्रास के सेन्दूर संग्रहों की सावधानी से जांच पड़ताल की जाये।

१७. गत कुछ वर्षों से कच्चे लोहे का उत्पादन २० से ३० लाख टन के भीतर रहा है। अधिकांश कच्चे लोहे की खपत टाटानगर, आसनसोल और भद्रावती के लोहे और इस्पात के ३ कारखानों में हो जाती है। बहुत थोड़ी मात्रा निर्यात की जाती है। पिग आयरन (कच्चा लोहा) के वार्षिक उत्पादन की औसत १५ से २० लाख टन तक है और इस्पात की लगभग १० लाख टन। किसी भी तरह से घरेलू मांग पूरी नहीं हो पाती और अभाव को आयात द्वारा ही पूरा करना पड़ता है। युद्ध के दिनों में और युद्धोत्तर वर्षों में लोहे और इस्पात की कमी रही।

१८. १९५५-५६ तक अनुमानतः लोहे की मांग २७,३५,००० टन और इस्पात की २५,००,००० टन हो जायगी जबकि वर्तमान उत्पादन क्रमशः १८,७८,००० टन और १०,५०,००० टन है। पिग आयरन (कच्चा लोहा) और इस्पात के आयोजित बृहद् उत्पादन के लिये कच्चे माल के उत्पादन को बढ़ाने की आवश्यकता होगी। इसका अर्थ यह होगा कि परिवहन सुविधाओं का विस्तार करना होगा ताकि कच्चे माल को एकत्र किया जा सके और तैयार माल का परिवहन किया जा सके।

१६. कच्चे लोहे का निर्यात अनिश्चित रहा है, परन्तु हाल के वर्षों में विदेशों से मांग बढ़ गई है। तथापि परिवहन की परिसीमाओं के कारण इसकी पूर्ण पूर्ति न की जा सकी। लम्बे समय की नीति यह है कि कच्चे लोहे के निर्यात की आज्ञा देने के स्थान पर भीतरी और विदेशी मांग को पूरा करने के उद्देश्य से कच्चे लोहे के उत्पादन को बढ़ाया जाय।

कच्चा मेंगनीज

२०. मेगनीज़ एक महत्त्वपूर्ण औद्योगिक खनिज पदार्थ है जो लोहा और इस्पात उद्योग में पिघलाने की प्रक्रियाओं के काम में आता है। भारत में इस खनिज पदार्थ के बृहत् संग्रह हैं। क्योंकि रूस को छोड़ कर किसी भी बड़े औद्योगिक देश में मेगनीज़ के महत्त्वपूर्ण संग्रह नहीं हैं, इसलिए भारत के इन संग्रहों का बड़ा महत्त्व है। ये संग्रह मध्यप्रदेश, मध्यभारत, मद्रास, मैसूर और बम्बई के कुछ प्रदेशों और बिहार तथा उड़ीसा के कुछ छितरे प्रदेशों में केन्द्रित हैं। मध्यप्रदेश के संग्रह सबसे बड़े और समृद्ध हैं।

२१. संग्रहों के विश्वस्त अनुमान उपलब्ध नहीं हैं। मोटे अन्दाज़ से बढ़िया किस्म के कच्चे मेंगनीज़ के सग्रह डेढ़ करोड़ से २ करोड़ टन के लगभग होंगे और घटिया किस्म के संग्रह इससे तिगुनी मात्रा में होंगे।

२२. गत ४० वर्षों से मेंगनीज़ के वार्षिक उत्पादन का औसत लगभग ६,००,००० टन रहा है। तीन वर्षों में यह १८ लाख टन की सीमा को भी पार कर गया। टाटा आयरन एण्ड स्टील कम्पनी द्वारा थोड़ी मात्रा में उपयोग करने के अतिरिक्त प्राय: समस्त उत्पादन कच्ची धातु के रूप में निर्यात किया जाता है।

२३. मेंगनीज़ का उपयोग अधिकांशत: इस्पात उद्योग में इस्पात यंत्र के लिये अपेक्षित फैरो-मेंगनीज़ के उत्पादन के लिये होता है। कुछ मेगनीज़ कांच उद्योग द्वारा ड्राई सैल बनाने में प्रयोग मे आता है और कुछ का उपयोग रसायन उद्योग द्वारा किया जाता है। यह अनुमान किया जाता है कि लोहा तथा इस्पात और अन्य उद्योगों के विस्तार से १६५७-५८ तक घरेलू मांग १ लाख टन तक बढ़ जायगी।

२४. फिर भी मेंगनीज़ संग्रहों तथा लोहा और इस्पात के विकासशील उद्योग की आवश्यकताओं के बारे मे जानकारी के अभाव को ध्यान में रखते

हुये कठोर परिरक्षण की नीति अपनाने की आवश्यकता है। यदि बढ़िया किस्म के कच्चे मेंगनीज़ के संग्रह वर्तमान अनुमान से कम हैं तो प्रति वर्ष दस लाख टन तक कच्ची धातु निर्यात करने की नीति पर पुनः विचार करना होगा।

२५. यह सिफारिश की जाती है कि (१) क्योंकि कच्चे मेंगनीज़ के संग्रहों के बारे में विश्वस्त आँकड़े उपलब्ध नहीं हैं, इस लिये मध्यप्रदेश के संग्रहों और उड़ीसा, बम्बई, मैसूर और मद्रास के कुछ संग्रहों की जांच-पड़ताल की जाय, (२) कच्चे माल के रूप में निर्यात करने के बजाय, कच्चे मेंगनीज़ को निर्यात के उद्देश्य से फैरो-मेंगनीज़ और मेंगनीज़ रसायन के रूप में परिवर्तित कर दिया जाय और (३) घटिया दर्जे के मेंगनीज़ के सुधारने के बारे में अनुसंधान किया जाय; परित्यक्त खानों से बचा-खुचा कच्चा मेंगनीज़ निकाला जाय। उत्खनन में कच्चे मेंगनीज़ की छीज को समाप्त और नियंत्रित करने के उपाय किये जायँ।

क्रोमाइट

२६. भारत के पास क्रोमाइट की पूर्ति साधारण है। वह अधिकतर बिहार, मैसूर, बम्बई, मद्रास और उड़ीसा में पाया जाता है। कश्मीर राज्य के लद्दाख मे भी संग्रह है परन्तु उन तक प्रवेश प्राय असंभव ही है। इससे पूर्व कि उनका आर्थिक महत्त्व निश्चित किया जाय, मणिपुर राज्य और अण्डमान द्वीपों के संग्रहों की अधिक जांच-पडताल की आवश्यकता है।

२७. क्रोमाइट संग्रहों के बारे में कोई विश्वस्त अनुमान उपलब्ध नहीं है सन् १९५० और ५१ में कच्चे क्रोम का उत्पादन क्रमशः १६,७२९ टन और १५,८०२ टन था। इसका एक बड़ा भाग निर्यात किया जाता था। प्रायः यह सारा का सारा बढ़िया किस्म का क्रोम होता था जिसमें ४६ प्रतिशत अथवा इससे भी अधिक क्रोमिक आक्साइड होता था। क्रोमाइट की घरेलू खपत रिफ्रैक्टरी ईंटों और क्रोम रसायन बनाने में होती है। टाटा के एक बहुत छोटे पैमाने पर किये गये प्रयास के अतिरिक्त देश में फैरो-क्रोम अथवा क्रोमियम एलाय बनाने का कोई प्रयास नहीं किया गया।

२८. संग्रहों की विशालता के बारे में ठीक आँकड़ों की अनुपलब्धि को देखते हुये जून १९५१ से बढ़िया क़िस्म की धातु का निर्यात बिलकुल बन्द है। घटिया दर्जे की धातु के निर्यात के लिये प्रतिवर्ष अधिक से अधिक १०,०००

टन के लाइसेंस दिये जाते हैं। जैसे ही संग्रहों के बारे में अधिक जानकारी प्राप्त हो, इस नीति पर पुनः विचार किया जाना चाहिये।

२६. बिहार में सिंहभूम, उड़ीसा में बाउला पहाड़ियों, बम्बई में रत्नगिरि और मद्रास में कृष्णा के क्रोमाइट वाले प्रदेशों के विशद नक्शे तैयार किये जांय और आवश्यकता पडे तो खोद कर भी देखा जाय। इसके अतिरिक्त घटिया किस्म के क्रोम को सुधारने के लिये गवेषणा कार्य भी हाथ में लिया जाय।

लोहहीन धातुएँ

३०. तांबा, सीसा और जस्त आदि लोहहीन धातुओं के संग्रह भारत में अपर्याप्त हैं और टिन तो देश में है ही नहीं। इसलिये इन धातुओं का आयात किया जाता है और १९५० में आयात का मूल्य १६ करोड़ रुपये था।

३१. बिहार मे हजारीबाग और सिंहभूम, जयपुर मे खेतडी, अलवर में दरीबो, मद्रास में गणी और उत्तर प्रदेश में अल्मोड़ा तथा टेहरी-गढ़वाल क्षेत्रों मे तांबे की मौजूदगी का पता लगाने के लिये विशद भूगर्भ-पर्यवेक्षण किया जाय और तांबे केउत्खनन की संभावनाओं पर विचार किया जाय। देश के कई भागो में सीसा-जस्त के संग्रहों तथा बिहार के हजारीबाग जिले में टिन के संग्रहों की खबरों की जांच-पड़ताल की जाय।

बाक्साइट

३२. अल्यूमीनियम की प्रमुख कच्ची धातु बाक्साइट भारत में काफी और अनेक स्थानों में बटी हुई है। प्रमुखतम संग्रह बंबई, मध्यभारत, मध्य प्रदेश और बिहार राज्यों मे है। उड़ीसा, मद्रास और कश्मीर में भी थोड़ा मिलता है।

३३. संग्रहों के विश्वस्त आंकड़े उपलब्ध नहीं हैं, परन्तु सभी किस्म के कुछ संग्रहों का अनुमान लगभग २,५०० लाख टन है जिसमे से बढ़िया किस्म की धातु शायद ३५० लाख टन के लगभग होगी।

३४. गत दो वर्षों से देश का अल्यूमीनियम उद्योग प्रतिवर्ष २०,००० टन बाक्साइट का उपयोग कर रहा है। निर्माण करने वाले दोनों ही यूनिटों की विस्तार-सम्बन्धी योजनायें हैं, जिनका अर्थ होगा १९५५-५६ तक ४५,००० टन बाक्साइट की माँग। इसे आसानी से पूरा किया जा सकता है।

३५. संग्रहों के बारे में विश्वस्त आँकड़े प्राप्त करने के अभिप्राय से

संग्रहों की जांच-पडताल की जानी चाहिये। प्रत्येक बडे संग्रह की कच्ची धातु के गुणों की भी जांच की जाय। केन्द्रीय कांच और मिट्टी-पात्र संस्था के सहयोग से ब्यूरो आव माइन्स रिफ्रैक्ट्रीज और एब्रेसिब्ज के निर्माण के लिये बाक्साइट के उपयोग पर विचार करे।

मैगनेसाइट

३६. मैगनेसाइट का उपयोग मैगनेशियम साल्ट, मैटेलिक मैगनेशियम और रिफ्रेक्टरी ईंटें बनाने के काम में होता है। इसके बडे संग्रह मद्रास, मैसूर, उत्तर प्रदेश, कुर्ग, बम्बई राजस्थान और बिहार मे हैं।

३७. कुल उत्पादन का एक अंश ही इस्पात निर्माण कार्य के लिये रिफ्रैक्टरी ईंटें बनाने के काम में आता है और एक बडी मात्रा निर्यात कर दी जाती है। तथापि आक्सीक्लोराइड सीमेंट के निर्माण और मैटेलिक मैगनेशियम के निर्माण में कच्चे माल के रूप मे मैगनेसाइट के उपयोग की गुंजाइश है। रिफ्रैक्ट्रीज़ के लिये आजकल प्रयोग किये जाने वाले यढिया दर्जे के मैगनेसाइट के स्थान पर घटिया दर्जे के मैगनेसाइट और क्रोमाइट पत्थर के उपयोग की गवेषणा की जानी चाहिये।

अभ्रक

३८. अभ्रक सामरिक महत्त्व का खनिज पदार्थ है। इसकी सबसे ज्यादा खपत विद्युत् उद्योग में होती है। भारत एक महत्त्वपूर्ण भंडार है और समस्त संसार के कुल अभ्रक उत्पादन के ७० से ८० प्रतिशत भाग तक का उत्पादन करता है। तथापि घरेलू खपत बहुत थोडी है और अभ्रक उद्योग प्रायः विदेशी मंडियों पर ही अवलंबित है।

३९. इसके प्रमुख संग्रह बिहार, राजस्थान और मद्रास मे हैं। हाल ही के वर्षों में भारत के अन्य भागों में भी इनके पाए जाने की सूचना मिली है। पत्थर में अनियंत्रित मात्रा मे प्राप्त होने के कारण संग्रहों के आकार का अनुमान नहीं लगाया जा सकता। परन्तु यह निश्चय के साथ कहा जा सकता है कि अभी संग्रह अछूते पडे हैं और उत्पादन की वर्तमान दर के अनुसार अनेक दशकों तक चलेंगे।

४०. पिछले दशक में निर्यात किये गये अभ्रक का वार्षिक मूल्य १·९ करोड़ से ३ करोड रुपये तक था। माल भरने के अभिप्राय से अमरीकी सरकार

द्वारा बड़ी मात्रा में खरीदारी शुरू कर देने के कारण पिछले दो वर्षों में यह मूल्य बढ़ गया।

४१. इस समय अभ्रक का उत्खनन अधिकतर छोटे पैमाने पर ही किया जाता है। अधिकतर खुली खानों अथवा हल्की खानों में ही काम होता है। कुल ६०० पट्टेदारों में से अधिकांश के वित्तीय साधन सीमित हैं। जैसे ही अभ्रक खान से निकलता है वे इसे दलाल के हाथ बेच देते हैं ताकि वे अपना उत्खनन कार्य जारी रख सकें। इसलिये व्यवस्थित उत्खनन प्रणालियाँ अपनाने अथवा योग्य प्रबन्धक नियुक्त करने में उन्हें कोई रुचि नहीं। परिणाम स्वरूप छीज बहुत अधिक होती है। अभ्रक की खानों में योग्य मैनेजरों की नियुक्ति को अनिवार्य बनाने के बारे में कदम उठाये जा रहे हैं।

४२. आकार के अनुरूप छाँटने, काटने और कतरने के अतिरिक्त उद्योग में अभ्रक प्रायः प्राकृतिक रूप में ही उपयोग में आता है। अभ्रक की कतरनों और परतों की चादरें बना ली जाती हैं अथवा वस्त्र की सहायता से बाँध और दबा कर उपयुक्त आकार का बना लिया जाता है। इस प्रकार तैयार किये गये अभ्रक का श्रेणी-विभाजन किया जाता है और आकार तथा गुण के अनुरूप वर्गों में बाँट देते हैं। गुणों का वर्गीकरण एक बड़ी सीमा तक स्वविवेक का मामला है। बहुधा इसको लेकर खरीदार तथा विक्रेता में मतभेद उत्पन्न हो जाता है। इस बाधा को दूर करने के लिये प्रमाप निर्धारित करना और पंच-निर्णय का तंत्र स्थापित करना आवश्यक होगा। इधर भारतीय प्रमाप संस्था ने प्रमाप निर्धारित कर दिये हैं जिन्हें अन्तर्राष्ट्रीय प्रमाप संस्था से अनुमोदित कराना है।

४३. मोटे अन्दाज़ से भारत में प्रति वर्ष अभ्रक की खपत ७,००० पौंड के लगभग है। यह रेलों, विद्युत उपलब्धि कराने वाली कम्पनियों और लोहा तथा इस्पात कम्पनियों में बँट जाती है। चालू, अथवा विचाराधीन विद्युत् योजनाओं से अभ्रक की कतरनों और टुकड़ों की मांग बढ़ जायगी। परन्तु इस माँग को पूरा करने में कोई कठिनाई न होगी।

४४. माइकेनाइट अथवा तैयार अभ्रक की खपत का मूल्य करीब १० लाख रुपये होगा। इसमें से अधिकांश आयात किया जाता है, क्योंकि घरेलू उत्पादन नगण्य है। देश की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिये माइकेनाइट उद्योग स्थापित करने की सम्भावनाओं पर पुनः विचार करने की आवश्यकता है।

४५. उत्खनन और छाँटने के कार्य में अभ्रक की एक बड़ी मात्रा नष्ट हो जाती है। इसे पीस कर और पिसे हुए को विभिन्न उद्योगों में भराव के रूप में प्रयुक्त कर यह हानि बचाई जा सकती है। अभ्रक पीसने के उद्योग को स्थापित करने की सम्भावनाओं की जांच-पड़ताल की जानी चाहिये।

४६. आयोग निम्नलिखित सिफारिशें करता है :—

(१) बिहार और मद्रास के अभ्रक उत्पादन करने वाले प्रदेश काफी प्रसिद्ध हैं, परन्तु इनके विशद नक्शे अभी तक नहीं बने हैं। विशद भूगर्भ-कार्य किया जाना चाहिये जो कि बहुत संभव है नये संग्रहों को प्रकाश में लाये, विशेषकर राजस्थान में।

(२) राष्ट्रीय भौतिक प्रयोगशाला के सहयोग से ब्यूरो आव माइन्स विभिन्न प्रदेशों से प्राप्त होने वाले अभ्रक के गुणों का गवेषणा-कार्य हाथ में ले, जिससे कि विद्युत् सम्बन्धी गुणों के अनुरूप वर्गीकरण सम्भव हो सके। माइकेनाइट बनाने और अभ्रक पीसने का आर्थिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण कोई तरीका खोज निकालने के लिये गवेषणा भी की जानी चाहिये।

(३) अभ्रक के लिये एक केन्द्रीय हाट-व्यवस्था बोर्ड स्थापित करने की सम्भावनाओं की जाँच-पड़ताल की जाय। इससे अभ्रक के गुणों के बारे में विदेशी खरीदारों की शिकायतें कम हो जायेंगी।

खड़िया मिट्टी

४७. देश की औद्योगिक अर्थ-व्यवस्था में महत्त्व के खनिजों की गिनती में खड़िया का नम्बर कोयले और लोहे के बाद ही आता है। द्वितीय विश्व युद्ध से पहले सीमेंट तथा प्लास्टर आफ़ पेरिस बनाने में कच्चे माल के रूप में ही इसका अधिकतर उपयोग होता था। अमोनियम सल्फेट जैसी बहुमूल्य रासायनिक खाद तैयार करने में एक तत्त्व के रूप में इसका महत्त्व बहुत बढ़ गया है। गन्धक का तेज़ाब बनाने में भी इसका उपयोग किया जा सकता है। सिन्द्री में रासायनिक खाद का कारखाना स्थापित हो जाने से देश के खड़िया संग्रहों की ओर अधिक ध्यान दिया जा रहा है। ये संग्रह भारत के विभिन्न भागों में हैं। श्रेष्ठतम राजस्थान और दक्षिण भारत में हैं। टेहरी-गढ़वाल, हिमाचल प्रदेश और पश्चिम भारत के कुछ प्रदेशों में छोटे संग्रह हैं।

४८. भारतीय संग्रहों का खड़िया उत्पादन सन् १९४९ में लगभग १,४०,००० टन से बढ़कर १९५१ में २,००,००० टन से भी कुछ अधिक हो गया। इस समय वर्ष में लगभग ६४,००० टन खड़िया सीमेंट में और लगभग २,००० टन से ३,००० टन तक प्लास्टर ग्राव पेरिस में खप जाती है। परन्तु जब सिन्द्री का कारखाना पूरे ज़ोर-शोर से काम करने लगेगा तो प्रतिवर्ष ६००,००० टन खड़िया की आवश्यकता होगी। लगभग ३७,००० टन खड़िया ट्रावन्कोर की फर्टिलाइज़र्स एण्ड केमिकल्स लिमिटेड कम्पनी को अमोनियम सल्फेट बनाने के लिये चाहिये। योजना में निर्दिष्ट सीमेंट के बढ़े हुए उत्पादन से खड़िया की माँग बढ़ जायगी और १९५५-५६ तक कुल आवश्यकताओं के ८,७०,००० टन तक बढ़ जाने की सम्भावना है।

४९. इस समय खड़िया का उत्खनन छोटी-छोटी खानों तक ही सीमित है। बढ़ती हुई माँग के कारण बडे पैमाने पर उत्खनन-कार्य करना होगा और उत्खनन तथा परिवहन का यंत्रीकरण तक आवश्यक हो सकता है।

५०. यह सिफारिश की जाती है कि भारत के विभिन्न भागों में खड़िया की खोज जारी रखी जाय। प्रायोगिक खुदाई की सहायता से राजस्थान के उन क्षेत्रों का संगठित अनुसन्धान किया जाये, जहाँ खड़िया मिलती है। नमक की क्यारियों से भी खड़िया प्राप्त करने के प्रयास किये जाने चाहियें।

गन्धक

५१. गन्धक प्राकृतिक रूप में देसी गन्धक और मिली जुली अवस्था में सोनामक्खी के रूप में पाया जाता है। भारत में देसी गन्धक के बृहत् संग्रह नहीं हैं। सोनामक्खी के संग्रह कश्मीर, बिहार, बम्बई, मैसूर और शिमला के निकट छोटे-छोटे क्षेत्रों में पाये जाते हैं। मद्रास मे नीलगिरि ज़िले में सोने के संग्रहों मे भी यह काफी मात्रा में मिलता है। तांबे के अधिकाश संग्रहों में ताँबा सोनामक्खी के रूप में मिलता है। किसी भी संग्रह के सोनामक्खी के बारे में विस्तृत अनुमान उपलब्ध नहीं हैं।

भारतीय कोयले की कुछ किस्मों में भी गन्धक प्रचुर मात्रा में पाया जाता है और यदि व्यावसायिक आधार पर उसे प्राप्त किया जा सके तो इसे भी गन्धक का एक साधन समझा जा सकता है। ईंधन गवेषणा संस्था इस पर अनुसंधान कर रही है।

तांबे की कच्ची धातु को पिघलाने में प्रतिवर्ष अनुमानतः ५,००० टन से ६,००० टन तक गन्धक हवा में उड़ जाता है। इसको पुनः प्राप्त करने अथवा गन्धक के तेज़ाब में परिवर्तित कर लेने का प्रश्न विचाराधीन है।

५२. क्योंकि गंधक का स्थानीय उत्पादन नहीं होता, इसलिये देश की आवश्यकताओं की पूर्ति आयात द्वारा होती है। भारत ने सन् १९४९ में ४१,००० टन और १९५० में ५५,००० टन गन्धक का आयात किया। गत ३ वर्षों मे आयात के वार्षिक मूल्य का औसत लगभग ८० लाख रुपये रहा।

५३. गन्धक की वर्तमान वार्षिक आवश्यकताएं अनुमानतः ६५,००० टन हैं। प्रमुख उपभोक्ता गन्धक का तेज़ाब उद्योग है, जिसका उत्पादन १९३९ में २५,००० टन से बढ़ कर १९५० मे १,००,००० टन से भी कुछ अधिक हो गया। १९५५-५६ तक गन्धक के तेज़ाब की मांग लगभग २,१५,००० टन तक बढ़ जायगी। इस प्रकार १९५५-५६ तक गंधक की कुल आवश्यकता लगभग ८५,००० टन हो जायगी।

५४. यह सिफारिश की जाती है कि (१) यह ध्यान रखते हुए कि भारत में प्राकृतिक गंधक के संग्रह नहीं हैं, सभी ज्ञात और सम्भव साधनों की खोज की जाय, विशेषकर बिहार में अजमोर, शिमला के निकट तारादेवी, मैसूर मे चितलदुर्ग और मद्रास में पोलूर के सोनामक्खी संग्रहों की, (२) जहाँ कहीं सम्भव हो देसी गन्धक के स्थान पर सोनामक्खी अथवा अन्य कच्चे माल का उपयोग किया जाय, (३) भारतीय ताँबा कारपोरेशन के ताँबा पिघलाने के कारखाने से गन्धक को पुनः प्राप्त करने के प्रश्न को छोड़ न दिया जाय, (४) गंधक का तेज़ाब बनाने मे कच्चे माल के रूप में खड़िया के उपयोग पर विचार किया जाय, और (५) कोयले से गंधक निकालने और गंधक की व्यापारिक आधार पर पुनः प्राप्ति का गवेषणा-कार्य किया जाना चाहिए।

—:०:—

अध्याय २८

वैज्ञानिक और औद्योगिक गवेषणा

किसी भी देश की आयोजित अर्थ-व्यवस्था में विज्ञान का निश्चित रूप से महत्त्वपूर्ण भाग होता है। वैज्ञानिक गवेषणा के परिणामस्वरूप विकसित श्रेष्ठ प्रणालियों से उत्पादन बढ़ाया जा सकता है। अल्प मात्रा में उपलब्ध सामग्री के स्थान पर सस्ती एवं प्रचुर मात्रा में मिलने वाली सामग्री और अब तक बेकार पड़ी सामग्री का उपयोग ढूँढ़ कर राष्ट्रीय साधन बढ़ाये जा सकते हैं। इसलिये राष्ट्रीय सम्पत्ति बढ़ाने और जीवनयापन का मानदण्ड ऊँचा उठाने के लिये यह आवश्यक है कि प्रत्येक आर्थिक पहलू सम्बन्धी गवेषणा का एक बृहत् और संतुलित कार्यक्रम बनाया जाये।

२. द्वितीय विश्वयुद्ध के दिनों में, जब भारत पूर्व की सशस्त्र सेनाओं का एक प्रमुख पूर्ति-केन्द्र बना हुआ था, वैज्ञानिक और औद्योगिक गवेषणा की ओर ध्यान गया। उन चीज़ों के बनाने के लिये दूसरी सामग्री खोजनी थी जो उससे पहले आयात की जाती थीं, और इस सामग्री को काम में लाने के तरीके ढूँढने थे। सन् १९४० में भारत सरकार ने वैज्ञानिक और औद्योगिक गवेषणा बोर्ड की स्थापना की और दो वर्ष बाद वैज्ञानिक और औद्योगिक गवेषणा परिषद् की भी स्थापना कर दी गई। अनेक समस्याओं को, जो अधिकतर सैनिक पूर्ति से सम्बद्ध थीं, सुलझाया गया और स्वदेशी सामग्री से आवश्यक वस्तुओं के उत्पादन की प्रक्रियाएँ विकसित की गईं।

३. जब से देश स्वतन्त्र हुआ है, वैज्ञानिक और औद्योगिक गवेषणा पर और भी अधिक ज़ोर दिया जा रहा है और इन कार्यक्रमों पर काम हो रहा है—(१) वैज्ञानिक पर्यवेक्षण और साधनों का मूल्यांकन, (२) गवेषणा द्वारा सुधरी हुई प्रक्रियाओं और प्रणालियों का विकास और (३) गवेषणा के परिणामों की उत्पादन में प्रयुक्ति। अनेक क्षेत्रों में नये पर्यवेक्षण और अनुसंधान आरम्भ किये गये और भूगर्भ-पर्यवेक्षण आदि पर्यवेक्षण अभिकरणों को अधिक शक्तिशाली बनाया गया ताकि देश के प्राकृतिक साधनों की अधिक सूक्ष्मता से

जाँच-पड़ताल की जा सके। परन्तु इस क्षेत्र में सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण बात देश के विभिन्न भागों में अनेक प्रयोगशालाओं और गवेषणा-संस्थाओं की स्थापना है। वे हैं—

(१) राष्ट्रीय भौतिक प्रयोगशाला, नई दिल्ली।
(२) राष्ट्रीय रसायन प्रयोगशाला, पूना।
(३) राष्ट्रीय धातुशोधन प्रयोगशाला, जमशेदपुर।
(४) ईंधन गवेषणाशाला, जियलगोडा।
(५) केन्द्रीय खाद्य प्रौद्योगिक गवेषणाशाला, मैसूर।
(६) केन्द्रीय औषधि गवेषणाशाला, लखनऊ।
(७) केन्द्रीय काँच और मिट्टी-पात्र गवेषणाशाला, कलकत्ता।
(८) केन्द्रीय सड़क गवेषणाशाला, दिल्ली।
(९) केन्द्रीय भवन-निर्माण गवेषणाशाला, रुड़की।
(१०) केन्द्रीय चमड़ा गवेषणाशाला, मद्रास।
(११) केन्द्रीय विद्युत्-रसायन गवेषणाशाला, कराईकुडी।

इनमें से अधिकांश संस्थाओं ने अपना कार्य आरम्भ भी कर दिया है और साधनों का मूल्यांकन, प्रयोग, प्रमापों का विकास और लाभप्रद प्रक्रियाओं का विकास कर रही हैं। विभिन्न प्रकार के कच्चे माल तथा तैयार वस्तुओं के प्रमाप स्थिर करने का काम ये संस्थाएँ भारतीय प्रमाप संस्था के निकट सम्पर्क एवं सहयोग से कर रही हैं। तथापि इनमें से कुछ अभी निर्माणावस्था में हैं और उपयुक्त कर्मचारी और ठीक साज-सज्जा की प्राप्ति में आने वाली प्रारम्भिक बाधाओं पर विजय प्राप्त कर रही हैं।

४. इनके अतिरिक्त, योजना की अवधि में ३ अन्य संस्थाओं की स्थापना का सुझाव रखा गया है—एक रेडियो और विद्युत्कण गवेषणाशाला, एक मैकेनिकल इंजीनियरिंग गवेषणाशाला जिसमें कुटीर और छोटे पैमाने के उद्योगों से संबद्ध समस्याओं के अध्ययन पर विशेष बल दिया जायगा, और एक केन्द्रीय नमक गवेषणा केन्द्र।

५. औद्योगिक उत्पादन की एक बड़ी मात्रा मध्यम और छोटे पैमाने के उत्पादकों के हाथ में है जो स्वतन्त्र गवेषणा का भार वहन नहीं कर सकते। प्रयोगशालाओं और गवेषणा-संस्थाओं की स्थापना से उन्हें गवेषणा के परिणाम उपलब्ध हो सकेंगे और इस प्रकार उनके लिये लागत कम करना तथा अपने

उत्पादन की किस्म सुधारना संभव हो सकेगा। इस प्रकार इन संस्थाओं की स्थापना छोटे पैमाने के और कुटीर उद्योगों के विकास की अनुपूरक है।

६. गवेषणा के लिये रुपये का प्रबन्ध करना अब तक अधिकांशतः केन्द्रीय सरकार का ही दायित्व रहा है और एक बड़ी सीमा तक इसे जारी रखना पडेगा। परन्तु औद्योगिक गवेषणा को बढ़ावा देने में उद्योगों की ओर से पहल की जाने की भी आवश्यकता है। राष्ट्रीय प्रयोगशालाओं की लागत में अनेक उद्योगों ने महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है और संबद्ध उद्योगों ने अपने खर्च से निम्नलिखित गवेषणा समितियाँ बनाई हैं (सरकार ने भी महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है)—

(१) अहमदाबाद वस्त्र उद्योग गवेषणा समिति, अहमदाबाद।

(२) सिल्क और आर्ट सिल्क मिल्स गवेषणा समिति, बम्बई।

(३) दक्षिण भारत वस्त्र उद्योग गवेषणा समिति, कोयम्बटूर।

यह आशा की जाती है कि उद्योग ज्यों-ज्यों गवेषणा-प्रिय होते जायेंगे, गवेषणा को बडे पैमाने पर संरक्षण प्रदान करेंगे।

७. वैज्ञानिक गवेषणा के पूर्ण उपयोगी बनने के लिये यह आवश्यक है कि प्रयोगशालाओं के परिणामों का व्यापारिक उत्पादन के लिये उपयोग किया जाय। बहुत से मामलों में नमूने के यंत्र पर प्रयोग करने की आवश्यकता है। अनेक प्रयोगशालाओं के लिये नमूने के यंत्र खरीदने के लिए वैज्ञानिक गवेषणा के विकास-कार्यक्रम में व्यवस्था है।

८. यह भी देखा गया है कि नमूने के यंत्र के प्रयोग पूर्ण हो जाने पर भी कुछ मामलों में व्यापारिक उत्पादन को आरम्भ करने में कुछ कमी रह जाती है। इन मामलों में यह आवश्यक होगा कि अर्ध-व्यापारिक अथवा उसी प्रकार के यंत्रों द्वारा नई प्रक्रियाओं और उनकी आर्थिक सम्भावनाओं का प्रभावी प्रदर्शन किया जाय। इसके बाद यह निर्णय करना सम्भव होगा कि व्यापारिक उत्पादन को राज्य-चालित उद्योग के रूप में विकसित होने दिया जाये या गैरसरकारी उद्योग के लिये छोड़ दिया जाये। इस उद्देश्य के लिये राष्ट्रीय गवेषणा विकास कारपोरेशन की स्थापना का सुझाव रखा गया है और योजना आयोग के विचार में यह सुझाव स्वीकार कर लिया जाना चाहिये।

६. बड़े पैमाने पर वैज्ञानिक गवेषणा के संवर्धन में प्रशिक्षित कर्मचारियों की पर्याप्त संख्या मे आवश्यकता पड़ती है। प्रयोगशालाओं और उद्योगों को चलाने के लिये एक बड़ी संख्या में वैज्ञानिकों और शिल्पियों की आवश्यकता होगी। उच्च शिल्प और वैज्ञानिक जन-बल की कमी को पूरा करने के लिये सुझाये गये उपाय अध्याय ३३ में दिये गये हैं।

—:o:—

अध्याय २६

औद्योगिक विकास और नीति

इससे पहले के अध्यायों में इस बात पर ज़ोर दिया गया है कि इस समय कृषि के क्षेत्र में पर्याप्त और शीघ्रता के साथ सुधार किया जाय, लेकिन इसका अर्थ यह नहीं है कि औद्योगिक विकास का महत्त्व किसी तरह भी कम है। कम उन्नत अर्थ-व्यवस्था में कृषि और औद्योगिक विकास में वस्तुतः कोई पारस्परिक विरोध नहीं है। एक हद के बाद खेती के काम में तब तक विकास नहीं हो सकता जब तक कि खेत के काम में लगे हुए फालतू लोग धीरे धीरे उद्योगों और अन्य सेवाओं में न लगाये जाएं। दूसरी ओर औद्योगिक विकास के लिये यह जरूरी है कि उद्योगों में काम करने वाले मज़दूरों आदि के भरणपोषण के लिये अनाज के उत्पादन में बड़ी मात्रा में वृद्धि हो और साथ ही अधिकाधिक औद्योगिक उत्पादन के लिये कच्चे माल की मात्रा में भी बढ़ोतरी हो।

भारत का औद्योगिक ढांचा

२. दूसरे देशों के मुकाबले में भारत में उद्योगों के विकास की पिछड़ी हुई दशा का अनुमान इस बात से लगाया जा सकता है कि सन् १९४८–४९ में कारखानों से होने वाली आय का भाग कुल राष्ट्रीय आय का ६·६ प्रतिशत ही था और इन कारखानों में कोई २४ लाख व्यक्ति काम कर रहे हैं जो काम करने वाले कुल मज़दूरों की संख्या का १·८ प्रतिशत भाग ही हैं। हो सकता है कि भारत के कुल औद्योगिक उत्पादन का परिणाम बहुत अधिक मालूम हो, लेकिन यहाँ का मज़दूर दूसरे उन्नत देशों के मज़दूरों के मुकाबले में बहुत कम चीज़ें तैयार कर पाता है।

३. पहले विश्व-युद्ध के पूर्व भारत में दो ही ऐसे बड़े उद्योग थे जिनका काफी विकास हुआ था। ये थे सूती कपड़ा और पटसन उद्योग। इन दोनों उद्योगों के लिये भारत को असाधारण प्राकृतिक सुविधाएं प्राप्त थीं। विश्व-युद्ध के समय में सोच-समझ कर संरक्षण देने की नीति के फलस्वरूप सूती कपड़ा, लोहा-इस्पात और कागज़ उद्योगों की काफी बढ़ोतरी हुई और

साथ ही बड़े पैमाने पर चीनी उद्योग भी शुरू किया गया जिससे देश की सारी आवश्यकतायें पूरी हो सकती थीं। सीमेंट, दियासलाई, सीसा, वनस्पति और साबुन के उत्पादन में भी बड़ी वृद्धि हुई।

४. इससे विश्व-युद्ध और उसके बाद के मुद्रा-प्रसार और चीज़ों की भारी कमी के कारण भारतीय उद्योगों को बड़ा प्रोत्साहन मिला। लोहा और इस्पात, सूती कपड़ा, कागज और सीमेंट जैसे बड़े और अच्छी तरह जमे हुये उद्योगों में सन् १९३९-४५ के बीच भरपूर काम हुआ और इसके फलस्वरूप उनका विस्तार हुआ। साथ ही इंजीनियरिंग सम्बन्धी हलके उद्योगों तथा रासायनिक और औषधि सम्बन्धी उद्योगों को भी काफ़ी प्रोत्साहन मिला। इनके अतिरिक्त रेल के इंजन, स्वयंचलित गाड़ियाँ, जहाज़, साइकिलें, सीने की मशीनें और नकली डीज़ल इंजन, कपड़े बनाने वाली मशीनें और नकली रेशम या रेयान आदि बहुत से नये उद्योग भी शुरू किये गये।

५. भारत में औद्योगिक विकास के क्षेत्र में अब तक आम लोगों की जरूरत की चीज़ें तैयार करने वाले उद्योगों को महत्त्व दिया गया है। पूँजीगत माल और उत्पादक वस्तुएँ तैयार करने वाले दूसरे बुनियादी उद्योगों का काम पिछड़ गया है। कपड़ा, चीनी, साबुन, दियासलाई और नमक जैसी आम जरूरत की चीजें तैयार करने वाले उद्योगों का उत्पादन इतना हो गया है कि उससे देश की वर्तमान अनिवार्य ज़रूरतें पूरी हो सकती हैं। दूसरी ओर पूँजीगत माल और उत्पादक वस्तुएँ तैयार करने वाले अधिकतर उद्योगों की वर्तमान सामर्थ्य इतनी नहीं है कि उनसे इस समय की भी जरूरतें पूरी की जा सकें। लोहा और इस्पात उद्योग मुश्किल से देश की पचास फी सदी आवश्यकता ही पूरी कर सकता है और यही हाल भारी रासायनिक उद्योग का भी है। जहाँ तक भिन्न-भिन्न उद्योगों में काम आने वाली मशीनों और कल-पुर्ज़े आदि तैयार करने वाले उद्योगों का सम्बन्ध है, कपड़ा उद्योग के काम में आने वाली कुछ मशीनें आदि ही तैयार करने का काम शुरू किया गया है, लेकिन यह काम बहुत ही छोटे पैमाने पर है। बिजली तैयार करने के सम्बन्ध में विकास की जो बड़ी-बड़ी योजनाएँ शुरू की जा रही हैं, वे सब ऐसी मशीनों पर निर्भर हैं जिन्हें विदेशों से मंगाना है। इसी तरह कृत्रिम (सिन्थेटिक) दवाइयाँ, कृमि-नाशक, रंग उद्योग, और आरगैनिक कैमीकल्स में अभी प्रारम्भिक काम ही शुरू किया गया है।

भारी औद्योगिक विकास के लिये इन कमियों को दूर करना होगा।

राष्ट्रीय आयोजन और गैर-सरकारी उद्योग क्षेत्र

६. अप्रैल सन् १९४८ के औद्योगिक नीति सम्बन्धी प्रस्ताव में यह बताया गया था कि औद्योगिक विकास के बारे में राष्ट्रीय नीति की मुख्य बातें क्या हैं। हथियार और गोला बारूद जैसे उद्योगों को भारत सरकार सिर्फ अपने अधिकार में ही रखेगी। कोयला, लोहा और इस्पात, विमान निर्माण, जलपोत निर्माण, टेलीफोन, तार और बेतार यंत्र निर्माण जैसे उद्योगों के भावी विकास के लिये सरकार (केन्द्रीय सरकार राज्य सरकार या और दूसरी सरकारी संस्थाएँ) जिम्मेदार होगी। यह हो सकता है कि इन उद्योगों के विकास में सरकार उद्योगपतियों से उतना सहयोग देने की माँग करे जितना कि वह आवश्यक समझती हो। बाकी उद्योग-धन्धे उद्योगपतियों के लिये छोड दिये गये हैं। लेकिन विशेष-महत्त्व के कुछ उद्योगों के बारे में भारत सरकार द्वारा नियन्त्रण और नियमन की व्यवस्था की गई है। साथ ही सरकार ऐसे किसी भी गैर-सरकारी उद्योग में हस्तक्षेप कर सकेगी जिसकी प्रगति असन्तोषजनक पाई जायेगी।

७. इस नीति के अधीन औद्योगिक विकास का एक ऐसा कार्यक्रम तैयार किया जा सकता है जिससे देश की वर्तमान आवश्यकतायें पूरी हो सकेंगी। हमारे विचार में वर्तमान उद्योगों के राष्ट्रीयकरण को, जिसका अर्थ सरकार द्वारा उत्पादन सामग्री को अपने अधिकार में ले लेना है, प्राथमिकता की सूची में नीचे ही रखना चाहिये, विशेषकर इसलिये कि इस तरह से हस्तांतरण का अधिकतर उद्देश्य न्यायपूर्ण नियमों द्वारा पूरा हो जायेगा। अर्थ-व्यवस्था के विकास में निजी या गैरसरकारी उद्योग महत्त्वपूर्ण योग दे सकते हैं। लेकिन उसे मज़दूरों, रुपया लगाने वालों और उपभोक्ताओं के प्रति नयी जिम्मेदारियाँ स्वीकार करनी होगीं। साथ ही उसे कार्यकुशलता और ईमानदारी का ऊँचा स्तर बनाये रखना होगा।

८. सन् १९५१ का उद्योग विकास और नियमन कानून इस तरह से बनाया गया है कि सरकार उपर्युक्त औद्योगिक नीति पर अमल कर सकेगी। यह कानून पहली सूची में दिये गये सैंतीस उद्योगों पर लागू होता है। सूची में ये चीजें शामिल हैं:—(क) सूती और ऊनी कपड़ा, वनस्पति और वनस्पति तेल, चीनी, नमक, रसायनिक औषधियाँ और दवाएँ आदि

(ख) पूँजीगत माल और उत्पादक वस्तुएँ जैसे लोहा-इस्पात, रेल के इंजन और डिब्बे, अलौह धातुएँ और मिश्रित धातुएँ, उद्योगों के लिये भारी मशीनें और मशीनों के पुर्जे, (ग) ईंधन तैयार करने वाले उद्योग—जैसे कोयला, विद्युत्, औद्योगिक काम में आने वाले अलकोहल, मोटर और हवाई जहाज़ों के काम में आने वाला पेट्रोल और दूसरे तेल, (घ) बिजली तैयार करने, उसे एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुँचाने और उसका वितरण करने वाली मशीनें और दूसरी सामग्री, बिजली की बैटरियाँ और बिजली का सामान तैयार करने वाले उद्योग, (ङ) भारी रासायनिक उद्योग जिनमें रासायनिक खाद भी शामिल है, (च) स्वयं-चलित गाड़ियाँ जिनमें ट्रैक्टर, हवाई जहाज़, जलपोत, टैलिफोन, तार और बेतार यन्त्र भी शामिल हैं, (छ) और कई दूसरे उद्योग, जैसे, हथियार और गोला बारूद, खेती के काम में आने वाले औज़ार, गणित और विज्ञान के यन्त्र, छोटे और हाथ से काम में लाये जाने वाले औजार, सिलाई और कताई की मशीनें, साइकिलें, लालटैनें, शीशा और मिट्टी के बर्तन। कानून की मुख्य-मुख्य बातें इस प्रकार हैं :—

(१) अनुसूचित उद्योगों में से सभी वर्तमान उद्योगों को निश्चित समय के अन्दर रजिस्टर करवाना होगा।

(२) भारत सरकार से लाइसेंस प्राप्त किये बिना कोई भी नया औद्योगिक कारखाना नहीं खोला जा सकेगा और न ही वर्तमान कारखाने में विस्तार किया जा सकेगा।

(३) अगर सरकार यह समझती है कि किसी अनुसूचित उद्योग के उत्पादन में ऐसी गिरावट आ गई है जिसका औचित्य सिद्ध नहीं किया जा सकता, जो निश्चित रूप से पहले से खराब क़िस्म की वस्तुएँ तैयार कर रहा है, या जिसके मूल्य में अनुचित बढ़ोतरी हो गई है तो वह उस उद्योग की जाँच करने का आदेश दे सकती है।

(४) अगर कोई उद्योग जांच के बाद किये गये आदेशों का पालन नहीं करता तो सरकार उसका प्रबन्ध अपने हाथ में ले सकती है।

६. कानून में अनुसूचित उद्योगों के विकास और नियमन सम्बन्धी मामलों पर सरकार को सलाह देने के उद्देश्य से एक केन्द्रीय सलाहकार परिषद् बनाने की व्यवस्था की गई है। इस परिषद् में मालिकों, कर्मचारियों, उप-

भोक्ताओं और कुछ दूसरे वर्गों के प्रतिनिधि शामिल होंगे। इस परिषद की स्थापना की जा चुकी है।

१०. कानून में विकास परिषदें बनाने की भी व्यवस्था की गई है, जो एक ओर जनता और दूसरी ओर निजी या गैरसरकारी उद्योगों के बीच आवश्यक सम्पर्क बनाये रखने का काम करेंगी और इस बात की देख-रेख करेंगी कि गैर सरकारी उद्योग धीरे धीरे अपने आप को विकास की योजना के अनुसार अधिक से अधिक ढालने की कोशिश कर रहे हैं या नहीं। भारत सरकार किसी भी अनुसूचित उद्योग के लिये ऐसी परिषदें बना सकती है। इनमें उद्योगपतियों और श्रमिकों के प्रतिनिधि, उपभोक्ताओं के प्रतिनिधि और ऐसे लोग लिये जायेंगे जो उस उद्योग के बारे में विशेष जानकारी रखते होंगे। इन परिषदों को कई काम करने होंगे। जिनमें महत्त्वपूर्ण ये हैं:—

(१) उत्पादन के लक्ष्यों के बारे में सिफारिश करना और उत्पादन कार्यक्रमों में सामंजस्य स्थापित करना।

(२) चीज़ों के क्षय को रोकने, उनकी किस्म में सुधार करने और उनकी कीमत में कमी करने के उद्देश्य से कार्यकुशलता के मापदंडों के बारे में सुझाव देना।

(३) इस बारे में सिफारिशें करना कि उद्योगों के काम में सुधार करने और उनकी उत्पादन-शक्ति को और अधिक काम में लाने के बारे में क्या उपाय किये जायें।

(४) इस बात की जांच करना कि बड़े उद्योगों के साथ चलने वाले छोटे छोटे और दूसरे घरेलू उद्योगों के विकास को प्रोत्साहन देने के उद्देश्य के उत्पादन के क्रमों और अवस्थाओं का कहां तक विकेन्द्रीयकरण किया जा सकता है।

(५) वैज्ञानिक और औद्योगिक अनुसंधान का काम शुरू करना या आगे बढ़ाना और आंकड़े इकट्ठे करना।

इन विकास परिषदों को पर्याप्त शासकीय और टैकनिकल कर्मचारियों की आवश्यकता होगी जिसका प्रबन्ध सरकार करेगी। इस कार्य-प्रणाली से सिर्फ यही नहीं होगा कि विकास परिषदें योग्यता के साथ अपना काम चला सकेंगी बल्कि इससे सरकार के ऐसे प्रशिक्षित कर्मचारी तैयार करने में सहायता

मिलेगी, जिनको भिन्न-भिन्न उद्योगों की आर्थिक और शासन सम्बन्धी समस्याओं की अच्छी जानकारी होगी और जो आवश्यकता पड़ने पर प्रबन्ध सम्बन्धी दायित्व संभालने में समर्थ होंगे। इसमें जो खर्च होगा उसे पूरा करने के लिये कानून में किसी भी अनुसूचित उद्योग में तैयार होने वाली चीज़ों पर उपकर लगाने की व्यवस्था की गई है। इस उपकर से जो आय होगी वह विकास-परिषदों के शासन सम्बन्धी खर्च को पूरा करने के अलावा उद्योग से सम्बन्ध रखनेवाले वैज्ञानिक और औद्योगिक अनुसंधान के विकास, उद्योग में तैयार की जानेवाली चीज़ों के नमूनों और उनकी क़िस्म में सुधार करने और संबंधित उद्योग के टैक्निकल जानकारों और मज़दूरों को प्रशिक्षण की सुविधायें देने पर खर्च की जायेगी। निम्न सात उद्योगों के लिये तुरन्त ही इसी आधार पर विकास-परिषदें खोली जायेंगी :—

भारी रासायनिक पदार्थ (एसिड) और रासायनिक खाद, भारी रासायनिक पदार्थ (अलकली), कागज जिसमें अखबारी कागज और गत्ता शामिल है, चमड़ा और चमड़े की चीजें, साइकिलें और उनके पुर्ज़े, शीशा और मिट्टी के बर्तन, इंटर्नल कंबशन इन्जन और बिजली से चलने वाले यंत्र।

योजना में औद्योगिक प्राथमिकताएँ

११. योजना-काल के अन्दर ही उद्योगों की प्राथमिकता का क्रम निश्चित करने के लिये इन-इन बातों का ध्यान रखना ज़रूरी है:—तात्कालिक उद्देश्य क्या है, क्या-क्या साधन प्राप्त हैं और ऊपर बताये गये सरकारी और गैर-सरकारी क्षेत्रों के काम के बारे में क्या नीति है। योजना में उन सभी औद्योगिक प्रोग्रामों को पूरा करने की व्यवस्था की गई है जो भारत सरकार और राज्य-सरकारों ने शुरू कर रखे हैं। इसके अतिरिक्त भारत-सरकार पर सुरक्षा सम्बन्धी कुछ उद्योगों की स्थापना की विशेष जिम्मेवारी आ पड़ी है। इनके अलावा औद्योगिक क्षेत्र में प्राथमिकताओं का क्रम निश्चित करने के बारे में निम्नलिखित सुझाव रखा गया है :—

(१) पटसन और परतदार लकड़ी जैसी उत्पादक वस्तुओं के उद्योग और कपड़ा, चीनी, साबुन, वनस्पति, रंग और वार्निश जैसी आम ज़रूरत की चीजें तैयार करने वाले उद्योगों की वर्तमान सामर्थ्य का पूरा उपयोग किया जाय।

पंचवर्षीय यो
उ
सन् १९५०-५१ में उत्पादन
टनों में
१३००
१२००
११००
१०००
९००
८००
७००
६००
५००
४००
३००
२००
१००
०
अल्यूमोनियम
अखबारी कागज
कास्टिक सोडा
सोडा ऐश
गन्धक का तेज़ाब
कागज और कागज का गत्ता
शीशा
सुपर फास्फेट
अमोनियम सल्फेट
कच्चा लोहा
पटसन की वस्तु
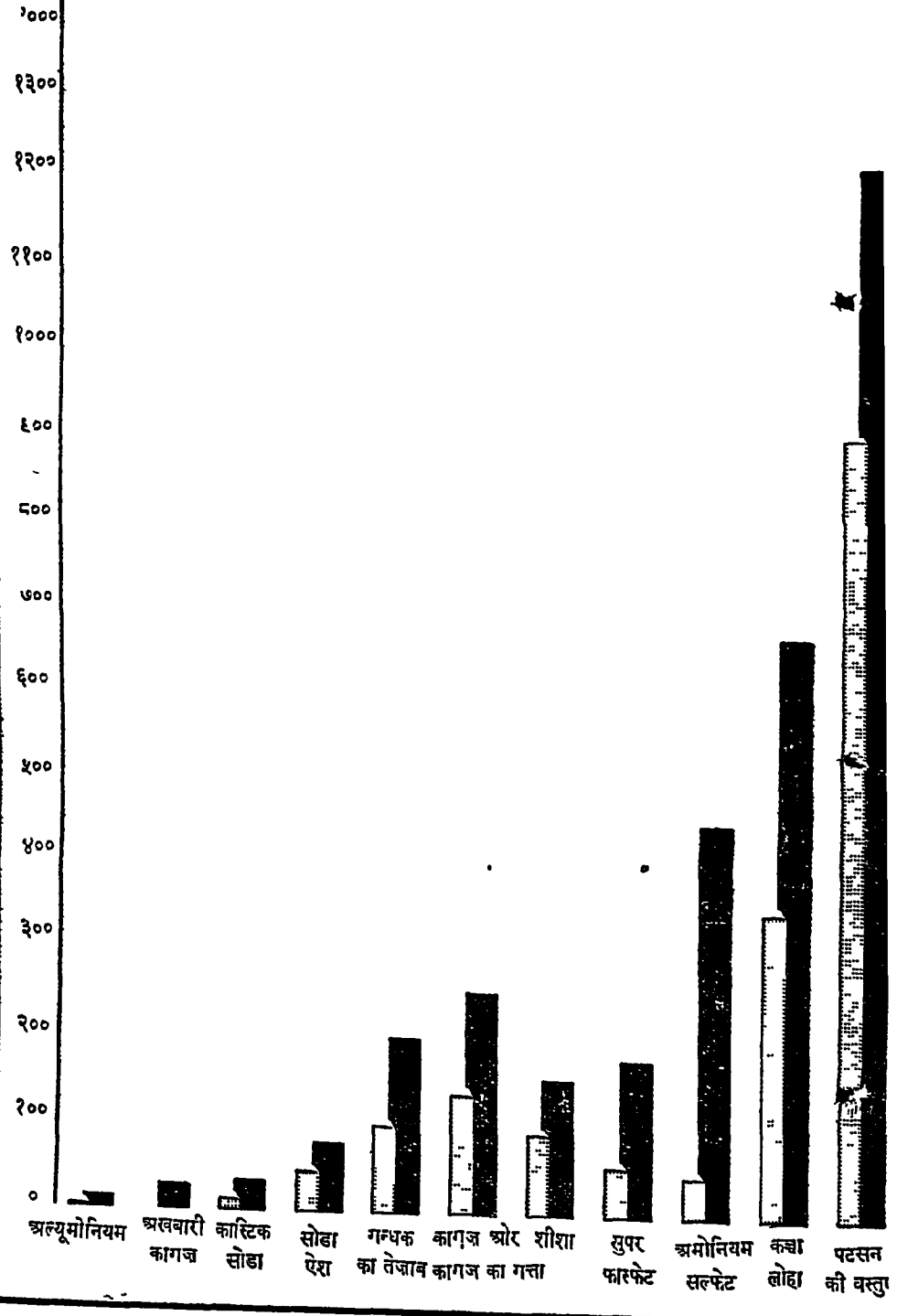
। के लक्ष्य

सन् १९५५-५६ के लिए लक्ष्य
करोड़ गजों में
करोड़ पौंडों में
संख्या
४८००
२६६२
सूती
सीमेंट
मिल
हाथ करघा
सूत
ऊन की वस्तुएं
साइकिलें
डीजल इंजन
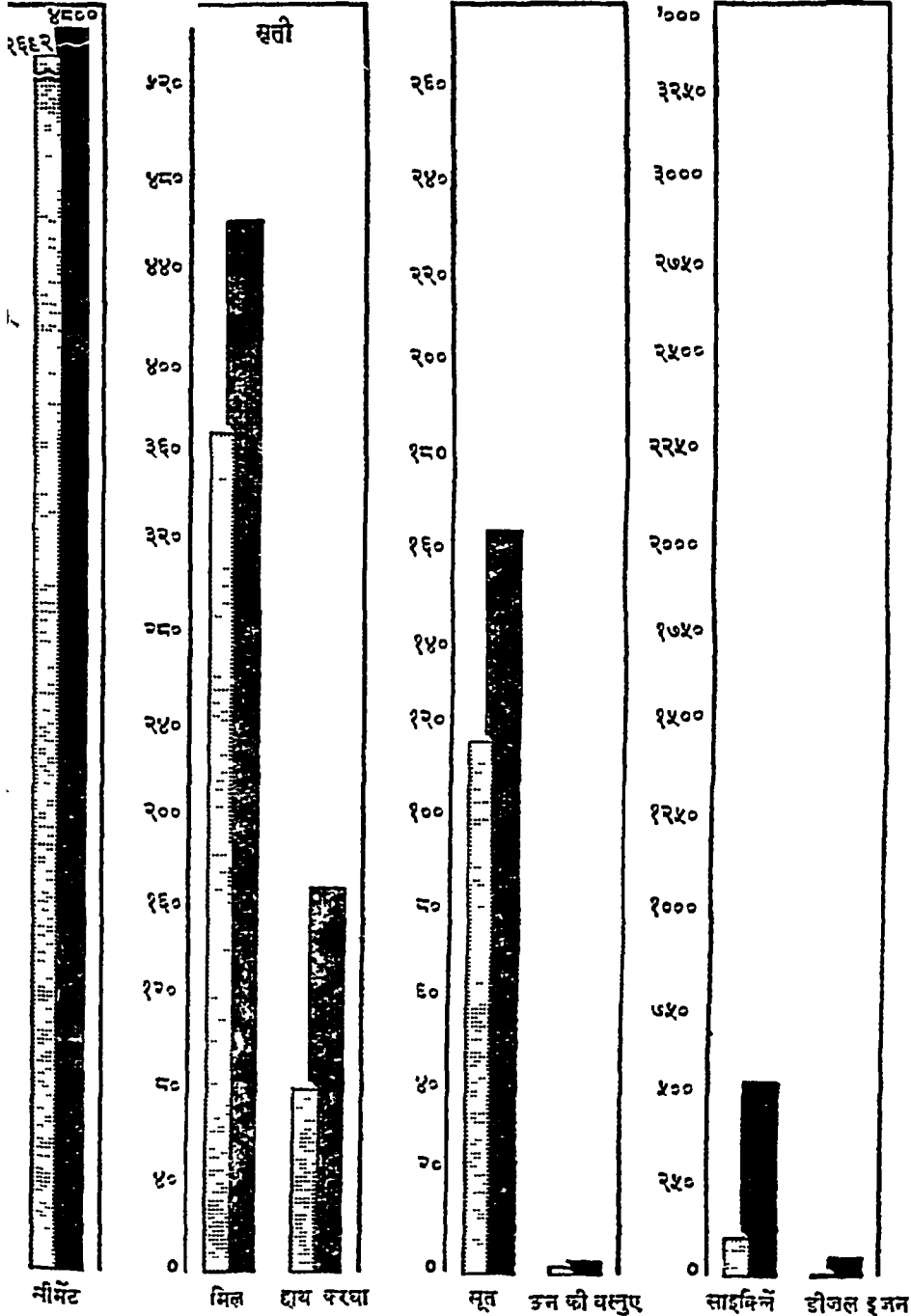
(२) लोहा-इस्पात, अल्यूमीनियम, सीमेंट, उर्वरक, भारी रासायनिक पदार्थ और मशीनी औजार जैसे उत्पादक और पूँजीगत वस्तु उद्योगों की क्षमता का विस्तार किया जाय।

(३) ऐसे कारखाने बना कर तैयार कर लिये जायें जिन पर कुछ पूँजी लगाई जा चुकी है।

(४) नए कारखाने स्थापित किये जायें जो वर्तमान कमियों और न्यूनताओं को दूर करके औद्योगिक ढांचे को मजबूत बनाएँ—जैसे खड़िया मिट्टी से गंधक तैयार करना आदि।

१२. नीति-निर्धारण में वर्तमान शक्ति के संपूर्ण प्रयोग पर बल देना पहली आवश्यकता होनी चाहिये क्योंकि जहाँ कहीं भी ऐसी शक्ति विद्यमान है, वहां साधारण रूप से उत्तरोत्तर कम खर्च पर चीजें तैयार की जा सकेंगी। जिन उद्योगों में कच्चे माल की कमी को छोड़ और दूसरे कारणों से इस शक्ति का प्रयोग नहीं किया जा रहा, वहाँ बडी सावधानी के साथ प्रत्येक उद्योग की कठिनाइयों और उनको दूर करने के आवश्यक उपायों के बारे में सावधानी के साथ छानबीन करनी होगी।

१३. पूँजीगत माल और उत्पादक-वस्तुएँ तैयार करने वाले उद्योगों की शक्ति बढ़ाने की जरूरत है, जिससे कि योजना-काल में कृषि, सिंचाई और बिजली के विकास के कारण पैदा होने वाली अतिरिक्त मांग पूरी की जा सके और औद्योगिक ढांचे का संतुलन ठीक-ठाक किया जा सके। लोहा और इस्पात उद्योग विकास के लिये बुनियादी महत्त्व का उद्योग है—चाहे यह विकास कृषि क्षेत्र में हो या उद्योगों के क्षेत्र में या यातायात के क्षेत्र में। चूंकि ये उद्योग सुरक्षा के लिये भी महत्त्व रखते हैं, इसलिये इन्हें प्राथमिकता की सूची में ऊँचा स्थान दिया जायगा। पूँजीगत माल तैयार करने वाले उद्योगों और ऐसे उद्योगों पर, जो खेती के काम आनेवाले औजार, डीज़ल इंजन और पंप तैयार करते हैं और इस प्रकार खेती की उपज में प्रत्यक्ष रूप से योग देते हैं, तुरन्त ही और आने वाले वर्षों में उत्तरोत्तर अधिक ध्यान देना चाहिये। उत्पादक वस्तुएँ तैयार करनेवाले उद्योगों में सीमेंट और रासायनिक खाद तैयार करनेवाले उद्योगों को अधिक महत्त्वपूर्ण स्थान मिलना चाहिये।

१४. योजना-काल आरम्भ होने के समय गैरसरकारी और सरकारी क्षेत्रों में कुछ ऐसे कारखाने शुरू हो गये थे जिन पर काफी खर्चा हो चुका था और जो बन कर तैयार नहीं हुए थे। इन कारखानों का जल्दी ही बन कर तैयार हो जाना बड़ा जरूरी है जिससे कि देश को इन में लगाई गई पूँजी से लाभ प्राप्त होने लगे। नई औद्योगिक योजनाएँ शुरू करने के बारे में कसौटी यह होगी कि इन योजनाओं को पंचवर्षीय योजना के प्राथमिकता क्रम में क्या स्थान प्राप्त है। लेकिन जिन कारखानों का काम शुरू किया जा चुका है और जिन पर काफी रकम लगाई जा चुकी है उनके बारे में इस कसौटी की शर्तों को नरम करना ठीक होगा।

१५. इसके अतिरिक्त कुछ विशेष उद्योगों के लिये, जैसे खड़िया मिट्टी से गंधक तैयार करने, नकली रेशम (रेग्रान) और अखबारी कागज़ के लिये लुगदी तैयार करने, जस्ता, तांबा और टीन जैसी अलौह धातुयें तैयार करने और कच्ची धातुओं को गलाने और साफ करने के उद्योगों के वास्ते नये कारखाने शुरू करने के लिये विशेष प्रयत्न करने की जरूरत है। ये उद्योग इसलिये महत्त्वपूर्ण हैं कि इनसे ऐसी महत्त्वपूर्ण सामग्री की उपलब्धि बढ़ाने में सीधी सहायता मिल सकेगी जिसकी विश्व भर में भारी कमी है।

१६. आप देखेंगे कि प्राथमिकता-क्रम के उपर्युक्त कार्यक्रम में वर्तमान स्थिति में ऐसी व्यवस्था की गई है कि आम जरूरत की चीज़ों के उत्पादन में वृद्धि, मुख्य रूप से उद्योगों की वर्तमान शक्ति का पूरा पूरा उपयोग कर के होगी। इसका अर्थ यह हुआ कि योजना-काल में इन उद्योगों को प्राथमिकता-क्रम मे ऊँचा स्थान नहीं दिया गया। सूती कपड़ा, चीनी, नमक दियासलाई और साबुन जैसी आवश्यक चीज़ें तैयार करने वाले उद्योगों की उत्पादन-शक्ति इतनी है कि उससे इन चीज़ों की वर्तमान जरूरतें पूरी हो सकती हैं। इसलिये इन उद्योगों के सम्बन्ध में इस नीति पर जोर दिया जाना चाहिये कि ये उद्योग अपने वर्तमान कारखानों की मरम्मत करके उन्हें नये ढंग का बना कर तथा मशीनों आदि को और अधिक संतुलित करके कार्य-कुशलता में वृद्धि करें। दूसरे दर्जे के महत्त्व की उपभोग सामग्री जैसे रेडियो, बाइसिकल, स्वयंचालित गाड़ियां, बिजली के पंखे आदि के बारे में भी यही समस्या आगे आती है कि उत्पादन-शक्ति का पूरा पूरा उपयोग किया जाय, और वर्तमान कारखानों या ऐसे कारखानों

का विकास किया जाय जो इस समय बनाये जा रहे हैं। इन कारखानों का कम से कम इतना विकास किया जाना चाहिये कि आर्थिक दृष्टि से ये हानिकारक न हों। साथ ही इस बात की भी लगातार कोशिश की जानी चाहिये कि कल-पुर्जे जोड़ने के कारखानों को कल-पुर्जे तैयार करने के कारखानों में बदल दिया जाय।

सरकारी क्षेत्र में विकास

१७. उद्योगों के सरकारी क्षेत्र के विकास के लिये जो प्रोग्राम तैयार किया गया है उसका ब्यौरा इस अध्याय के अन्त में विवरण संख्या १ में दिया गया है। अनुमान है कि केन्द्रीय और राज्य सरकारों की योजनाओं पर कुल मिला कर ९४ करोड़ रुपया खर्च होगा। इसमें से ८३ करोड रुपया ऐसी योजनाओं पर खर्च किया जायेगा जो सीधे केन्द्रीय सरकार के अधीन हैं। राज्य-सरकारों द्वारा शुरू की जाने वाली योजनाओं पर लगभग ११ करोड़ रुपया खर्च होगा जिसमें से ४·८ करोड़ रुपया भारत सरकार कर्ज़ के रूप में देगी। इनमें से कुछ योजनाओं पर गैर-सरकारी देशी और विदेशी पूंजी लगाने की व्यवस्था की गई है और ऐसी पूंजी कोई २० करोड़ रुपये तक होगी।

१८. सरकारी क्षेत्र की सबसे बड़ी औद्योगिक योजना लोहे और इस्पात का एक नया कारखाना शुरू करने की है। अनुमान है कि इस कारखाने पर कुल मिलाकर ८० करोड़ रुपया खर्च होगा। ३० करोड़ रुपया योजना-काल में खर्च किया जायगा। ख्याल है कि इस ३० करोड रुपये की रकम में से १५ करोड़ रुपया देशी और विदेशी पूँजी के रूप में प्राप्त होगा। इस कारखाने में कोई ८ लाख टन कच्चा लोहा और ३ लाख ५० हज़ार टन इस्पात तैयार हो सकेगा। आशा है कि सन् १९५५-५६ तक इस कारखाने में साढ़े तीन लाख टन कच्चा लोहा तैयार होने लगेगा। योजना में सिंद्री खाद कारखाने के पूर्ण निर्माण की व्यवस्था की गई है जो प्रतिवर्ष साढ़े तीन लाख टन अमोनियम सल्फेट तैयार कर सकेगा। इसके साथ ही योजना में चित्तरंजन के रेल इंजन बनाने के कारखाने और मैसूर राज्य में जलहल्ली नामक स्थान पर मशीनों के कलपुर्ज़े आदि बनाने के कारखाने को बनाकर तैयार करने की भी व्यवस्था है। चित्तरंजन के रेल के इंजन बनाने के कारखाने में सन् १९५७ तक प्रतिवर्ष १२० इंजन बनाये जा

सकेंगे। जलहल्ली के कारखाने में विशेष रूप से बारीक और ठीक-ठीक नाप-तौल करने के यन्त्रों के पुर्जे बनाये जायेंगे, और इस प्रकार इस कारखाने से भारी और कम वज़न के इंजीनियरी उद्योगों के विकास में सहायता मिलेगी। अनुमान है कि योजना-काल में इस कारखाने पर ६.६३ करोड़ रुपया खर्च होगा और सन् १९५५-५६ तक इस कारखाने में प्रतिवर्ष ४ करोड़ रुपये की कीमत की मशीनों के १६०० पुर्ज़े आदि तैयार होने लगेंगे। इनके अलावा एक और योजना है जिसके अनुसार सरकार विशाखापत्तनम के जहाज़ बनाने के कारखाने को अपने हाथ में ले लेगी और उसका विकास करेगी। इन कारखानों में इंजन और बायलर तैयार करने का भी विचार है। इस बारे में भी छान-बीन की जा रही है कि बिजली के भारी यन्त्र आदि बनाने का उद्योग शुरू करने के लिये ५० करोड़ रुपये की रकम का एक हिस्सा अलग कर दिया जाय।

१९. उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि अधिकतर योजनायें पूँजीगत माल या मध्यवर्ती माल के उत्पादन के बारे में हैं, जो न सिर्फ तात्कालिक आवश्यकताओं को देखते हुए बल्कि भावी आर्थिक विकास की दृष्टि से भी बड़ा महत्त्व रखती हैं। इनके विकास से औद्योगिक ढांचे का वर्तमान एकतरफापन कुछ हद तक कम हो जायगा। पेनिसिलीन और डी० डी० टी० तैयार करने के कारखाने उपर्युक्त श्रेणी में नहीं आते, लेकिन सार्वजनिक स्वास्थ्य की वर्तमान स्थिति में इनका विशेष महत्त्व है।

२०. राज्य सरकारों द्वारा तैयार की जाने वाली योजनाओं में मध्यप्रदेश की अखबारी कागज़ तैयार करने की योजना और मैसूर आयरन एण्ड स्टील वर्क्स के विकास सम्बन्धी योजना का उल्लेख करना जरूरी है। मध्यप्रदेश के कारखाने में प्रतिवर्ष तीस हज़ार टन अखबारी कागज़ तैयार किया जा सकेगा। मैसूर आयरन और स्टील वर्क्स के विकास से तैयार इस्पात के उत्पादन में ६० हज़ार टन की वृद्धि की जा सकेगी। यह वृद्धि कच्चे लोहे को बिजली की सहायता से गलाकर की जायगी। कच्चे लोहे को बिजली से गलाने का देश में यह पहला प्रयोग होगा।

२१. औद्योगिक विकास में सरकार के लगातार हिस्सा लेते जाने के कारण सरकारी उद्योगों के लिये उचित संगठन की ज़रूरत का प्रश्न उठ खड़ा हुआ है। इन उद्योगों को सफल बनाने के लिये यह जरूरी है कि इनके प्रबन्धकों

में पहल करने की और जल्दी ही निर्णय करने की शक्ति हो। अगर ये उद्योग सीधे सरकारी विभाग के अधीन रहे तो ऐसा करना कठिन होगा। दूसरी ओर इन प्रबन्धकों को कितनी स्वतन्त्रता देनी चाहिये, यह एक ऐसा विषय है जिस पर आगे अनुभव प्राप्त किये बिना कुछ निश्चित मत निर्धारण करना कठिन होगा। भारत सरकार के अधीन कुछ उद्योगों में डायरेक्टर मंडल बनाये गये हैं जिन्हें प्रबन्ध सम्बन्धी वही अधिकार प्राप्त हैं जो गैर-सरकारी उद्योगों के डायरेक्टर मंडलों को प्राप्त हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि वर्तमान स्थिति में इस प्रकार की व्यवस्था उचित है और उसके विस्तार की जरूरत है।

गैर-सरकारी क्षेत्र में विकास

२२. उद्योगों के गैर-सरकारी क्षेत्र में कुछ बड़े उद्योगों के विकास के लिये जो प्रोग्राम तैयार किया गया है उसका ब्यौरा इस अध्याय के अन्त में विवरण संख्या २ में दिया गया है। अनुमान है इस प्रोग्राम को पूरा करने के लिये कुल मिला कर २३३ करोड़ रुपये की लागत की जरूरत है। इसके अलावा १५० करोड़ रुपये की अतिरिक्त लागत का अनुमान लगाया गया है। यह रकम कारखानों और मशीनों की बदल और उन्हें नया बनाने के लिए खर्च की जायेगी। इस रकम का कोई ८० फी सदी भाग पूँजीगत माल और उत्पादक वस्तुएँ तैयार करने के उद्योगों में लगाया जायगा। इसका अधिक-तर भाग लोहा और इस्पात उद्योग (४३ करोड़ रुपये), पेट्रोल साफ करने के कारखानों (६४ करोड़ रुपये), सीमेंट (१५·४ करोड़ रुपये), अल्यूमीनियम (६ करोड़ रुपये), और रासायनिक खाद, भारी रासायनिक पदार्थ और पावर अलकोहल उद्योग (१२ करोड़ रुपये) पर खर्च किया जायगा। गैर-सरकारी क्षेत्र में और अधिक बिजली (१,७६,००० किलोवाट) तैयार करने में ५ साल के समय में १६ करोड़ रुपया खर्च होगा। आम जरूरतों की चीज़ें तैयार करने के उद्योगों में मुख्य रूप से वर्तमान उत्पादन शक्ति का पूरा उपयोग करके उत्पादन में वृद्धि करने पर ज़ोर दिया गया है। लेकिन कुछ नये उद्योगों में जैसे नकली रेशम (रेआन), दवाइयाँ और औषधियाँ तैयार करने के उद्योगों में काफी पूँजी लगाने की व्यवस्था की गई है।

२३. यह याद रखना चाहिए कि सरकार गैर-सरकारी क्षेत्र में अपना प्रभाव डाल सकती है, पर वह यह निश्चित नहीं कर सकती कि पूंजी कहाँ लगाई जाये और कहां नहीं, इसलिए विभिन्न उद्योगों के प्रस्तावित विकास प्रोग्राम यह देखकर तैयार किये गये हैं कि क्या करना संभव है और उचित

है। ये कार्यक्रम संबंधित उद्योगों के प्रतिनिधियों और स्वतंत्र विशेषज्ञों की सलाह से बनाये गये हैं। ये कार्यक्रम प्राप्त आंकड़ों आदि के आधार पर और ग्याहरवें पैराग्राफ में दिये गये प्राथमिकता-क्रम के अनुसार विकास की आवश्यकता और संभावनाओं को ध्यान में रखते हुए गंभीर अध्ययन और अनुमान लगाने के बाद तैयार किये गये हैं। इस सम्बन्ध में ४२ संगठित उद्योगों के अध्ययन के बारे में अलग पुस्तकें प्रकाशित की जा चुकी हैं.

२४. सरकारी और गैर-सरकारी दोनों प्रकार के उद्योगों पर योजना-काल में जितनी पूंजी लगाई जानी है उसका कोई २६ प्रतिशत भाग धातु-शोधन उद्योगों (लोहा और इस्पात और अल्यूमीनियम), २० प्रतिशत भाग पेट्रोल साफ करने के कारखानों, १६ प्रतिशत भाग इंजीनीयरी उद्योगों और ८ प्रतिशत भाग भारी रासायनिक उद्योगों, रासायनिक खाद और औषधि उद्योगों में लगाया जायगा। दूसरे उद्योगों में इस से कम पूंजी लगाने की व्यवस्था की गई है। कपड़ा उद्योग (कपास, पटसन, नकली रेशम और ऊन) पर लगभग ६ प्रतिशत, सीमेंट पर कोई ५ प्रतिशत और कागज़, अखबारी कागज़ और गत्ते तैयार करने के उद्योग पर कोई ४ प्रतिशत पूंजी लगाने की व्यवस्था है। मुख्य उत्पादक और पूंजीगत माल उत्पादन में निम्नलिखित रूप से वृद्धि होगी :—

१. भारी रासायनिक वस्तुएं (गंधक का तेजाब, कास्टिक सोडा और सोडा ऐश)	१,५६,००० टन
२. उर्वरक (अमोनियम सल्फेट और सुपर फास्फेट)	५,२८,६०० टन
३. लोहा और इस्पात	
(क) कच्चा लोहा (लोहा गलाने की भट्टियों के लिये)	३,१०,००० टन
(ख) इस्पात	३,६४,००० टन
४. अल्यूमीनियम	८,३०० टन
५. सीमेंट	२,१०,८०,००० टन
६. रेल इंजन	१५०(+५० बायलर)
७. डीज़ल इंजन	४४,५००
८. बिजली से चलने वाले पम्प	४५,७०० से ५०,७००

६. धुनाई के इंजन	६००
१०. बुनाई के लिये रिंगफ्रेम	४४०
११. सादे, अर्ध और पूर्ण स्वयंचालित करघे	४,१००

जहां तक आम लोगों की जरूरत की चीजों का सम्बन्ध है कपड़ा, चीनी, कागज, गत्ता, साबुन, शीशा और वनस्पति तेलों के उत्पादन में काफी वृद्धि होने का अनुमान है, जो इस प्रकार है :—

कपड़ा	१,८७,२०,००,००० गज
चीनी	३,८४,००० टन
नमक	४,२६,००० टन
कागज़ और गत्ता	८६,००० टन
शीशे की चादरें	२०,१५० टन
वनस्पति तेल	१,८२,००० टन

आम जरूरत की टिकाऊ चीजों जैसे साइकिलों, सीनेकी मशीनों, कीटाणु और कृमि नाशक दवाओं के उत्पादन में वृद्धि होने का भी अनुमान लगाया गया है।

लक्ष्य प्राप्ति की दिशा मे प्रगति

२५. पिछले अठारह महीनों में औद्योगिक उत्पादन में सामान्य रूप से वृद्धि हुई है। इसके कारण इस प्रकार हैं :—(क) योजना-काल के आरम्भ में नये कारखानों का शुरू हो जाना या उनका उत्पादन की पहली अवस्था में होना, (ख) विश्व-युद्ध के बाद कुछ उद्योगों द्वारा पुरानी मशीनों की जगह नयी मशीनें आदि लगाना जिसके लाभदायक परिणाम हुए, (ग) अधिक मात्रा में कच्चा माल मिलने के कारण कुछ उद्योगों में पूरी शक्ति से काम किया जाना, (घ) आयात-नीति के अमल और उसकी प्रबन्ध-व्यवस्था में सुधार होना और (ङ) रेलों द्वारा परिवहन संबन्धी सुविधाओं में सुधार किया जाना। इस अध्याय के अंत में विवरण संख्या ३ में यह बताया गया है कि योजनाकाल के अंत में उद्योगों की अतिरिक्त सामर्थ्य कितनी बढ़ जायेगी और कुछ उद्योगों ने सन् १६५१-५२ में क्या-क्या सफलतायें प्राप्त कीं। इस विवरण में बताया गया है कि अधिक महत्त्वपूर्ण उद्योगों की क्षमता में १६५१-५२ में जो वृद्धि हुई वह कुल अनुमानित वृद्धि के प्रतिशतक के रूप में इस प्रकार है:—

सीमेंट—३० प्रतिशत, सूत कताई के लिये स्पिंडलें—४६ प्रतिशत, नाइट्रोजन-युक्त रासायनिक खाद—८७ प्रतिशत, फास्फेट-युक्त रासायनिक-खाद—६० प्रतिशत, गंधक का तेजाब—२० प्रतिशत, कास्टिक-सोडा—२० प्रतिशत। पर यह ध्यान में रखना चाहिये कि लोहा और इस्पात, पेट्रोल साफ करने के उद्योग और अल्यूमीनियम तैयार करने जैसे उद्योगों में अभी तक बहुत कम पूँजी लगाई गई है। आगामी वर्षों में कहीं अधिक रकम लगाने की व्यवस्था की गई है। जहाँ तक विभिन्न क्षेत्रों के वास्तविक उत्पादन का सम्बन्ध है—पिछले छः महीनों में मिलों में तैयार किये जाने वाले सूत और कपड़े के उत्पादन में काफी वृद्धि हुई है और यदि प्रतिमास इतनी ही मात्रा में कपड़ा तैयार होता रहा, तो हो सकता है कि कपड़ा-मिलें योजना में निर्धारित लक्ष्य तक पहुँच जायें यानी ४,७०,००,००,००० गज कपड़ा तैयार करने लगें। दूसरी ओर हाथ करघा-उद्योग के क्षेत्र में कोई विकास नहीं हुआ है। इसका मतलब यह होता है कि आगामी वर्षों में उन उपायों पर ज़ोर देने की जरूरत है, जिनसे कपड़ा-उद्योग का यह महत्त्वपूर्ण अङ्ग अपना उत्पादन-लक्ष्य प्राप्त कर सके। चीनी, पावर अल्कोहल, सीमेंट, कागज, नकली रेशम (रेआन), परतदार लकड़ी और इंजीनियरी के कुछ उद्योगों में भी उत्पादन की वृद्धि हुई है। दूसरी ओर, गंधक का तेजाब, बिजली के केबिल और तार और ए. सी. एस. आर. कंडक्टर तैयार करने के उद्योगों में कोई खास वृद्धि नहीं हुई। इसका एक कारण यह है कि इन उद्योगों को कच्चा माल प्राप्त होने में कठिनाई का सामना करना पड़ा और कच्चे-माल के भाव भी बढ़े हुए थे। मोटे तौर पर यह ख्याल किया जाता है कि सन् १९५२-५३ में भी उत्पादन की वृद्धि होती रहेगी क्योंकि यह आशा की जाती है कि योजना में उल्लिखित बहुत-सी औद्योगिक योजनायें सन् १९५२-५३ में पूरी हो जायेंगी और उत्पादन का काम भी शुरू हो जायगा। शीशे की चादरें, डीज़ल इंजन आदि तैयार करने वाले उद्योगों को सहायता देने के लिये विशेष प्रयत्नों की जरूरत है। इन उद्योगों के उत्पादन में सितम्बर सन् १९५२ में खत्म होने वाले छः महीनों में कमी हुई है। इसका कारण देश में इन चीज़ों का स्टाक इकट्ठा हो जाना है।

कन्ट्रोल और विकास के लिए प्रेरणाएँ

२६. उपर्युक्त लक्ष्यों की प्राप्ति मुख्यतः इस बात पर निर्भर होगी कि गैर-सरकारी क्षेत्र के उद्योग कहाँ तक कार्यक्रमों को पूरा कर सकते हैं। इस संबंध

में एक बड़ी बात पूँजी प्राप्त करना है। कुल बचत इतनी सीमित है कि वह ऐसे उद्योगों में ही लगाई जानी चाहिये जिन्हें प्राथमिकता क्रम में ऊँचा स्थान दिया गया है। इसलिये, यह जरूरी है कि पूँजी-निर्गम पर नियंत्रण रखा जाय और साथ ही इस बात का भी नियंत्रण रखा जाय कि उद्योग के संचित कोषों को किस काम पर खर्च किया जाय और किस पर नहीं। पिछले कुछ वर्षों से पूँजी-निर्गम पर नियन्त्रण व्यवस्था चालू है और अब योजना में निर्धारित प्राथमिकता-क्रम को ध्यान में रखते हुए, यह नियंत्रण रखना संभव होगा। उद्योग (विकास और नियमन) कानून के अधीन लाइसेन्स देने की जो व्यवस्था चालू की गई है, वह सँचित कोषों के प्रयोग पर बड़ी हद तक नियंत्रण रखेगी। इससे इन कोषों का अनुचित प्रयोग नहीं हो सकेगा। लेकिन, इससे यह नहीं होगा कि पूँजी उन्हीं उद्योगों में लगाई जाय जिन्हें प्राथमिकता-क्रम में बड़े ऊँचे स्थान पर रखा गया है। इस काम में प्रोत्साहन देने के लिये कुछ निश्चित व्यवस्था करनी होगी, जैसे रियायती दरों पर बिजली देना या कच्चे माल और पूँजीगत माल पर लिये जाने वाले आयात-कर में छूट देना या संरक्षण का आश्वासन देना।

वित्तीय आवश्यकतायें और साधन

२७. सरकारी और गैर-सरकारी दोनों क्षेत्रों के विकास-कार्यक्रम के लिये कुल मिला कर ४७७ करोड़ रुपये की स्थायी पूँजी की जरूरत है। इसका ब्यौरा इस प्रकार है :—९४ करोड़ रुपये सरकारी क्षेत्र के लिये; २३३ करोड़ रुपये गैर-सरकारी उद्योगों के लिये; और १५० करोड़ रुपये गैर-सरकारी उद्योगों में मशीन आदि की टूट-फूट के लिये। मोटे अनुमान के अनुसार १५० करोड़ रुपये की अतिरिक्त सक्रिय पूँजी की भी जरूरत होगी। निम्नलिखित बयान से ब्यौरे का कुछ पता चल जायगा :—

उद्योगों की अनुमानित आवश्यकताएँ और पूँजी प्राप्त करने के साधन (१९५१-५६)

	करोड़ रुपये		करोड़ रुपये
(१) सरकारी क्षेत्र में पूँजी की लागत	९४	(१) सरकारी क्षेत्र के साधन जो सीधे लगा दिये गये हैं	७४

(२) गैर-सरकारी क्षेत्र में विस्तार आधुनिकीकरण और बदल पर पूँजी की लागत	३८३	(२) विदेशी पूँजी की लागत	१००
(३) सक्रिय पूँजी में लागत	१५०	(३) घरेलू गैर-सरकारी उद्योगों के साधन	
(४) चालू अवक्षयण-खर्च जो सामान्य आय-कर-रियायत में शामिल नहीं है	८०	(क) औद्योगिक क्षेत्र मे सम्मिलित उद्योगों की बचत	२००
		(ख) नये निर्गम	६०
		(ग) सरकारी क्षेत्र से सहायता	५
		(घ) औद्योगिक-वित्त-कार्पोरेशन	२०
		(ङ) अतिरिक्त-आय-कर की जमा पूँजी से प्रत्यर्पण	६०
		(च) बैंक और थोडे समय के लिये पूँजी देने वाले साधन	१५८
कुल जोड	७०७		७०७

यह महत्त्वपूर्ण बात है कि उपर्युक्त आंकडे अनुमान के रूप में ही हैं और इनमें मोटे तौर पर यह बताया गया है कि औद्योगिक क्षेत्र में पूंजी-लागत की व्यवस्था क्या होगी।

विदेशी पूंजी

२८. विदेशी पूंजी के बिना रोक टोक भारत में लगाये जाने का स्वागत किया जायगा, इससे पूंजीगत माल और टैक्निकल ज्ञान प्राप्त होता रहेगा। लेकिन विदेशी पूंजी को आकर्षित करने के लिये यह जरूरी है कि उसे काफी लाभ मिलता रहे और साथ ही यह निश्चित हो कि उसके साथ निष्पक्ष और न्यायपूर्ण व्यवहार किया जायेगा। इसकी विशेष रूप से इसलिए जरूरत है कि इस समय फालतू माल और पूंजी वाले देशों में ही घरेलू उद्योगों के लिये साधन जुटाने की भारी मांग है और भारत के मुकाबले

औद्योगिक प्रगति वाले कई दूसरे देशों में पूंजी लगाने से लाभ हो सकता है। सरकारी नीति में विदेशी पूंजी को निम्नलिखित आश्वासन दिये गये हैं :—

(क) जहां तक सामान्य औद्योगिक नीति पर अमल करने की बात है विदेशी और भारतीय उद्योगों में कोई भेद-भाव नहीं बरता जायेगा।

(ख) देश की विदेशी मुद्रा-विनिमय स्थिति के अनुरूप लाभ की रकम भारत से बाहर भेजने और पूंजी की वापसी के लिये उचित सुविधायें दी जायेंगी।

(ग) यदि उद्योगों का राष्ट्रीयकरण किया गया तो विदेशी पूंजी को न्यायपूर्ण और उचित मुआवज़ा दिया जायगा।

२९. यह वांछनीय है कि विदेशी पूंजी ऐसे उद्योगों में लगाई जाय जो प्राथमिकता-क्रम में ऊँचा स्थान रखते हैं। विशेष रूप से ऐसे उद्योगों में लगाई जानी चाहिये जिनके द्वारा नई चीजों का उत्पादन किया जाना हो और जहां विशेष प्रकार के अनुभव और टैक्निकल ज्ञान की जरूरत हो। अनुमान है कि भारतीय-उद्योग पतियों के साथ मिल जुल कर सम्मिलित उद्योग शुरू करने की प्रणाली शेअर पूंजी की लागत के लिये उचित होगी। लेकिन इस प्रकार के सम्मिलित-उद्योग शुरू करने के बारे में समझौते करने से पहले सरकार की स्वीकृति लेनी होगी। विदेशी लोगों द्वारा शेअर पूंजी लगाये जाने से कई लाभ होंगे। लेकिन यह भी आवश्यक होगा कि अंतर्राष्ट्रीय बैंक जैसी सरकारी या अर्ध-सरकारी संस्थाओं से निश्चित-सूद पर पूंजी प्राप्त की जाय।

कच्चे माल, ईंधन और विद्युत् की अतिरिक्त मांग

३०. औद्योगिक विकास के कार्य-क्रम के कारण खेती सम्बन्धी कच्चे माल खनिज पदार्थ, ईंधन और विद्युत की मांग बढ़ जायेगी। अनुमान है कि कपास की मांग ३५ लाख गांठ से बढ़कर ४९ लाख गांठ, पटसन की मांग ४४ लाख ५० हज़ार गांठ से बढ़कर ७० लाख गांठ हो जायेगी। कागज़ और अखबारी कागज़ का उत्पादन बढ़ जाने से जंगल में प्राप्त होने वाले सेल्यूलोस पदार्थ की खपत में कोई ८० प्रतिशत की बढ़ोतरी हो जायेगी। ख्याल है कि औद्योगिक कामों के लिये कोयले की खपत कोई एक करोड़ टन से बढ़कर एक करोड़ चालीस लाख टन और बिजली की खपत ४ अरब किलोवाट घंटे

से बढ़कर ६ अरब ४० करोड किलोवाट घंटे हो जाने की आशा है। औद्योगिक कार्य क्रमों के सफलता पूर्वक लागू किये जाने के लिये यह आवश्यक है कि राज्य सरकारें कच्चे माल के साधनों को पट्टे पर देने के लिये अधिक उदार नीति पर अमल करें। नीलाम करने के वर्तमान तरीके की जगह आपसी बात चीत द्वारा दरें निश्चित करने के लिये उचित कार्यविधि की जरूरत है। इसी प्रकार से अधिक मात्रा में बिजली का प्रयोग करने वाले उद्योगों के सम्बन्ध में यह जरूरी है कि उचित और निश्चित दरें तय की जायें और लम्बे समय के सौदे किये जायें।

उत्पादन की नई क्रियाओं और उपोत्पादों के बारे मे अनुसन्धान

३१. इस समय माल तैयार करने के सधे हुऐ पुराने तरीकों को प्रयोग में लाकर ही औद्योगिक विस्तार करने पर अधिक ध्यान देना होगा, चाहे इसके कारण बाहर के कच्चे माल पर क्यों न निर्भर करना पडे और देशी कच्चे माल, उपोत्पादों और बेकार चीज़ों का अधिकाधिक प्रयोग क्यों न करना पडे। औद्योगिक विकास हमारा उद्देश्य होना चाहिये और इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिये औद्योगिक एवं वैज्ञानिक खोज की जानी चाहिये। सोडियम सलफेट से कास्टिक सोडा और गंधक का तेजाब तैयार करने, मैगनेशियम सलफेट से गंधक तैयार करने और रस निकाले गन्ने से कागज का गूदा और अखबारी कागज़ तैयार करने की संभावनाओं की जांच करने के सुझाव दिये गये हैं। अलग अलग उद्योगों के बारे में जो लिखा गया है उससे पता चलेगा कि उत्पोत्पादों के अधिकाधिक प्रयोग के सुझाव दिये गये हैं।

३२. यह भी जरूरी है कि मज़दूरों की उत्पादन शक्ति में उत्तरोत्तर सुधार किया जाय। मज़दूरों की उत्पादन शक्ति मापने का पुराना उपाय यह है कि चीज़ों के कुल उत्पादन को मज़दूरों की संख्या से भाग दे दिया जाय। इस मापदंड से परखने पर यह पता चलता है कि भारत में मज़दूरों की उत्पादन शक्ति सन् १६३६ से काफी कम हो गई है। कुछ उद्योगों में तो उत्पादन शक्ति २०–३० प्रतिशत तक कम हो गई है। इसके कई कारण हैं, जो इस प्रकार हैं, (क) युद्ध काल में मशीनों और दूसरी सामग्री पर भारी दबाव पडना, (ख) युद्धकालीन मांगों को पूरा करने के लिये ऐसे कारखानों का खोला जाना जो आर्थिक दृष्टि से लाभकारी नहीं थे और (ग) मज़दूरों में अनुशासन की कमी होना और प्रबन्ध के स्तर में गिरावट आ जाना।

अनुमान है उद्योग (विकास और नियम) कानून के अधीन स्थापित की जाने वाली विकास परिषदें इस समस्या की जांच करेंगी और संबंधित उद्योगों की उत्पादन शक्ति बढ़ाने के उपायों के बारे में सुझाव देंगी। इसके साथ ही कच्चे माल तैयार माल और उत्पादक वस्तुओं के स्तरोन्नयन के काम का विकास होना चाहिए जिससे कि माल तैयार करने वाले लोगों या कारखानों और उपभोक्ताओं को ऐसी चीजें प्राप्त हो सकें जिनके स्तर देश में प्रमाणित माने गये हैं। 'इंडियन स्टैंडर्ड इंस्टीटियूट' की स्थापना से इस दिशा में काम शुरू कर दिया गया है।

उद्योग तथा स्थान-निर्धारण

२३. भारत में अब तक कुछ चुने हुए क्षेत्रों में ही औद्योगिक विकास हुआ है। यदि औद्योगिक विकास का काम संतुलित रूप से चलना है तो ऐसे राज्यों और इलाकों में उद्योग शुरू करने पर उत्तरोत्तर अधिक ध्यान देना होगा जो अभी तक पिछड़े हुए हैं। उद्योग (विकास और नियमन) कानून के अधीन सरकार को स्थान निर्धारण के तरीके में अल्प-काल में ही कोई बड़ा परिवर्तन नहीं किया जा सकता है। गैर-सरकारी उद्योग नये इलाकों में काम शुरू करने की अनिच्छा प्रकट करते हैं। वे ऐसे इलाकों में काम करना चाहते हैं जिसका कुछ विकास हो चुका है और जहां बैंक में रुपया जमा करने और निकालने और यातायात की सुविधायें और दूसरी सहायक सेवायें प्राप्त हों। योजना के इन पाँच वर्षों में अधिकतर औद्योगिक विकास वर्तमान कारखानों का विस्तार करके किया जायगा। लेकिन बहुद्देशीय योजनाओं से जो बिजली पैदा होगी उसके कारण पंजाब, उड़ीसा, और बिहार में औद्योगिक विकास की संभावनायें बहुत बढ़ जायेंगी।

—:०:—

विवरण १

सरकारी क्षेत्र की औद्योगिक योजनाएँ

योजनाएँ	१ अप्रैल १९५१ तक लगाई गई पूँजी (लाख रुपये में)	१९५१–५६ में लगाई गई पूँजी			योजना की पूर्ति का वर्ष	१९५५–५६ तक नई अथवा अतिरिक्त सामर्थ्य (प्रतिवर्ष)
		१९५१–५२ (लाख रु० में)	१९५२–५३ (लाख रु० में)	१९५१–५६ (पाँच वर्षों का जोड़) लाख रु० में		
१	२	३	४	५	६	७
I. केन्द्रीय सरकार						
१. लोहा और इस्पात योजना	—	—	५०·०	३,०००·०	१९५७-५८	१९५५-१९५६ तक ३,५०,००० टन पिग आयरन (कच्चा लोहा)
२. जहाज़ निर्माण	१५०	२३१·६	२८२·०	१४,०८·०	१९५६-५७	५०,००० डी. डब्लयू. टी
३. मशीन यंत्र कारखाना	१४·२	६८·०	१५०·०	६६३·८	१९५३-५४	१,६०० यूनिट्स (इकाइयाँ)
४. सिन्दरी का रासायनिक खाद कारखाना	१,८४१·२	४३५·०	३००·०	६०३·०	अक्टूबर १९५१	३,५०,००० टन एमोनियम सलफेट
५. चितरंजन का रेल इंजिन कारखाना	१,०२०·०	२८२·०	१९१·०	४७३·०	निर्माण कार्य आरंभ हो चुका है	१०० इंजिन
६. रेल-डिब्बा कारखाना	—	६·५	१२०·०	४००·०	१९५५	५० यूनिट्स (इकाइयाँ)

७. पेन्सीलीन कारखाना	४·४	१७·७	६०·०	२०६·६*	१९५४	४८ लाख मेगा यूनिट
८. राष्ट्रीय यन्त्र कारखाना	४·०	१४·५	२५·०	१८२·०	उत्पादन आरम्भ हो चुका है	६४·४ लाख रु० के मूल्य के अतिरिक्त यन्त्र
९. भारतीय टेलीफोन उद्योग	१२०·०	६५·०	३३·०	१३०·०	पुर्ज़ों का एकत्र करना आरंभ हो चुका है	२ करोड़ रु० के मूल्य के टेलीफोन और अन्य वस्तुएँ
१०. हिन्दुस्तान केबलज़ लि०	०·३	२३·१	७०·०	१२९·७	१९५३-५४	१ करोड़ रु० के मूल्य के केवलज़ (तार आदि)
११. मंडी का नमक कारखाना	—	—	१०·०	१००·०	१९५४	६१,००० टन नमक
१२. दुर्लभ मिट्टी कारखाना	२६·०†	उपलब्ध नहीं	उपलब्ध नहीं	५४·०	जून १९५२	८०० टन दुर्लभ मिट्टी के मिश्रण और २०२ टन थोरियम का मिश्रण (थोरियम नाईट्रेट के रूप में)
१३. डी० डी० टी० कारखाना	—	—	५·०	३९·१$	१९५४	७०० टन
१४. नमक के चालू कारखाने	३·७	४·३	८·०	५०·०	१९५५-५६	लगभग ३,६८,००० टन नमक
१५. आवास कारखाना	९३·७	९·८	२·०	११·८	१९५२-५३	———
१६. अन्य योजनाएँ ‡	उपलब्ध नहीं	उपलब्ध नहीं	उपलब्ध नहीं	२०२·१	१९५५-५६	———
जोड़	३,२७७·५	१,३८७५	१,३०६·०	८,२५३·१		

* विश्व स्वास्थ्य संघ तथा 'यूनीसेफ' से प्राप्त ५७ लाख रु० सहित

† १९५१ के अन्त तक लगाई गई पूँजी

$ विश्व स्वास्थ्य संघ तथा 'यूनिसेफ' से प्राप्त ३५०,००० अमेरिकन डालर सहित

‡ नासिक प्रिंटिंग प्रेस और रजत शोधन कारखाना और नवीन मुद्रालय (अलीपुर) आदि अन्य कारखानों सहित

विवरण १

सरकारी क्षेत्र की औद्योगिक योजनाएँ

योजनाएं	एक अप्रैल १९५१ तक लगाई गई पूँजी (लाख रु० में)	१९५१–५६ मे लगाई गयी पूँजी			योजना की पूर्ति का वर्ष	१९५५–५६ तक नई अथवा अतिरिक्त सामर्थ्य (प्रतिवर्ष)
		१९५१–५२ (लाख रु० में)	१९५२–५३ (लाख रु० में)	१९५१–५६ पाँच वर्षों का जोड़ (लाख रु० में)		
१	२	३	४	५	६	७
II राज्य सरकारें						
१. मैसूर लोहा और इस्पात कारखाना	२१६·०	४०·०	१२५·०	२८३·०	१९५४–५५	६०,००० टन अतिरिक्त तैयार इस्पात
२. उत्तर प्रदेश सरकार का सीमेंट कारखाना	१५२·८	६५·०	१२४·६	२३०·५	१९५३–५४	२,००,००० टन
३. नेपा मिल्ज़	२२४·६	६१·४	८२·०	२००·०	१९५४	३०,००० टन अखबारी कागज़ (काम के ३०० दिन)

४. सरसिल्क लि०[1]	३८१·०	६५·६[2]	६०·०[2]	२००·०	१९५३–५४	१९५ लाख गज आर्ट सिल्क (काम के ३३० दिन)
५. सीरपुर कागज़ मिल	२०३·३			६०·०	१९५३–५४	८,००० टन अतिरिक्त
६. उत्तर प्रदेश सूक्ष्म (प्रेसीजन) यन्त्र कारखाना	१४·१	६·८	७·३	५०·२	विस्तार	१२,००० पानी के मीटर और ३०० अणुवीक्षण यन्त्र
७. बिहार सरकार का सुपरफासफेट कारखाना	१·३	११·७	४०·०	४१·१	१९५३–५४	१६,५०० टन सुपर फास्फेट (काम के ३३० दिन)
८. अन्य योजनाएँ	उपलब्ध नहीं	उपलब्ध नहीं	उपलब्ध नहीं	६५·०[3]	१९५५–५६	
जोड़	११६३·१	२८३·५	४६८·६	११२६·८		
कुल जोड़	४४७०·६	१४७१·०	१७७४·६	६३८२·६		

[1] हैदराबाद राज्य योजना में इसके लिये ८२·७० लाख रु० की व्यवस्था है।

[2] बम्बई राज्य योजना में डी० टी० टी० कारखाने के लिये ४० लाख रु० सहित।

[3] सिंगारेना कोयला दान लिमिटेड पर किये गये खर्चे सहित

विवरण २

निजी क्षेत्र में कुछ प्रमुख व्यवसायों का विस्तार कार्य-क्रम

	यूनिट (इकाई)	१९५०-५१		१९५५-५६	
		सानुपातिक सामर्थ्य	उत्पादन	सानुपातिक सामर्थ्य	उत्पादन
१. कृषि की मशीनें					
(अ) पम्प (बिजली से चलने वाले)	संख्या	३३,४६०	३४,३१०	६६,४००	८०,००० से ८५,००० तक
(ख) डीज़ल इंजन	संख्या	६,३२०	५,५४०	३६,७२५	५०,०००
२. एल्यूमीनियम	टन	४,०००	३,६७७	२०,०००	१२,०००
३. मोटरें (केवल निर्माण)	संख्या	३०,०००	४,०७७	३०,०००	३०,०००
४. बाइसिकलें	हज़ारों	१२०	९९	५३०	५३०
५. सीमेंट	हज़ार टन	३,१९४	२,६९२	५०,१६	४,५५०
६. बिजली के ट्रान्सफार्मर्स	के० वी० ए' ०००	३७०	१७९	४८५	४५०
७. रासायनिक खादें					
(१) एमोनियम सल्फेट	टन	७८,६७०	४६,२२८	१,३१,२७०	१,२०,०००
(२) सुपरफासफेट	टन	१,२३,४६०	५५,०८९	१,९२,८५५	१,६४,०००
८. काँच उद्योग-काँच की चादरें	टन	११,७००	५,८५०	५२,२००	२६,०००

९. भारी रसायन					
(१) कास्टिक सोडा	हज़ार टन	१६	११	३७	३३
(२) सोडा 'ऐश'	हज़ार टन	५४	४५	८६	७८
(३) गन्धक का तेज़ाब	हज़ार टन	१५०	६६	२१३	१६२
१०. लोहा और इस्पात					
(१) पिग आयरन (कच्चा लोहा)	हज़ार टन	१,८५०	१,५७२ (१)	२,७०० (२)	१,६५०
(२) इस्पात (प्रमुख उत्पादक)	हज़ार टन	६७५	६७६ (१)	१,५५० (२)	१,२८०
११. कागज़ और गत्ता	हज़ार टन	१३७	११४	१६८	१८८
१२. पेट्रोलियम शोधन					
(१) तरल पेट्रोलियम की वस्तुएँ	१० लाख गैलन	उपलब्ध नहीं	उपलब्ध नहीं	उपलब्ध नहीं	४०३
(२) बिट्यूमेन	टन	उपलब्ध नहीं	उपलब्ध नहीं	उपलब्ध नहीं	३७,५००
१३. मद्य सार	१० लाख गैलनों में	१३	५	२१	१८
१४. इंजन	संख्या	—	—	५०	५०
१५. रेयन					
(१) रेयन फिलामेंट	१० लाख पौंडों में	४	१	१८	१८
(२) लम्बे रेशे	हज़ार गाँठों में	—	—	२८	२८

विवरण ३

कुछ बड़े उद्योगों की विकास योजनाओं की प्रगति

उद्योग	यूनिट (इकाई)	१९५१–५६		१९५१–५२ में प्रगति		अप्रैल–सितम्बर की वास्तविक उत्पादन	
		अतिरिक्त सामर्थ्य	अतिरिक्त उत्पादन	अतिरिक्त सामर्थ्य	अतिरिक्त उत्पादन	१९५१	१९५२
१	२	३	४	५	६	७	८
१. कृषि की मशीनें							
(१) पम्प (शक्ति चालित केन्द्रीयापसारी)	संख्या	३५,९४०	४५,६८७ से ५०,६८७ तक	९,२४०	११,५८७	१९,२००	१२,९००
(२) डीज़ल इंजन	संख्या	३३ ४०५	४४,४६२	३,६००	१,७२५	३,३१६	१,६७१
२. एल्यूमीनियम	टन	१६,०००	८,३२३	—	३२८	१,८८१	२,१४०
३. बैटरी, ड्राई सैल	दस लाख	२५	१८३	—	८	७६·२	५७·१
४. बैटरी, संग्रहण	हज़ार	९३	२००	९३	१०	११४·३	७७·७
५. बाईसिकल	हज़ार	४१०	४२६	—	१९	४२·७	९६·७
६. सीमेंट	हज़ार टन	२,०२६	२,१०८	५९६	५९७	१,५८०·३	१,७२७·१
७. सूती माल							

(१) सूतःतकलियां	हज़ार	२५०	—	१५६			
अथवा							
सूत की उत्पादन सामर्थ्य	१० लाख पौंड	५३	४६१	२४	१५६	६५८	७२७
(२) मिल का कपड़ा							
: करघे	हज़ार	२	—	१	—		
अथवा							
कपड़े की उत्पादन सामर्थ्य	१० लाख गज़	३५	६८२	२४	४०८	५,०८६	२,३१४
(३) हथकरघे का							
कपड़ा	१० लाख गज़	उपलब्ध नहीं	८६०	उपलब्ध नहीं	११४	उपलब्ध नहीं	उपलब्ध नहीं
८. विद्युत ट्रांसफार्मर	किलोवाट ०००	११५	२४१	—	२३	६६.८	६७ ६
९. रासायनिक खाद							
(१) एमोनियम सल्फेट	टन	४०२,६००	४०३,६६६	३५०,०००	२६,०२६	२१,३००	६८,८१७
(२) सुपर फास्फेट	टन	८५,८६५	१२४,६११	५०,३६५	८,६६०	२७,७००	२४,१८४
१०. कांच और कांच का माल							
(१) कांच की चादरें	टन	४०,५००	२०,१००	—	(—)६००	१,६४५	३८१
(२) ग्लोन वेअर एण्ड प्रेस्ड वेअर ।	टन	३६,२५०	५१,४०० से ५६,४०० तक	६,५००	२३,६००	४१,७०७	४०,२११
११. भारी रसायन							

(१) गंधक का तेज़ाब	हज़ार टन	७०	१०१	३६	४	५१·०	
(२) कास्टिक सोडा	टन	१८,४००	२१,६२५	३,८५०	४,५२०	७,१००	४७·७
१२. लोहा और इस्पात							८,३१४
(१) पिग आयरन (कच्चा लोहा)	हज़ार टन	१,७५७	१,२६१	—	१६६	६०४	४७४
(२) तैयार इस्पात	हज़ार टन	६३५	३६४	—	५५	५१८	५२६
१३. जूट का माल	हज़ार टन	—	३०८	—	८८	४३८	४६६
१४. दियासलाई	हज़ार ग्रुस डिबियां	३,०००	६,२००	—	२,८००	१४,६५५	१५,३००
१५. कागज़ और कागज़ का गत्ता	हज़ार टन	७४	८६	५	२१	६६·१	६८·२
१६. प्लाईवुड : चाय के बक्से	हज़ार वर्ग फुट	५१,२००	५४,१००	२१,५००	२३,२००	२८,८६०	३७,६५८
१७. मद्य सार	हज़ार 'वल्क' गैलन	८,२५०	१५,२८४	—	१,६६४	२,६२०	३,७१०
१८. रेडियो सेट	हज़ार	३०३	३०१	७६	२६	३५·६	३८·२
१९. रेयन : रेयन फिलामेंट	हज़ार लाख पौंड	१४	१७	६	३	२·४	३·६
२०. सीने की मशीनें	संख्या	५४,०००	५८,५३५	—	१५	२६,६७१	२४,०२२
२१. साबुन	हज़ार टन	१५	६४	७	६	३८·६	४०·५
२२. चीनी	हज़ार टन	१०	३८४	—	३६६	८७·२	२६८·०

अध्याय ३०

विदेशी व्यापार और व्यापारिक नीति

इस अध्याय में यह बताने की कोशिश की गई है कि विदेशी व्यापार पर योजना के क्या असर हो सकते हैं और आयात और निर्यात कार्यक्रम निश्चित करने में किन-किन बातों को ध्यान रखना होगा।

२. युद्ध से पहले भारत एक कर्ज़दार देश था और उसे अपने व्यापारिक खाते में काफी बडी मात्रा में बचत दिलाने की ज़रूरत थी जिससे कि वह पौंड कर्ज़ों पर दिये जाने वाले सूद की रकम का भुगतान कर सके। अन्तर्राष्ट्रीय व्यापारिक संतुलन की दृष्टि से भारत उन देशों में था जो डालर कमाते थे और वह अपनी यह कमाई यूरोप के मुख्य-मुख्य देशों को दे देता था जिससे कि वे डालर वाले देशों के साथ होने वाले अपने व्यापारिक घाटे को पूरा करने में समर्थ हों।

३. युद्ध खत्म होने तक सरकार अपना सारा बाहरी कर्ज उतार चुकी थी और उसने पौंड पावने के रूप में १,६०० करोड रुपये की रकम जमा कर ली थी। इससे व्यापारिक खाते में बचत करने की जरूरत हो गई और यह आशा बंध गई कि विदेशी पूँजी के इस संचित कोष से वह घाटा पूरा किया जा सकता है जो आगे चलकर विदेशों के साथ व्यापार करने से हो। ब्रिटेन की युद्ध के बाद की कठिनाइयों के कारण पौंड पावने से उतनी रकम नहीं निकाली जा सकती थी जितनी निकालने की जरूरत होती थी। साथ ही भारत के व्यापारिक खाते में घाटा बहुत बढ़ जाने के संकेत मिल रहे थे। युद्ध खत्म होने पर अर्थ-व्यवस्था बहुत ही खराब थी और युद्ध के समय चीज़ों आदि के इस्तेमाल में जो संयम बरता गया था उसकी पूर्ति करने और पूँजीगत सामग्री (मशीनों आदि) के अवक्षय को दूर करने के निमित्त बड़ी संख्या और मात्रा में चीज़ों के आयात की जरूरत थी। साथ ही विकास के लिए भी आयात की जरूरत थी। इसके अलावा युद्ध के खर्चे के कारण एक ओर तो लोगों की आय बढ़ गई और दूसरी ओर चीज़ों की भारी कमी के कारण लोग आवश्यकता-भर चीज़ें नहीं पा सके। इसलिये, शान्ति स्थापना के साथ-साथ आम जरूरत की विदेशी चीज़ों की माँग बढ़ गई है।

४. युद्ध के बाद देश की आयात सम्बन्धी आवश्यकतायें बढ़ गई थीं और दूसरे देशों को भेजे जाने योग्य माल की बचत कम होती थी। इसका एक कारण यह था कि इस बीच आबादी बढ़ गई थी, और दूसरा कारण यह था कि देश का बंटवारा हो चुका था जिससे अनाज और कच्चे माल के बारे में भारत का घाटा बढ़ गया था। सबसे अधिक घाटा पटसन, कपास और चमडे में रहा। इसलिये भारत इन चीजों को बाहर तो भेज ही नहीं सकता था, दूसरी ओर उसे ये चीज़ें बड़ी मात्रा में पाकिस्तान से मंगानी पड़ती थीं जिससे कि कई बडे-बडे उद्योगों की जरूरतें पूरी हो सकें। लेकिन, इसके बदले में जो माल पाकिस्तान भेजा जा सकता था, वह मुख्यतः तैयार माल होता था। जैसे, सूती कपडा; चीनी और माचिस। इस तरह देश के बंट-वारे से भारत बाहर से मंगाये जाने वाले कच्चे माल पर अधिक निर्भर हो गया और उसे संतुलित करने के लिये उसके पास बाहर भेजने की चीजें नहीं रहीं।

५. देश के विदेशी-व्यापार में युद्ध और बंटवारे के कारण जो परिवर्तन हुए, उनकी जानकारी वस्तुओं के तीन मुख्य वर्गों के आयात और निर्यात सम्बन्धी आंकड़ों से प्राप्त हो जाएगी :—

निर्यात

	अनाज, पेय और तम्बाकू	कच्चा माल	तैयार माल
युद्ध से पूर्व (१६३८–३६)	१००.०	१००.०	१००.०
युद्ध के बाद (१६४७–४८)	८३.७	४१.७	६२.५
बंटवारे के बाद (१६४८–४६)	६५.७	३०.७	१०६ ४

आयात

	अनाज, पेय और तम्बाकू	कच्चा माल	तैयार माल
युद्ध से पूर्व (१६३८-३६)	१००.०	१००.०	१००.०
युद्ध के बाद (१६४७–४८)	१३८.६	११६.६	७२ ०
बंटवारे के बाद (१६४८–४६)	१४५.६	१४२.६	१०५.०

इन आँकड़ों से पता चलता है कि कच्चे माल और अनाज के सम्बन्ध में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हुए हैं। इन दोनों चीज़ों के आयात में भारी वृद्धि हुई है जबकि कच्चे माल का निर्यात बहुत कम हो गया है। कच्चे माल का निर्यात कम होने के कारण भारत पटसन के तैयार माल और कपडे और चाय के निर्यात पर पहले से अधिक निर्भर है। भारत कुछ

जितनी कीमत का माल विदेशों को भेजता है उसका ५६ प्रतिशत भाग इन तीनों चीज़ों से पूरा होता है, जबकि युद्ध के पहले इन तीनों चीज़ों की कीमत निर्यात किये गये माल की कुल कीमत की ३५ प्रतिशत ही होती थी। इस प्रकार कुछ ही चीज़ों पर इतना अधिक निर्भर करना बाधक सिद्ध हुआ है।

६. व्यापार की दिशा में कुछ फेर-बदल हुई है। युद्ध से पहले, भारत का सिर्फ दस प्रतिशत विदेशी व्यापार डालर वाले इलाकों से होता था और व्यापारिक संतुलन उसके पक्ष में था। युद्ध के बाद से डालर वाले इलाकों के साथ भारत का व्यापार बढ़ कर पच्चीस प्रतिशत हो गया। इसका एक कारण जर्मनी और जापान के साथ व्यापार कम होना था। कच्चे माल के निर्यात में कमी हो जाने और अनाज और मशीनों का आयात बढ़ जाने से व्यापारिक संतुलन प्रतिकूल जा रहा है।

विदेशी व्यापार पर योजना का प्रभाव

७. योजना काल मे व्यापारिक नीति मे हाल में हुए कुछ परिवर्तनों का ध्यान रखना होगा! ये परिवर्तन इस प्रकार हैं:—निर्यात की मात्रा मे कमी हो जाना और दूसरी चीज़ों के निर्यात की उत्तरोत्तर कमी; अनाज और कच्चे माल के आयात पर अधिकाधिक निर्भर रहना, डालर क्षेत्र से अधिक मूल्य का माल मंगाना; और विकास और बदल के लिये मशीनों के आयात की भारी माँग। योजना मे कुछ हद तक ऐसी व्यवस्था की गई है कि इन परिवर्तनों का निराकरण हो सके। योजना में खेती की उपज बढ़ाने की जो व्यवस्था की गई है, उससे अनाज; कपास और पटसन के आयात पर कम निर्भर करना होगा और साथ ही कपास और पटसन की उपज बढ़ जाने से इन चीज़ों से तैयार किये जाने वाले माल का निर्यात भी बढाया जा सकेगा। यह आशा भी की जा रही है कि निर्यात व्यापार का विकास दूसरी चीज़ें बाहर भेज कर किया जा सके जैसे—सीने की मशीनें; बैटरियाँ; बाइसिकलें और दवाइयाँ। ये चीजें इस समय भी थोडी मात्रा में दक्षिण-पूर्व एशिया के देशों को भेजी जा रही हैं और योजना के अनुसार इन उद्योगो के विकास से आगे चलकर ये चीजें बड़ी मात्रा में बाहर भेजी जाने लगेंगी। जर्मनी और जापान की स्थिति फिर से ठीक-ठाक होने और चैकोस्लावाकिया और स्वीडन जैसे देशों के साथ व्यापार सम्बन्ध बढ़ाने से व्यापार बहुमुखी हो जाएगा और दुर्लभ मुद्रा वाले देशों के साथ वर्तमान विपरीत व्यापारिक संतुलन ठीक हो जाएगा।

८. दूसरी ओर जैसा कि तीसरे अध्याय में कहा जा चुका है, एक महान् विकास योजना से अवश्य ही आयात बढ़ जाता है और साथ ही विदेशी मुद्रा की कमी हो जाती है। हमारी योजना में विदेशों से बड़ी मात्रा में पूँजीगत माल मंगाने की व्यवस्था की गई है। यह व्यवस्था मशीनों आदि की बदल को पूरा करने के लिए ही नहीं बल्कि नई योजनाओं की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए भी की गई है। योजना से जो अधिक आय होगी उसके कारण विदेशों से आम जरूरत की अधिक चीजें मंगाई जा सकेंगी और विदेशों को भेजी जाने वाली आम जरूरत की चीज़ों की मात्रा कम हो जाएगी।

९. यह कहने की कोई जरूरत नहीं है कि योजना-काल में आयात और निर्यात का अच्छी तरह नियमन करना होगा। इस महत्त्वपूर्ण क्षेत्र में नियन्त्रण रखे बिना उन साधनों का अधिक से अधिक लाभ नहीं उठाया जा सकता जो विकास के काम के लिए उपलब्ध हैं। इसका मतलब यह हुआ कि अगले कुछ वर्षों में कितना माल बाहर से मंगाया जाये—इसका निश्चय बहुत हद तक इस बात पर निर्भर करेगा कि किस हद नियन्त्रण के तरीके पर चला जाता है और यह विदेशी मुद्रा की उपलब्धि पर निर्भर होगा। यदि सरकारी क्षेत्र में विदेशी सहायता लिये बिना दो हज़ार करोड़ रुपये का विकास कार्यक्रम लागू करना है तो सिर्फ वे ही चीजें बाहर से मंगानी होंगी जिन्हें योजना लागू करने के लिए प्राथमिकता काल में सबसे ऊँचा स्थान प्राप्त है। दूसरी ओर यदि विदेशी मुद्रा प्राप्त करने के और साधन मिल जाते हैं तो अधिक माल बाहर से मंगाया जा सकेगा और इस प्रकार कुछ हद तक आम जरूरत की चीज़ों की मांग पूरी की जा सकेगी।

यह स्पष्ट है कि हमारी नीति अधिक से अधिक चीजें बाहर भेजने की होनी चाहिए और निर्यात की मात्रा बढ़ाने के प्रयत्न करने होंगे। न सिर्फ डालर वाले क्षेत्रों बल्कि ऐसे देशों को भी अधिक चीजें भेजनी चाहियें जो योजना को लागू करने के लिए हमें जरूरी चीजे दे सकें। जहाँ तक हो सके, नीति एक जैसी ही रखनी चाहिए जिससे कि दूसरे देशों के साथ व्यापारिक सम्बन्धों में अक्सर गड़बड़ पैदा न होती रहे।

—:०:—

अध्याय ३१

परिवहन और संचार

भारतीय रेलों के सन्मुख आज सबसे बड़ी समस्या पुनस्संथापन और साज-सज्जा की व्यवस्था है क्योंकि पिछले बीस वर्षों में भारतीय रेलों की पूंजी पर व्यापक रूप से बहुत अधिक जोर पड़ा है। अतएव मरम्मत और बदली का काम बकाया ही रह गया। यह समस्या सन् १९३० में मन्दी के आने से ही आरम्भ हुई, जब कि रेलवे की आमदनी एकदम गिर गई और रेलवे की देखभाल तथा व्यवस्था के खर्चे में कमी करनी पड़ी। अभी पिछली कमी पूरी नहीं हो पाई थी कि द्वितीय महायुद्ध के छिड़ जाने से इसमें और भी रुकावट पड़ गई तथा सन् १९४७-४८ में देश के विभाजन से समस्या और भी बढ़ गई। घिसी-पिटी और पुरानी साज-सज्जा की अस्वाभाविक रूप से चारों ओर कितनी अधिकता है, इससे इस समस्या की विकटता का अन्दाज लग सकता है। उदाहरणार्थ मार्च १९५१ तक पुनस्संस्थापन का काम इतना बकाया पड़ा हुआ था कि उसके अनुसार १,०५० इंजन, ५,५१४ सवारी के डिब्बे और २१,४१८ मालगाड़ी के डिब्बे बदलने बाकी थे, जब कि औसतन प्रति वर्ष १९० इंजन, ६५० सवारी गाड़ी के डिब्बे और ५,००० माल गाड़ी के डिब्बे बदले जाते थे। अनुमान है कि ३१ मार्च सन् १९५६ तक २,०९२ इंजन और ८,५३४ सवारी गाड़ी के डिब्बे तथा ४७,५३३ माल गाड़ी के डिब्बे बदले जाने की स्थिति में पहुँच जावेंगे। इसके अतिरिक्त जिन पटरियों की हालत काफी खराब हो गई है उन्हें बदलने की समस्या भी सुलझानी है। रेल की पटरियों की हालत नाजुक होने के कारण, लगभग ३,००० हजार मील रेल-मार्ग पर, रेल की रफ्तार पर पाबन्दी लगा दी गई है। रेलवे पूंजी की शोचनीय दशा के अतिरिक्त, यह भी जरूरी है कि मुसाफिरों की बढ़ती हुई संख्या के लिये सुविधायें जुटाई जायं और उद्योग धन्धों तथा विकास योजना के परिणाम-स्वरूप बढ़े हुए और अधिक माल-असबाब ढोने के लिये माल गाड़ियों की बढ़ती की जाय और मुसाफिरों को—विशेष करके तीसरे दर्जे के मुसाफिरों को स्टेशनों तथा रेलों में आवश्यक सुविधायें दी जायं।

२. पिछले चार सालों में वर्तमान डिब्बों और इंजनों से देश की जरूरतें पूरी नहीं हो पा रही हैं। इसका कारण विशेष रूप से यह था कि हमारे देश में इनका निर्माण बहुत परिमित था और विदेशों से भी बहुत कम संख्या में इनका आयात होता था। देश में इंजन आदि के उत्पादन की आवश्यकता पर स्पष्ट रूप से जोर दिया गया है। चित्तरंजन लोकोमोटिव वर्क्स में १२० इंजन तथा ५० फालतू बायलर प्रतिवर्ष तैयार किये जाने का लक्ष्य निर्धारित किया गया है। योजना काल में, यह उम्मीद की जाती है कि २६८ इंजन तो चितरंजन वर्कशाप में तैयार होंगे और 'टाटा लोकोमोटिव इंजिनियरिंग कम्पनी' १७० इंजन तैयार करेगी। यद्यपि योजना के अनुसार भारत में सवारी गाड़ी और माल गाडियों के डिब्बों के निर्माण की भी व्यवस्था की गई है,तो भी यह अनुमान है कि योजना-काल में, रेलवे विभाग को ६४१ इंजन १,२६४ सवारी गाड़ी तथा १६,१४३ मालगाड़ी के डिब्बे बाहर से मंगाने पड़ेंगे।

३. इन पांच वर्षों में रेलवे योजना को कार्यान्वित करने में प्रति-वर्ष ८० करोड़ रुपया खर्च बैठेगा अर्थात् कुल मिलाकर ४०० करोड़ रुपया चाहिये। इस रकम का अधिकांश भाग पुनर्निमाण कार्य पर खर्च होगा, जब कि नई लाईनें डालने पर २० करोड़ रुपया खर्चा आयेगा। इस ४०० करोड़ रुपये की रकम में ८० करोड रुपया तो केन्द्र देगी और शेष रकम रेलवे विभाग अपने साधनों से पूरा करेगा। इसके अतिरिक्त योजना में आधारभूत उद्योगों और परिवहन के लिये ५० करोड रुपये की जो व्यवस्था की गई है, उससे भी रेलवे-विकास कार्यक्रम में बहुत सहायता मिलेगी।

योजना-काल में रेलवे का विस्तार उस हिसाब के अनुसार होगा जो कि इस अध्याय के अन्त में दिये हुए आंकड़ों में स्पष्ट कर दिया गया है।

जहाजरानी

४. लड़ाई से पहले भारत के पास कुल जहाज-भार (Tonnage) १२५,००० रजिस्टर टन था। सन् १९४६ में वह १०००,००० रजिस्टर टन था। सन् १९५० के अन्त तक यह जहाज-भार बढ़ कर ३६२, १५० रजिस्टर टन हो गया। सन् १९५१ के आरम्भ में भारत के समुद्र तट के व्यापार के लिये कुल ७३ जहाज थे जिनका भार (Tonnage) २१७, २०२ रजिस्टर टन था तथा समुद्र पार व्यापार में लगे हुए भारत के

अपने २४ जहाज थे जिनका भार (Tonnage) १७३, ५०५ रजिस्टर टन था।

५. भारत सरकार ने यह निश्चय कर लिया है कि भारत के समुद्र तट का व्यापार भारतीय जहाजों के हाथ में ही रहेगा। इसलिये भारतीय जहाजों के टन भार (Tonnage) में बढ़ती करने की खास जरूरत आ पड़ी है। तदनुसार एक योजना बनाई गई है जिसके परिणामस्वरूप सन् १९५५-५६ में सम्पूर्ण जहाज भार (Tonnoge) बढ़कर ६००,००० टन हो जायगा जिसमें से ३००,००० ग्रौस रजिस्टर टन केवल समुद्र-तट के व्यापार के लिये होगा। इस के लिये ४ करोड रुपये जहाजी कम्पनियों को ऋण के रूप में दिया जायगा और इसके अलावा २ करोड रुपये कम्पनियां खुद जुटायेंगी। आशा है कि इससे आवश्यक जहाज भार की पूर्ति अधिकांश रूप में संभव हो जायगी।

६. समुद्र पार व्यापार के लिये कम से कम १००,००० टन भार (D. W. T.) अतिरिक्त जहाज लगेंगे। इसके लिये भारत सरकार ६'५ करोड़ रुपया ऋण देगी। इसके अलावा २'२ करोड रुपया जहाजी कम्पनियां खुद भी जुटायेंगी। इन कम्पनियों ने यह प्रार्थना की है कि उन्हें कम सूद पर ऋण दिया जाय तथा कुछ अन्य सुविधायें भी दी जायें। यथा औद्योगिक वित्त कारपोरेशन से सहयोग प्राप्त करने का अधिकार, आदि। ईस्ट शिपिंग कारपोरेशन को इसके अलावा समुद्री व्यापार के लिये ६००,००० टन भार के जहाज चाहिये जिसके लिये भारत सरकार ४·४ करोड़ रुपये देगी।

५ साल के अन्त तक कुल जहाज भार (Tonnage) ६००,००० टन की पूर्ति के अतिरिक्त, भिन्न-भिन्न प्रकार के अन्य जहाज यथा तेल साफ करने वाले टैंकर आदि प्राप्त करने का भी सुझाव दिया गया है।

इस योजना में जहाजों के इन्जीनियरों तथा जहाजी कर्मचारियों के प्रशिक्षण के लिये भी ११० लाख रुपया रखा गया है।

बन्दरगाह

७. इस समय कलकत्ता, बम्बई, मद्रास, कोचीन और विशाखापतनम इन पांचों मुख्य बन्दरगाहों पर, पैट्रोलियम के जहाजों, देशी नौकाओं, और कोयले के जहाज के माल के अतिरिक्त लगभग २ करोड़ टन माल प्रति वर्ष

उतारने-चढ़ाने की सामर्थ्य है। पर इतनी सामर्थ्य पर्याप्त नहीं है। बन्दरगाहों का विकास-कार्य बहुत जरूरी है ताकि विभाजन के दुष्परिणामों को दूर किया जा सके और समुद्री यातायात में जो बढ़ती हो रही है, विशेष करके पैट्रोल के साफ करने की योजना के कारण, उसके लिये आवश्यक सुविधायें जुटाई जायं। इसी लिये ५ मुख्य बन्दरगाहों (बम्बई, कलकत्ता, मद्रास, विशाखापतनम और कोचीन) के पुनर्निर्माण, आधुनिक-करण और विकास के लिये २६'२७ करोड़ रुपये के खर्च का अनुमान लगा कर एक योजना बनाई गई है। इसमें वह १२'०५ करोड़ तथा ८ करोड़ रुपया भी शामिल नहीं है जो कि कराची बन्दरगाह की क्षति को पूरी करने वाले कांडला बन्दरगाह और तेल साफ करने वाले कारखानों के लिये बन्दरगाह की सुविधा जुटाने पर क्रमशः खर्चा जायेगा। अगर ये सभी योजनायें शुरू कर दी जायें, तो पांच साल में विकास कार्य पर कुल मिलाकर ५४'२२ करोड़ रुपया खर्च बैठेगा। इसमें वह ४'६० करोड़ रुपया भी शामिल है जो कि बन्दरगाह के अधिकारियों द्वारा सन् १६५१–५२ में खर्च किया जा चुका है।

८. कांडला को एक मुख्य बन्दरगाह बना देने से वहां के यातायात में काफी बढ़ती हो जावेगी, यथा सन् १६५१ तक लगभग १२२,००० टन का यातायात था जब कि सन् १६५६ से आगे को यह बढ़कर लगभग ८५०,००० टन हो जायगा। कलकत्ता के बन्दरगाह की विकास योजना के अंतर्गत विशेष रूप से ये काम होंगे:—गार्डन रीच जेटी की पुर्नस्थापना, बैगनों, इंजनों तथा भारी बोझ उठाने वाली क्रेन्स की खरीद, ताकि इन क्रेन्स के द्वारा भारी-भारी मशीनों और अन्य सामानों को जो कि नदी बांध-योजना के लिये मंगाये जाते हैं, धरा-उठाया जा सके तथा दो मैन्युअल कोयला बर्थ्स और एक मशीनी ओर-बर्थ का निर्माण। बम्बई बन्दरगाह में सबसे महत्त्वपूर्ण सुधार प्रिन्सेज और शेडों विक्टोरिया डाक का आधुनिक-करण होगा और उनके चलते-फिरते शेडों को फिर से बनाया जायगा तथा अलैक्जैन्ड्रा डाक में बिजली से चलने वाले क्रेन्स लगाये जायेंगे। बम्बई, मद्रास तथा कलकत्ता के बन्दरगाहों की सुधार-योजना के अन्तर्गत ४'२५ करोड़ रुपया मजदूरों को निवास-स्थान की सुविधा देने पर भी खर्च किया जावेगा। मद्रास बंदरगाह में अन्य कई छोटे-मोटे सुधारों के अतिरिक्त इस योजना-काल में २'६७ करोड़ रु० वेट डाक्स की योजना पर तथा सब ऋतुओं के अनुकूल दो पैट्रोलियम बर्थ भी ०'७२ करोड़ रुपये की लागत पर तैयार किये जावेंगे।

कांडला बन्दरगाह विकास योजना के अतिरिक्त, जिसका खर्चा सम्पूर्ण रूप से भारत सरकार उठायेगी, अन्य बन्दरगाह योजनाओं पर कुल मिलाकर ४२.१७ करोड़ रु० खर्चा आयेगा। इसमें से अधिक से अधिक १५.५ करोड़ रु० जुटाना बन्दरगाह अधिकारियों के लिये संभव होगा। अगर सभी योजनाएँ शुरू कर दी जायें तो उक्त अधिकारियों को लगभग २६.६७ करोड़ रु० की मदद लेने की ज़रूरत पड़ेगी। योजना के अनुसार इन पाँच वर्षों में उक्त अधिकारियों को भारत सरकार से १२ करोड़ रु० पेशगी मिलेगा, जब कि ८ करोड़ रु० खर्च कर पैट्रोलियम साफ करने के कारख़ानों के लिये बन्दरगाहों की सुविधा प्रदान करने की जिम्मेदारी भी उन्हीं पर होगी।

शहरी हवाई जहाज़ यात्रा

१०. शहरी हवाई जहाज़ यात्रा के प्रबन्ध पर सन् १९५०-५१ के अन्त तक लगभग १० करोड़ रु० खर्चा जा चुका है। यह पता लगा है कि बहुत-सी प्राइवेट कम्पनियों ने आकाश यात्रा प्रबन्ध का काम अपने हाथ में लिया हुआ है, पर उनके व्यवसाय की आर्थिक दशा सम्पूर्ण रूप से सन्तोषजनक नहीं है। इसलिए भारत सरकार के द्वारा नियुक्त 'एयर इन्क्वायरी कमेटी' ने इस बात का सुझाव दिया है कि इन सब कम्पनियों की एक इकाई बना दी जाय। उनका विश्वास है कि एक कारपोरेशन के अन्तर्गत आ जाने से, हवाई जहाज़ों की आवश्यक संख्या में कमी की जा सकेगी और खर्च में भी काँट-छाँट हो सकेगी। इस कमेटी ने यह भी सुझाव दिया है कि इस कारपोरेशन का नियन्त्रण करने में भारत सरकार का भी हाथ हो। कमेटी के इन सुझावों को अमल में लाने के लिये कदम भी उठाया गया है।

११. पंचवर्षीय योजना में शहरी आकाश यात्रा प्रबन्ध पर प्रथम दो वर्षों में १.८५ करोड़ रु० प्रति वर्ष खर्च किया जायगा तथा आगामी ३ वर्षों में सब मिलाकर ९.६७ करोड़ रु० खर्च होगा। हवाई जहाज़ यातायात उद्योग के लिये योजना में ९.५ रु० की रकम इस अभिप्राय से मन्ज़ूर की गई है, ताकि नई कारपोरेशन, कम्पनियों को मुआवज़ा देकर, उन सभी कामों को संभाल ले जिन पर कि कम्पनियों की पूँजी लगी हुई है। अगर ये कम्पनियाँ इन नये कारपोरेशन में हिस्से खरीद कर शामिल होना चाहेंगी तो कुल ६.५ करोड़ रु० की जरूरत पड़ेगी, इस में १३ नये हवाई जहाज़ों को खरीदने का खर्च भी शामिल है।

सड़कें

१२. यह बात स्वीकार कर ली गई है कि वर्तमान सड़क व्यवस्था से देश की जरूरतें पूरी नहीं हो पा रही हैं। सन् १९४३ की युद्ध-पूर्व विकास योजना पर नागपुर की रिपोर्ट में इस बात को स्वीकार किया गया था कि आगामी दस वर्षों में भारत की पक्की सड़कें ६६,४०० मील से बढ़ कर १२२,००० मील तक और रोड़ी आदि की मामूली सड़कें ११२,००० मील से बढ़ कर २०७,५०० मील तक होनी चाहियें। इस योजना का यह ध्येय था कि ऐसे प्रदेश का, जहां खेती बाड़ी का पूर्ण रूप से विकास हुआ है, कोई भी गांव प्रमुख सड़क से पांच मील से अधिक दूर न हो। उस समय इस पर ३७२ करोड़ रु० के खर्च का अन्दाजा लगाया गया था, जो कि इस समय ७७४ करोड़ रु० के बराबर पड़ता है। कई कारणों से इस योजना की अवधि दस वर्षों से बढ़ा कर और अधिक लम्बी कर दी गई।

राष्ट्रीय राज-पथ

१३. नागपुर योजना के अनुसार भारत की सड़कें चार श्रेणियों में बांटी गई हैं—राष्ट्रीय सड़कें, राज्यीय सड़कें, जिले की सड़कें, और ग्राम सड़कें। कुछ विशेष शर्तों के अनुसार कुल मिलाकर १३,४०० मील लम्बी राष्ट्रीय सड़कों की देख भाल और मरम्मत का भार केन्द्र के ऊपर है। पिछले ५ सालों में १६० मील लम्बी नई सड़कें, १७ बड़े पुल और असंख्य छोटे-छोटे पुल बनाये गये हैं और १,३१५ मील लम्बी सड़कों की मरम्मत की गई है, जब कि ३२० मील लम्बी नई सड़कों और १८ बड़े पुलों का निर्माणकार्य चालू है। पंचवर्षीय योजना में इन शुरू किये हुए कामों को पूरा करने, ४५० मील लम्बी नई सड़कें बनाने, ४३ नये बड़े पुल तथा अनेक छोटे-छोटे पुल बनाने की व्यवस्था है। इसके अतिरिक्त लगभग २,२०० मील लम्बी सड़क की मरम्मत की जरूरत है, जिसमें से दो तिहाई की मरम्मत सन् १९५५-५६ तक पूरी हो जायगी। भारत सरकार ने अपनी पंचवर्षीय योजना में २७ करोड़ रु० राष्ट्रीय सड़कों के लिये अलग रख दिया है। इसके अलावा लगभग ४ करोड़ रु० से अधिक की रकम (राष्ट्रीय सड़कों के अतिरिक्त) अन्य खास-खास सड़कों को सुधारने पर खर्ची जायगी। जिनके देख-भाल की जिम्मेदारी भारत सरकार ने अपने ऊपर ली है। २१.५ लाख रु० की रकम केन्द्रीय सड़क अनुसन्धान शाला के लिये भी मंजूर की गई है, जहां पर कि देश के भिन्न-भिन्न भागों में सड़क-विकास योजना के महत्व

की बातों पर खोज-बीन होगी।

राज्यीय सड़कें

१४. फिलहाल राज्यीय सड़कों का खर्चा राज्य सरकारें उठा रही हैं। इसमें केन्द्रीय सड़क फण्ड में से भी मदद और हिस्सा मिलता है। राज्य सरकारों ने जो योजना बनाई है उसके अनुसार 'क' भाग के राज्यों में सन् १९५५-५६ तक पक्की सड़कें १०,००७ मील से बढ़कर १२,४५३ मील हो जायेंगी। 'ख' भाग के राज्यों के हिस्से में ये सड़कें ७,५८८ मील से बढ़कर ८,१२९ मील तक हो जायेगी। 'ग' भाग के राज्यों में सड़क विकास योजना में इस बात पर विचार हो रहा कि ऐसे भागों में, जहाँ तक पहुँचने के लिए अभी तक कोई सड़क नहीं है, अधिक से अधिक सड़कें बनवाई जाएँ। राज्यों ने सड़क विकास-योजना के लिये कुल मिलाकर ७३.५ करोड़ रु० खर्चने की व्यवस्था की है।

गाँव की सड़कें

१५. कमीशन का यह सुझाव है कि राज्य सरकारों को गांव की सड़कों की देखभाल और वहां नई सड़कें बनाने की ओर विशेष ध्यान देना चाहिये। कुछ राज्यों में तो गांव वालों के सक्रिय सहयोग से उनके गांव की सड़कों का विकास किया गया है। सड़क सुधार संस्था ने गांवों में सड़क बनाने के लिये सहकारिता प्रणाली पर नमूने के तौर पर एक योजना बनाई हुई है और इसको अमल में लाने के लिये 'सैन्ट्रल फण्ड रिजर्व' में से, इस विशेष योजना के बतौर १५ लाख रु० देना स्वीकार भी कर लिया है।

सड़क यातायात

१६. फिलहाल देश में लगभग ४७,४७५ लोगों ने व्यावसायिक रूप से मोटर यातायात का काम अपने हाथों में लिया है। इसमें ४६ हजार से अधिक व्यक्तियों का काम छोटे पैमाने पर ही है। इनमें से प्रत्येक के पास ६ से अधिक मोटर गाड़ियां नहीं हैं। बहुत से राज्यों में राज्य की ओर से चलाई गई मोटर सर्विस का काम भिन्न-भिन्न अवस्थाओं में है।

१७. इस समय सरकारी रोड ट्रान्सपोर्ट सर्विस में १७.१३ करोड़ रु० की पूँजी लगी हुई है। इस रकम को राज्य सरकारों, रेलवे तथा प्राइवेट कम्पनियों ने मिलकर पूरा किया है। पंचवर्षीय योजना में, राज्य सरकार की ओर से १९५१ से सन् १९५६ तक जो रकम सड़क यातायात पर खर्च की जायगी,

१९५१–५६ तक की रेलवे योजना (करोड़ रुपये में)

पुनर्निमाण और अतिरिक्त कार्य	१९५१–५२ में अनुमानित खर्चे	१९५२–५३ बजट	१९५३–५६	पाँच साल का जोड़
पटरियाँ	८·५१	१४·३६	४२.००	६४.८७
पुल	०·८५	१·१५	३.६०	५.६०
अन्य निर्माण तथा इन्जिनियरिंग के काम	७·८९	८ ५२	२७.००	४३.४१
कोयले की खानें	०·०६	०·३९	१.००	१.४५
बन्दरगाह	०·०९	०·१८	०.७७	१.०४
डिब्बे और मशीनें	३६·९१	४२·५५	१२८.५०	२२०७.९६
मज़दूरों की भलाई, कर्मचारियों के क्वार्टर तथा अन्य कल्याण कार्यों पर खर्च	४·५५	४.५४	१५.००	२४.०९
पुनस्संस्थापन कार्य	०·५२	०.१४	४.००	५.६६
नई लाइनें विशेष योजनाएँ बड़े पुल रेल की पटरियों पर बिजली का प्रबन्ध छोटी रेलवे लाइनों को बड़ी लाइन में बदलना	६·५५	५ ९७	१६.००	२८.५२
मुसाफिरों को सुविधाएँ	२·४७	३.००	९.५३	१५.००
अन्य ऐसे कार्य जिनसे बचत करने की सम्भावना हो सकती है	२·४७	२.७०	२.६३	२,४०
कुल जोड़	७०·८७	७६.१०	२५०.०३	४००.००

अनुमान है कि वह लगभग ८.९७ करोड़ रु० तक होगी। वह इस प्रकार खर्च की जायगी:—(१) २,००० मोटर गाड़ियां खरीदने पर और (२) तमाम मोटर गाड़ियों की मरम्मत के लिए एक नवीनतम ढंग के वर्कशाप के प्रबन्ध पर। कमीशन की यह राय है कि जहां पर सड़क ट्रांसपोर्ट सर्विस का काम

राज्य ने खुद संभाला है वहाँ इसके लिए एक कारपोरेशन अवश्य बनाया जाय। इससे वहां प्रबन्ध कुशलता और आवश्यक स्वाधीनता की सुविधा आप ही आप हो जावेगी। वास्तव में सन् १९५० के रोड ट्रान्सपोर्ट कारपोरेशन ऐक्ट ने स्टेट ट्रान्सपोर्ट कारपोरेशन बनाने के लिये पृष्ठभूमि तैयार कर दी है और कुछ राज्यों में ऐसे कारपोरेशन बन भी गये हैं।

डाक, तार और टेलीफोन

१८. योजना में डाक, तार और टेलीफोन तथा बेतार के तार पहुँचाने के विकास कार्य पर ५० करोड रु० खर्च जायेगा। इस योजना में इस बात पर विशेष जोर दिया गया है कि जिस गांव की आबादी २,००० या इससे अधिक है उसमें एक डाकखाना अवश्य हो तथा बड़े शहरों में टेलीफोन की सुविधायें बढ़ाई जायं।

—:o❀o:—

अध्याय ३२

स्वास्थ्य

दूसरे देशों की तुलना में भारतवर्ष में जन्म के समय बच्चों के जीवित रहने की संभावना औसतन कम है। सन् १९४१ की रिपोर्ट के आधार पर तैयार ताजे आंकड़ों से पता चलता है कि पुरुषों और स्त्रियों के जीवित रहने की संभावना क्रमशः ३२'०९ और ३१'३७ प्रतिशत है। मृत्यु संख्या और बाल-मृत्यु संख्या से यह स्पष्ट हो जाता है कि हमारे देश के स्वास्थ्य का स्तर भी गिरा हुआ है। लगभग १० वर्ष की आयु के अन्दर बच्चों की मृत्यु संख्या इतनी है कि वह सम्पूर्ण मृत्यु संख्या का ४० प्रतिशत भाग है। इनमें से २० प्रतिशत बच्चे तो अपने प्रथम वर्ष के भीतर ही मर जाते हैं। प्रसव के समय बच्चों को जन्म देकर एक हजार पीछे २० माताओं की मृत्यु हो जाती है, जो कि बहुत अधिक है। प्रतिवर्ष लगभग २००,००० स्त्रियों की प्रसव के समय मृत्यु हो जाती है तथा गर्भ धारण के कारण उत्पन्न खराबियों से जो स्त्रियां रोगों का शिकार होती हैं उनकी संख्या लगभग ४० लाख तक पहुँचती है।

२. प्रतिवर्ष महामारी के कारण भी काफी संख्या में लोग मृत्यु के शिकार होते हैं। यह संख्या कुल मृत्यु संख्या का पाँचवाँ भाग है। ऐसा अनुमान है कि १० करोड़ व्यक्ति मलेरिया से पीड़ित होते हैं और प्रतिवर्ष दस लाख के करीब व्यक्तियों की इससे मृत्यु हो जाती है। इसी प्रकार यह भी अनुमान किया जाता है कि तपेदिक से सक्रिय रूप से पीड़ित व्यक्तियों की संख्या लगभग २५ लाख है जिसमें से प्रतिवर्ष ५००,००० व्यक्तियों की मृत्यु हो जाती है। इस मृत्यु संख्या की बहुत कुछ रोकथाम की जा सकती थी।

स्वास्थ्य के दुर्बल होने के कारण

३. स्वास्थ्य की गिरावट का मुख्य कारण है स्वस्थकर परिस्थितियों का अभाव। क्योंकि इसी पर तन्दुरुस्ती का दारोमदार है। लोगों का तंग और गंदे घरों में रहना, गंदे पानी का उपयोग, मैले और कूड़े-करकट की

निकासी का समुचित प्रबन्ध का न होना और अपौष्टिक भोजन के सेवन से शरीर में जीवन-शक्ति की कमी इत्यादि बातें अस्वस्थकर परिस्थितियों को पैदा करने का कारण हैं। चिकित्सा की व्यवस्था तथा साधारण ज्ञान और स्वास्थ्य रक्षा की जानकारी के न होने से भी यह समस्या और भी बढ़ जाती है। इस स्थिति में जल्द सुधार करने में भारी रुकावटें हैं यथा देश के आर्थिक साधन परिमित हैं, ट्रेनिंग प्राप्त चिकित्सा-कर्मचारियों की बहुत कमी है तथा विस्तृत समाज-सुधार-योजना पर ही सम्पूर्ण स्वास्थ्य सुधार-योजना आधारित हैं।

नीचे दिये हुए आंकड़ों से यह बात स्पष्ट होती है कि आबादी के अनुपात से डाक्टरों आदि की संख्या कितनी कम है।

आबादी के अनुपात से डाक्टरों की संख्या

चिकित्सा सहायक कर्मचारी	भारत	ब्रिटेन
१ डाक्टर	६,३००	१,०००
१ नर्स	४३,०००	३००
१ हेल्थ विजिटर	४,००,०००	४,७१०
१ दाइयाँ	६०,०००	६१८
१ दांतों का डाक्टर	३,००,०००	२,७००
१ दवाई बनाने वाला	४०,००,०००	३ डाक्टरों तक

डाक्टरी धन्धों के सभी व्यक्तियों के लिए अधिक ट्रेनिंग की सुविधाएं जुटानी विशेष महत्त्व की बात है। फिलहाल देश में जितने चिकित्सा संस्थाएं हैं उनसे देश की मांग कतई पूरी नहीं होती। सन् १९४९ की रिपोर्ट के अनुसार औसतन सारे देश में शहर के २४,००० तथा गांव के ५०,००० व्यक्तियों के पीछे एक चिकित्सा संस्था पड़ती है।

चिकित्सा (मेडिकल) और सार्वजनिक स्वास्थ्य योजना

५. ऐसी स्थिति में बुनियादी रूप से पंचवर्षीय योजना में निम्नलिखित स्वास्थ्य-रक्षा सम्बन्धी कार्यक्रम को प्राथमिकता दी जाय।

(१) साफ और शुद्ध पानी का प्रबन्ध तथा नालियों और सफाई की व्यवस्था।

(२) मलेरिया की रोकथाम।

(३) गश्ती दवाखानों के जरिये गांवों की जनता के स्वास्थ्य की निरोधात्मक देखभाल।

(४) माताओं तथा शिशु के लिए स्वास्थ्य सेवाएं।

(५) स्वास्थ्य सम्बन्धी शिक्षा और ट्रेनिंग।

(६) दवाईयों और उपकरणों की उपलब्धि में आत्म-निर्भरता।

(७) परिवार आयोजन और आबादी पर नियन्त्रण।

६. केन्द्र और राज्य की चिकित्सा और सार्वजनिक स्वास्थ्य योजना पर मिलाकर ९९'५५ करोड़ रुपया खर्चा जायगा। इसमें केन्द्र का हिस्सा लगभग १७'८७ करोड़ है। इसमें वह चिकित्सा और योजना शामिल नहीं है जिनको पूरा करने का भार राज्यों के स्थानीय अधिकारियों या अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं यथा विश्व स्वास्थ्य संस्था और यूनीसेफ ने लिया है। केन्द्रीय सरकार की अधिकांश रकम निम्नलिखित कार्यों पर खर्च होगी :—

(१) 'आल इण्डिया मेडिकल इन्स्टीच्यूट' तथा उच्च कोटि के अनुसंधान कार्य और पोस्ट ग्रेजुएट अध्ययन के लिए एक केन्द्रीय संस्था, जिस पर कि ३.५९ करोड़ खर्चा आयगा; (२) राष्ट्रीय मलेरिया योजना पर लगभग १० करोड़ रुपये खर्च होंगे। राज्यों के लिए ४२.४१ करोड रुपया चिकित्सा योजना के लिए अलग रख दिया गया है। ३३ करोड़ रुपया चालू स्कीमों पर खर्च किया जायगा, जब कि सार्वजनिक स्वास्थ्य योजना पर कुल मिला कर जो ३९'२३ करोड़ रुपया मंजूर हुआ है उसमें से सिर्फ १७ करोड़ रुपया चालू स्कीमों पर खर्च होगा और २२'२३ करोड रुपया नई स्कीमों पर खर्च किया जायगा। यह खर्च बहुत करके इस लिए होगा कि पीने के पानी के प्रबन्ध और नालियों की व्यवस्था की अनेक स्कीमें राज्यों ने इस योजना के अन्तर्गत शुरू की हुई हैं।

७. नीचे दिये हुए आंकड़ों से वे सब खर्च स्पष्ट होते हैं जो कि केन्द्र और राज्यों (जम्मू और काश्मीर को छोड़कर) द्वारा किये जाएंगे।

	लाख रुपया		
	१९५०–५१	पांच साल में जोड़	सालाना औसत
प्रबन्ध कार्य	३'२	६२'२	१२ ५
शिक्षा और प्रशिक्षण	२३५'२	१८९१ ७	३७८ ४
अस्पताल और डिस्पेन्सरी	३३१'३	२४६१'७	४९२'४
अन्य योजनाएं	४३'३	३२२ १	६४'५
	६१३'०	४७३७'७	९४७'८

८. जितने खर्च का अन्दाज लगाया गया है, उसमें से आधे से अधिक तो अस्पताल और दवाखानों पर खर्च किया जायगा और लगभग ४० प्रतिशत मेडिकल शिक्षा और ट्रेनिंग पर। अखिल भारतीय चिकित्सा संस्था की स्थापना, आसाम, बम्बई मध्य-प्रदेश, पश्चिमी बंगाल और त्रावनकोर-कोचीन के नए मेडिकल कालिजों को पूरा करने का काम, वर्तमान मेडिकल कालिजों और स्कूलों के स्तर को ऊपर उठाना और चिकित्सा में सहायक कर्मचारी यथा नर्स, दाई, कम्पाउंडरों इत्यादि की ट्रेनिंग का प्रबन्ध आदि ये सभी कार्य चिकित्सा सम्बन्धी शिक्षा तथा ट्रेनिंग की योजना के अन्तर्गत हैं। देश में इस योजना को अमल में लाने पर मेडिकल क्षेत्र में प्रतिवर्ष सन् १९५१-५२ से सन् १९५५-५६ तक ट्रेनिंग प्राप्त कर्मचारियों की संख्या में निम्नलिखित विवरण के अनुसार बढ़ती होगी :—

	१९५०-५१ में	१९५५-५६ के अन्त मे	प्रतिशत वृद्धि
डाक्टर	२५०४	२७८२	११'१
कम्पाउण्डर	८९४	१६२१	८१'३
नर्स	२२१२	३०००	३५'६
दाइयां	१४०७	१९३२	३७'३
वैद्य और हकीम	९१४	१११७	२२ २

अस्पतालों तथा डिस्पेन्सरियों और उनमें पलंगों की संख्या में नीचे लिखे अनुपात से बढ़ती होगी :—

	१९५०-५१ मे	१९५५-५६ के अन्त में	प्रतिशत वृद्धि
अस्पतालों की संख्या	२,०१४	२,०६२	२'४
दवाखाने (शहरो में)	१,३५८	१,६९५	२४'८
दवाखाने (गांवों में)	५,२२९	५,८४०	११'६
अस्पतालों में पलंग	१०६,४७८	११,७२२	१०'१
दवाखानों मे पलंग (शहरों मे)	२,०१३	२,२१३	११'४
दवाखानों मे पलंग (गांवों में)	५,०६६	५,५८२	१०'२

लगभग तमाम राज्यों में तपेदिक क्लीनिक और सैनेटोरियम (स्वास्थ्य-सदन) और अधिकांश राज्यों में जहां पर कोढ़ फैला हुआ है, कोढ़ क्लीनिक

और अस्पताल खोलने का काम तथा गुप्त रोगों की रोक थाम और इलाज की व्यवस्था आदि कार्य इसी योजना के अन्तर्गत हैं।

१०. नीचे दिये हुए आंकड़ों से यह पता चलता है कि १६५०-५१ में सार्वजनिक-स्वास्थ्य-योजना के भिन्न-भिन्न मदों में खर्ची गई रकम की तुलना में अब आगे कितना-कितना खर्च केन्द्र और राज्य (जम्मू और काश्मीर राज्यों को छोड़ कर) उठाएंगे :—

(लाख रुपया)

	१६५०-५१	पांच साल का जोड़	प्रतिवर्ष का अनुपात
प्रबन्ध कार्य	१५.६	२१०.८	४२.२
शिक्षा	१	१३०.७	२६.१
पानी की सप्लाई और नालियां	२७०.५	२३३४.४	४६६.६
मलेरिया की रोकथाम	४५.४	१७१५.२	३४३.०
अन्य योजनाएँ	३५.५	६७२.५	१२८.६
	३६७.१	५०६३.६	१०१५.७

इस बात का ध्यान रखा जायगा कि अधिकांश खर्च पानी और नाली की व्यवस्था तथा मलेरिया की रोक-थाम पर खर्च किया जाय।

पानी का प्रबन्ध

११. अभी लोगों को साफ पानी पहुँचाने का प्रबन्ध कुल इतना है कि उससे शहर के कुल ६ प्रतिशत लोगों को सुरक्षित और ढका हुआ साफ पानी मिलता है। उससे देश की शहरी आबादी की केवल ४८.५ आबादी को पानी मिल पाता है। इसी प्रकार ४८ शहरों में से जिनकी आबादी एक लाख से ऊपर है केवल २३ नगर ऐसे हैं जहां बाकायदा नालियों का प्रबन्ध है। १२ अन्य नगरों में नालियों का प्रबन्ध तो है पर वह अधूरा ही है। इससे नालियों के प्रबन्ध से कुल तीन प्रतिशत आबादी लाभ उठाती है।

पंचवर्षीय योजना के अनुसार २३.४६ करोड़ रु० राज्यों द्वारा पानी और नाली के प्रबन्ध पर खर्च किया जायगा। इस पूरी रकम में से १२.१२ करोड़ रु० शहर में पानी और नालियों की व्यवस्था करने पर तथा ११.३७ करोड़ गांवों में पानी के प्रबन्ध करने पर खर्च होगा। केन्द्रीय सरकार की पंचवर्षीय योजना में विकास कार्य के लिए ३० करोड़ रु० स्थानीय अधिकारियों को

सहयोग देने के लिए ऋण के रूप में अलग रख दिया गया है। इस रकम में से लगभग १० करोड़ रु० पानी के प्रबन्ध के लिए प्राप्त हो सकेगा। इसके अतिरिक्त जनता के द्वारा स्वेच्छा से दिये गये श्रम और धन दान द्वारा इस रकम से पानी प्रबन्ध की योजना काफी हद तक सुधर जायेगी।

मलेरिया

१२. एक बड़ी योजना के आधार पर राष्ट्रीय स्तर पर मलेरिया विरोधी परियोजनाएँ चलाई गई हैं। मलेरिया के रोकथाम के कार्यक्रम में देहाती इलाकों में कीट-नाशक दवाइयों के छिड़काव तथा मलेरिया नाशक दवाइयों के इलाज की व्यवस्था मुख्य है। इससे २० करोड़ व्यक्तियों को मलेरिया से मुक्ति मिलेगी। स्वास्थ्य सेवा के डाक्टरों के निरीक्षण और देख-भाल में यह कार्य १२५ मलेरिया विरोधी स्वास्थ्य दलों द्वारा किया जायगा। इस योजना में यह भी है भारतीय सरकार ने अंतर्राष्ट्रीय संस्थाओं यथा विश्व स्वास्थ्य संस्था और यूनीसेफ के सहयोग से जो डी० डी० टी० उत्पादक यन्त्र लगाने की योजना बनाई है, उसको सहयोग देने के लिए एक और इसी प्रकार का यन्त्र लगाया जाय ताकि डी० डी० टी पाउडर पर्याप्त मात्रा में कम दामों पर मिल सके। विचाराधीन मलेरिया विरोधी योजना पर साढ़े तीन वर्ष में १५ करोड़ रु० खर्च बैठेगा। स्थानीय खर्च जो कि राज्य उठायेंगे, वह लगभग ५ करोड़ रु० तक होगा जबकि केन्द्रीय सरकार और टेक्नीकल सहयोग-करार का हिस्सा मिला कर १० करोड़ रु० खर्च होगा।

तपेदिक

१३. प्रतिवर्ष तपेदिक से इस देश में इतने व्यक्ति मरते हैं कि यहाँ यह बताना विशेष आवश्यक है कि इस बिमारी की रोकथाम के लिए क्या किया जा रहा है। इस योजना में कम से कम निम्नलिखित कार्यों को प्राथमिकता दी जाएगी :—

१. बी० सी० जी० के टीके लगाने की व्यवस्था।

२. क्लिनिकों और अस्पतालों में रखकर इलाज की सुविधायें देना।

३. ट्रेनिंग और प्रदर्शक केन्द्र।

४. रोगियों को अलग रखने के लिए पलंग का प्रबन्ध और इलाज।

बाद की देखभाल

भारत सरकार ने यूनीसेफ और विश्व स्वास्थ्य संस्था से एक समझौता

कर लिया है, जिसके अनुसार सारे देश में बी० सी० जी० के टीके लगाने की योजना चलाई जायगी। इस प्रकार योजना के अनुसार सामूहिक रूप से टीके लगाने में जो सफलता मिलेगी उसमें यह संभव है कि १५–२० वर्षों में तपेदिक से मृत्यु प्राप्त लोगों की संख्या घट कर वर्तमान वार्षिक मृत्यु संख्या अर्थात् ५००,००० का पांचवाँ हिस्सा ही रह जायगी। इन क्लिनिकों का काम यह हो कि बिमारी की रोकथाम, ठीक जांच तथा इलाज करें। उनको कुछ पलंगों की भी सहूलियत हो तथा इस कार्य को करने में उन्हे डाक्टरों तथा हेल्थ विज़िटरों की भी सेवाएँ प्राप्त हों, ताकि वे उन मरीज़ों को दाखिल करके वहाँ उन्हें इलाज की सुविधाएँ दे सकें। यह तय हो गया है कि अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग से दिल्ली, त्रावनकोर और पटना में तीन आदर्श तपेदिक केन्द्र खोले जायं। इसी प्रकार के केन्द्र अन्य शहरों में भी खोले जाने चाहिए। केन्द्र और राज्यों ने इन योजनाओं को सफल बनाने के लिए काफी गुंजाइश रखी है और इस ओर काफी उन्नति भी कर ली है। इस योजना के परिणाम स्वरूप सन् १६५०–५१ की तुलना में सन् १६५५–५६ तक लगभग नीचे दी हुई संस्थाओं के अनुसार प्रगति होने की सम्भावना है।

	१६५०–५१		१६५५–५६	
	संस्थाएँ	पलंग	संस्थाएँ	पलंग
स्वास्थ्य सदन	३७	४१६१	४६	५६५६
अस्पताल	४८	३०७७	५०	४८१४
क्लिनिक	१२७	२३२३	१८०	२६५२
बी० सी० जी० दल	७३	—	१३७	—

इन योजनाओं पर राज्यों और केन्द्र दोंनों मिलकर लगभग ४ ३१ करोड रु० खर्च करेंगे।

पौष्टिक भोजन

हमारे देश में कम भोजन और असंतुलित भोजन की समस्या बहुत व्यापक रूप से है। पैदावार के आँकड़ों तथा खुराक पड़ताल कमेटी की रिपोर्ट में यह स्पष्ट है कि सम्पूर्ण रूप से हमारे देश में लोगों को भोजन की न्यूनता और हीनता बहुत अधिक है क्योंकि जीवन-शक्ति को बढ़ाने वाला भोजन, जो कि अधिकांश रूप में अनाज ही होता है, देश में काफी तादाद में पैदा नहीं किया जाता और यह भी सच है कि अधिकाश जनता इतनी गरीब है कि पौष्टिक भोजन पर व्यय करने में असमर्थ है। आमतौर पर आम-

दनी के अनुपात से केवल तीस प्रतिशत जनता ही पौष्टिक भोजन खाने की सामर्थ्य रखती है। असन्तुलित भोजन का बच्चों पर बहुत ही भयानक प्रभाव पड़ता है। यह सार्वजनिक स्वास्थ्य विभाग की जिम्मेवारी है कि वह मातृ और शिशु कल्याण केन्द्रों के जरिये माताओं और बच्चों के भोजन पर निरीक्षण रखें। व्यापक रूप से स्कूलों में बच्चों को खिलाने की योजना को विकसित करने पर खास जोर दिया जा रहा है। कृत्रिम विटामिन (प्राणपोषक तत्व) तथा खमीर वाले भोजन के उत्पादन तथा शार्क लिवर आयल के व्यवसाय की उन्नति पर भी विचार करना चाहिये और इस बात का अनुसंधान किया जाय कि सस्ती और बहुतायत से प्राप्त सब्ज़ियों के सार से विटामिन 'ए' से पूर्ण कैरोटिन से उत्पन्न वस्तुएँ बनाना कहाँ तक सम्भव है।

माताओं और शिशुओं की स्वास्थ्य रक्षा

१५. योजना कमीशन की राय मे जनता के हित के लिए शुरू किये गये स्वास्थ्य-रक्षा कार्य-क्रम में मातृत्व काल मे स्त्रियों की रक्षा तथा शिशु-कल्याण कार्यों को प्राथमिकता मिलनी चाहिये। शहरी इलाकों मे काफी संख्या में ऐसे कल्याण केन्द्र खोलने चाहियें जिससे १०,००० आबादी के पीछे एक केन्द्र हो जिसमें कम-से-कम एक हेल्थ विज़िटर, दो दाइयाँ, एक चपरासी और एक थोड़े समय काम करने वाला मेहतर हो। देहाती इलाकों में १०,००० से १२,००० आबादी पीछे एक ऐसा केन्द्र हो जिसमें दो दाइयाँ हों, प्रत्येक थाना या तहसील में एक बड़ा केन्द्र हो जहाँ एक लेडी डाक्टर और दो हेल्थ विजिटर हों तथा गाँव के अन्य छोटी-छोटी इकाइयाँ इस बड़ी इकाई के ही अन्तर्गत हो। अनेक राज्यों और केन्द्रों में माता और शिशु स्वास्थ्य-रक्षा के लिए १ ३५ करोड़ रु० और ५३'४८ लाख रु० क्रमशः खर्च करना मंजूर किया है।

स्वास्थ्य-शिक्षा

१६. कमीशन का दूसरा सुझाव यह है कि सर्व-साधारण मे सभी जाति और सभी आयु के स्त्री-पुरुषों में स्वास्थ्य सम्बन्धी शिक्षा का प्रसार किया जाय। इस शिक्षा के प्रसार मे सुनाकर और दिखाकर दोनों प्रकार से जानकारी दी जाय। इसमें चलचित्र, रेडियो, प्रेस, सचित्र इश्तहार, स्कूल, प्रदर्शनी, अजायबघर, पुस्तकालय आदि सभी को प्रचार-कार्य का साधन बनाया जा सकता है। केन्द्र के द्वारा एक स्वास्थ्य प्रचार ब्यूरो की स्थापना भी इस स्वास्थ्य योजना का एक भाग है जो कि स्वास्थ्य शिक्षा सम्बन्धी

मसाला यथा छोटे-छोटे फिल्म और साहित्य तैयार करेगा। इसमें लगभग १९ लाख रु० खर्च आयेगा।

चिकित्सा-शिक्षा और अनुसन्धान

१७. इस समय हमारे देश में तीस मेडिकल कालिज हैं जहाँ से कि विद्यार्थी एम० बी० बी० एस० की डिग्री प्राप्त करके निकलते हैं। इसके अतिरिक्त चार मेडिकल स्कूल भी हैं जहाँ पूर्ण शिक्षा प्राप्त करने पर विद्यार्थी को डाक्टरी का लाइसेन्स मिल जाता है। यह आशा की जाती है कि इन स्कूलों को मेडिकल कालिजों में बदल दिया जायगा। यह जरूरी है कि भारतीय चिकित्सा-परिषद् (इन्डियन मेडिकल काउन्सिल) ने ट्रेनिंग तथा योग्यता का जो कम-कम-से स्तर निश्चित कर दिया है वह सब जगह एक-सा हो। फिलहाल प्रतिवर्ष २,९०० विद्यार्थी इन कालिजों में दाखिला पाते हैं और १,६०० विद्यार्थी डाक्टर बनकर निकलते हैं। ट्रेनिंग (प्रशिक्षण) की सुविधाएँ बढ़ानी जरूरी हैं ताकि पाँच साल के अन्त में मेडिकल कालिजों में प्रतिवर्ष ४,००० विद्यार्थियों को दाखिला मिल सके। मेडिकल कालिजों में शिक्षा इस प्रकार से दी जाय कि विद्यार्थी दवाइयों का निरोधात्मक और सामाजिक उपयोग तथा गाँवों के स्वास्थ्य का महत्त्व समझने लगें।

१८ देश के प्राय: सभी शिक्षण अस्पतालों में नर्सिंग की शिक्षा दी जाती है और वर्तमान शिक्षण अस्पतालों में फिलहाल जितनी नर्सों को शिक्षा दी जाती है उसकी संख्या में बढ़ती हो सकती है। शिक्षण अस्पतालों से सम्बन्धित ट्रेनिंग स्कूलों में प्रोबेशनर्स (अभ्यास के लिये आई हुई) महिलाओं की संख्या कम-से-कम दुगुनी कर दी जानी चाहिये। दाइयों की ट्रेनिंग सुविधाएँ भी काफी बढ़ाई जा सकती हैं। वर्तमान प्रत्येक संस्था में जहाँ प्रसूति पलंग है, ट्रेनिग के लिए और अधिक संख्या में उमीदवारों की भर्ती की जा सकती है।

१६. केन्द्र और राज्यों के राजस्व में से चिकित्सा शास्त्र के अनुशीलन और अनुसंधान कार्य के लिए निश्चित रकम मंजूर होनी जरूरी है। यह रकम अनुसंधान संस्था और चिकित्सा कालिजों में शिक्षण और अनुसंधान कार्य पर खर्ची जाय। इसके लिए एक नवीन-तम स्तर की लाइब्रेरी की भी जिसमें काफी संख्या में चिकित्सा सम्बन्धी पुस्तकें तथा पत्रिकाएं हों, बहुत ज़रूरत है। मेडिकल फैकल्टी का ध्यान रख कर चिकित्सा शास्त्र का इतिहास अवश्य सिखाया जाय। केन्द्र तथा राज्यों की अनुसंधान-

संस्थाएं विशेष अनुसंधान कार्य को अपने हाथ में लें तथा इस बात की भी जांच की जाय कि वह कौन सी सामाजिक परिस्थितियां हैं जिनका प्रभाव स्वास्थ्य और बीमारी पर पड़ता है।

देशी तथा अन्य चिकित्सा प्रणालियाँ

२०. पंचवर्षीय योजना में देशी चिकित्सा विज्ञान तथा अन्य चिकित्सा प्रणालियों पर अनुसन्धान करने के लिए ३७'५ लाख रुपया मंजूर किया गया है तथा भारत सरकार ने जामनगर में केन्द्रीय अनुसंधान संस्था (सेन्ट्रल इंस्टीच्यूट आफ रिसर्च) स्थापित करने की भी स्वीकृति दे दी है। यह भी जरूरी है कि देशी दवाइयों के अनुसंधान का कार्य बाकायदा हो ताकि उनका ठीक से परीक्षण किया जा सके, उनके नाम पता लग सकें, उनका उत्पत्ति-स्थान निश्चित हो सके तथा किस भाग मे प्रत्येक जड़ी-बूटी सफलता पूर्वक पैदा की जा सकती है, इसका भी निश्चय किया जा सके। जड़ी-बूटियो को जमा करने, उनको एक निश्चित स्तर पर लाने उनका संग्रह करने और बांटने के तरीको में जल्द ही सुधार किया जाना ज़रूरी है।

२१. देशी ढंग से चिकित्सा शास्त्र को सफल बनाने के लिये यह ज़रूरी है कि वैद्यों और हकीमो की ट्रेनिंग का सिलसिला बाकायदा निश्चित हो। फिलहाल तो इन देशी चिकित्सा-स्कूलों में कहीं भी एक से पाठ्य-क्रम का अनुसरण नहीं किया जा रहा है। इस विषय में जो पाठ्यक्रम बनाया जाय वह ऐसा होना चाहिए जिससे विद्यार्थी उस चिकित्सा प्रणाली से इलाज करने में पूर्ण रीति से दक्ष हो जाय। परन्तु यह चिकित्सा शास्त्र आधुनिक चिकित्सा शास्त्र की उपेक्षा नहीं कर सकता जो वैज्ञानिक प्रणाली के प्रोत्साहन से साथ-साथ बराबर उन्नति करता गया है। यह स्पष्ट है कि इस पाठ्य-क्रम मे आयुर्वेदिक प्रणाली को आयुर्वेदिक चिकित्साचार्यों की सलाह से विशेष रूप से सुदृढ़ तथा सार्थक बनाना होगा। इन आयुर्वेदिक कालिजो में प्रवेश पाने के लिये विद्यार्थी मे कम से कम इतनी योग्यता तो अवश्य हो कि वे आयुर्वेद प्रणाली को समझ सके। इसके अतिरिक्त चिकित्सा-शास्त्र के आधारभूत विज्ञान के मूल-सिद्धान्तों को भी समझने की योग्यता उनमें हो। एक मत होकर सबकी यही राय है कि आयुर्वेद का कोर्स पूरा रखने की अवधि बढ़ाकर पांच साल कर दी जाय। कुछ चुनी हुई संस्थाओं का स्तर ऊँचा करने के लिये जल्द ही कदम उठाना पड़ेगा। कम से कम इनमें से एक संस्था का स्तर तो इतना उठा दिय

जाना जरूरी है कि उनमें उच्च कोटि का अनुसंधान कार्य किया जा सके तथा वहां के शिक्षा का मापदंड वांछित स्तर तक पहुँच जाय। राज्यों ने अपनी योजना में ८४'२३ लाख रुपया इन देशी चिकित्सा प्रणालियों के अध्ययन और ट्रेनिंग के लिये और १'०६ करोड़ रु० अस्पताल और दवा-खानों के लिए रखा है ।

२२. जहां तक होम्योपैथी का सम्बन्ध है, इस बात का सुझाव दिया गया है कि होम्योपैथी चिकित्सा शास्त्र की एक केन्द्रीय सलाहकार समिति बना दी जाय जो कुछ कालिजों का स्तर ऊपर उठाये तथा नये कालेज शुरू करें जिनमें शुरू दो साल में साधारण कोर्स समाप्त कराया जाय और अगले तीन साल होम्योपैथी के विषय में अध्ययन के लिए अलग निश्चय किये जायं, अनुसंधान कार्य के लिए सुविधाएं दी जायं तथा लखनऊ में होम्योपैथी दवाइयों को बनाने के लिए एक मुख्य रसायनशाला खोली जाय ।

दवाइयां तथा चिकित्सा के अन्य उपकरण

२३. इस बात की जरूरत है कि काफी तादाद में और उचित मूल्य पर अच्छी किस्म की दवाइयों तथा चिकित्सा के अन्य उपकरणों का उत्पादन बढाया जाय। यह खास जरूरतें तभी पूरी हो सकती हैं जबकि प्राइवेट संस्थाएं और राज्य मिलकर इस ओर प्रयत्न करें।

२४. देशी दवाइयों को तैयार करने की विधि में सामन्जस्य होना बहुत जरूरी है। दवाई बनाने की प्रणाली तथा किस्म का प्रमाप (स्टैण्डर्ड) निर्धारित करना आवश्यक है तथा उन्हें इस प्रकार से तैयार किया जाय कि वे नुस्खे के रूप में दी जा सकें। इस ध्येय की पूर्ति के लिए भारतीय चिकित्सा-अनुसंधान समिति ने एक जड़ी-बूटी परीक्षण कमेटी की स्थापना की है ताकि उपयोगी जड़ी-बूटियों का उत्पादन खास-खास जगहों पर बढाया जा सके। भारत के स्वास्थ्य-विभाग ने औषधि गवेषणा-शाला में इन देशी जड़ी-बूटियों के परीक्षण के लिए तथा इस प्रकार की बाजारू दवाइयों में मिलावट की जांच करने के लिए एक औषधि परीक्षण-विभाग खोल दिया है। वैज्ञानिक तथा औद्योगिक अनुसंधान परिषद ने लखनऊ में एक औषधि गवेषणा-शाला की स्थापना की है जो कि रोजमर्रा काम में आने वाली जड़ी-बूटियों की
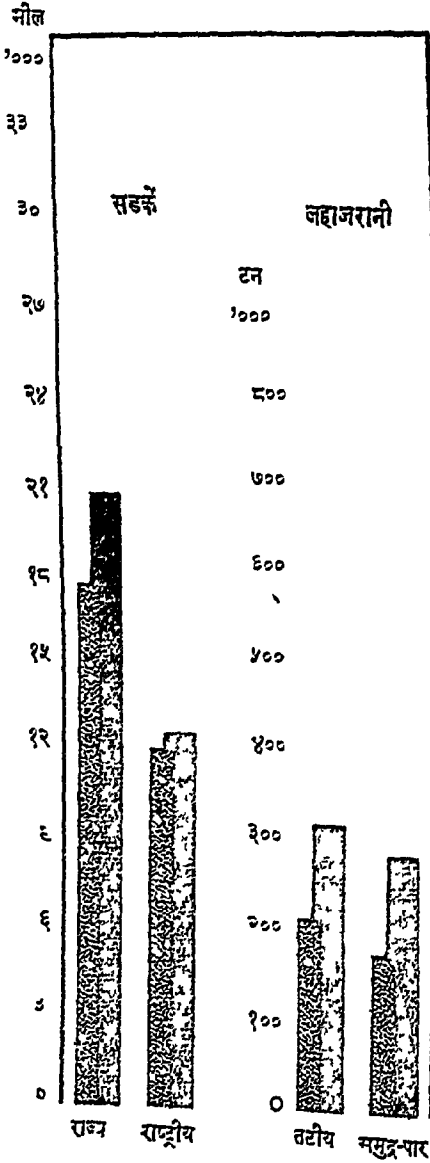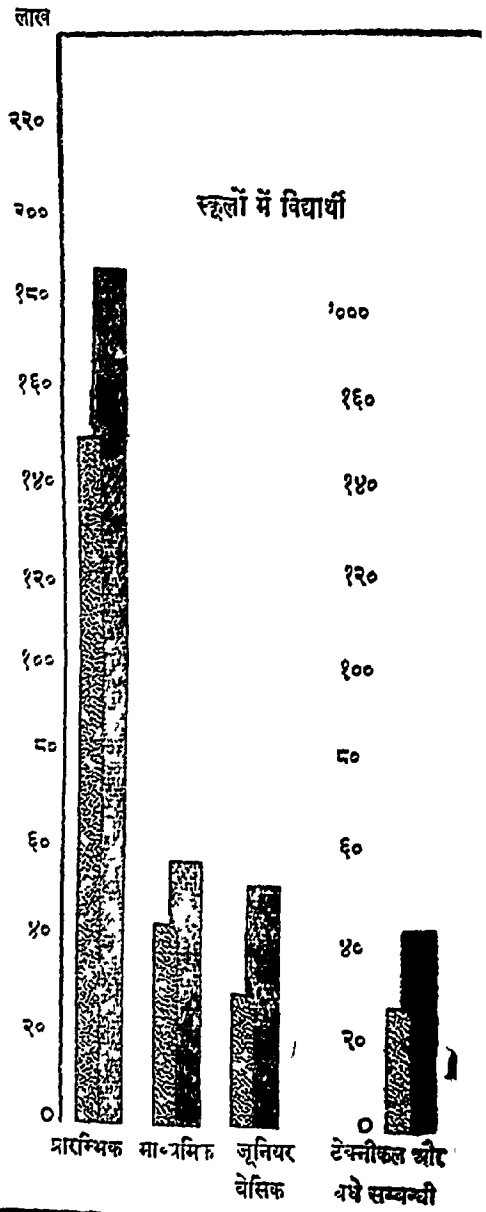
के लक्ष्य

१९५५—५६
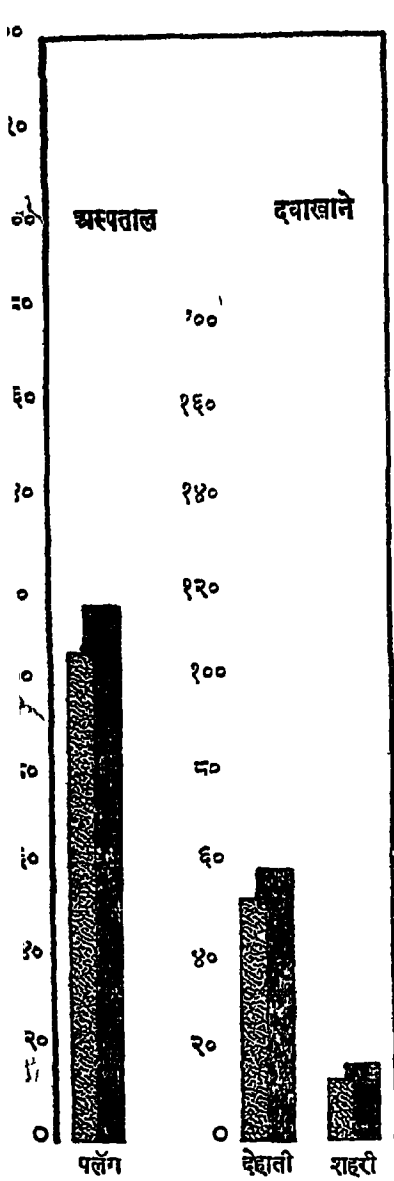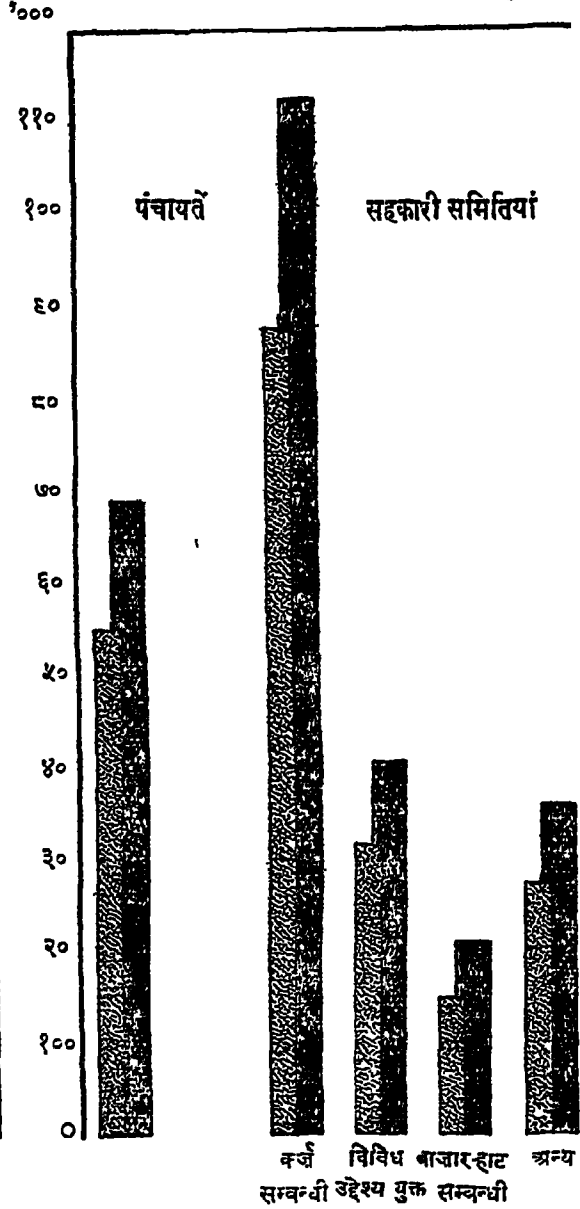
जांच करेंगे। भारत सरकार ने एक ऐसी कमेटी भी नियुक्त की है जो कि देश के लिए अनुकूल फारमोकोपिया (वैद्यक-शास्त्र) तैयार करेगी। इस फारमोकोपिया में न केवल कृत्रिम (सिन्थेटिक) तथा अन्य आधुनिक दवाइयों की ही संक्षिप्त नाम सूची (मोनोग्राफ्स) होगी परन्तु सभी देशी वनस्पति जड़ी-बूटियों की भी संक्षिप्त सूची होगा। अब तक लगभग एक हज़ार दवाइयों की संक्षिप्त नाम सूची प्रारूप तैयार हुआ है।

२५. भारत इस समय निम्नलिखित प्रकार की औषधियों पर आत्म निर्भर है। तमाम प्रकार की गलेन्किनल से तैयार औषधियां, सीरम, वैक्सीन, लिवर एकस्ट्रैक्ट, अफीम एलक्लोइड्स जैसे मारफीन, कोडेन, कुचले के एलकैलाइड्स इत्यादि सेनटोनिन, बेलाडोना, डिजिटेलिस, हाई साइमस आदि औषधियां। लेकिन इसके बाद भी विदेशों के प्रतिवर्ष लगभग १० करोड़ रुपये की आवश्यक औषधियाँ तथा कच्चा माल मंगाया जायगा। इसमें मुख्य रूप में पेंसिलीन, स्टेपटो माइसीन तथा अन्य एन्टीबायटिक्स (कीटाणु नाशक औषधियाँ) कोढ़ निवारक औषधियाँ तथा इनसेक्टिसाइड (मच्छर-मक्खी नाशक) औषधियाँ होंगी। यह बहुत जरूरी है कि औषधियों के उत्पादन पर विचार किया जाय तथा इस कार्य को प्राथमिकता दी जाय। इस ध्येय से भारत सरकार ने यूनीसेफ के साथ एक समझौता कर लिया है, ताकि पैंसिलीन और कीटाणु नाशक अन्य औषधियों के निर्माण के लिए एक कारखाना स्थापित किया जा सके। इस काम में २०० लाख रुपये खर्च होने का अन्दाज है। यह आशा की जाती है कि सन् १९५४ के अन्त तक पेन्सिलीन का उत्पादन प्रति मास ४००,००० मेगा यूनिट तक पहुँच जायगा। विश्व-स्वास्थ्य संस्था और यूनीसेफ के सहयोग से एक डी-डी-टी का कारखाना स्थापित करने का भी विचार है और इसी प्रकार का एक दूसरा कारखाना टेक्नीकल सहयोग करार की योजना के विचाराधीन भी है।

२६. पश्चिमी बंगाल और मद्रास प्रतिवर्ष १००,००० पौंड कुनैन का उत्पादन करते हैं। उत्पादन और खर्च के बीच की कमी को पूरा करने के लिये यह जरूरी है कि कुनैन का उत्पादन बढ़ा कर १५०,००० पौंड तक पहुँचा दिया जाये। भारत सरकार ने एक खास सिनकोना कमेटी नियुक्त की है ताकि वह सिनकोना उद्योग की समस्या की जाँच पड़ताल करे।

जन-गणनाएँ

२७. स्वास्थ्य-सुधार व्यवस्था की समस्या को हल करने के लिए जन-

गणनाओं को दर्ज करने तथा उन्हे एकत्र करने के कार्य में उचित उपायों को काम में लाने की बहुत जरूरत है। इसके लिये इस कार्य में विशेष निपुण और अनुभव प्राप्त कर्मचारियों की आवश्यकता है ताकि डायरेक्टरेट्स हैल्थ सर्विस मे स्वास्थ्य आंकड़े विभाग का काम सन्तोषजनक ढंग से हो सके, इसके लिए आधुनिक मशीनी सहयोग की भी आवश्तकता है, जिसके लिए पंचवर्षीय योजना में ६'२५ लाख रु० की गुंजाइश रखी गई। स्वास्थ्य तथा अन्य महत्त्वपूर्ण आंकड़े इकट्ठे करने की विधि में सुधार करने लिये प्रारम्भिक परीक्षणात्मक-मार्ग-दर्शक अध्ययन शुरू किया जायगा। इस बात की व्यवस्था कर दी गई है कि यह कार्य आबादी के अध्ययन के साथ ही साथ किया जायगा।

परिवार आयोजन

२८. तेजी के साथ बढती हुई आबादी तथा उसके परिणाम स्वरूप परिमित साधनों पर जो दबाव पड रहा है, उससे बाध्य होकर परिवार आयोजन की ओर तत्काल ध्यान देना आवश्यक हो गया हैं। परिवार की भलाई और स्वास्थ्य की उन्नति पर जोर देना इस आयोजन का मुख्य ध्येय है। माता के स्वास्थ्य का सुधार और बच्चों की अधिक अच्छी देखभाल व परवरिश के लिए यह जरूरी है कि परिवार छोटे-छोटे हों या काफी अन्तर से बच्चों का जन्म हों। अतएव जो प्रयत्न इस ओर किये जा रहे हैं वह भी सार्वजनिक स्वास्थ्य-रक्षा का ही एक अंग हैं।

२६ जनता के हृदय में परिवार आयोजन के महत्त्व को पूर्ण रूप से जमा देने तथा लोक-मत उसके अनुकूल बनाने के बाद ही इस क्षेत्र में सफलता की आशा की जा सकती है। और फिर संतति-निरोध के व्यावहारिक, सुरक्षित और कम खर्च वाले तरीके उन्हे बता कर उनकी मदद की जाये। पर इसके लिये यह जरूरी है कि (१) किसी परिवार के लिये सन्तान की सीमा-बन्धन निर्धारित करने से पहले उनका दृष्टिकोण और ध्येय भली प्रकार समझ लिया जाय तथा सन्तान-निरोध की टेकनीक और जनता को इस विषय की शिक्षा किस प्रकार दी जाय, इसका भी भली प्रकार अध्ययन करना होगा। (२) संतति-निरोध में भिन्न-भिन्न विधियों का परीक्षण तथा मेडिकल और टेकनिकल रिसर्च (अनुसन्धान) भी आवश्यक है। केन्द्र सरकार ने स्वास्थ्य विभाग की योजना मे परिवार आयोजन के लिये ६५

लाख रुपया मंजूर किया है। इस योजना के अन्तर्गत नीचे लिखे कार्य आते है।

(१) सरकारी अस्पतालों और स्वास्थ्य केन्द्रों में संतति-निरोध विधि की जानकारी के इच्छुक दम्पत्ति को आवश्यक जानकारी देने की सुविधा।

(२) अनुसन्धान की सहायता से संतति निरोध-विधि के भिन्न-भिन्न तरीकों का परीक्षण किया जाय, ताकि इसके सस्ते, सुरक्षित, प्रभावशाली उपायों का जो कि सभी वर्गों के लिए उपयोगी हों, पता लग सके।

(३) जनता को संतति निरोध कार्य की जिन तरीकों और प्रणाली से जल्द ही शिक्षा दी जा सके, उसका विकास किया जाय।

(४) इस परीक्षण कार्य का जनता का प्रतिनिधित्व करने वाली आबादी पर क्या असर पड़ा, उनका तद्विषयक अनुभव क्या रहा तथा सन्तान की सीमा बन्धन के विषय में लोगों का क्या दृष्टिकोण और ध्येय रहा, इस प्रकार की सब जानकारी प्राप्त की जाय।

(५) परिवार आयोजन से आर्थिक, सामाजिक तथा आबादी में कहाँ तक अन्योन्य सम्बन्धित परिवर्तन हुए हैं, इसका भी पता लगाया जाय।

(६) परिवार आयोजन के अन्य भिन्न-भिन्न उपायों का भी जिनके विषय में यह अनुभव हो कि वे वैज्ञानिक ढंग से भारत तथा विदेशों में अजमा लिये गये हैं, अध्ययन किया जाय और इसकी जानकारी इस क्षेत्र में काम करने वाले कर्मचारियों को दी जाय।

(७) लोगों की सन्तानोत्पति शक्ति पर मैडिकल और टेकनिकल दृष्टिकोण से अनुसंधान किया जाय।

परिवार आयोजन के कार्यक्रम को सफल बनाने की दृष्टि से केन्द्र सरकार ने दो समितियों की स्थापना की है। नीति-समिति और परिवार आयोजन समिति। पहली का काम यह होगा कि, देश में कितनी आबादी होनी चाहिये, इस नीति को स्पष्ट करेगी और दूसरी समिति अनुसंधान तथा संतति-निरोध आयोजन का काम संभालेगी।

—:०:—

अध्याय २२

शिक्षा

देशवासियों की सहयोग भावना, व्यवस्थित नागरिक जीवन तथा आम जनता के सामाजिक कार्यों में बुद्धिमत्ता के साथ भाग लेने की योग्यता पर ही लोक-तन्त्र राज्य की सफलता निर्भर है। इस लिए यह बहुत आवश्यक है कि शिक्षा ऐसी हो कि प्रत्येक व्यक्ति अपने कर्तव्य को अधिकारों से अधिक महत्त्व देने लगे और आलोचनात्मक प्रसंशा करने तथा ठीक तरह से सोचने विचारने की उसकी आदत पड़ जाय।

२. यह स्पष्ट है कि शिक्षा सम्बन्धी वर्तमान सुविधाएं पर्याप्त नहीं हैं। उसके अनुसार ६—११ वर्ष की आयु के कुल ४० प्रतिशत, ११—१७ वर्ष की आयु के कुल १० प्रतिशत और १७—२३ वर्ष की आयु के ०.९ प्रतिशत व्यक्तियों को ही शिक्षा की सुविधाएं मिल पाती हैं जब कि विधान की यह मांग है कि लागू होने के दस वर्ष के अन्दर ही प्रत्येक बच्चे को चौदह वर्ष की आयु तक निःशुल्क अनिवार्य शिक्षा की सुविधाएं प्राप्त होनी चाहिएँ। वर्तमान शिक्षा-प्रणाली में कई दोष भी हैं। पहली बात तो यह है कि ऊपर जाकर वह बहुत मँहगी पड़ती है। यद्यपि प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा की व्यवस्था का अनुपात बराबर ही है परन्तु विश्वविद्यालयों की शिक्षा इतनी विस्तृत है कि बुनियादी शिक्षा उस भार को उपयोगिता की दृष्टि से ठीक से सम्भाल नहीं पा रही है। उच्च शिक्षा को अनावश्यक अधिक महत्त्व मिलने से अनेक विद्यार्थियों के व्यवहारिक ज्ञान का विकास और उपयोगिता कुंठित हो गई है और टेक्निकल तथा व्यवसायिक शिक्षा की पर्याप्त सुविधाएं न होने के कारण अनेक विद्यार्थियों को लाचार होकर साधारण-शिक्षा प्राप्त करनी पड़ती है, जिसकी न तो देश को ही इतनी जरूरत है और न ही विद्यार्थियों की उस ओर रुचि ही है। इसके अतिरिक्त प्रत्येक राज्य में शिक्षा विषयक सुविधायें एक सी प्राप्त नहीं हैं। इसी प्रकार शहरों और गांवों में भी शिक्षा की सुविधाएं ठीक से नहीं बांटी गई हैं, इससे गांव घाटे में रह गये हैं। दूसरा भारी दोष यह है कि पुरुषों की तुलना में स्त्रियों की शिक्षा की

उपेक्षा की गई है । शिक्षा क्षेत्र में योग्य और अनुभवी अध्यापकों का भी बड़ा अभाव है उनमें से भी अधिकांश अध्यापक ट्रेनिंग-प्राप्त नहीं हैं ।

३. देश की जरूरतों को पूरा करने की दृष्टि से शिक्षा-प्रणाली में कुछ नवीन सुधार भी करने की चेष्टा की गई है । प्रारम्भिक शिक्षा मे बेसिक-शिक्षा-प्रणाली को प्रोत्साहन दिया गया है यथा शुरूआत में कई नये बेसिक स्कूल खोले गये हैं और कुछ पुराने प्राइमरी स्कूलों का बेसिक स्कूलों में रूपान्तर कर दिया गया है। माध्यमिक शिक्षा को फिर से संगठित कर अधिक विस्तृत और व्यवहारिक बनाने का भी प्रयत्न किया गया है, पर अब भी अधिकांश रूप से पुराने ढंग से ही शिक्षण का काम चल रहा है । अतएव शिक्षा-प्रणाली का नवीन ढंग से रूपान्तर करने का अधिकांश कार्य अभी बाकी ही है ।

साधन

४. भारत में शिक्षा विकास के लिए आर्थिक पूर्ति के उपाय और साधन बताने वाली कमेटी ने इस योजना में प्रति वर्ष लगभग चार सौ करोड़ रुपयों के खर्च का अन्दाज लगाया है, ताकि राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली से ६–१४ वर्ष के आयु के शत प्रतिशत बच्चों को शिक्षा की सुविधाएं प्राप्त हो सकें। इसके अतिरिक्त २०० करोड़ रुपया बेसिक और हाई स्कूल के अध्यापकों को ट्रेनिंग देने के लिए चाहिए। और २७२ करोड़ रुपया स्कूल के लिये इमारतें बनाने के लिए भी चाहिए । पिछले सालों में काफी बढ़ती होने पर भी सन् १९४९–५० में शिक्षा पर कुल १०० करोड रुपया ही खर्च हुआ है । योजना के अनुसार १५६ करोड़ रुपये की मंजूरी हुई है (३९ करोड़ केन्द्र के लिए और ११७ करोड राज्यों के लिए) जो कि इन पांच वर्षों में शिक्षा के विकास पर खर्च किया जायगा । यह बात तो बिलकुल स्पष्ट है कि शिक्षा विकास के कार्य-क्रम पर जो रकम खर्ची जायगी, वह इतनी पर्याप्त नहीं है कि देश की आवश्यकता पूरी हो जाय, ऐसी स्थिति मे यह बहुत जरूरी है कि जनता भी शिक्षा के विकास की जिम्मेवारी खुद सँभाले । जनता इस जिम्मेवारी को सँभाल लेगी, इसके स्पष्ट प्रमाण भी हैं, क्योंकि वह अपनी ओर से धन, धरती. सेवा और इमारतें आदि देकर इस कार्य में हाथ बँटाने को खुशी से तैयार है ।

प्राथमिकता

५. क्योंकि हमारे साधन बहुत सीमित हैं, इसलिए किन कार्यों को

पहले किया जाया इस का भली प्रकार निश्चय किया जाना जरूरी है। प्राप्त सुविधाओं के सगठन और सुधार के अतिरिक्त आधुनिक अनुसंधान, परीक्षण और शिक्षा सम्बन्धी प्रयोग तथा अध्यापकों की ट्रेनिंग और अध्यापकों, बच्चों और प्रौढ़ों के लिए उपयुक्त साहित्य की रचना आदि कार्यों को प्राथमिकता मिलनी चाहिए। साथ ही बेसिक और सामाजिक शिक्षा के लिए पर्याप्त सुविधाएं जुटाई जायं तथा टेकनिकल और व्यवसायिक शिक्षा की सुविधाएं नीची और ऊँची कक्षाओं दोनों को मिलनी चाहिए। ऊँची कक्षाओं में कुछ विशेष क्षेत्रों में टेकनिकल ट्रेनिंग की सुविधाएं भी दी जायं। जहां तक विश्वविद्यालयों की उच्च शिक्षा का प्रश्न है, शिक्षा के स्तर को ऊँचा उठाने की ओर पहले ध्यान दिया जाय तथा पोस्ट ग्रेजुएट और अनुसन्धान कार्य में उन्नति की जाय।

६. कमीशन ने यह भी सुझाव दिया है कि निम्नलिखित ध्येय को प्राप्त करने की पूरी-पूरी कोशिश की जाय और उसमें स्थानीय परिस्थिति के अनुकूल परिवर्तन भी किये जा सकते हैं:—

(१) पंचवर्षीय योजना का समय समाप्त होने से पहले ही ६–११ वर्ष की आयु के ६० प्रतिशत बच्चों को शिक्षा की सुविधाएँ प्राप्त होनी चाहियें। जितनी जल्दी हो सके ६–१४ वर्ष की आयु के बच्चों के लिए भी यही सुविधाएँ जुटाई जायें। स्कूलों में ६–११ वर्ष तक की आयु वाली कन्याओं की संख्या सन् १९५०–५१ के अनुसार २३·३ प्रतिशत है, ऐसी चेष्टा की जाय कि यह बढ़ कर १९५५–५६ तक ४० प्रतिशत तक पहुँच जाय।

(२) स्कूलों में माध्यमिक शिक्षा के लिये योग्य आयु के बच्चों की संख्या १५ प्रतिशत तक पहुँचा दी जाय तथा इन स्कूलों में शिक्षा प्राप्त करने वाली कन्याओं की संख्या भी बढ़कर १० प्रतिशत हो जानी चाहिये।

(३) सामाजिक शिक्षा के क्षेत्र में १४–४० वर्ष की आयु के स्त्री-पुरुषों को व्यावहारिक अर्थों में सामाजिक क्षेत्र में काम करने की शिक्षा दी जाय। इसमें भाग लेने वाले स्त्री और पुरुषों की संख्या कम से कम क्रमशः १० और २० प्रतिशत हो।

संस्थाएँ

७. शिक्षा-योजनाओं में केन्द्रीय सरकार, राज्य सरकारें, स्थानीय संस्थाएँ

और प्राईवेट संस्थाएँ सभी सहयोग दे रही हैं। विधान के अनुसार शिक्षा प्रचार की सारी जिम्मेदारी केवल राज्यों पर ही है। केन्द्र की जिम्मेवारी केवल इतनी है कि वह राज्यों के कार्यों में इतना सहयोग दे और निगरानी रखे कि राष्ट्र द्वारा निर्धारित नीति का पालन होता रहे। स्कूलों की शिक्षा के विषय में फिलहाल सरकार केवल पिछडे हुए राज्यों को ही सहयोग दे सकेगी। केन्द्र आंशिक रूप से उन राज्यों की भी तत्परता से सहायता करने को तैयार है, जो अखिल भारतीय महत्त्व के कार्यों में सहयोग देंगे यथा प्रयोगात्मक योजनाएँ, कुछ चुने हुए व्यक्तियों का प्रशिक्षण, साहित्य रचना और नवीनतम परीक्षण इत्यादि। यह भी जरूरी है कि केन्द्र में कुछ शिक्षा विशेषज्ञों के जिम्मे, यह काम हो कि वे बेसिक, सामाजिक तथा माध्यमिक शिक्षा के बारे में अपने सुझाव और सहयोग दें।

८. विशेष करके प्राइमरी शिक्षा क्षेत्र में स्थानीय सहायता और सहयोग प्राप्त करने के लिये यह वांछनीय है कि प्राइमरी स्कूलों की व्यवस्था में केन्द्र जहाँ तक हो सके कम से कम दखल दें।

प्राइमरी और बेसिक शिक्षा

९. पिछले सालों में ६–१४ वर्ष की आयु के बच्चों के लिए बेसिक-शिक्षा प्रणाली आदर्श मान ली गई है। परन्तु इस दशा में काम अभी प्रारम्भ ही हुआ है। इस क्षेत्र में सबसे पहले इस बात की आवश्यकता है कि बेसिक शिक्षा के तरीकों और शिक्षण-प्रणाली का ऐसा विकास हो कि अधिकांश अल्प शिक्षित अध्यापक इसे अपना सकें। इस अभिप्राय से कम से कम नमूने के तौर पर एक ग्रुप बेसिक स्कूल का प्रत्येक 'क' और 'ख' भाग के राज्य में और 'ग' भाग के राज्य दिल्ली में भी खोला जाना जरूरी है। प्रत्येक ग्रुप में अनेक बेसिक के पहले के स्कूल, एक पोस्ट-बेसिक स्कूल, एक टीचर्स ट्रेनिंग स्कूल और टीचर्स-ट्रेनिंग-कालिज होना चाहिए। परीक्षण के तौर पर कुछ बेसिक स्कूल शहरों में भी खोले जायें ताकि शहरी जरूरत के मुताबिक बेसिक-शिक्षा-प्रणाली को अपनाया जा सके। केन्द्रीय सरकार की योजना में इस कार्यक्रम के लिए भी कुछ गुंजाईश है।

१०. थोडे समय में ही कई अध्यापकों की ट्रेनिंग की व्यवस्था करना एक बहुत भारी काम है। यह तभी सम्भव हो सकता है जबकि केन्द्रीय सरकार, राज्य-सरकार और गैर-सरकारी संस्थाएँ मिलकर पूर्ण सहयोग से काम करें। बेसिक शिक्षा में विशेषज्ञों की सेवाओं के अतिरिक्त इस योजना में अन्य

सहयोगी विभागों यथा कृषि, पशु-पालन तथा सहकारी-समितियों के सहयोग की भी बहुत जरूरत है। ट्रेनिंग का काम दो भागों में बाँट दिया जाय और दोनों ही एक साथ चालू रखे जाएँ। पहले भाग का यह काम हो कि वह शिक्षा-प्रणाली की उन्नति करे, यह धीरे-धीरे ही सम्भव है। दूसरे भाग के जिम्मे, प्रादेशिक क्षेत्रों में एक बार से अधिक संख्या में लोगों की बुनियादी दक्षता और जानकारी बढ़ाने की उन्नति का काम सौंपा जाय। दूसरे ढंग से ट्रेनिंग प्राप्त अध्यापकों को अपने कार्य में किताबों तथा थोडे समय के लिए दौरों पर निकले हुए, इसी काम के लिए नियुक्त, अध्यापकों से बराबर सुझाव लेते रहना चाहिये।

११ इस ख्याल से कि साधारण प्राइमरी स्कूलों को अपने काम में विशेष सफलता नहीं मिल रही है, नये स्कूल खोल दिये जायें, लोगों की इस वृत्ति को बढावा नहीं दिया जाय। इसके विपरीत इस बात की चेष्टा की जाय कि उन्हीं प्राइमरी स्कूलों को सुधारा जा सके, या बेसिक ढंग पर उनका रूपान्तर कर दिया जाय और जहाँ तक हो सके पुराने स्टाफ से ही काम लिया जाय। अधिक संख्या में शिल्प में दक्ष अध्यापकों की ट्रेनिंग का प्रबन्ध जल्द ही किया जाय और अधिक से अधिक स्कूलों में शिल्प सिखाने की व्यवस्था भी की जाय।

माध्यमिक-शिक्षा

१२. अभी हाल में ही एक कमीशन नियुक्त किया गया है जो कि वर्तमान माध्यमिक शिक्षा पर पूर्ण रूप से विवेचन करेगा। उसके अनुमोदन का पहले से अन्दाज लगाना ठीक नहीं है, परन्तु इस बात पर हम अवश्य जोर देंगे कि उसकी आधार शिला आम बुनियादी शिक्षा ही होनी चाहिये अर्थात् उसका बेसिक शिक्षा से घनिष्ट सम्बन्ध हो, और जब कोई बच्चा बेसिक स्कूल से माध्यमिक स्कूल में आये तो उसे यह अनुभव न हो कि दोनों स्कूलों के पाठ्यक्रम और शिक्षा-प्रणाली में आकाश-पाताल का अन्तर है।

१३. विश्वविद्यालयों की शिक्षा दो साल पहले केन्द्रीय सरकार द्वारा यूनिवर्सिटी कमीशन के सुझावों के आधार पर एक यूनिवर्सिटी-ग्रांट-कमीशन की नियुक्ति का सुझाव स्वीकार हो चुका है और उससे सम्बन्धित अन्य कई बातें भी विचाराधीन हैं।

१४. यूनिवर्सिटी की शिक्षा के सुधार कार्य में तुरन्त जिस कठिनाई का

सामना करना पड़ रहा है वह है आर्थिक कठिनाई। अनेक यूनिवर्सिटिय तंगी की हालत में हैं और प्राय: किसी भी यूनिवर्सिटी के पास विकास कार्य के लिये कोष नहीं है। इस खर्चे का अधिकाँश भार केन्द्र सरकार को उठाना पड़ेगा, क्योंकि प्राइमरी और माध्यमिक शिक्षा का भार संभालने में ही राज्यों के साधनों पर काफी जोर पड़ रहा है। प्राप्त साधनों का भरसक लाभ उठाने के लिये यूनिवर्सिटी-ग्रांट-कमीशन को इस बात का विशेष ध्यान रखना होगा कि पर्याप्त कोष के अभाव में कोई और नई यूनिवर्सिटी खोलने की वृत्ति को प्रोत्साहन न दिया जाय। अनेक यूनिवर्सिटियों में जो पोस्ट-ग्रेजुएट कार्यों में सहयोग दिया जा रहा है, उससे भी बचत होनी चाहिये। इसके अतिरिक्त यूनिवर्सिटियों को चलाने के खर्चे में भी बचत की सम्भावना है जैसा कि उस कमेटी की रिपोर्ट से स्पष्ट होता है, जो कि तीन मुख्य यूनिवर्सिटियों की समस्याओं को जांच करने ने लिए नियुक्त की गई थी।

१५. अधिकाँश कालिजों में भयंकर रूप से बढ़ती हुई विद्यार्थियो की संख्या एक दूसरी मुख्य समस्या है। अब इसके सिवाय और कोई उपाय ही नहीं है कि कालिजो में प्रवेश प्राप्त करने के लिये विशेष योग्यता की परीक्षा पास करने का एक आम नियम बना दिया जाय ताकि ऐसे विद्यार्थी जिनके लिये कालिज शिक्षा बेकार प्रमाणित हो, यूनिवर्सिटी में दाखिला न पा सकें। इससे यह और भी अधिक आवश्यक हो जायगा कि यूनिवर्सिटी से पूर्व की शिक्षा को सार्थक और पूर्ण बनाया जाय। इसका एक यह भी परिणाम होगा कि किसी भी पब्लिक सर्विस में घुसने से पहले डिग्रीशुदा होना खास जरूरी नहीं समझा जाना चाहिये। कालिजो में अधिक भीड़ होने और उसके परिणाम स्वरूप शिक्षा का स्तर नीचे गिर जाने का एक हेतु यह भी है कि अनेक ग्रेड और नौकरियों के लिए डिग्रीशुदा होना विशेष महत्त्व की बात समझी जाती है। पब्लिक सर्विस में किसी व्यक्ति की नियुक्ति प्रतियोगिता-परीक्षण द्वारा की जाय और डिग्री का अभाव इस प्रतियोगिता में भाग लेने के लिये बाधक नहीं समझा जाय।

नई प्रणाली का विकास—ग्राम-यूनिवर्सिटी

१६ इस बात की आवश्यकता स्पष्ट है कि ग्रामीण जनता को उच्च-कोटि की शिक्षा प्राप्त हो सके। इस माँग की पूर्ति के लिये यूनिवर्सिटी एजुकेशन कमेटी ने ग्रामीण यूनिवर्सिटी के द्वारा एक नई शिक्षा-प्रणाली का सुझाव दिया है। पंचवर्षीय योजना के काल में ही केन्द्रीय सरकार को कम से

कम एक ऐसी यूनिवर्सिटी के संस्थापन में अवश्य सहयोग देना चाहिये। यह ऐसी जगह बनाई जाय जहाँ प्रारम्भिक बेसिक शिक्षा कार्यान्वित हो चुकी हो। इस प्रकार की यूनिवर्सिटी जहाँ एक ओर गाँव की सेवा करेगी वहाँ दूसरी ओर वर्तमान यूनिवर्सिटी के लिए वह उपयुक्त सुझाव देने में भी उपयोगी प्रमाणित होगी।

सामाजिक-शिक्षा

१७. अगर प्रौढ शिक्षा का कार्य केवल साक्षरता प्रचार तक ही सीमित मान लिया जाय, तब तो उसका दायरा बहुत ही तंग समझा गया है, और इसको विस्तृत करने की जरूरत है ताकि प्रौढ़ों के लिये स्वास्थ्य-रक्षा, अपने अवकाश के समय का सदुपयोग और नागरिकता की शिक्षा भी इसमें शामिल कर ली जाय। इस नवीन अभिप्राय को स्पष्ट करने के लिये 'सामाजिक-शिक्षा' शब्द का प्रयोग किया गया है। व्यापक रूप से इसके अन्दर सामाजिक कल्याण के लिए सामाजिक रूप से किये गये सभी कार्य आ जाते हैं। देश में जहां कि अधिकांश जनता अशिक्षित है, राष्ट्र की उन्नति की दृष्टि से सामाजिक शिक्षा बहुत महत्त्व रखती है। राष्ट्रीय योजना के अनुसार ७.५ करोड़ रुपया सामाजिक शिक्षा के लिए मंजूर किया गया है। अनेक राज्यों ने भी सामाजिक सेवा कार्य की व्यवस्था की है और कुछ ने तो बहुत ही उपयोगी कार्य किया भी है। सार्वजनिक रूप से किये गये प्रत्येक कार्य में सामाजिक शिक्षा प्राप्त करने का अवसर मिलता है। उदाहरणार्थ—ग्राम-पंचायत, कोआपरेटिव सोसाइटी, ट्रेड यूनियन आदि द्वारा किये गये काम। यह अधिक उपयोगी होगा कि सामाजिक शिक्षा का कार्य इस प्रकार अजमाया और संगठित किया जाय कि प्रत्येक क्षेत्र की अधिक आवश्यक जरूरतों का कार्य हाथ में पहले लिया जाय और साथ ही इन कार्यों की सफलता से ही आगे के विकास कार्य के लिए अधिक साधन और सुविधाएँ पैदा की जायं। आर्थिक उन्नति के कार्य जो कि कोआपरेटिव प्रणाली पर चलाये गये हैं; कार्य आरम्भ करने के लिये प्रायः अनुकूल पाये गये हैं। इस ओर ट्रेनिंग प्राप्त समाज सेवा संचालक काफी सहयोग दे सकते हैं। प्रत्येक स्कूल और कालिज को अपने आस-पास सामाजिक-शिक्षा और प्रचार-कार्य का एक साधन बनाना चाहिये।

व्यावसायिक-शिक्षा

१८. इन पिछले पाँच सालों में टैकनिकल शिक्षा की ओर विशेष अधिक ध्यान दिया गया है। अंडर-ग्रेजुएट शिक्षा के लिये काफी सुविधाएँ बढ़ गई

हैं, परन्तु पोस्ट ग्रेजुएट तथा रिचर्स (अनुसंधान) शिक्षा के लिए उसी प्रकार की सुविधाएँ अभी पर्याप्त मात्रा में प्राप्त नहीं हैं। साथ ही कारखानों में काम करने वालों, टेकनिकल विषय के अध्यापकों और शिक्षकों के ट्रेनिंग (प्रशिक्षण) की व्यवस्था देश की जरूरतों को पूरा नहीं कर पा रही हैं। जब तक टेकनिकल शिक्षा के लिए अखिल भारतीय काऊन्सिल की 'टैकनिकल जन-शक्ति कमेटी' देश की जरूरतों की जांच पूरी करे, यह उचित होगा कि वर्तमान संस्थाओं से ही सारा कार्य चलाया जाय और केवल कुछ ऐसे विशेष क्षेत्रों में यथा प्रिंटिंग (छपाई) टेकनोलोजी, ऊन और रेशम की टेकनोलोजी, भवन-निर्माण-विज्ञान और नगर-आयोजन के कार्य आदि को छोड़कर और कोई नये काम शुरू न किये जायं। कलाकारों और शिल्पकारों को ट्रेनिंग दिलाने के लिये अधिक सुविधाएं देने तथा गाँवों में भी ट्रेनिंग केन्द्र खोलने की भी जरूरत है। टैकनिकल शिक्षा की रूपरेखा किस स्तर पर कैसी होनी चाहिये। इस विषय में टैकनिकल शिक्षा के लिए अखिल भारतीय काउंसिल की टैकनिक कमेटी ने तथा इंटर यूनिवर्सिटी बोर्ड ने खासतौर पर इंजीयिरिंग और टैकोनोलोजी का विशेष अनुमोदन किया है।

स्त्री-शिक्षा

१६. यद्यपि स्वाभाविक रूप से कुछ विशेष धन्धों तथा टीचर और नर्सिंग के काम के लिए, स्त्रियां विशेष रूप से उपयुक्त हैं। परन्तु, उन्हे भी पुरुषों के सदृश ही शिक्षा प्राप्त करने की सभी सुविधाएं मिलनी चाहिएँ। यद्यपि इस देश में भिन्न-भिन्न कारणों से अधिकांश स्त्रियों को किशोरावस्था में ही अपनी शिक्षा स्थगित करनी पड़ती है, यह आवश्यक है कि उन्हे ऐसे सुअवसर दिये जायें कि वे प्राइवेट रूप से उच्च परीक्षाएं पास कर सकें। यह व्यवस्था भी की जाय कि माध्यमिक और विश्वविद्यालय की शिक्षा भी ऐसी हो कि वह व्यावसायिक-महत्त्व रखती हो और उसमें स्त्रियों को कोई धन्धा सिखाने पर जोर दिया गया हो। इस ओर तभी सफलता मिल सकती है, जबकि स्त्री-शिक्षा की योजना और गृहोद्योग का सामंजस कर दिया जाय।

अध्यापकों की तनखाह और कार्य-स्थिति

२०. देश में स्कूलों के स्तर निम्न होने का यह भी कारण है कि अध्यापकों को बहुत कम तनख़ाह दी जाती है और उनकी कार्य-स्थिति बहुत असन्तोष-जनक है। देश के उन हिस्सों में जहां केन्द्र-सरकार देखभाल

करती है, केन्द्रीय-सरकार ने उनकी दशा कुछ सुधारी भी है और अभी हाल में ही राज्यों में उनकी तनख़ाह का स्केल भी बढ़ाया गया है। इस पर भी सम्पूर्ण रूप से उनकी दशा अभी असन्तोषजनक ही हैं। हमारा विचार है कि प्रत्येक राज्य अपने साधनों के अन्दर अध्यापकों की तनख़ाह का स्तर भी अन्य सरकारी नौकरों के मुकाबले में ठीक रखें। उन्हें अपनी अल्प आमदनी को बढ़ाने के लिए इस बात की भी छूट हो कि वे गर्मियों की छुट्टियों में प्रत्या-स्मरण पाठ्य-क्रम (रेफेरेशरी कोर्स) का प्रबन्ध तथा धन्धों में लगे हुए बच्चों के लिए सायंकालीन कक्षाओं की व्यवस्था और यूनिवर्सिटी में विस्तार सेवाओं का आयोजन कर सके।

विद्यार्थियों द्वारा श्रम और समाज सेवा का कार्य

२१. योजना में एक करोड़ रुपया विद्यार्थियों के कैंपिंग और श्रम-सेवा के लिए मंजूर किया गया है। यह सुझाव दिया गया है कि १८–२१ वर्ष की आयु तक के विद्यार्थी, सिवाय इसके जबकि शारीरिक अस्वस्थता के कारण उन्हें छूट दे दी गई हो, कुछ अर्से तक आयोजित राष्ट्रीय सेवाओं में अवश्य भाग ले। इससे उनमें कुशल-कार्यकर्त्ता तथा नागरिक की योग्यता बढ़ जायगी। आधुनिक-शिक्षा-प्रणाली में शारीरिक-श्रम को प्रायः कोई महत्त्व नहीं दिया गया है। परिणाम-स्वरूप इसका असर राष्ट्रीय-विकास पर बहुत पड़ा है। इसलिए, इस बात का सुझाव दिया गया है कि शिक्षा के कार्य-क्रम में कुछ समय प्रतिदिन श्रम-कार्यों को दिया जाय और आगे जाकर इसमें बढ़ती की जाय ताकि अन्त में कुल मिला कर ६ महीने से साल भर तक का समय औसतन श्रम-दान-कार्य-क्रम में खर्च हो सके। उदाहरणार्थ इसका उपयोग सामूहिक-कार्य-क्रम सिंचाई का काम, सड़क-निर्माण, गंदी बस्तियों का सुधार, सफाई आदि कार्यों में किया जा सकता है। यह सुझाव है कि आरम्भ में एम० ए० की डिग्री प्राप्त कुछ विद्यार्थी छोटे-छोटे दलों में तीन या छ महीने के लिये इस प्रकार के कार्य शुरू करें।

प्रोग्राम का संभावित परिणाम

२२. केन्द्रीय सरकार ने जो ३६ करोड रुपया शिक्षा के लिए मंजूर किया है, वह करीबन इस प्रकार व्यय किया जायगा, यूनिवर्सिटी शिक्षा से पूर्व शिक्षा पर २० करोड रुपया (अधिकांश रूप से बेसिक और सामाजिक शिक्षा पर व्यय होगा); २·६२ करोड रुपया यूनिवर्सिटी शिक्षा पर, ११ करोड़ रुपया वैज्ञानिक और टैकनिकल शिक्षा पर और एक करोड़ रुपया

विद्यार्थियों के यूथ-कैम्प और श्रम-सेवा-कार्यों पर खर्च होगा। शिक्षा के इस ३६ करोड़ रुपयों की रकम मे वह ४ करोड़ भी शामिल है जो कि सामाजिक कल्याण के कार्यों में खर्च किया जायगा। इस स्वीकृति स्कीम (योजना) के अनुसार अधिकांश कार्य उन राज्यों में किये जाएंगे जो कि कार्यों को सफल बनाने के लिए सहयोग देंगे तथा एक निश्चित रकम देकर आर्थिक रूप से केन्द्र का हाथ बटाने को राजी हो जायेंगे। भिन्न-भिन्न राज्यों ने जो ११७ करोड रुपया शिक्षा-विकास कार्यक्रम पर खर्चना मंजूर किया है वह प्री-यूनिवर्सिटी (विश्व-विद्यालय स्तर से पहले) की शिक्षा के विस्तार और सुधार के कार्यों पर खर्चा जायगा।

२३. पांच साल के अन्त तक इस योजना से निम्नलिखित परिणामों की आशा की जा सकती है :—

(१) प्राइमरी शिक्षा के क्षेत्र में प्राइमरी स्कूलों की संख्या १७ प्रतिशत और विद्यार्थियों की संख्या २५ प्रतिशत बढ़ जायगी। इसी हिसाब से जूनियर बेसिक स्कूलों की संख्या में भी २२ और ८१ प्रतिशत क्रमशः बढती होगी। जबकि सन् १६५०–५१ में प्राइमरी और जूनियर बेसिक स्कूलों में ६–११ वर्ष की आयु के बच्चों को कुल मिला कर ४२·६ प्रतिशत ही शिक्षा की सुविधाएं प्राप्त थीं। आशा की जाती है कि यह संख्या १६५५–५६ में बढ कर ५५·७ तक पहुँच जायगी। यह राज्यों द्वारा किये गये प्रयत्नों का ही नतीजा होगा अगर शिक्षा-कार्यों में स्थानीय साधनों का भी सफल सहयोग प्राप्त किया जा सके तो इसमें भी भारी सुधार हो सकता है। अतएव अगर इस संख्या को ६० प्रतिशत तक पहुँचाने का ध्येय बना लिया जाय तो कुछ असम्भव नहीं है।

(२) सेकन्डरी (माध्यमिक) स्कूलों की संख्या १८ प्रतिशत तथा विद्यार्थियों की संख्या ३२ प्रतिशत बढ़ जायगी। ११–१७ वर्ष की आयु के बच्चों की संख्या सन् १६५०–५१ के अनुसार १०·८ प्रतिशत थी, वह बढ़ कर १३·३ प्रतिशत हो जायगी।

(३) टैकनिकल और व्यावसायिक शिक्षा-क्षेत्र में संस्थाओं की संख्या बढ़ कर ५७ प्रतिशत हो जायगी और इन संस्थाओं से प्रतिवर्ष ट्रेनिंग प्राप्त करके निकलने वाले विद्यार्थियों की संख्या में ६३ प्रतिशत की बढ़ती हो जायगी। वर्तमान अपर्याप्त सुविधाएं को मद्देनज़र रखते हुए संस्था की इस स्पष्ट बढ़ती पर विचार करना होगा।

(४) प्राइमरी स्कूलों के लिए ट्रेनिंग प्राप्त अध्यापकों की संख्या में प्रतिवर्ष १५ प्रतिशत तथा बेसिक स्कूलों के अध्यापकों की संख्या में ५४ प्रतिशत की बढ़ती होगी। लेकिन इस बढ़ती से कोई विशेष चमत्कार नहीं होने वाला है क्योंकि फिलहाल प्राइमरी स्कूलों में अनट्रेन्ड अध्यापकों की संख्या ३७ प्रतिशत और जूनियर बेसिक स्कूलों में ४५ प्रतिशत तक है।

(५) कन्याओं की शिक्षा की असन्तोषजनक स्थिति में कुछ विशेष सार्थक सुधार नहीं होगा और इस बात की आवश्यकता है कि स्त्री-शिक्षा के प्रोग्राम पर फिर से विचार किया जाय ताकि शिक्षा के इस महत्त्व पर विशेष जोर दिया जा सके।

—:o:—

अध्याय ३४

श्रम

श्रम-समस्या का हल दो भागों से खोजा जाना चाहिए; पहिला, श्रमिकों की भलाई की दृष्टि से और दूसरा देश की आर्थिक दृढ़ता एवं प्रगति की दृष्टि से। श्रमिक की खाने-कपड़े और रहने की बुनियादी आवश्यकता निश्चय ही पूरी होनी चाहिये। उन्नत स्वास्थ्य, सामाजिक सुरक्षा, शिक्षा के अच्छे अवसर, मनोरंजन तथा संस्कृति-संबन्धी अधिकाधिक सुविधायें उसे मिलनी ही चाहियें। काम की अवस्थायें ऐसी होनी चाहियें जिस से उसके स्वास्थ्य की पूरी रक्षा हो सके और उसको कार्य-विशेष से होने वाले तथा दूसरे खतरों से बचाया जा सके। उद्योगों के मालिक उससे उदार-व्यवहार करें और वह उनसे न्याय न पा सकने की दशा में एक निष्पक्ष अधिकरण के पास पहुँच सके। अन्त में उसे अपने को संगठित करने और अपने हितों एवं अधिकारों को प्राप्त करने के लिये विधि-संगत साधन अपनाने की स्वतन्त्रता होनी चाहिये।

२. इनमें से अधिकांश अधिकार स्वीकार किये जा चुके हैं और संविधान में उनको स्थान मिल चुका है। केन्द्रीय और राज्यों की सरकारें उनके प्रति सजग हैं। फैक्टरियों, श्रम-संगठनों तथा चोट लगने अथवा मृत्यु हो जाने पर मुआवजे सम्बन्धी बहुत से नियम तो पहले से ही बने हुए थे, पर स्वतन्त्रता के बाद से प्रगति और भी तीव्र रही है और श्रमिकों के हित के लिए बहुत से उपाय लागू किये गये हैं। भूमिहीन खेतिहर मज़दूरों के लिये घर की व्यवस्था करने और उनको बसाने की योजनाओं के लिये जो निधियां दी गई हैं उनके अतिरिक्त ६·७४ करोड़ से भी अधिक रुपया केन्द्रीय एवं राज्य-सरकारों ने योजना की अवधि में श्रमिकों की भलाई के कामों पर व्यय करने का निश्चय किया है।

३. इन उपायों के प्रति श्रमिकों ने सन्तोष-जनक सहयोग दिया है। दोनों पक्षों के मिले-जुले सलाहकार मण्डलों के बनने से तथा हाल ही में हुए भारतीय-श्रम-सम्मेलन की कार्यवाहियों से यह प्रकट है कि आपसी

समझौतों पर निर्भर करने की प्रवृत्ति अब बढ़ रही है। यदि भावों में वृद्धि न होती और उद्योग कितने ही अवसरों पर अपने यन्त्रों को नवीन एवं आधुनिक बनाने तथा प्रबन्ध को अधिक विचारशील और उदार बनाने में असफल न रहे होते तो श्रमिकों की आर्थिक अवस्था शायद और भी सुधर गई होती।

औद्योगिक सम्बन्ध—निजी क्षेत्र में

४. औद्योगिक क्षेत्र में योजना के लक्ष्यों को पूरा करने के लिये श्रम और पूंजी मे मधुर सम्बन्ध होने बहुत आवश्यक हैं। दूसरे शब्दों में, आर्थिक प्रगति औद्योगिक शान्ति के साथ बँधी है। मज़दूर और मालिक वास्तव में देश की आर्थिक आवश्यकताओं को पूरा करने की जिम्मेवारी उठाने वाले साझीदार हैं। इस प्रयास में श्रमिक के अनिवार्य भाग तथा उसके सम्मान को आवश्यक स्वीकृति ही मिलनी चाहिए। इसलिये औद्योगिक सम्बन्ध इस प्रकार ढलने चाहियें कि श्रमिक को उद्योग के कार्य-संचालन में भाग लेने का अधिकाधिक अवसर मिले। फलतः उत्पादन की वृद्धि, वस्तु के गुण-प्रकार में सुधार, मूल्यों में कमी तथा अपव्यय को खत्म करने आदि विषयों में मालिकों और मज़दूरों के बीच अन्तरंग सहयोग होना चाहिये।

५. श्रम और पूंजी के आपसी सम्बन्धों की बुनियाद के रूप में मज़दूरों का मिलने-जुलने, संगठन बनाने तथा सामूहिक रूप से सौदा करने का अधिकार स्वीकृत होना चाहिए और उनका स्वागत होना चाहिये। जब कभी मतभेद उपस्थित हो तब उद्योग की उन्नति और श्रमिकों की भलाई को दृष्टि में रखते हुए औचित्यपूर्ण सुधार लाने की भावना से उनको दूर करना चाहिए। अन्त में इन मतभेदों को निष्पक्ष छान-बीन एवं पंचों और न्यायालयों के माध्यम से सुलझाना चाहिये। कई अवसरों पर राज्य भी हस्तक्षेप करके एक निर्णय लागू कर सकता है। फिर भी दोनों दलों की कोशिश यही होना चाहिये कि झगड़ों का निपटारा आपस में ही हो जाये।

६. बीच-बचाव करने वालों और पंच-निर्णायकों का लक्ष्य एक निष्पक्ष निर्णय देना ही ठीक होना चाहिये। इसके लिए कानूनी गहराइयों और कार्य-वाहक उपचारों को, जहां तक संभव हो, कम कर देना चाहिये। कार्य-वाहक पद्धतियों एवं यन्त्रों को समय विशेष की आवश्यकता के अनुसार ढालना चाहिये और औद्योगिक न्यायालयों अथवा अधिकरणों के निर्णयों के विरुद्ध कोई अपील

तब तक मान्य नहीं होनी चाहिये जब तक कि वे निर्णय स्वाभाविक न्याय के सिद्धान्तों के विरुद्ध अथवा अनुचित न प्रतीत हों।

७. श्रमिकों एवं श्रमदाताओं के सम्बन्धों को तथा औद्योगिक झगड़ों के निर्णयों को नियन्त्रित करने वाले मान एवं सिद्धान्त श्रमदाताओं, सरकार और श्रमिकों के प्रतिनिधियों को एक मिले-जुले त्रिपक्षीय-संगठन द्वारा निर्धारित किये जाने चाहियें। इस प्रकार के समझौते और निर्णय आदेश बनाए जाकर न्यायालयों एवं अधिकरणों पर लागू होने चाहियें।

झगड़ों से बचाव

८. झगड़ों से बचने के लिये श्रमिकों एवं श्रमदाताओं के कर्तव्य एवं उत्तरदायित्व स्पष्ट रूप में लिखे होने चाहिएँ। प्रत्येक औद्योगिक कारखाना अपने कमकरों के विभिन्न वर्गों के लिये उचित आदेशों का एक पत्र प्रस्तुत करे। एक निश्चित पद्धति बनायी जानी चाहिये जिसके अनुसार श्रमिक अपनी शिकायतों को दूर कराने के लिये विभिन्न स्तरों के अधिकारियों तक पहुँच सकें। उद्योग की अवस्थाओं तथा जिस संस्था के अधीन वे काम करते हैं उसके मामलों से भी उन्हे परिचित रखा जाय। इसी प्रकार उनके हितों को प्रभावित करने वाले किसी भी परिवर्तन की सूचना मिलनी चाहिएँ। मालिकों को भी काम की अवस्थाओं में परिवर्तन लाने की अपनी इच्छा को उन पर अवश्य प्रकट करना चाहिये। इससे झगडे पैदा करने वाली कार्यवाहियां रुक जायेंगी। कोई भी पक्ष यदि इस प्रतिबन्ध को भंग करके कोई भी सीधी कार्यवाही करे तो उसे न्याय की ओर से दण्ड मिलना चाहिए।

एक उद्योग के अन्तर्गत काम करने वाले श्रमिकों में पारस्परिक घनिष्टता बढाई जानी चाहिए। निरीक्षण अधिकारियों, टैक्नीशियनों तथा जन-हित अधिकारियों को उनमें मित्रतापूर्ण सम्बन्ध, आपसी सदिच्छा एवं सद्भावना पैदा करने का सदा प्रयत्न करना चाहिए।

झगड़ों का निपटारा

९. झगड़ों को वहीं का वहीं निपटाने के लिये कारखानों में समितियां बनाई जानी चाहिएँ। बडे मामलों को सुलझाने के लिये केन्द्र विशेष अथवा उद्योग विशेष की मिली-जुली समिति बनाई जाय। सामूहिक मोल-तोल तभी सफल हो सकते हैं जब कमकरो की शक्ति संगठित हो और मालिकों में समझौता करने की सच्ची इच्छा हो। यदि झगड़ा चलता ही रहे तो

सरकार को हस्तक्षेप करके मेल कराने का प्रयत्न करना चाहिए। बड़े मामलों को सुलझाने के लिये अस्थायी अथवा स्थायी मेल समितियां भी, यदि आवश्यक हो तो, स्थापित की जा सकती हैं। गैर-सरकारी परामर्शदाताओं की तालिकायें भी इस काम के लिये बनाई जा सकती हैं। कुछ दशाओं में तथ्यों का प्रकाश करने के लिये अथवा जनता को उस विषय का पूरा ज्ञान देने के लिये किसी झगड़े की ऊँच-नीच विषयक सरकारी खोज को प्रकाशित भी किया जा सकता है।

१०. यदि समझौते से झगड़ा न निपटे तभी अधिकरण में जाना आवश्यक होना चाहिये। प्रमुख उद्योगों के लिये पृथक्-पृथक् मजूरी-समितियाँ बनाना लाभदायक सिद्ध होगा। अखिल भारतीय स्तर के झगड़ों को निपटाने के लिये एक केन्द्रीय अधिकरण स्थापित किया जाना चाहिये।

सरकारी क्षेत्र

सरकार द्वारा संगठित उद्योग निजी उद्योगों से कई बातों में भिन्न होते हैं। ऐसे उद्योगों में निजी लाभ के लक्ष्य को तथा उसके लिये कमकरों के शोषण को कोई स्थान नहीं है। जो भी लाभ ऐसे संगठन कमाते हैं, वह किसी एक व्यक्ति का न होकर देश को सम्पत्ति को बढ़ाने वाला होता है। सरकारी उद्योगों में कमकर के, मालिक और नौकर—ये दो रूप बन जाते हैं। एक नागरिक के रूप में वह मालिक होता है और कमकर के रूप में नौकर। जितना ही अच्छा वह काम करता है तथा जितनी ही अधिक उसमें योग्यता होती है, वह अपनी उतनी ही सहायता करता है। सरकारी उद्योगों की सफलता के प्रति कमकर की उत्कण्ठा को जागृत करने के लिए न्याय और सद्व्यवहार सच्चे नियम हैं। ऐसे उद्योगों में वेतन निजी उद्योगों की अपेक्षा कम नहीं होना चाहिये। कारखानों का वातावरण तथा कमकरों के हितों का प्रबन्ध आदर्श होना चाहिये। साथ ही सरकारी उद्योगों के संचालक-मण्डल में कुछ लोग ऐसे होने चाहियें जो श्रम समस्याओं को समझते हों तथा कमकरों की भावनाओं से सहानुभूति रखते हों। यदि पहले से ही समान अथवा अधिक लाभ उन्हें न मिल रहा हो तो श्रम सम्बन्धी सभी नियमों का क्षेत्र सरकारी उद्योगों तक विस्तृत कर दिया जाना चाहिये।

श्रम संगठनों तथा मालिकों की संस्थाओं का भाग

पंचवर्षीय योजना को सफल बनाने के लिये ट्रेड यूनियनों या श्रम संग-

ठनों एवं मालिकों का सहयोग अनिवार्य है। इस सहयोग के कुछ रूप हो सकते हैं। उदाहरणतया श्रम संगठन तथा मालिक पंचवर्षीय योजना पर मिलजुल कर विचार करें। इस प्रकार उनमें योजना के प्रति एक उत्कण्ठा जागृत की जा सकेगी। श्रम संगठन औद्योगिक शान्ति बनाये रखकर, काम में बाधाओं को उपस्थित न करके तथा उत्पादन को बढ़ा कर योजना को पूरा करने मे बहुत बडी सहायता कर सकते हैं। मालिक भी नये यन्त्रों को लगाने, उत्पादन के तरीकों तथा उत्पादन के खर्च को घटाने के बारे में श्रमिकों से परामर्श ले सकते हैं। साथ ही श्रम संघों से कहा जाना चाहिये कि वे अपने कार्य क्षेत्र को बढ़ायें, अधिक से अधिक समय जनता की भलाई और सांस्कृतिक कामों में लगायें। विशेष कर उपभोक्ताओं की सहकारी संस्थाओं तथा सहकारी अर्थ संस्थाओं को वे संगठित करें तथा चलावें। मालिक ऐसे आयोजनों के लिये स्थान, क्लर्कों आदि अथवा कर्ज़ों की व्यवस्था करके अपनी ओर से उनकी पर्याप्त सहायता कर सकते हैं। अन्त में श्रम संघ तथा मालिकों के प्रतिनिधि विभिन्न स्तरों पर मिलें जुलें। कमकरों को यह बात अनुभव कराई जाय कि वे योजना को पूरा करने में पूरा भाग ले रहे हैं तथा उनके अपने और साधारण नागरिक के जीवन स्तर को ऊँचा उठाना उन्हीं पर निर्भर करता है।

मजूरी

१३. इन कुछ वर्षों में मूल्य बहुत तेजी से बढ़े हैं। औद्योगिक लाभ भी पर्याप्त रूप में बढ़े हैं और संगठित श्रमिकों की मजूरी में ठोस वृद्धि हुई है। मुद्रा-स्फीति को रोकने के लिये इन लाभों और मजूरी को योजना की अवधि में कुछ सीमा तक नियन्त्रित करने की आवश्यकता होगी। अतिरिक्त लाभ करों तथा लाभांशों पर लगाये गये कुछ प्रतिबन्धों ने युद्ध काल में तथा बाद में भी मोटे लाभांशों के वितरण को रोका है। इस प्रकार के नियन्त्रण प्रबन्धकों के वेतनों, लाभ के वितरण तथा बोनस के हिस्सों पर लगाये जाने चाहियें।

१४. इस परिस्थिति में मजूरी में वृद्धि, उत्पादन व्यय को बढ़ा कर देश की आर्थिक स्थिरता को लड़खड़ा देगी। नौकरियों की संख्या पर भी इससे बुरा असर पड़ सकता है। असंगतियों को दूर करने अथवा जब वर्तमान दर अत्यधिक कम हो अथवा यन्त्रो के नवीनीकरण एवं आधुनीकरण के फल-

स्वरूप बढी उत्पादन-क्षमता के द्वारा युद्ध पूर्व की मजूरी की वास्तविक दरों तक पहुँचने के लिये ही मजूरी में वृद्धि की जाय, अन्य किसी दशा में नहीं। मजूरी समितियों अथवा अधिकरणों के मार्ग-दर्शन के लिये मजूरी-नीति, आमदनी की कमी-बेशी को कम करने के सिद्धान्त पर आधारित होनी चाहिए। कमकर को राष्ट्रीय आय में से उचित भाग मिलना ही चाहिए। विभिन्न धन्धों के मजूरी के अन्तर, जहाँ तक हो सके, मिटा दिये जाने चाहिए। कर्म-कौशल, शिक्षा एवं अनुभव, मानसिक अथवा शारीरिक आवश्यकतों तथा संलग्न खतरों के स्तरों में जहाँ अन्तर हो वहाँ दूसरी बात है। साथ ही विभिन्न कामों एवं उद्योगों में पडने वाले आनुपातिक कार्य-भार का एक वैज्ञानिक निर्धारण किया जाना चाहिए। न्यूनतम मजूरी कानून को इन पाँच वर्षों की अवधि में पूर्ण एवं प्रभावी रूप से लागू करना चाहिए। कमी के क्षेत्रों की ओर सबसे पहले ध्यान दिया जाना चाहिए। आँकडों की कमी तथा शासन सम्बन्धी कठिनाइयों को ध्यान में रखते हुए न्यूनतम मजूरी को निर्धारित करने के क्षेत्र में एक सीमित प्रयास सबसे पहले खेतिहर मज़दूरों के लिए करना चाहिए। जैसे-जैसे अनुभव बढ़ता जाय, इसका क्षेत्र विस्तृत किया जाय। साथ ही लाभांशों तथा बोनसों के वितरण के प्रश्न का अध्ययन विदेशों तथा विदेशी संस्थाओं के विशेषज्ञों की सहायता से किया जाना चाहिए। नकद बोनस देना कम होना चाहिए। उसे कमकरों के बचत के हिसाबों में डाल देना चाहिए।

१५. अन्त में मजूरी को निर्धारित करने के लिए, खोज करने के लिए, आंकड़ों को इकट्ठे करने तथा मजूरी के संतुलन के लिए तथा समय-समय पर हालत की देख-रेख करने के लिए केन्द्र में तथा राज्यों में त्रिपक्षीय आधार पर स्थायी मजूरी-मण्डल बनाये जाने चाहिएँ।

सामाजिक सुरक्षा

१६. बीमारी अथवा अयोग्यता के कारण खोये जाने वाले दिन मजूरी कमाने वाले के नगण्य साधनों तथा औद्योगिक उत्पादन को बड़ी भारी हानि पहुँचाते हैं। सामाजिक सुरक्षा का अभाव एक स्थाई एवं योग्य श्रमशक्ति को पनपने से रोकता है। कमकरों के मुआवज़ा कानून तथा मातृका लाभ कानून, जो विभिन्न राज्य सरकारों ने बनाये हैं, कमकरों के बहुत से खतरों का हल प्रस्तुत करते हैं। श्रमिकों का राज्य बीमा कानून, नौकरी की अवधि में बीमारी, प्रसूति अथवा चोट लगने आदि के खतरों की क्षतिपूर्ति करने वाला

एक अधिक विशाल साधन है। इसकी नवीनता को तथा शासन सम्बन्धी एवं अन्य कठिनाइयों को ध्यान में रखते हुए योजना की अवधि में कानून को ठीक ढंग से लागू करने तथा इसको एक पक्की और निश्चित नींव पर खड़ा करने की कोशिश होनी चाहिए। प्रोविडेण्ट फंड कानून (१९५२) एक दूसरा उपाय है जो कमकरों के भविष्य को सुरक्षित करता है। यह भी केवल ६ प्रमुख उद्योगों तक ही सीमित है। इसे उन सभी उद्योगों तक, जो कि पचास अथवा उससे अधिक व्यक्तियों को काम पर लगाते हैं, विस्तृत करने की एक योजना बनाई जानी चाहिए।

काम की अवस्थाएँ

१७. फैक्टरियों में काम की अवस्थाओं में काफ़ी सुधार की ज़रूरत है कानून की दिशा में, सन् १९४८ का फैक्टरी कानून, १९५१ का बगान मज़दूर कानून और दूकानों, अन्य संस्थाओं तथा मोटर—यातायात सेवाओं में काम को नियन्त्रित करने के लिए प्रस्तावित कानून इस विषय के लिये काफी है। जहाँ तक फैक्टरियों का सम्बन्ध है, फैक्टरी कानून को ठीक से लागू करने पर जोर दिया जाना चाहिए। फैक्टरी निरीक्षकों को दृढ बनना चाहिए। कानूनों के सामाजिक पक्ष और जिनके विकास का स्तर अधूरा ही है उन क्षेत्रों और उद्योगों की ओर अधिक ध्यान दिया जाना चाहिए। इसी लक्ष्य को दृष्टि में रखकर औद्योगिक स्वास्थ्य, सुरक्षा एवं जन-कल्याण का एक राष्ट्रीय अजायबघर स्थापित होना चाहिए और औद्योगिक स्वास्थ्य सेवाएँ बननी चाहिएँ।

१८. यद्यपि १९५१ का बगान मज़दूर कानून एक बहुत दूर तक प्रभाव डालने वाला कानूनी उपाय है, जिसका लक्ष्य बगान मज़दूरों की दशा में सुधार करना है, फिर भी दूसरे उपायों की ज़रूरत है। उदाहरण के लिए कंगनी प्रथा जितनी शीघ्र हो सके समाप्त कर देनी चाहिए, और बगान मज़दूरों की आय को बढाने के लिए घरेलू उद्योग-धन्धों को स्थापित करना चाहिए। यदि संभव हो तो प्राविडेण्ट फण्ड कानून को बगान क्षेत्रों तक विस्तृत कर देना चाहिए।

रोज़ी-रोज़गार और ट्रेनिंग

१९. जन-शक्ति का उचित उपयोग एक राष्ट्रीय महत्त्व का प्रश्न है। यद्यपि हाल के वर्षों में सुयोग्य काम-दिलाऊ सेवाएँ संगठित करने और

कमकरों को ट्रेनिंग की सुविधायें देने की कोशिशें की गई हैं, पर अभी बहुत काफी करना है। भरती करने के तरीक़ों में सुधार की आवश्यकता है, जिससे कमकरों का शोषण न हो सके। श्रमिकों की आवश्यकताओं तथा काम के अवसरों की एक पड़ताल की जाना चाहिए। देश में ट्रेनिंग की व्यवस्था में ताल-मेल होना चाहिए। उचित परीक्षायें एवं मापदण्ड स्थिर होने चाहिएँ और बेकार कमकरों की ओर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए।

२० वैज्ञानीकरण की प्रगति साथ ही साथ होनी चाहिए जिससे खर्चों में कमी हो। कमकरों के समूहों को बना कर उनके लिये कार्य-भार निश्चित कर दिये जाने चाहियें। साथ ही काम की अवस्थायें सब कहीं समान हो जानी चाहियें। नई भरती रोक दी जानी चाहिये और मृत्यु तथा निवृत्ति से खाली होने वाले स्थानों को नहीं भरना चाहिये। अनावश्यक कमकरों को दूसरे विभागों में स्थान दिया जाना चाहिये और इससे उनकी सेवा को भंग न समझना चाहिये और उनकी मजूरी में कमी नहीं होनी चाहिये। इससे पहले कि नई मशीनें लगाई जायं, कच्चे माल, पूँजी बाजारों, मूल वस्तुओं की उपलब्धि तथा उत्पादित वस्तुओं की माँग—इन सब बातों की अच्छी तरह परीक्षा होनी चाहिये। कमकरों को ग्रेच्युइटी दी जानी चाहिये जिससे वे स्वेच्छा से कार्य-निवृत्त हो जायं। काम में नये लगे हुए लोगों में से ही अधिकतर छटनी की जानी चाहिये। काम से हटाये गये लोगों को नये धन्धों की ट्रेनिंग की सुविधायें दी जानी चाहियें। सरकार ट्रेनिंग का खर्च उठाये तथा मालिक ऐसे कमकरों के जीवन-व्यय का उत्तरदायित्व लें। जहाँ तक संभव हो अनावश्यक श्रम को सरकारी योजनाओं में लगाया जाना चाहिये। अन्त में वैज्ञानीकरण से होने वाले लाभ का भाग, ऊँची मजूरी तथा अच्छे जीवन स्तर के रूप में श्रमिकों को मिलना चाहिये।

उत्पादन-क्षमता

२१. इस देश के उद्योगपतियों के अनुसार, मज़दूरों की उत्पादन-क्षमता लगातार घटती जा रही है। कमकर इसे सही नहीं मानते। अंतर्राष्ट्रीय श्रम कार्यालय ने ऐसे विशेषज्ञ भेजना स्वीकार कर लिया है जो कार्य के वर्तमान, संगठन और तरीकों, कामों के वर्गीकरण और मजूरी की दरों का विश्लेषण योग्यता एवं उत्पादन-क्षमता को बढाने के लिये आवश्यक सुधारों को सामने रखने की दृष्टि से करेंगे। उद्योग के अन्तर्गत ट्रेनिंग देने का कार्यक्रम भी इसी से सम्बन्धित है। इस योजना का लक्ष्य काम की देख-रेख की क्षमता

को तीन भिन्न-भिन्न मार्गों से सुधारना है। पहला, काम की शिक्षा अर्थात् कमकरों में उनके विशेष धन्धों की योग्यता का विकास करना। दूसरा, कामों का परस्पर सम्बन्ध अर्थात् व्यक्तियों के संचालन की योग्यता को बढ़ाना। तीसरा, काम करने के तरीकों में सुधार करना। इन तरीकों से ट्रेनिंग देने के टैक्नीकल सहयोग कार्यक्रम के अंतर्गत विशेषज्ञों को बुलाया जाना चाहिए। साथ ही श्रम सचिवालय, मालिकों की संस्थाओं और श्रम संघों के पर्याप्त अधिकारियों को उत्पादन-क्षमता को बढ़ाने की पद्धतियों का अध्ययन करना चाहिये। उत्पादन-क्षमता, उत्पादन के अनुसार पैसा देना उद्योगों के अन्तर्गत शिक्षा आदि योजनाओं को संगठित किया जाना चाहिए।

—:०:—

अध्याय ३५

गृह-निर्माण

आज तक निजी कोशिशों से ही मकान बनाये जाते रहे हैं। पर बहुत समय से लगातार बढ़ती हुई माँग को ये निजी कोशिशें पूरा नहीं कर पा रही हैं। इसके कुछ विशेष कारण हैं। इनमें से एक किरायों का नियन्त्रण तथा घरों को सरकारी अधिकार में ले लेना है। इससे निजी उद्योगों का उत्साह मन्द होता है। लेकिन विशेषकर पिछले युद्ध का ही यह कुफल हुआ कि श्रम और सामग्री की कमी हो गई और भवन-निर्माण-कार्य बहुत धीमा पड गया जबकि आबादी, विशेषकर नगरों की आबादी लगातार बढती गई। युद्ध के दिनों में श्रमिक युद्ध सामग्री तथा दूसरी वस्तुएँ बनाने वाले कार-खानों में काम करने के लिये नगरों में चले आये थे। जब युद्ध समाप्त हो गया तब उनमें से सभी अपने गाँवों को नहीं लौट गये। सन् १९४७ में मकानों की समस्या और भी विकट हो गई जबकि विस्थापित लोग बड़ी संख्या में आ पहुँचे और उन्होंने अधिकतर शहरी इलाकों में ही बसना चाहा। इन सब कारणों से औद्योगिक केन्द्रों में भीड़-भाड बहुत बढ गई- और लोगों को बडी संख्या में गन्दे अंधेरे घरों मे रहना पडा। लोग बहुत सस्ती सामग्री से बने घरों अथवा मिट्टी की झोपड़ियों में बिना पानी और बिजली की सुविधा के रह रहे हैं।

सरकारों तथा सार्वजनिक संस्थाओं द्वारा गृह-निर्माण

२. केन्द्रीय तथा राज्यों की सरकारों ने बहुत पहले से ही अपने कर्म-चारियों को, विशेषकर छोटे-छोटे नगरों और बहुत दूर की जगहों में रहने वालों को, रहने के लिये मकान देने की आवश्यकता का अनुभव किया है। हाल ही में उन्होंने बडे नगरों में थोड़ी आमदनी वाले लोगों के लिये भी, यद्यपि वे सरकारी कर्मचारी नहीं हैं, मकान बनाने के उत्तरदायित्व को महसूस किया है। इस हेतु सन् १९४६ में बम्बई की सरकार ने एक गृह-निर्माण बोर्ड बनाया जिसका काम कारखानो में काम करने वाले मज़दूरों और दूसरे कम आमदनी वाले लोगो के लिये मकान बनाना, भूमि को विकसित करना

और भवन-निर्माण सामग्री के उत्पादन और वितरण में सहायता देना रखा गया। यह बोर्ड अब तक लगभग ७ हजार घर औद्योगिक श्रमिकों के लिये और ६००० घर विस्थापित लोगों के लिये बना चुका है। उत्तर प्रदेश में भी एक ऐसा बोर्ड है जो चीनी की मिलों में काम करने वाले मज़दूरों के लिये मकान बना रहा है। इसी प्रकार के बोर्ड मध्य प्रदेश और हैदराबाद में भी स्थापित किये गये हैं। इम्प्रूवमेंट ट्रस्टों तथा नगर-पालिकाओं ने भी गृह-निर्माण योजनायें हाथ में ली हैं। सब मिला कर १६,७७१ घर स्थानीय अधिकारियों ने बनाये हैं।

३. जब केन्द्रीय सरकार को पाकिस्तान से आये हुये बेघरबार लोगों को रहने के लिये घर देने की भीषण समस्या का सामना करना पडा तब उसने पहली बार अपने नौकरों के अतिरिक्त दूसरे लोगो के लिये घर बनाने के बडे-बडे कार्यक्रम हाथ मे लिये। देश के विभिन्न भागों में बस्तियाँ और नगर बस गये और बहुत बड़ी संख्या में घर बनाये गये।

निजी कोशिशें

४. युद्धकाल मे और उसके बाद कितने ही उद्योगपतियों ने जो बहुत-सा रुपया कमाया उससे उन्होंने अपने अधीन काम करने वालों की रहने की हालत को सुधारने की कोशिश की। लेकिन जो घर उन्होंने उनके लिये बनाये वे सन्तोषजनक नहीं थे। सन् १९५० में बगानों की औद्योगिक समिति ने यह निश्चय किया कि उत्तरी भारत के प्लांटर अपने कम से कम आठ प्रतिशत कर्मचारियो के लिये प्रतिवर्ष दो कमरो वाले घर बनायें। इसके फलस्वरूप सन् १९५०-५१ में २५ हजार घर बनाये गये। कोयले की खानों के जनहित बोर्ड ने भी धनबाद के निकट भूली मे एक निश्चित मापदण्ड के घर बनाये। पटसन के उद्योगपतियों ने शायद किसी भी दूसरे उद्योग से कहीं अधिक घर अपने मजदूरों के लिए बनाये।

दूसरी ओर विशेषकर मद्रास और बम्बई राज्यों में सहकारी गृह-निर्माण संस्थाओं ने मध्य एवं निम्न श्रेणी के लोगों की घरों की कमी को दूर करने का प्रयत्न किया।

घरों की कमी का अनुमान

५. योजना कमीशन ने प्रमुख औद्योगिक नगरों में घरों के अभाव का अनुमान लगाने का प्रयत्न किया है। ३१ नगरों के बड़े-बड़े उद्योगों के

१७,१४,२६० कर्मचारियों में से ४,२४,००० लोगों को घरों की तत्काल आवश्यकता है। सन् १९५१ की जनसंख्या के आंकड़ों से पता चलता है कि एक लाख अथवा अधिक आबादी वाले ७४ नगरों में पिछले १० सालों में ७४ लाख लोग बढ़ गये हैं और पाँच हजार से १ लाख तक की आबादी वाले नगरों में १४० लाख लोगों की वृद्धि हुई है। यदि यह मान लिया जाय कि ५ मनुष्य एक घर में रहते हैं तो इस बढ़ी हुई आबादी को बसाने के लिये ४ लाख घरों की आवश्यकता है।

गृह-निर्माण-नीति

६. संविधान में केन्द्र और राज्यों के बीच गृह-निर्माण सम्बन्धी अधिकारों का स्पष्ट बंटवारा नहीं किया गया है। पर दोनों पर ही इस बारे में पर्याप्त उत्तरदायित्व है, क्योंकि निजी तौर पर निर्माण करने वाले, कम आमदनी वाले लोगो के लिये उतने किराये पर जितना कि वे दे सकते हैं, घर देने में असमर्थ है। इसलिए राज्य को बडी मात्रा में सहायता एवं ऋण देने की आवश्यकता है। लेकिन राज्य सरकारों की आर्थिक कठिनाइयों को ध्यान में रखते हुए केन्द्रीय सरकार से ही यह आशा की जाती है कि वह घरों पर, विशेषकर नागरिक क्षेत्रों में होने वाले, व्यय का अधिकांश वहन करे। योजना कमीशन ने इसलिये यह सिफारिश की है कि भूमि के मूल्य समेत निर्माण के कुल व्यय का पचास प्रतिशत राज्य सरकारों को दिया जाना चाहिये जो इसे अनुविहित गृह-निर्माण बोर्डों तथा औद्योगिक कर्मचारियों की सहकारी संस्थाओं को प्रदान करें। गैर-सरकारी मालिकों को भूमि के मूल्य सहित निर्माण के कुछ व्यय का २५ प्रतिशत दिया जाना चाहिये। ऐसे ऋण भी राज्यों को दिये जाने चाहियें जो अनुविहित गृह-निर्माण बोर्डों तथा औद्योगिक कर्मचारियों को सहकारी गृह-निर्माण संस्थाओं के द्वारा २५ वर्ष में चुका देने का वचन देकर सीधे केन्द्रीय सरकार से ले सकें। कमीशन यह अनुभव करता है कि मध्यवर्गीय तथा कम आमदनी वाले लोगों की सहकारी संस्थाओं को भी, यद्यपि वे ठोस सहायता पाने के योग्य नहीं हैं, सरकार को रियायती दरों पर ऋण देना चाहिये।

७. कमीशन इस बात को महसूस करता है कि भविष्य में गृह-निर्माण योजनाओं का प्रमुख भाग निजी उद्योगों को ही पूरा करना होगा। इसलिये उनको इस प्रकार प्रोत्साहित किया जाना चाहिये—(१) भवनों के लिए उचित स्थलों का प्रबन्ध करना; (२) ऋण प्राप्त करने में सहायता देना;

(३) अनिवार्य भवन निर्माण सामग्री का अधिक औचित्य-पूर्ण वितरण; (४) नये बने घरों को एक निश्चित समय के लिये किराये सम्बन्धी नियमों से मुक्त करना। निजी गृह-निर्माताओं को तो प्रोत्साहित किया जाना चाहिये पर भूमि की सट्टेबाजी को रोकना चाहिये।

भवन-निर्माण के मापदण्ड तथा खर्च का अनुमान

८. घरों की बहुत अधिक कमी है, इसलिए ऐसे मापदण्ड स्थापित करना सम्भव नहीं हो सकता जो कि अन्तरंग और सामान्य जीवन स्तर की आवश्यकताओं को पूरा करने के बदले ऊँचे आदर्शों की ओर अधिक उन्मुख हों। इसलिये घर दो प्रकार के होने चाहियें—(क) छोटे नगरों में एक-मंजिले मकान बनाये जायें जिनका क्षेत्रफल २२० वर्ग फीट हो और जिनके सामने एक आंगन हो और (ख) बड़े नगरों में कई मंजिलों के मकान बनाये जायें। इनमें से प्रत्येक खंड का क्षेत्रफल २४० वर्ग फीट हो। यह अनुमान लगाया गया है कि छोटे नगरों के एक-मंजिले मकानों का मूल्य लगभग २,७०० रुपये होगा जब कि बड़े नगरों के कई-मंजिले मकानों का प्रत्येक खंड लगभग ४,२०० रु० में बनेगा। इन खंडों का किराया क्रमशः १० रु० और १७ रु० ८ आ० महीना लगाया गया है। योजना कमीशन ने सिफारिश की है कि उस अवस्था में जब कि मालिक अपने मजदूरों के लिये घर बनाने के लिये सरकारी सहायता स्वीकार करे, इन घरों का प्रबन्ध एक समिति के हाथ में होगा जिसमें मालिकों और कर्मचारियों के प्रतिनिधि होंगे और जिसका अध्यक्ष सरकार नियुक्त करेगी।

गृह-निर्माण के लिये धन

९. कर्मचारी प्राविडेण्ट फण्ड कानून के बन जाने से, गृह-निर्माण में लगाने के लिये धन प्राप्त करने का एक रास्ता निकल आया है। कमीशन ने सुझाव दिया है कि केन्द्रीय सरकार गृह-निर्माण के लिये सहायता एवं ऋणों की मद में ३८ करोड़ ५ लाख रुपया इस योजना की अवधि में व्यय करे। इसके अतिरिक्त राज्य भी १०.१६ करोड़ रुपया गृह-निर्माण की मद में व्यय करने का विचार रखते हैं।

नगरों और गाँवों की बसावट

१०. नगरों की बसावट सम्बन्धी नीति को सब कहीं एक-सा बनाने के लिये एक राष्ट्रीय नगर व ग्राम योजना कानून बनाया जाना चाहिये। प्रादेशिक

योजनाओं की आवश्यकता अब बहुत ही जरूरी हो गई है क्योंकि बहुत-सी नदी घाटी योजनाएँ आजकल पूरी की जा रही हैं। प्रदेश विशेष की आबादी, औद्योगिक तथा कृषि सम्बन्धी अवस्थाओं और यातायात तथा संचार की सुविधाओं आदि विषयों पर प्रादेशिक योजनाओं को बनाते समय विशेष ध्यान दिया जाना चाहिये। ग्रामों में कृषि व उद्योगों को एक साथ इकट्ठा करने की नीति के साथ-साथ प्रादेशिक योजनायें, ग्रामों, व्यापारिक नगरों तथा औद्योगिक क्षेत्रों के बीच आबादी के संतुलित वितरण का लक्ष्य अपने सामने रखें। उन्हें उद्योगों के छितराने, छोटे गृह-उद्योगों के विकास और स्वास्थ्य, शिक्षा एवं मनोरंजन की सुविधाओं का भी पूरा ध्यान रखना चाहिए।

गन्दी बस्तियो की सफाई

११. गन्दी बस्तियों को खत्म करना गृह-निर्माण नीति का एक अत्यावश्यक अंग समझा जाना चाहिए और उसमें क्रम से प्रगति होनी चाहिए। कुछ नगरों में इम्प्रूवमेन्ट ट्रस्टों तथा स्थानीय अधिकारियों ने गन्दी बस्तियों को खत्म करने के प्रयत्न किये हैं, पर आवश्यक साधनों की कमी के कारण वे असफल रहे हैं। इसलिए कमीशन ने सिफारिश की है कि योजना के पाँच वर्षों की अवधि में गृह-निर्माण योजनाओं पर व्यय करने के लिए जो ३८·५ करोड़ रुपया प्रस्तावित किया गया है उसमें से केन्द्रीय सरकार राज्य सरकारों की मार्फत इम्प्रूवमेन्ट ट्रस्टों तथा स्थानीय अधिकारियों को गन्दी बस्तियों को खत्म करने के लिए भी ऋण दें।

ग्रामों मे गृह-निर्माण

१२. गाँव वाले अपना घर अपने आप बनाने के आदी होते हैं। सरकार नमूने के घर बना कर ग्रामीण गृह-निर्माण के मापदण्ड में सुधार कर सकती है। ग्रामीणों को सुयोग्य निरीक्षण में अपने घर अपने आप बनाने के लिये उत्साहित किया जाना चाहिये। हाल ही में भूमि की पट्टेदारी प्रणाली में सुधारों तथा सामूहिक विकास योजनाओं के कारण, ग्रामीण क्षेत्रों में घर बनाने के सुधरे हुए तरीकों तथा घरों के नक्शों का प्रचार करना संभव हो गया है। गांवों में सस्ते घर बनाने पर ज़ोर दिया जाना चाहिये, पर वे खूब हवादार होने चाहिये और पशुओं की जगहों को एकदम पास नहीं होना चाहिये। साफ टट्टियों तथा स्वस्थ जीवन के लिये आवश्यक अन्य सुविधाओं का पूरा ध्यान रखना चाहिये। उदाहरण के लिये रसोईघरों में चिमनी,

मौसम के प्रभावों से सुरक्षित दीवारें तथा सुधरे हुये ढंगों की छतें अधिक चलाऊ सामग्री से बिना अतिरिक्त मूल्य के बनाई जा सकती हैं। "आत्म निर्भरता" का अर्थ है लकड़ी, बांस, मिट्टी, रेत, घास आदि स्थानीय सामग्री का उपयोग करना। इसका अधिक से अधिक लाभ उठाने के लिये सरकार को चुने हुये गाँवों में मार्ग-दर्शक योजनायें लागू करनी चाहियें। क्योंकि नागरिक क्षेत्रों में गृह निर्माण का भार केन्द्रीय सरकार उठा रही है, इसलिये राज्य सरकारों से यह आशा की जाती है कि वे अपना ध्यान ग्रामीण क्षेत्रों में रहन-सहन के स्तर को ऊँचा उठाने में लगायेंगी। उदाहरण के लिये वे बिना ब्याज के अथवा लम्बी अवधि के लिये ऋण दे सकती हैं और उन नये तरीकों को प्रचलित कर सकती हैं जो देश के दूसरे भागों में सफल सिद्ध हुए हैं।

खोज और राष्ट्रीय निर्माण संस्था

१३. खोज के कई लक्ष्य हो सकते हैं, जैसे घरों के विभिन्न अङ्गों के स्वरूप का स्थिरीकरण, नई सामग्री अथवा बदले में काम आने वाली कृत्रिम सामग्री की खोज तथा मिट्टी, खनिज पदार्थों और विभिन्न स्थानों की मिट्टी की प्रकृति एवं तत्वों का अध्ययन आदि। खोज और उच्च अध्ययन की सुविधायें इस समय विश्वविद्यालय, विशेषज्ञ संस्थायें और इन्जीनियरों, कारीगरों, नगरों के बसाने वालों की अधिकृत संस्थायें तथा गृह-निर्माताओं के संघ दे रहे हैं। गृह-निर्माण सामग्री बनाने वाले कारखानों में भी खोज की सुविधायें मिलती हैं। इन संस्थाओं में खोज कार्यों की सीमाओं को पर्याप्त रूप से बढ़ाया जा सकता है। निम्नलिखित विषयों मे भी खोज की जानी चाहिये :—

(क) गृह-निर्माण की बुनियादी सामग्री जैसे ईंट, खपरैल और दूसरी स्वदेशी सामग्री;

(ख) इस्पात और दूसरी निर्माण सामग्री के स्थान पर लकड़ी और बांस का प्रयोग;

(ग) निर्माण के नियमों का संशोधन;

(घ) घरों के विभिन्न अङ्गों और निर्माण सामग्री का विशाल स्तर पर उत्पादन एवं उनके माप-दण्ड का स्थिरीकरण।

राज-मिस्त्रियों तथा दूसरे शिल्पकारों की ट्रेनिङ्ग में काफी सुधार होने चाहियें। इन क्षेत्रों में सभी खोज-परिणामों की ओर सरकारों तथा निजी

संस्थाओं का ध्यान आकृष्ट करना चाहिये। ऐसी खोजों का अधिकतम उपयोग किया जा सके, इसलिये विभिन्न संस्थाओं द्वारा किये गये कामों का ठीक रूप में समन्वय करके उसे प्रकाशित करना चाहिये। इस लक्ष्य को लेकर एक राष्ट्रीय निर्माण संस्था स्थापित की जाय और इस संस्था की सिफारिशों को केन्द्रीय तथा राज्य सरकारें लागू करें।

गृह-निर्माण बोर्ड

गृह-निर्माण योजना को लागू करने के लिये अनुविहित स्वायत्त अधिकार गृह-निर्माण बोर्ड नियुक्त किये जाने चाहियें। इन बोर्डों की एक केन्द्रीय अथवा संघीय संस्था से सम्बन्धित प्रादेशिक शाखायें होनी चाहियें। इन बोर्डों के निम्नलिखित कर्त्तव्य होने चाहियें :—

(१) प्रादेशिक गृह निर्माण निधियों का नियन्त्रण;
(२) राज्य की निर्माण योजनाओं को बढ़ावा देना;
(३) विभिन्न वर्गों के लोग कैसे मकान चाहते हैं, इससे सम्बन्ध रखने वाली सूचनायें एकत्रित करना,
(४) चुने हुए क्षेत्रों में एक निर्धारित योजना के अनुसार मकान बनाना;
(५) श्रमिकों तथा दूसरे कम आय वाले लोगों को मकान देना;
(६) नये नगरों एवं उपनगरों की योजनायें बना कर उनको बसाना;
(७) गन्दी बस्तियों को खत्म करना तथा गरीब लोगों के घरों की दशा सुधारना;
(८) बोर्ड द्वारा बनाये गये घरों की देखभाल करना तथा उनका किराया उगाहना;
(९) व्यक्तियों तथा सहकारी संस्थाओं को मकान बनाने के लिये प्रोत्साहित करना;
(१०) राज-मजूरों को उनके धंधे की ट्रेनिंग देने का प्रबन्ध करना तथा गृह-निर्माण सामग्री के व्यापार को संगठित करना; और
(११) निजी मकान बनाने वालों को उपयुक्त आश्वासन लेकर ऋण देना।

विधान

एक नगर तथा ग्राम योजना कानून की आवश्यकता का पहले ही उल्लेख हो चुका है। इस नये कानून के अतिरिक्त, वर्तमान कानून में भी कुछ संशोधनों

की आवश्यकता है। गन्दी बस्तियों की भूमि का जो मूल्य उनको ग्रहण करने पर देना पड़ता है वह बहुत ही उत्साह भंग करने वाला है क्योंकि उसकी बाज़ार-कीमत के अतिरिक्त भी १५ प्रतिशत के हिसाब से हरजाना देना पड़ता है। कमीशन ने प्रस्ताव रखा है कि सन् १८९४ का भूमि-ग्रहण सम्बन्धी कानून सुधारा जाना चाहिये और हरजाने का निर्णय उन दिनों भूमि के उपयोग को देखकर किया जाना चाहिये जिन दिनों कि उसे ग्रहण करने की आज्ञा जारी की गई हो। गन्दे क्षेत्रों तथा दूसरी भूमियों का, जिनकी औद्योगिक कर्मचारियों और कम आमदनी वाले लोगों के लिये मकान बनाने के लिये आवश्यकता है, अतिरिक्त हरजाना नहीं दिया जाना चाहिये। इस कानून द्वारा इस प्रकार की सम्पत्ति पर शीघ्र से शीघ्र अधिकार करने का भी प्रबन्ध होना चाहिये।

१६. दूसरी सिफारिश यह है कि किरायों पर नियन्त्रण सम्बन्धी कानून विभिन्न राज्यों में समान होने चाहियें, लेकिन, जैसा कि पहले कहा जा चुका है, निजी मकानों के बनने को प्रोत्साहित करने के लिये नये बने मकान एक निश्चित अवधि तक इस कानून से मुक्त रखे जाने चाहियें। अदालतें निर्माण और मजदूरी के व्यय पर एक उचित आमदनी के आधार पर इन मकानों का किराया निश्चित कर सकती हैं। मकानों पर विशेष परिस्थितियों में ही सरकार को अधिकार करना चाहिये।

—:०:—

अध्याय ३६

समाज-कल्याण

१. यद्यपि संविधान मोटे रूप में सभी नागरिकों के लिये सामाजिक न्याय की सुरक्षा देता है, पर व्यवहार में इस तत्त्व को पूरी तरह तभी लाया जा सकता है जब लोग सरकार के प्रयत्नों को अपने इच्छित सहयोग से सशक्त बनायें। एक अच्छे जीवन-स्तर का अर्थ बुनियादी जरूरतों की पूर्ति से कुछ और अधिक होता है। इसका अर्थ होता है सरकार पर इस बात की जिम्मेदारी होना कि वह अपने नागरिकों के लिये ऐसा सामाजिक वातावरण तैयार करे जिसमें वे मानसिक और शारीरिक स्वास्थ्य प्राप्त कर सकें और समाजिक और पारिवारिक जीवन का आनन्द उठा सकें। राजनीतिक जागृति और कर्मकरों तथा संस्थाओं में सामाजिक अवस्था को सुधारने की उत्कंठा उत्पन्न हो जाने से इस बात की सम्भावना मानी जाती है कि देश भर में सामाजिक कल्याण के कार्यक्रमों का जाल फैलाकर आर्थिक लाभों को और भी ठोस एवं सफल बनाया जा सकेगा। समाज-कल्याण की प्रमुख समस्यायें स्त्रियों, बच्चों, युवकों, परिवारों तथा कम उन्नत वर्गों से सम्बन्ध रखती हैं। इस अध्याय में हम संक्षेप से समाज-कल्याण की कुछ अधिक विशेष समस्याओं पर विचार करेंगे। सरकार और निजी लोक-कल्याण संस्थाओं का ध्यान उनकी ओर जाना बहुत जरूरी है।

संस्थायें

२. ऐसा समझा जाता है कि अपने साधनों की सीमाओं में केन्द्रीय तथा राज्य सरकारों तथा स्थानीय अधिकारियों को, जहाँ तक सामाजिक कल्याण का सम्बन्ध है, पहले से अधिक सीधा उत्तरदायित्व अपने ऊपर लेने का प्रयत्न करना पड़ेगा। लेकिन इस क्षेत्र में ज्यादा बोझ तो आत्म-निर्भर निजी संस्थाओं को उठाना पड़ेगा, और इस योजना में लोक-कल्याण सम्बन्धी उनके कार्य पर काफी ज़ोर दिया गया है। ४ करोड़ रुपया इन संस्थाओं के कल्याण सम्बन्धी कार्यक्रमों को सशक्त बनाने के लिये रखा गया है। इस निधि को प्रयोग में लाने के लिये एक ऐसे सामाजिक कल्याण बोर्ड की स्थापना का

प्रस्ताव किया गया है जिसके पास पर्याप्त प्रशासकीय अधिकार हों और जो ऐसे गैर-सरकारी लोगों से ही अधिकतर मिल कर बना हो जिनको कि स्वेच्छा से किये जाने वाले कल्याण कार्य के क्षेत्र में वास्तविक अनुभव हो।

३. विभिन्न स्वेच्छासेवा संस्थाओं के बीच सहयोग की बड़ी आवश्यकता है जिससे कर्मचारियों का प्रभावशाली ढंग से उपयोग हो सके और निधि एकत्रित करने में सफलता मिल सके। इसी काम पर लगी विभिन्न राष्ट्रीय संस्थाओं तथा क्षेत्र विशेष अथवा वर्ग विशेष में काम करने वाली विभिन्न जमातों के बीच काम के सम्बन्ध में पूरा सहयोग रहना चाहिये।

प्रशिक्षण और खोज

४. जन कल्याण सेवाओं की योग्यता और सफलता बहुत अधिक उनके कर्मचारियों और नेताओं पर निर्भर होती है। भारत में सामाजिक जन कल्याण कर्मचारियों को शिक्षा देने के लिये कुछ स्कूल हैं और कुछ राज्य इस प्रकार की और अधिक शिक्षण-संस्थायें खोलने का विचार कर रहे हैं। अगले पाँच वर्षों में समाज-सेवा के लिये ग्रामीण स्कूलों को स्थापित करना सम्भव होना चाहिये। ये स्कूल जन-सेवकों को तैयार करेंगे और विशेषकर गांवों की आवश्यकताओं को पूरा करने वाले कार्यक्रम बनायेंगे। क्योंकि ग्रामीण और नागरिक क्षेत्रों में जन-कल्याण सम्बन्धी काम बहुत अधिक किया जा सकता है, इसलिये एक बड़ी संख्या में स्वयंसेवक भरती किये जाने चाहियें और उनको समाज-सेवा की शिक्षा दी जानी चाहिये।

५. बुनियादी सामाजिक समस्याओं का हमारा वर्तमान ज्ञान अभी काफी नहीं है। योजना में पचास लाख रुपये की व्यवस्था, राष्ट्रीय विकास, सामाजिक, आर्थिक तथा प्रशासकीय समस्याओं के क्षेत्र मे खोज और पर्यवेक्षण के लिये है।

साधन

६. सरकार योग्य संस्थाओं को सहायता दे सकती है, पर अपनी सहायता आप करने की प्रवृत्ति ही अधिकतर पनपनी चाहिए, और जहां तक संभव हो सके, जन-कल्याण के कामों के लिए जनता स्वयं धन दे। धर्मस्व संस्थाओं तथा ट्रस्टों के पास संचित धन उन साधनों को, जिनको कि राज्य और निजी संस्थायें प्रस्तुत करती हैं, और भी सशक्त बनाने का सफल उपाय बन सकता है और यह सुझाव रखा गया है कि ऐसी निधियों को जन-

कल्याण कार्यक्रमों पर व्यय करने के लिये एक उपयुक्त कानून बनाने की सम्भावनाओं पर विचार किया जाय।

समाज-सुधार सम्बन्धी कानून

७. प्रगतिशील सामाजिक परिवर्तन लाने का एक विशेष तरीका समाज-सुधार कानून बनाना भी है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद से आज तक पर्याप्त बुनियादी सामाजिक कानून बनाये गये हैं, लेकिन इस कानून के लिये इस बात की आवश्यकता है कि इसकी उपयुक्तता की छानबीन करने और जहाँ आवश्यक हो इसमें संशोधन करने के लिये इसका सूक्ष्म परीक्षण किया जाय। किसी भी सामाजिक कानून को लागू करने के लिये सुलझी हुई जन-भावना द्वारा परिपुष्ट उचित उपाय अनिवार्य होते हैं।

स्त्रियों का कल्याण

८. मद्रास और उत्तर-प्रदेश की सरकारों ने स्त्रियों की भलाई के कामों के लिये विशेष विभाग बना कर एक उदाहरण प्रस्तुत किया है। इस प्रकार के कल्याण कार्यक्रमों को चलाने का प्रमुख भार अब तक निजी संस्थायें ही उठाती रही हैं। उनमें से कुछ ने बहुमूल्य काम किया है। उदाहरण के लिये अखिल भारतीय महिला सम्मेलन की ३७ शाखायें और लगभग ३०० उप-शाखायें सारे भारत में हैं। भारत में महिलाओं की राष्ट्रीय परिषद, बालिका स्वयं-सेविकाओं का संघ, राष्ट्रीय वाई. एम. सी. ए., नैतिक एवं सामाजिक स्वास्थ्य की संस्था तथा शिक्षित नर्सों का संघ आदि संस्थायें इससे संबद्ध हैं। कस्तूरबा गाँधी राष्ट्रीय स्मारक ट्रस्ट १८ राज्यों में ग्रामीणों में जनकल्याण-कार्य कर रहा है। बहुत से दूसरे संगठन भी चिकित्सालय, प्रसूति गृह तथा अनाथ स्त्रियों और बच्चों के लिये आश्रम आदि चलाते हैं। फिर भी समस्या का अन्तरंग अभी तक अछूता ही पड़ा है। बहुत बड़ी संख्या में स्वयंसेवकों की आवश्यकता है जो प्रत्येक गाँव और मुहल्ले में अच्छी तरह सोच कर बनाये हुये कार्यक्रमों को पूरा करें।

बच्चों की भलाई

९. बच्चों के स्वास्थ्य, विकास तथा संरक्षण की समस्याओं को हल करने में भी सामाजिक जनकल्याण संस्थाओं को बहुत बड़ा भाग लेना है। जिनकी ओर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिये, वे विषय निम्नलिखित हैं :—

१. स्कूलों तथा दूसरी शिक्षा-संस्थाओं में बच्चों के लिये, और विशेषकर

उन बच्चों के लिये जो अच्छी तरह पनप नहीं पाये हैं, भोजन की आवश्यकता;

२. कमजोर मस्तिष्क वाले बच्चो की समस्या हल करने के लिये मार्ग-दर्शक योजनायें,

३. बच्चो के अस्पताल;

४. काम करने वाली माताओं के बच्चों की देखभाल करने के लिये नर्सों का संगठन;

५. खेल के मैदानो का संरक्षण एवं प्रबन्ध;

६. बालकेन्द्रों की स्थापना। इनमें से प्रत्येक के पास एक सर्वसाधन-सम्पन्न खेल का मैदान, एक बाल-साहित्य-पुस्तकालय और बच्चों में कला तथा कारीगरी की क्षमता का विकास करने के लिये सुविधायें और एक रंगमंच होना चाहिये;

७. अनाथ, त्यक्त एवं निर्धन-निराश्रित बच्चों के लिये केन्द्रों का संगठन। यह प्रस्तावित किया गया है कि अनाथालयों और दूसरे ऐसे केन्द्रों को रजिस्टर करा लिया जाना चाहिये और उनका निरीक्षण होना चाहिये।

बाल अपराधों की समस्या एक दूसरी बड़ी समस्या है। इसका मुकाबला करने के लिये शिक्षा-मंत्रालय ने एक नमूने का कानून बनाया है। कुछ राज्यों में बच्चों के गाँव, नगर तथा दूसरी संस्थायें बनाकर अपराधी बच्चों को सुधारने का प्रयत्न किया जा रहा है। यह लाभदायक होगा कि नगरों में बालकों से सम्बन्धित ऐसी सहायक समितियाँ स्थापित की जायें जिनमें विशेषरूप से पुलिस के शिक्षित अधिकारी हों जो अपराधी बच्चों के मामलों की छानबीन करें और मामूली अपराधों का बिना न्यायालय तक ले जाये ही निर्णय कर दें।

युवको का कल्याण

१०. युवकों के कल्याण के आन्दोलन का लक्ष्य उनमें चरित्र का विकास करना और उनमें जाति की भलाई के लिये काम करने की इच्छा पैदा करना होना चाहिये। स्काउट कार्यक्रमों तथा नेशनल कैडेट कोर के संगठन को प्रोत्साहित करना चाहिये। नवयुवकों की सेवाओ को राष्ट्रीय निर्माण के सक्रिय कार्यक्रमों में लगाने के लिये १ करोड़ रुपया रखा गया है।

पारिवारिक कल्याण

११. बम्बई और मद्रास की सरकारों ने कुछ पारिवारिक कल्याण केन्द्र स्थापित किये हैं। नये माता-पिताओं के लाभ के लिये राज्य को उन्हें यौन समस्याओं, पारिवारिक योजनाओं, विवाह सम्बन्धी स्वास्थ्यकर बातों, घरेलू अर्थनीति, माँ के कर्तव्य और घरेलू काम-काज के सम्बन्ध में आवश्यक एवं लाभदायक बातें बताने का एक विस्तृत कार्यक्रम चालू करना चाहिये।

अपाहिजों की भलाई

१२. परिवार अथवा देश में शारीरिक रूप से अक्षम या अपाहिज लोगों की देखभाल करने की रीति रही है। जहाँ इस प्रकार का संरक्षण नहीं मिल पाता वहाँ वे भीख माँगने लगते हैं। भारत में ऐसे लोगों की संख्या का कभी अनुमान तो नहीं लगाया गया पर यह निश्चित है कि यह एक काफी बड़ी समस्या है। अधिक पुष्ट अनुमान कर सकने के लिये कुछ चुने हुये नागरिक एवं ग्रामीण क्षेत्रों में नमूने की पडताल की जानी चाहिये। कुछ राज्यों में ऐसे लोगों के लिये थोडा बहुत काम किया गया है। अभी तो सबसे अच्छा रास्ता यही होगा कि इस क्षेत्र में पहले से काम करने वाली स्वयंसेवक संस्थाओं को सहायता देकर प्रोत्साहित किया जाय।

राष्ट्र का शारीरिक स्वास्थ्य

१३. सामाजिक जनकल्याण के कार्यक्रमों का एक अनिवार्य अंग शारीरिक स्वास्थ्य भी है। एक विशेषज्ञ समिति को चाहिये कि वह विभिन्न उम्रों तथा विभिन्न क्षेत्रों में शारीरिक स्वास्थ्य के राष्ट्रीय मापदण्ड को स्थिर करे। शिक्षण संस्थायें तथा शारीरिक स्वास्थ्य को उन्नत बनाने का काम करने वाली संस्थायें युवकों को इन मापदण्डों तक पहुँचने के लिये आवश्यक सुविधायें प्रदान कर सकती हैं। यह भी उचित होगा कि वर्तमान शारीरिक शिक्षा देने वाली संस्थाओं में से एक को राष्ट्रीय शिक्षण केन्द्र बना दिया जाय। खेल के मैदानों का होना निश्चय ही बहुत जरूरी है और प्रत्येक सार्वजनिक केन्द्र, स्कूल अथवा प्रबन्ध संस्था के पास एक खेल का मैदान होना चाहिये। भारत को अभी खेल के क्षेत्र में बहुत अधिक उन्नति करनी है और उसके लिये ठोस सहायता एवं प्रोत्साहन की आवश्यकता है।

सामाजिक कल्याण में जनता का सहयोग

१४. जैसे-जैसे स्थानीय जनता अपनी समस्याओं को अपने आप सुल-

रखने का उत्तरदायित्व अपने ऊपर लेगी, सामाजिक कल्याण का क्षेत्र फैलता जायेगा। जन-कल्याण कार्यक्रम चार परस्पर सम्बन्धित विचारों पर आधारित है :—(१) अपनी सहायता आप करना और आपसी सहयोग और सेवा; (२) संगठित जन-जीवन के द्वारा स्थानीय साधनों का अधितम विकास और प्रयोग, (३) सहकारी प्रयासों में सामाजिक रूप से भाग लेकर आर्थिक उन्नति तथा सांस्कृतिक विकास करना; (४) सामाजिक कल्याण के उद्देश्यों को राज्य से कम से कम सहायता लेकर प्राप्त करना। सामाजिक कल्याण के विभिन्न क्षेत्रों में ये विचार अनिवार्य हैं। जन-सेवा के कार्यक्रम ग्रामीण एवं नागरिक दोनों क्षेत्रों मे भारी आशायें बंधाते हैं। गाँव के जन-सेवा के कार्यक्रमों का पहले वर्णन हो चुका है। इसका उद्देश्य गाँव में केवल काम-काज की अवस्था को ही बदल देना नहीं है, बल्कि ग्रामीण लोगों के बीच सामाजिक एवं आर्थिक सम्बन्धों एवं प्रवृत्तियों का विकास करना भी है। ग्रामीण जनता का कोई भी भाग इस कार्यक्रम के प्रभाव से अछूता नहीं बचता। परिणाम चाहे कुछ भी हो, नागरिक जीवन का केन्द्र सामाजिक से व्यक्तिगत बन जाया करता है। इसलिये ऐसे जन-केन्द्र स्थापित करने की बहुत बड़ी आवश्यकता है जिनमें आकर स्थानीय नागरिक-वर्ग अपनी जरूरी सामाजिक और आर्थिक आवश्यकताओं की छान-बीन कर सके और सहकारी प्रयासों के द्वारा उनका हल खोज सके। ऐसे केन्द्र नागरिक जीवन का स्तर उठाने और उसको अधिक सरस बनाने के काम मे बहुत बड़ा सहयोग दे सकते हैं।

—:o:—

अध्याय ३७

पिछड़ी हुई जातियों की भलाई

पिछड़ी हुई जातियां उन्हें कहते हैं जिन्हें कई कारणों से आर्थिक और शिक्षा संबंधी विकास के पर्याप्त अवसर नहीं मिले। इन जातियों में हरिजन शामिल हैं जैसे ७९९ परिगणित जातियां, परिगणित कबीले, वे वर्ग जिन्हें अब तक जरायम पेशा जातियां कहते थे और वे वर्ग जिन्हें "दूसरी पिछड़ी हुई जातियों" के नाम से संबोधित करते थे लेकिन जिनकी अब तक ठीक ठीक परिभाषा नहीं की गई है। जल्दी ही एक कमीशन बनाया जा रहा है जो इन "दूसरी पिछड़ी जातियों" की एक सूची तैयार करेगा। विश्वास किया जाता है कि इन जातियों की संख्या ५४६ लाख है।

परिगणित जातियां

२. परिगणित जातियों के लोगों की संख्या कोई ५ करोड़ है। काफी अरसे से यह माना जाता रहा है कि इन जातियों के लिये शिक्षा की सबसे अधिक जरूरत है और ऐसे इलाकों में जहां ये जातियां बड़ी संख्या में रहती हैं, प्राइमरी स्कूल खोलकर और परिगणित जातियों के विद्यार्थियों को मुफ्त शिक्षा और वजीफे आदि देकर इन की काफी भलाई की गई है। परिगणित जातियों के विद्यार्थियों को यूनिवर्सिटी तक के लिये वजीफे दिये जाते हैं। व्यावसायिक और टैकनिकल शिक्षा पर विशेष जोर दिया गया है और शिक्षा प्राप्त करने वाले बहुत से लोगों को अपने अपने रोजगार शुरू करने के लिये कर्जे दिये गये हैं। योजनाकाल के लिये राज्यसरकारों ने परिगणित जातियों के लाभ के लिये कुल मिला कर दस करोड़ रुपये की व्यवस्था की है। भारत सरकार ने इस काम के लिये और चार करोड़ रुपये की व्यवस्था की है। इसका अधिकतर भाग शिक्षा पर खर्च किया जायगा।

३. छुआछूत खत्म कर दी गई है और संविधान में उस पर रोक लगा दी गई है। लेकिन कानूनी कार्रवाई से पुराने जमाने से चली आने

वाली प्रथा तुरन्त ही खत्म नहीं की जा सकती । यह काम लोगों को समझा-बुझाकर, उन्हें उदाहरण देकर और सामाजिक शिक्षा की व्यवस्था करके पूरा किया जा सकता है । सामाजिक जीवन में लोकतंत्र के सिद्धांत पर चल कर, आत्म-विकास के लिये सरकार और गैर-सरकारी संस्थाओं की सहायता से लाभ उठाने और आर्थिक जीवन और रहन-सहन की हालतों में सुधार करने से मतलब सिद्ध हो सकता है ।

परिगणित जनजातियाँ

४. परिगणित जनजातियां देश की सबसे पुरानी जातियों में से हैं । ये जातियां देश के बीच के इलाके मे अरावली पहाड़ियों से लेकर बम्बई, मध्य प्रदेश, बिहार, उडीसा, पश्चिमी बंगाल और आसाम तक फैली हुई हैं । उत्तर में ये जातियां हिमालय की दक्षिणी पर्वत-श्रेणी में और दक्षिण में पूर्वी और पश्चिमी घाट के दक्षिणी क्षेत्र में और विन्ध्याचल और सतपुडा पहाड़ों में पाई जाती हैं। सन् १९५० में इन जातियों की संख्या २१२ थी और कुल आबादी कोई १७९ लाख थी ।

५. पिछले समय में एक प्रभावशाली विचारधारा के लोगों का विचार यह था कि इन जातियों को अधिक संगठित वर्गों से अलग और नये जमाने के प्रभाव से दूर रखा जाय । इस नीति के औचित्य का पहले चाहे जो आधार रहा हो पर अब इस पर व्यवहार नहीं किया जा सकता । साधनों के विकास से परिगणित जनजातियों के इलाके बाहरी दुनियां के निकट सम्पर्क में आ रहे हैं और बाहरी जीवन का उनके सामाजिकजीवन पर असर पडता है। अब इस ठोस नीति की जरूरत है कि इन इलाकों के प्राकृतिक साधनों के विकास के लिये वहां के लोगो को सहायता दी जाय और साथ ही इस बात का ध्यान रखा जाय कि अधिक संगठित वर्ग उसका शोषण न कर सकें । जहां तक उनके धार्मिक और सामाजिक जीवन का संबंध है, परिवर्तन की पहल इन जातियों को ही करनी चाहिये । इनके सामाजिक जीवन की कुछ बातें ऐसी हैं जिन्हें बनाये रखना ही नहीं, बल्कि विकसित करना भी जरूरी है ।

६. संविधान के २७५वें अनुच्छेद मे कहा गया है कि परिगणित जनजातियों की भलाई के काम को आगे बढ़ाने के लिये आर्थिक सहायता देने की जरूरत है । इस अनुच्छेद के अधीन भारत सरकार ने योजना-काल के लिये १२ करोड़ रुपये की व्यवस्था की है । लेकिन कार्यक्रम की ब्यौरेवार बातों को अभी अन्तिम रूप नहीं दिया गया । परिगणित इलाकों के विकास के लिये भिन्न-भिन्न राज्यों ने और ग्यारह करोड़ रुपये की व्यवस्था की है ।

उत्तर-पूर्वी-सीमा-ऐजेंसी के विकास के लिये भी १ करोड़ रुपये की व्यवस्था की गई है। इस इलाके में बड़ी संख्या में परिगणित जनजातियों के लोग रहते हैं।

विकास-कार्यक्रम

७. परिगणित इलाकों की अर्थ-व्यवस्था के विकास में सडकें महत्त्वपूर्ण भाग ले सकती हैं और अब यह बात मान ली गई है। परिगणित इलाकों की सरकारी योजनाओं में सडकों के लिये २ करोड़ रुपये की व्यवस्था की गई है। अधिकतर परिगणित इलाकों में पानी की समस्या महत्त्वपूर्ण है। इन इलाकों में कुओं और सिचाई की स्थानीय सुविधाओं की व्यवस्था करने की विशेष जरूरत है। जंगल वाले इलाकों में जो परिगणित जातियाँ रहती हैं, उन्हें जंगलों का प्रबन्ध करने और उनसे लाभ उठाने का अधिकार दिया जाना चाहिये। परिगणित जनजातियों के युवकों का पालन-पोषण इस तरह किया जाय कि वे उन जंगलों को अच्छा समझें जहां वे रहते हैं। उन्हें जंगल विज्ञान के काम में ट्रेनिंग प्राप्त करने के अवसर भी दिये जाने चाहिये।

८. पहाड़ी इलाकों में रहने वाली परिगणित-जनजातियां काफी लम्बे समय से जमीनें बदल बदल कर खेती करती रहीं हैं। इनमें से कुछ जातियां खेती के निश्चित तरीकों पर चल रही हैं और वे पहाड़ों की घाटियों में खेती करने में निपुण हो गई हैं। ये लोग खेती के काम में साधारण औजारों का ही इस्तेमाल करते है। इस बारे में कोशिशें की गई हैं कि दूसरी जातियों को भी धीरे धीरे खेती के अच्छे और निश्चित तरीके सिखाये जायं। इसके लिये पहले स्थानीय परिस्थितियों की ठीक-ठीक जाच करने की जरूरत होगी। आसाम, बिहार, उड़ीसा, मध्यप्रदेश और त्रिपुरा में परिगणित जनजातियों वाले कुछ इलाकों को सामुदायिक विकास योजनायें शुरू करने के लिये चुना गया है। इनसे खेती के विकास में तेजी आ जायेगी।

९. परिगणित जनजातियों की निरक्षरता के बावजूद परिगणित क्षेत्रों में सामाजिक कार्यकर्त्ताओं द्वारा संगठित की गई सहकारी समितियाँ कई राज्यों में संतोषजनक ढंग से काम कर रही हैं। बम्बई के बीज-कोष और बिहार के अनाज-गोदाम जैसी संस्थाएँ लोगों को बीज देकर, उनकी फसलों को इकट्ठा करके और कृषि-सुधार के बारे में सलाह देकर काफी सहायता दे सकती हैं। दूसरे इलाकों में भी सहकारी संगठन शुरू करने की जरूरत है।

अपनी जीवन की मूल आवश्यकताओं को पूरा करने के लिये इन जातियों ने कुछ सराहनीय काम शुरू किये हैं, लेकिन उन्हें इन चीजों के मूल्य का पता ही नहीं है। यदि इन चीजों की बिक्री सहकारी संस्थाओं द्वारा की जाय तो इन जातियों को आय का एक और साधन मिल जायगा।

१०. परिगणित जनजातियोंवाले इलाकों मे मलेरिया, फुंसी-फोडे, खुजली और दूसरे चर्म रोग, कोढ़, चेचक, तपेदिक, आंख के रोग और फीलपांव जैसे रोग आम तौर पर लोगों को होते हैं। अधिक बीमारी होने के कारण आसपास के इलाके में सफाई न रखना, कम पौष्टिक पदार्थ खाना और गंदा पानी पीना हैं। संचार साधनो की भारी कमी और परिगणित जनजातियों के लोगों के काफी दूर रहने के कारण, अभी तक स्वास्थ्य-सम्बन्धी और डाक्टरी सहायता पहुँचाना कठिन रहा है। परिगणित जनजातियों के स्वास्थ्य-सुधार के किसी भी कार्यक्रम में चलते-फिरते अस्पतालों की व्यवस्था होनी चाहिये और साथ ही कुछ चुने हुए इलाकों में स्वास्थ्य के बारे में व्यापक पडताल की जानी चाहिये। इस पड़ताल में भोजन, धार्मिक विश्वास, स्वास्थ्य संबंधी नियमों, भिन्न-भिन्न रोगों के कारणों और उनके प्रभावों, जड़ी-बूटियों और घाव आदि ठीक करने के दूसरे उपायों को शामिल करना होगा।

११. देश में शिक्षा का जो तरीका चल रहा है, वह इन इलाकों के लिये शायद ठीक नहीं होगा। कम से कम कुछ समय तक परिगणित जातियों और कबीलों के मामलों से संबंध रखने वाले कमिश्नर और भिन्न भिन्न राज्यों मे परिगणित जातियों और कबीलों के मामलों से सम्बन्ध रखने वाले विभागों को परिगणित जनजातियों की शिक्षा पर विशेष ध्यान देना चाहिये। अगले पांच वर्षों में उन्हें बुनियादी शिक्षा पर अधिक ध्यान देना होगा। साथ ही इस बात पर भी ध्यान देना होगा कि बुनियादी शिक्षा का माध्यम बच्चे की मातृभाषा होगी और प्राइमरी स्कूल की ऊंची क्लासों में प्रादेशिक भाषा में शिक्षा दी जायेगी। राज्य-सरकारों ने अपनी शिक्षा संबंधी कार्रवाइयों में व्यावसायिक और टैकनिकल शिक्षा के स्कूलों, होस्टलों और ऐसे आश्रमों की व्यवस्था की है जहां विद्यार्थियों के रहने का भी प्रबंध हो।

अपराधी (जरायम पेशा) जातियां

१२. जरायमपेशा-जातियों में कोई १६८ घूमने-फिरने वाली जातियाँ

शामिल हैं जो अपने आपको सुव्यवस्थित अर्थ-व्यवस्था के मालकियत संबंधी रीति रिवाजों के अनुरूप नहीं बना सकीं। इन जातियों के अधिकतर लोगों का संबंध समाज-विरोधी कार्रवाइयों से रहा है; फिर भी सभी को अपराधी नहीं कहा जा सकता। इनमें से कुछ लोग तो छोटे छोटे व्यापारियों और दुकानदारों के रूप में बस जाना चाहते हैं। इन लोगों में वह योग्यता है जो अनेक कामों के विकास में लाभदायक हो सकती है।

१३. संविधान के अनुसार किसी भी व्यक्ति को तब तक अपराधी नहीं समझा जा सकता जब तक कि वह अदालत में अपराधी न-साबित कर दिया गया हो। इसलिये २० अगस्त सन् १९५२ से जरायम पेशा जातियों से सबंध रखने वाले कानून रद्द कर दिये गये। उन जातियों द्वारा प्रस्तुत की गई समस्याओं को हल करने के लिये अब एक नयी नीति निर्धारित की गई है। भविष्य में इन जातियों को पिछड़ी हुई जातियों की श्रेणी में शामिल किया जायगा और उनकी आर्थिक स्थिति ठीक करने के लिये विशेष प्रयत्न किये जायेंगे। बच्चों को अच्छी तरह सोच-विचार कर तैयार किये गये शिक्षा-कार्यक्रम के अनुसार शिक्षा दी जायेगी जिससे कि उन्हें समाज-विरोधी कार्रवाइयां करने से रोका जा सके। किसी भी खास व्यक्ति को उसके अपराध के लिये आम कानून के अनुसार सज़ा दी जायेगी।

—:❋:—

अध्याय ३८

विस्थापितों का पुनर्वास

अगस्त सन् १९४७ में देश के बटवारे के कुछ महीनों के अन्दर ही कोई ५० लाख हिन्दुओं और सिखों को पश्चिमी पाकिस्तान छोड़ कर भारत आना पड़ा। इनसे कुछ भिन्न परिस्थितियों के कारण पन्द्रह लाख हिन्दुओं को पूर्वी पाकिस्तान से भारत आना पड़ा। इसके बाद सन् १९५० के आरम्भ में फिर कोई दस लाख हिन्दू पूर्वी पाकिस्तान से भारत आये। पूर्वी पाकिस्तान से लोग अब भी आ रहे हैं—कभी संख्या कम हो जाती है और कभी भीषण रूप धारण कर लेती है। इस समय पश्चिमी बंगाल में २१ लाख से अधिक विस्थापित (बेघर) लोग हैं। ये लोग कलकत्ता और उसके पास के दो जिलों में इकट्ठे हैं। इसके कारण राज्य की अर्थ-व्यवस्था पर भारी दबाव पड रहा है।

देहात में पुनर्वास

२. कुछ राज्यों जैसे पंजाब, पेप्सू, राजस्थान और दिल्ली से मुसलमान बड़े बड़े खेत छोड़ कर पाकिस्तान चले गये थे। भारत सरकार ने इस भूमि को काम में ले लिया है और पश्चिमी पाकिस्तान से भारत आने वाले लोगों को देहात में बसाने के दूसरे उपाय भी किये हैं। तीन तरह की नीतियां बरती गई हैं : (१) पंजाब और पेप्सू में अर्ध-स्थायी (क्वासी-परमेनेंट) तौर पर पाकिस्तान जाने वाले मुसलमानों की भूमि खेती के लिये देना, (२) भारत के दूसरे भागों विशेषकर दिल्ली और राजस्थान में पाकिस्तान जाने वाले मुसलमानों की भूमि अस्थायी तौर पर बेघर किसानों को देना और (३) केन्द्रीय ट्रैक्टर संस्था और राज्य सरकारों द्वारा खेती योग्य बनाई गई बेकार भूमि खेती के लिये देना।

३. पहली कार्रवाई पुनर्वास सम्बन्धी सबसे बड़ी कार्रवाई थी और उसका सम्बन्ध पश्चिमी पंजाब से बेघर होकर आये हुए भू-स्वामियों और पश्चिमी पाकिस्तान में रहने वाले दूसरे पंजाबियों से था। ये लोग ६७ लाख एकड़ ज़मीन पाकिस्तान में छोड़ आये थे जबकि पंजाब और पेप्सू से

पाकिस्तान जाने वाले मुसलमानों ने सिर्फ ४७ लाख एकड़ही ज़मीन छोड़ी थी। इस २० लाख एकड़ या १५ लाख "प्रामाणिक एकड़" के अन्तर को एक नये तरीके से पूरा किया गया। इसके अनुसार दस एकड़ जमीन पर २५ प्रतिशत की कटौती की गई। इससे बड़ी ज़मीनों पर उत्तरोत्तर अधिक कटौती की गई और सबसे अधिक यानी ९५ प्रतिशत कटौती एक हज़ार एकड़ से अधिक जमीन पर की गई। ये जमीनें अर्ध-स्थायी तौर पर दी गईं। कोई ५ लाख परिवारों को कुल मिला कर २४ लाख "प्रामाणिक एकड़" जमीन पर बसाया गया।

४. उपर्युक्त कार्यक्रम के कारण ७६ हज़ार किसान परिवारों को अलग करना पड़ा जो भारत छोड़ कर पाकिस्तान जाने वाले मुसलमानों के पट्टेदारों के रूप में काम कर रहे थे या जो देश के बटवारे के तुरन्त बाद अस्थायी तौर पर इन जमीनों पर खेती करने लगे थे। इनमें से ३३ हजार से अधिक लोगों को गैर-मुस्तकिल काश्तकारों के रूप में जमीनें देकर बसा दिया गया है। पंजाब और पेप्सू की सरकारों ने बाकी लोगों को बसाने का वायदा किया है।

५. दूसरी और तीसरी नीति का सम्बन्ध मुख्यतः पश्चिमी पाकिस्तान के गैर-पंजाबी बेघर किसानों को बसाने से था। इन परिवारों को निम्न दो बातें ध्यान में रखते हुए जमीनें दी गईं—(१) परिवार के सदस्यों की संख्या और (२) जमीन की किस्म। कुल मिला कर साढ़े ५७ हजार परिवार बसा दिये गये हैं। इनमें से सबसे अधिक परिवार राजस्थान में बसाये गये हैं। सन् १९५१ के प्रारम्भ में १२,६४५ गैर-पंजाबी परिवारों को जमीनें देने का सुझाव दिया गया था। विश्वास किया जाता था कि इन किसानों को उस समय तक कोई जमीन आदि नहीं दी गई थी। इनमें से सिर्फ चार हजार परिवारों ने जमीनें प्राप्त करना स्वीकार किया। ऐसा मालूम पड़ता है कि अधिकतर परिवारों ने कोई न कोई काम शुरू कर दिया था और वे ऐसी जमीन पर खेती करना पसन्द नहीं करते थे जहां सिंचाई की व्यवस्था न हो।

६. यह बात मानी जा सकती है कि पश्चिमी पाकिस्तान से आने वाले अधिकतर बेघर किसान बसाये जा चुके हैं। सन् १९५२-५३ के अन्त तक किसानों को कर्जों के रूप में ८ करोड़ रुपये दिये गये। ये कर्जे बैल, चारा, बीज और खेती के औजार खरीदने, मकान और कुएं बनवाने और उनकी

मरम्मत करवाने तथा जमीन मिलने के बाद पहले छः महीनों तक परिवार का खर्च चलाने के लिये दिये गये।

७. जहां तक पूर्वी पाकिस्तान से भारत आने वाले बेघर लोगों का सम्बन्ध है, ४,७०,००० ग्रामीण परिवारो में से कोई ३,३०,००० परिवार देश के पूर्वी राज्यों में जमीनें देकर और खेती से सम्बन्धित दूसरे रोजगार देकर बसा दिये गये हैं। इनको ८ करोड़ रुपये से अधिक की आर्थिक सहायता दी गई है। सन् १९५२–५३ में ५० हज़ार और सन् १९५३–५४ में पचीस हजार परिवारों को बसाने का विचार है। इन पर कोई १० करोड रुपया खर्च किया जायगा। यदि हाल में ही पूर्वी पाकिस्तान से और लोग भारत न आये होते तो सन् १९५३–५४ तक पूर्वी पाकिस्तान से आये हुए सभी लोगों को देहात में काम काज पर लगा दिया गया होता।

शहरी लोगों का पुनर्वास

८. शहरी लोगों के पुनर्वास की समस्या एक जटिल समस्या रही है। इसका मुख्य कारण यह है कि भारत आने वाले और भारत से पाकिस्तान जाने वाले लोगों के काम धंधों में बड़ा अन्तर था। यह अन्तर पश्चिमी पाकिस्तान से आने वाले लोगों के बारे में बिल्कुल स्पष्ट दीखता था। पंजाब, पेप्सू, दिल्ली और दूसरी जगहों से पाकिस्तान जाने वाले मुसलमान आम तौर पर मजदूर या कारीगर थे जिनके रहन-सहन का स्तर बहुत नीचा था। दूसरी ओर पाकिस्तान से भारत आने वाला गैर-मुसलमान या तो उद्योगपति था या व्यापारी या दुकानदार था या क्लर्क का काम करता था। उसके रहन-सहन का स्तर ऊँचा था।

९. पश्चिमी पाकिस्तान के कोई २५ लाख बेघर लोग शहरों में काम धंधा शुरू करना चाहते थे। सरकार ने इसलिये बड़े बड़े निर्माण-कार्य शुरू किये और मार्च १९५२ तक १,५०,००० बड़े और छोटे मकान बन कर तैयार हो गये, जिन पर ३८ करोड़ रुपया खर्च हुआ। अगले दो वर्षों में ५० हजार मकान बनाने का विचार है जिन पर २१ करोड़ रुपया खर्च होगा। इस कार्यक्रम के पूरे हो जाने पर कोई दस लाख बेघर लोगों के लिये मकानों की व्यवस्था हो जायगी। दूसरी ओर कोई १५ लाख लोगों को भारत छोड़ कर पाकिस्तान जाने वाले लोगों के मकानों में स्थान मिल गया है। इस प्रकार पाकिस्तान से आने वाले बेघर लोगों की मकान की समस्या सन् १९५३ ५४ के अन्त तक प्राय हल हो जाएगी।

१०. बेघर लोगों और सहकारी समितियों को कर्ज और जमीनें देकर मकान बनवाने के काम को बढ़ावा दिया गया है। लेकिन, पश्चिमी इलाके में अधिकतर काम सरकार ने अपने विभागों द्वारा या फरीदाबाद, राजपुरा और हस्तिनापुर विकास बोर्डों और सिंध रीसैटिलमेंट कारपोरेशन जैसी विशेष संस्थाओं द्वारा पूरा किया है। अधिकतर नयी बस्तियाँ वर्तमान शहरों के विस्तार के रूप में बनाई गई हैं। इन बस्तियों में शहरी सुविधाओं की व्यवस्था है।

११. इनके अलावा दस नयी बस्तियों की योजनायें तैयार की जा चुकी हैं और उनके निर्माण में काफी प्रगति हुई है। इनके नाम इस प्रकार हैं:—पंजाब में फरीदाबाद, नीलोखेड़ी और चंडीगढ़, पेप्सू में राजपुरा और त्रिपुरी, बम्बई में सरदारनगर और उल्लासनगर, कच्छ में गांधीधाम, और उत्तर प्रदेश में हस्तिनापुर और गोविन्दपुरी। ख्याल है कि ये बस्तियाँ सन् १९५३-५४ तक बनकर तैयार हो जायेंगी। इन बस्तियों में चार लाख से अधिक लोग रह सकेंगे और लाभदायक काम कर सकेंगे। नीलोखेड़ी और फरीदाबाद में जो प्रयोग किये गये हैं, उनका अपना महत्त्व है। अगर ये प्रयोग सफल रहे तो ये राष्ट्रीय पैमाने पर विकास की योजनाएँ तैयार करने की दिशा में प्रगतिशील कदम होंगे।

१२. इस प्रकार सन् १९५३-५४ के बाद पश्चिमी पाकिस्तान से आने वाले बेघर लोगों के लिये और मकान बनवाने की जरूरत नहीं होगी। लेकिन शुरू की गई विकास योजनाओं को पूरा करने के लिये और नई बस्तियाँ बसाने के लिये प्राप्त की गई भूमि और बैरकों के लिये मुआवज़ा देने के वास्ते ४ करोड़ रुपये की जरूरत होगी।

१३. देश के पूर्वी राज्यों में गैर-सरकारी लोगों द्वारा पहल करने पर जोर दिया गया है। इसलिये बेघर लोगों को ठीक-ठाक की गई जमीनें और शहरों में काम आदि शुरू करने के लिये बड़े पैमाने पर कर्ज़ दिये गये हैं और सरकार ने मकान-निर्माण का सीमित काम ही किया है। पश्चिमी बंगाल, आसाम, बिहार, उड़ीसा की सरकारों ने कोई ९ हजार बड़े और छोटे मकान बनवाये हैं। फुलिया और हबरा बगीची में दो बस्तियाँ बसाई गई हैं। चूँकि पूर्वी राज्यों में स्थिति अब भी बदल रही है, इसलिये यह अनुमान लगाना कठिन होगा कि अन्त में कितने लोगों के लिये मकान बनवाने होंगे। अगले दो वर्षों में १५ हज़ार मकान बनवाने का विचार है। इसमें से पच्चीस प्रतिशत सरकार

बनवायेगी और बाकी बेघर लोग सराकारी सहयता से बनवायेंगे। मार्च सन् १९५२ के अन्त तक सरकार ने कुल मिलाकर ८'८ करोड़ रुपया खर्च किया।

१४. बेघर लोगों को निम्नलिखित तरीकों से काम पर लगाया गया :— (१) सरकारी नौकरियाँ दी गईं; (२) व्यापार और उद्योग-धंधे शुरू करने के लिये दुकानें, कारखाने आदि दिये गये; (३) व्यापार शुरू करने के लिये कर्ज़ें दिये गये और (४) टैक्नीकल और व्यावसायिक शिक्षा देकर काम पर लगाया गया। स्कूल और कालेज की शिक्षा के लिये भी आर्थिक सहायता दी गई।

१५. सन् १९५२ के मध्य तक नौकरी दिलाने वाले दफ्तरों ने पश्चिमी पाकिस्तान से आने वाले १,६३,००० बेघर लोगों और पूर्वी पाकिस्तान से आने वाले ३१,००० लोगों को रोज़गार दिलाये। इसके अलावा गृह-विभाग ने इस काम के लिये एक विशेष ट्रांसफर ब्यूरो बनाया। रेलवे विभाग ने १५ हज़ार नौकरियाँ इन लोगों के लिये सुरक्षित कर दीं। अनुमान है कि इस प्रकार ८० हज़ार लोगों को काम मिल गया।

१६. शहरों से आने वाले अधिकतर बेघर लोग भारत आने से पहले वितरण सम्बन्धी काम में लगे हुये थे। यह अनुभव किया गया कि इनमे से नवयुवकों को रचनात्मक कामों की शिक्षा दी जाय। मार्च सन् १९५१ के अन्त तक पश्चिमी पाकिस्तान के कोई ५२ हज़ार लोगों ने व्यवसायों और काम-धंधों की शिक्षा पूरी की। आशा है चालू माली साल में १२ हज़ार और लोगों को यह शिक्षा दी जायेगी। इसी तरह मार्च सन् १९५२ तक पूर्वी पाकिस्तान से आने वाले ८ हज़ार बेघर लोगों को शिक्षा दी गई और सन् १९५२-५३ में १२ हज़ार और लोगो को काम सिखाया जायेगा।

१७. देश में नये स्कूल और कालिज खोलकर और वर्तमान शिक्षा संस्थाओं में अधिक विद्यार्थियों के लिये शिक्षा का प्रबन्ध करके शिक्षा की सुविधायें बढ़ाने के सम्बन्ध मे कार्रवाई की गई है। जुलाई सन् १९५१ के बाद से मुफ्त शिक्षा की सुविधायें हाईस्कूल के दर्जों तक बढ़ा दी गई हैं। योग्य विद्यार्थियो के लिये पुस्तकें और लेखन सामग्री खरीदने के वास्ते वजीफे और नकद आथिक सहायता भी दी जा रही है।

१८. पश्चिमी पाकिस्तान से भारत आये हुये लोगों की व्यावसायिक और टैक्नीकल शिक्षा पर मार्च सन् १९५२ के अन्त तक ७'३९ करोड रुपया खर्च किया जा चुका है। सन् १९५२-५३ में २'५५ करोड़ और १९५३-५४

में १'६ करोड़ रुपये खर्च करने का विचार है। पूर्वी पाकिस्तान से आने-वाले लोगों के लिये ये रकमें इस प्रकार हैं:—मार्च सन् १६५२ के अन्त तक ४'०५ करोड़ रुपये, सन् १६५२-५३ में ०·६८ करोड़ रुपये और १६५३-५४ में १'५६ करोड़ रुपये।

१६. सरकार ने बेघर कारीगरों, व्यापारिक और व्यावसायिक लोगों को भी प्रति व्यक्ति ५ हजार रुपये तक के कर्जे देकर सहायता प्रदान की है। निम्न सूची में बताया गया है कि लोगों को कितना कर्ज दिया जा चुका है और अगले दो वर्षों में कितना कर्ज दिया जायगा।

करोड़ रुपये

	मार्च सन् १६५२ तक	१६५२-५३	१६५३-५४
पश्चिमी पाकिस्तान से आये हुए बेघर लोग	१०'३८	०'५०	०'५०
पूर्वी पाकिस्तान से आये हुए बेघर लोग	४'२४	२'८६	२'८६

मार्च सन् १६५२ तक पश्चिमी पाकिस्तान से आने वाले १,५८,००० बेघर लोगों और पूर्वी पाकिस्तान से आने वाले ४४ हजार बेघर लोगों को कर्जे दिये गये।

२०. बेघर लोगों को आर्थिक सहायता देने वाली संस्था रीहैबीलीटेशन फाइनेंस एडमिनिसट्रेशन ने बड़े-बड़े व्यापार और उद्योग शुरू करने के लिये कर्जे दिये। मार्च सन् १६५२ तक इस संस्था ने ६,६२१ लोगों को कुल मिलाकर ८'२५ करोड़ रुपये के कर्जे दिये जिसमें से ४'१७ करोड़ रुपये वास्तव में दिये जा चुके हैं। सन् १६५२-५३ में २'०५ करोड़ और १६५३-५४ में ३ करोड़ रुपये के कर्जे देने का विचार है।

२१. इस आर्थिक सहायता से भारत छोड़ पाकिस्तान जाने वाले लोगों की कोई २७ हजार दुकानें और दो हज़ार कारखाने फिर से चालू हो गये हैं। इनके अलावा भिन्न-भिन्न शहरों में २८ हज़ार नयी बस्तियों में उद्योग धंधे शुरू किये जा रहे हैं जिनसे लोगों को रोज़गार या काम मिल जाय।

२२. अनाश्रित लोगों के लिये सरकार द्वारा बनवाये गये आश्रमों और गृहों में ७४ हजार अनाश्रित लोग रहते हैं, जिनमें बूढ़े और अपाहिज लोग और अनाश्रित महिलायें और बच्चे शामिल हैं। कई गैर-सरकारी संस्थायें, जैसे कस्तूरबा-गाँधी-राष्ट्रीय-स्मारक निधि, इस क्षेत्र में सरकार की सहायता कर रही हैं।

२३. कोई १७ हजार ऐसे बेघर परिवारों को, जो पश्चिमी पाकिस्तान में अपनी अचल सम्पत्ति से होने वाली आय पर निर्भर थे, अधिक से अधिक सौ रुपये का निर्वाह-भत्ता प्रति मास दिया जाता है। अब तक इस तरह के भत्तों पर ५० लाख रुपया खर्च किया जा चुका है। ख्याल है यह योजना तब तक जारी रहेगी जब तक कि पश्चिमी पाकिस्तान में छोड़ी गई अचल सम्पत्ति का मुआवजा नहीं दे दिया जाता।

२४. बेघर हरिजनों के पुनर्वास के लिये एक विशेष बोर्ड की स्थापना की गई है। अब तक ८,८०० हरिजनों को देहात में काम-काज और स्थान दिया गया है। इसके अलावा १६,२५६ परिवारों को जमीनें देकर और देहात में काम-काज शुरू करने के लिये कर्जे देकर बसाया जा चुका है।

खर्च

२५. मार्च सन् १९५२ तक सरकार ने बेघर लोगों पर कुल मिलाकर १०'५४ करोड़ रुपये खर्च किये। सन् १९५२-५३ में २७'८१ करोड़ और सन् १९५३-५४ में २६'१४ करोड़ रुपये खर्च करने का विचार है। अनुमान है कि पश्चिमी पाकिस्तान से आने वाले लोगों के पुनर्वास का काम सन् १९५३-५४ के अन्त तक लगभग खत्म हो जायेगा। कुछ वायदों को पूरा करने के अलावा बहुत कम महत्त्वपूर्ण मामले ऐसे रह जायेंगे जिन पर ध्यान देने की जरूरत होगी। इसके लिये ६'२० करोड़ रुपये की जरूरत होगी। पूर्वी राज्यों में स्थिति अभी भी बदल रही है, इसलिये खर्च का अनुमान लगाना कठिन होगा। यदि हालत सामान्य रही और हर वर्ष इस समय जितना ही खर्च होता रहा तो अनुमान है कि ग्यारह करोड़ रुपया पर्याप्त होगा।

पुनर्वास और विकास

२६. ७५ लाख बेघर लोगों के पुनर्वास में बहुत-सी समस्याओं का सामना

करना पड़ रहा है। लेकिन, मोटे तौर से देखने पर पता चलता है कि इसे देश की समूची अर्थ व्यवस्था के विकास का एक आवश्यक अंग मानना होगा। पुनर्वास कार्यक्रम पंचवर्षीय योजना का अभिन्न अंग है। लेकिन, इस पर बराबर ध्यान रखना होगा जिससे कि विशेषकर पूर्वी पाकिस्तान से आने वाले बेघर लोगों के कारण बदलती हुई स्थिति का सामना किया जा सके।

—:०:—

विशेष कर, ऐसे उद्योग शुरू करने के सुझाव दिये गये हैं जो बड़े बड़े उद्योगों की आवश्यकतायें पूरी कर सकते हैं।

रोजगार की स्थिति पर योजना का प्रभाव

५. यह सवाल अक्सर किया जाता है कि योजना से कितने लोगों को नौकरियाँ मिल जायेंगी। इस सवाल का जवाब देने के लिये बहुत से आंकड़े इकट्ठा करने होंगे जो इस समय हैं ही नहीं। लेकिन अर्थ-व्यवस्था के कुछ खास क्षेत्रों में यह जानने की कोशिश की गई है कि वहां रोजगार की स्थिति पर योजना का क्या असर पड़ेगा। इस कोशिश के फलस्वरूप जो आंकड़े तैयार किये गये हैं वे कच्चे अनुमान ही हैं और सचाई से काफी दूर भी हो सकते हैं। ये आंकड़े इस प्रकार हैं :—

	अतिरिक्त रोजगार प्रतिवर्ष (व्यक्ति)
(१) उद्योग जिनमें छोटे छोटे उद्योग भी शामिल हैं	४ लाख
(२) सिंचाई और बिजली की बड़ी बड़ी योजनाएं	२·५ ,,
(३) खेती—अधिक जमीन में सिंचाई की व्यवस्था करने से	१४ ,,
तालाबों या जलाशयों की मरम्मत करने से	१·५ ,,
भूमि को फिर से खेती योग्य बनाने से	७·५ ,,
(४) भवन और निर्माण	१ ,,
(५) सड़कें	२ ,,
(६) घरेलू उद्योग	२० लाख + ३६ लाख जिन्हें पूरे समय के लिये काम मिल जायगा
(७) दूसरे काम (जैसे परिवहन महाजनी और दूसरी सेवाएँ) और स्थानीय काम	इन कामों में अधिक लोग लगाये जा सकेंगे, लेकिन इसका अनुमान लगाना संभव नहीं है।

शिक्षित लोगों के लिये रोजगार और नौकरी की समस्या

६. दो विश्व-युद्धों के बीच के समय में शिक्षित लोगों की बेकारी बहुत बढ़ गई। युद्ध के कारण यह बेकारी कुछ समय के लिये कम हो गई थी क्योंकि लड़ाई के समय बहुत से लोग सेना और ऐसे उद्योगों में काम पर लग गये जो सेना की आवश्यकता पूरी करते थे। लेकिन लड़ाई खत्म हो जाने के बाद यह समस्या फिर उठ खड़ी हुई और देश के बटवारे से तो यह समस्या और भी अधिक जटिल बन गई। नौकरी दिलाने के दफ्तरों से रोजगार की स्थिति के बारे में पता चलता है कि पिछले पांच वर्षों में बेकारी—विशेषकर क्लर्कों की बेकारी—धीरे-धीरे बढ रही है। पुनर्वास और रोजगार सम्बन्धी डायरेक्टर जनरल के दफ्तर की ओर से पिछले साल इस सम्बन्ध में जो जांच की गई थी, उससे इसकी पुष्टि हो जाती है। इस जांच में बताया गया है कि टैक्नीकल जानकारी रखने वाले सौ बेकार लोगों में से सिर्फ १२ को ही नौकरी मिल सकी जब कि क्लर्कों के काम के लिये सौ में से सिर्फ चार को ही नौकरियां मिलीं। इससे पता चलता है कि टैक्नीकल जानकारी वाले लोगों में बेकारी की समस्या गम्भीर है। साथ ही क्लर्कों की बेकारी की समस्या इससे तीन गुनी गम्भीर है।

७. योजना में खेती की उपज बढ़ाने और साथ ही भविष्य में औद्योगिक विकास के लिये एक आधार तैयार करने पर जोर दिया गया है। इससे यह होगा कि हाल में शिक्षित लोगों के लिये रोजगार और नौकरियां प्राप्त करने के अवसर सीमित रहेंगे। शिक्षित लोगों के लिये नौकरियों के अधिक अवसर तभी प्राप्त होंगे जबकि औद्योगिक क्षेत्र का जल्दी से विकास होगा। लेकिन थोड़े समय के वे उपाय भी किये जाने चाहिये जिन पर अमल किया जा सकता है। निम्नलिखित उपायों के सुझाव दिये गये हैं:—

(१) टैक्नीकल कर्मचारियों जैसे इन्जीनियरों और डाक्टरों को इतना वेतन दिया जाना चाहिये जो उनकी शिक्षा के खर्च के अनुरूप हो। गांवों में गैर-सरकारी चिकित्सालयों को आर्थिक सहायता देना और इसी तरह के दूसरे बढ़ावे देने की जरूरत है।

(२) व्यापार आदि कई तरह के कामों में लोगों की उपयोगिता बढ़ाई जा सकती है। इसके लिये कालेजों में अन्य पढ़ाई के साथ साथ व्यावहारिक शिक्षा देने की व्यवस्था होनी चाहिये।

(३) शिक्षित लोगों को यह समझाया जाना चाहिये कि शारीरिक

परिश्रम के प्रति वे अपना द्वेष त्याग दें और उन्हें शारीरिक परिश्रम वाले कामों की पर्याप्त शिक्षा दी जाय।

(४) अनुभवहीन नवयुवकों के लिये "काम सीखने" की व्यवस्था की जानी चाहिये। दूसरी ओर अधिक उम्र वाले लोगों को शायद सरकारी और गैरसरकारी नौकरियां प्राप्त करने में कठिनाई होगी। सरकारी नौकरियों में ऐसे लोगों के लिये कुछ स्थान निश्चित होने चाहिये। साथ ही गैरसरकारी नौकरियों के लिये मालिकों को यह समझाने की जरूरत है कि वे ऐसे लोगों को नौकरियां दें, विशेषकर उन लोगों को जिनके साथ परिवार भी हैं।

(५) नवयुवकों को व्यावसायिक सलाह देने और पथप्रदर्शन के ऐसे केन्द्र खोले जायं जो नौकरियों की संभावनाओं को देखते हुये, उन्हें ठीक-ठीक व्यवसाय चुनने के बारे में सलाह दे सकें।

८. इसके अलावा, नौकरी की तलाश करने वाले लोगों की संख्या कम करनी चाहिये। इसके लिये निम्नलिखित सिफारिशें की गई हैं:—

(१) शिक्षित लोगों को स्वतंत्र रूप से काम-काज शुरू करने के लिये बढ़ावा देना चाहिये। ऐसे छोटे छोटे उद्योगों की एक सूची बनाई जानी चाहिये जो ५०० रुपये से ५,००० रुपये तक की पूंजी से शुरू किये जा सकते हों। सरकार इन लोगों को पूंजी देकर और व्यावसायिक शिक्षा की सुविधायें देकर सहायता प्रदान करे। उन लोगों को कच्चा माल प्राप्त करने और तैयार माल बेचने की सुविधायें भी दी जानी चाहियें।

(२) अनुभवहीन छोटे-छोटे उद्योगों के मालिकों को कारखाने के लिये जमीनें या आवश्यक सुविधाओं सहित बनी बनाई इमारतें दी जायं। इससे कुछ चुने हुए इलाकों में छोटे और मध्यवर्ती कारखाने खोलने के काम में बढ़ावा मिलेगा।

—:०:—

परिशिष्ट

योजना के अन्तर्गत विकास का व्यय

विवरण १—केन्द्र तथा राज्यों का विकास-व्यय

लाख रुपये

मद	जोड़	केन्द्रीय सरकार	'क' भाग के राज्य	'ख' भाग के राज्य जम्मू तथा कश्मीर को छोड़ कर	जम्मू तथा कश्मीर	'ग' भाग के राज्य
१. खेती तथा सामूहिक विकास—						
खेती	१८,४२२'२	५,९२२'२	९,१०८'२	२,७७१'०	२२'१	५९८'७
पशु-पालन और डेरी	२,२२८'५	४१२'०	१,५२४'६	१९७'९	१५'०	७९'०
जंगलात	१,१६९'५	२००'०	५९९'८	२२४'७	१०'०	१३५'०
सहकारिता	७११'२	५०'०	४६१'७	१२५'२	....	४४'३
मछली उद्योग	४६४'१	५०'५	३३२'५	७२'६	....	८'३

विवरण १—केन्द्र तथा राज्यों का विकास-व्यय (क्रमशः)

लाख रुपये

मद	जोड़	केन्द्रीय सरकार	'क' भाग के राज्य	'ख' भाग के राज्य जम्मू तथा कश्मीर को छोड़ कर	जम्मू तथा कश्मीर	'ग' भाग के राज्य
ग्राम विकास	१,०४७'१	....	६७४'४	३७२ २	....	०'५
सामूहिक विकास योजनाएँ	६,०००'०	६,०००'०	....	....	....	..
स्थानीय निर्माण कार्य	१,५००'०	१,५००'०	....	....	....	....
कमी वाले क्षेत्रों के प्रोग्राम	१,५००'०	१,५००'०	....	...	....	..
जोड़	३६,०४२'६	१८,६३४ ७	१२,७३१'२	३,७६३'१	४७'१	८६५'७
२. सिंचाई और बिजली—						
बहुमुखी योजनाएँ	२६,५६०'०	२६,५६०'०	....	....	....	....
सिंचाई योजनाएँ	१६,७६६'५	...	११,२३४'३	५,०१३'२	३६६'७	१८२'३
बिजली योजनाएँ	१२,७५४'०	...	६,३७४.७	३,१३५'५	७४'६	१६८'६
जोड़	५६,१४०'५	२६,५६०'०	२०,६०६'०	८,१४८'७	४४१'६	३५१'२

विवरण १—केन्द्र तथा राज्यों का विकास-व्यय (क्रमशः)

लाख रुपये

मद	जोड़	केन्द्रीय सरकार	'क' भाग के राज्य	'ख' भाग के राज्य	जम्मू तथा कश्मीर	'ग' भाग के राज्य
३. परिवहन तथा संचार—						
रेलें†	२५,०००'०	२५,०००'०	...	...	...	...
सड़कें	१०,८८७'८	३,१२४'०	५,०५९'२	१,५८२'८	४९४'४	६२७'४
सड़क परिवहन	८९६'९	...	५६३'४	९६'०	...	२३८.५
जहाज़रानी	१,८०५'८	१,८०५'८	...	...	...	...
नागरिक उड्डयन	२,२८७'०	२,२८७'०	...	...	...	...
बन्दरगाह और गोदियां	३,३०८'८	३,२०६'४	२६'०	६३'०	...	१३'४
आन्तरिक जल परिवहन	१०'०	१०'०	...	...	...	...
डाक और तार	५,०००'०	५,०००'०	...	...	...	...
ब्राडकास्टिंग	३५२'०	३५२'०	...	...	...	...
समुद्र-पार संचार	१००'०	१००'०	...	...	...	...
अन्तरिक्ष विज्ञान विभाग	९२'०	९२'०	...	...	...	...
जोड़	४९,७१०'३	४०,९४७'२	५,६४७'६	१,७४१'८	४९४'४	८७९'३

† २५० करोड़ रुपये का व्यय उन १५० करोड़ रुपयों के अतिरिक्त है, जो कि योजना-काल में पूंजी के घाटे को पूरा करने के लिये आंके गये हैं।

४. उद्योग—						
बड़े उद्योग	१४,०३३·२	१२,६०४·३*	१,०२५·८	३५२·५	५०·६	...
घरेलू तथा छोटे उद्योग	२,७०४·१	१,५००·०	७६४·९	३५६·९	३१·२	५१·१
वैज्ञा० तथा औद्यो० गवेषणा	४६१·०	४६१·०	...	...	...	...
खनिज विकास	१०६·१	१०६·१	...	...	...	...
जोड़	१७,३०४·४	१४,६७१·४	१,७९०·७	७०९·४	८१·८	५१·१
५. सामाजिक सेवाएँ—						
शिक्षा	१५,५४५·२	३,९०१·६	६,८६०·१	१,२२७·४	४६·०	५१०·१
स्वास्थ्य	९,९५४·६	१,७८७·४	६,३५०·३	१,२३८·१	१२८·२	४५०·६
गृह-निर्माण	४,८८१·६	३,८५०·०	८७७·१	८७·५	१२·०	५५·०
श्रम तथा श्रम-कल्याण	७१२·६	३२७·३	२६४·०	२०·३	...	१·०
पिछड़ी जातियों का कल्याण	२,८८७·२‡	७००·०	१,८४८·१	३१६·६	...	२२·५
जोड़	३३,९८१·२	१०,९३६·३	१६,२२६·६	२,८८९·९	१८६·२	१,०३९·२

* इसके अन्तर्गत बुनियादी उद्योगों और सम्बन्धित परिवहन के लिये ५० करोड़ रुपये की रकम की व्यवस्था है। इसी रकम में से खनिज पदार्थों के निर्यात के संगठन का एक प्रोग्राम भी पूरा किया जायेगा।

‡ इसके अन्तर्गत केन्द्रीय सरकार का ३ करोड़ रुपये का अनुदान है। इसके अतिरिक्त संविधान की धारा २७५ (१) के अनुसार केन्द्रीय सरकार से और भी ९ करोड़ रुपया प्राप्त होने की सम्भावना है।

विवरण १—केन्द्र तथा राज्यों का विकास-व्यय (क्रमशः)

लाख रुपये

मद	जोड़	केन्द्रीय सरकार	'क' भाग के राज्य	'ख' भाग के राज्य	जम्मू तथा कश्मीर	'ग' भाग के राज्य
६. पुनर्वास	८,५००·०	८,५००·०	...	...	...	...
७. निर्माण तथा भवन निर्माण	१,१०२·३	१,१०२·३	...	...	...	...
८. वित्त मन्त्रालय की स्कीमें	४३९·६	४३९·६	...	...	...	...
९. उत्तर-पूर्वी सीमान्त एजेन्सी	३००·०	३००·०	...	...	...	...
१०. अन्डमान	३८२·८	३८२·८	...	...	...	...
११. कारपोरेशनों को कर्जे	१,२००·०	१२००·०	...	...	...	...
१२. विविध	१,७७४·४	६५०·५	१,००३·५	७२·०	४८·९	...
कुल जोड़	२,०६,८७८·१	१,२४,०५४·३	६१,०११·६	१७,३२५·७	१,३००·०	३,१८६·५

विवरण २—'क' भाग के राज्यों का विकास-व्यय

लाख रुपये

मद	आसाम	बिहार	बम्बई	मध्य प्रदेश	मद्रास	उड़ीसा	पंजाब	उत्तर प्रदेश	पश्चिमी बंगाल	जोड़
१. खेती और ग्राम-विकास—										
खेती	२७६'१	१२८४'३	१७४८'४	१००५'५	१५६३'७	२०५'५	२१०'७	२०६५'६	६८८'१	९,१०८'२
पशु पालन	१२'५	६२'५	१६६'३	६८'८	१००'०	५२'८	२२'०	१३४'१	७४'७	७५४'३
डेरी के काम तथा दूध का वितरण	...	१'५	६०२'१	३६'६	५०'०	६'२	...	२०'६	५०'०	७७०'३
जंगलात	३६'३	१२५'०	८३'८	४०'८	३८'८	१३'१	१८'०	१६५'२	७८'८	५६६'८
सहकारिता	२६'३	३६'०	१२३'२	२८'८	१००'०	२८'६	११'८	१३०'७	...	४६१'७
मछली उद्योग	६'०	१०'६	१६'०	५'८	१००'०	३३'४	...	६'२	१५४'५	३३२'५
ग्राम-विकास	३६'३	१२४'७	१३१'५	१६५'६	२००'०	१०'०	...	...	३'०	६७४'४
जोड़	३६६'५	१६७७'६	२८७१'६	१३८२'५	२१८२'५	३५२'६	२६२'५	२५५२'७	१०४६'१	१२७३१'२

विवरण २—'क' भाग के राज्यों का विकास-व्यय (क्रमशः)

लाख रुपये

मद	आसाम	बिहार	बम्बई	मध्य प्रदेश	मद्रास	उड़ीसा	पंजाब	उत्तर प्रदेश	पश्चिमी बंगाल	जोड़
२. सिंचाई और बिजली की बड़ी योजनाएँ—										
बहुमुखी योजनाएँ	....	....	....	..	....	....	...	....	....	....
सिंचाई की योजनाएँ	२००'०	९७३'३	२२६९'०	३०८'०	३४०८'०	३००'०	३२६'२	१९१२'०	१५३७'८	११२३४'३
बिजली की योजनाएँ	८३'०	७०८'७	१०४३'०	६००'०	५०२४'०	३६१'०	३८'२	१४११'०	७५'८	६३७४'७
जोड़	२८३'०	१६८२'०	३३१२'०	९०८ ०	८४३२'०	६६१'०	३६४'४	३३२३'०	१६१३'६	२०६०९'०
३. उद्योग—										
घरेलू उद्योग	२५'०	५९'२	१०३'१	९'२	११६'९	२७'६	४८'१	३०१'५	७४'३	७६४'९
अन्य उद्योग	...	६०'०	२५० ६	२२६'२	८५'१	६५'३	१५'५	२८० ७	४२ ४	१०२५'८
जोड़	२५'०	११९'२	३५३'७	२३५ ४	२०२'०	९२'९	६३ ६	५८२'२	११६'७	१७९०'७
४. परिवहन—										
सड़कें	२१३'०	८००'०	११६३'६	२००'०	५००'०	२००'०	७५'१	५२२'४	१३८५'१	५०५९'२
सड़क परिवहन	३१'९	....	२००'०	...	....	२०'०	....	१२०'०	१९० ५	५६२'४
बन्दरगाह	....	....	२५'०	.	....	१'०	. .		....	२६'०
जोड़	२४४'९	८००'०	१३८८'६	२००'०	५००'०	२२१'०	७५'१	६४२'४	१५७५'६	५६४७'६

विवरण २—'क' भाग के राज्यों का विकास-व्यय (क्रमशः)

लाख रुपये

मद	आसाम	बिहार	बम्बई	मध्य प्रदेश	मद्रास	उड़ीसा	पंजाब	उत्तर प्रदेश	पश्चिमी बंगाल	जोड़
५. सामाजिक सेवाएँ—										
शिक्षा	८६'६	५७०'४	४६११'१	१०७६'३	८०० ०	१७६'५	११८'०	१६०३'८	८०८ १	६८६०'१
चिकित्सा	१७३'५	४०३'६	५३६'४	२६७'६	३००'०	७८'७	७३'६	३७६'८	१२१०'२	३३६४'३
सार्वजनिक स्वास्थ्य	१७'८	१६६'०	१११६'७	७८'२	६००'०	४६'४	५०'१	२४६'१	३०४'७	२६५६'०
गृह-निर्माण	....	१००'०	७७'२	२०'०	३००'०	....	११'३	१४५'२	२२३'४	८७७'१
श्रम तथा श्रम-कल्याण	६·०	२०'०	१६२'३	०'५	....	१'६	१'८	१०१'५	....	२६४'०
पिछड़ी हुई जातियों का कल्याण	५०६'६	१६०'०	२१३'६	१३६'४	४६७'६	११६'४	....	२३६'२	८'३	१८४८'१
जोड़	७६६'८	१४५०'३	६७१७'३	१५८२'३	२७६७'६	४२२'६	२२५'१	२६८२'६	२५५४'७	१६२२६'६
६. विविध—	...	...	...	...	...	३'५	१०००'०	...	...	१००३'५
कुल जोड़	१७४६'२	५७२६'१	१४६४३'५	४३०८'२	१४०८४'१	१७८४'२	२०२०'७	६७८२'६	६६०६'७	६१०११'६

विवरण ३—'ख' भाग के राज्यों का विकास-व्यय

लाख रुपये

मद	हैदराबाद	मध्य भारत	मैसूर	पैप्सू	राजस्थान	सौराष्ट्र	त्रावनकोर कोचीन	जोड़	जम्मू और कश्मीर
१—खेती और ग्राम विकास—									
१. खेती	३४६'४	७५०'०	४४३'०	३६४'९	१०९'२	२१२'४	५४५'१	२७७१'०	२२'१
२. पशुपालन	४९'६	५०'०	५३'८	१०'०	१८'३	१०'४	२'५	१९४'६	१५'०
३. डेरी तथा दूध का वितरण	१'७	....	....	....	....	१'६	....	३'३	....
४. जंगलात	२१'४	५०'०	८'३	४३'६	२१'८	१९'६	६०'०	२४४'७	१०'०
५. सहकारिता	३५'३	२५'०	७'१	१५'०	३'०	३१'८	८'०	१२५'२	....
६. मछली उद्योग	८'६	१०'०	२'२	२'४	....	३४'७	१५'०	७२'९	....
७. ग्राम-विकास	....	६०'०	८१'१	....	१५'०	२१६'१	....	३७२'२	....
जोड़	४८३'०	९४५'०	५९५'५	४३५'९	१६७'३	५२६'६	६३०'६	३७६३'९	४७'१

विवरण ३—'ख' भाग के राज्यों का विकास-व्यय (क्रमशः)

लाख रुपये

मद	हैदराबाद	मध्य भारत	मैसूर	पेप्सू	राजस्थान	सौराष्ट्र	त्रावनकोर कोचीन	जोड़	जम्मू और कश्मीर
२—सिंचाई तथा बिजली की बड़ी योजनाएँ—									
१. बहुमुखी योजनाएँ	..	....	....	....	....	....	....	...	..
२. सिंचाई योजनायें	२४७९'०	३२८'०	७१६'०	३४'०	५०३'६	४७४'६	४७८'०	५०१३'२	३६६'७
३. बिजली योजनाएँ	३२०'६	२२८'०	१२६८'०	३०'६	४०'८	२१२'५	१०३५'०	३१३५'५	७४'९
जोड़	२७९९'६	५५६'०	१९८४'०	६४'६	५४४'४	६८७'१	१५१३ ०	८१४८'७	४४१'६
३—उद्योग									
१. घरेलू उद्योग	२५'७	५०'०	१३५'४	४'४	३८'५	१३'९	८९'०	३५६'९	३१'२
२. अन्य उद्योग	२६८'७	५'०	३४'८	२७'३	....	०'९	१५'८	३५२'५	५०'६
जोड़	२९४'४	५५'०	१७०'२	३१'७	३८'५	१४'८	१०४ ८	७०९'४	८१'८
४—परिवहन									
१ सड़कें	१२८'६	१८९'०	३२०'१	९५'१	४००'०	३००'०	१५०'०	१५८२·८	४९५'४
२. सड़क परिवहन	....	....	....	....	१'०	५३'०	४२'०	९६'०	....
३. बन्दरगाह	....	....	....	....	....	३३'०	३०'०	६३'०	....
जोड़	१२८'६	१८९'०	३२०'१	९५'१	४०१'०	३८६'०	२२२'०	१७४१'८	४९५'४

विवरण ३—'ख' भाग के राज्यों का विकास-व्यय (क्रमशः)

लाख रुपये

मद	हैदराबाद	मध्य भारत	मैसूर	पेप्सू	राजस्थान	सौराष्ट्र	त्रावनकोर कोचीन	जोड़	जम्मू और कश्मीर
५—सामाजिक सेवाएं—									
१. शिक्षा	२६३'५	२००'०	२२५'६	८९'९	२६३'५	१६४'९	२०'०	१२२७'४	४६'०
२. चिकित्सा	११७'७	७७'०	५६'५	५६'०	८२'०	७१'५	१२०'०	५८०'७	४६'०
३. सार्वजनिक स्वास्थ्य	८८'२	१२१'२	१५८'३	२९'०	१३५'५	७३'७	५१'५	६५७'४	८२'२
४. गृह-निर्माण	....	१४'४	५०'०	२'०	२'०	९'१	१०'०	८७'५	१२'०
५. श्रम तथा श्रम-कल्याण	....	४'४	....	....	५'०	१०'९	....	२०'३	....
६. पिछड़ी जातियों का कल्याण	....	८०'०	१००'०	१०'०	४२'२	२४'४	६०'०	३१६'६	...
जोड़	४६९'४	४९७'०	५९०'४	१८६'९	५३०'२	३५४'५	२६१'५	२८८९'९	१८६'२
६—विविध	....	....	....	....	....	७२'०	....	७२'०	४८'९
कुल जोड़	४१५५'०	२२४२'०	३६६०'२	८१४'२	१६८१'४	२०४१'०	२७३१'९	१७३२५'७	१३००'०

विवरण ४—'ग' भाग के राज्यों का विकास-व्यय

लाख रुपये

मद	अजमेर	भोपाल	बिलासपुर	कुर्ग	दिल्ली	हिमाचल प्रदेश	कच्छ	मणिपुर	त्रिपुरा	विन्ध्य प्रदेश	जोड़
१—खेती और ग्राम-विकास—											
खेती	४८·४	१७३·०	७·०	....	६३·६	२८·०	६०·६	०·८	१२·६	२०४·७	५९८·७
पशुपालन	९·६	७·०	१·१	....	९·४	२२·४	३·९	२·५	२·८	१२·९	७१·६
दूध का वितरण	....	....	....	१·०	४·९	....	....	....	....	१·५	७·४
जंगलात	१०·६	२०·०	५·०	....	२·२	५९·०	१·४	३·०	११·३	२२·५	१३५·०
सहकारिता	८·४	५·०	....	२·०	६·३	१५·०	३·५	...	१·१	३·०	४४·३
मछली उद्योग	....	२·०	....	...	२·६	१·०	१·४	....	....	१·२	८·२
ग्राम-विकास	....	....	०·५	....	...	...	..	...	...	....	०·५
जोड़	७७·०	२०७·०	१३·६	३·०	८९·०	१२५·४	७०·८	६·३	२७·८	२४५·८	८६५·७

विवरण ४—'ग' भाग के राज्यों का विकास-व्यय (क्रमशः)

लाख रुपये

मद	अजमेर	भोपाल	बिलासपुर	कुर्ग	दिल्ली	हिमाचल प्रदेश	कच्छ	मणिपुर	त्रिपुरा	विन्ध्य प्रदेश	जोड़
२—सिंचाई और बिजली की बड़ी योजनाएँ—											
सिंचाई योजनाएं	११'३	....	....	....	....	८०'०	९१'०	....	....	....	१८२'३
बिजली योजनाएं	....	२७'६	....	३५'०	..	१३'५	२३'०	१२'०	७'०	५०'५	१६८'६
जोड़	११'३	२७'६	....	३५'०	....	९३'५	११४'०	१२'०	७'०	५०'५	३५१'२
३—उद्योग—											
घरेलू उद्योग	....	५'०	०'५	....	७'३	२३'०	३'५	....	५'८	६'०	५१'१
अन्य उद्योग	....	....	....	....	....	....	....	....	....	....	....
जोड़	....	५'०	०'५	....	७'३	२३'०	३'५	....	५'८	६'०	५१'१
४—परिवहन—											
सड़कें	१५'६	४०'०	२३'०	२०'०	२५'०	११०'०	५८'२	८१'३	१२८'०	१२५'६	६२७'४
सड़क-परिवहन	....	....	२'०	....	२१६'०	१०'०	....	१०'५	...	....	२३८'५
बन्दरगाह	....	....	....	...	...	....	१३'४	....	....	....	१३'४
जोड़	१५'६	४०'०	२५'०	२०'०	२४१'०	१२०'०	७१'७	९१'८	१२८'०	१२५'६	८७६'३

विवरण ४—'ग' भाग के राज्यों का विकास-व्यय (क्रमशः)

लाख रुपये

मद	अजमेर	भोपाल	बिलासपुर	कुर्ग	दिल्ली	हिमाचल प्रदेश	कच्छ	मणिपुर	त्रिपुरा	विन्ध्य प्रदेश	जोड़
५—सामाजिक सेवाएं—											
शिक्षा	१५·०	३०·०	१०·०	१०·०	२५६·८	३६·८	६·८	१७·७	२४·०	१००·०	५१०·१
चिकित्सा	३१·६	२५·०	४ ०	५·०	५८·६	१८·१	२६·०	६·०	११·७	३६·०	२१२·६
सार्वजनिक स्वास्थ्य	६·१	५०·०	४·०	....	३६·०	३७·६	१०·०	२१·०	३·०	६०·०	२२८·०
गृह-निर्माण	....	....	....	....	५५·०	....	...	....	....	...	५५·०
श्रम तथा श्रम-कल्याण	....	....	....	....	१·०	....	....	....	....	....	१·०
पिछड़ी हुई जातियों का कल्याण	...	५·०	....	....	·	....	२·५	....	....	१५·०	२२·५
जोड़	५३·०	११०·०	१८·०	१५·०	४१०·७	९२·८	४५·३	४४·७	३८ ७	२११·०	१०३१·२
कुल जोड़	१५७·२	३८६.६	५७·१	७३ ०	७४८·०	४५४·७	३०५·३	१५४·८	२०७·३	६३६·२	३१८६·५